पृथ्वीराज रासउ

पाठालोचन इतिहास, तथा साहित्यालोचन संबंधी भूमिका,
निर्धारित पाठ,पाठान्तर, अर्थ और टिप्पणियों से युक्त

संपादक
डॉ० माताप्रसाद गुप्त, एम. ए., डी. लिट्.
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय

प्रकाशक
साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)

प्रथमवार

सं० २०२० वि०

(६०)

मूल्य [illegible].००

[illegible] रुपया

श्रीसुमित्रानन्दन गुप्त द्वारा
साहित्य मुद्रण, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित,
और
साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) से प्रकाशित।

भूमिका

१. पृथ्वीराज रासो
की
प्रयुक्त प्रतियाँ और उनका पाठ

'पृथ्वीराज रासो' की प्राप्त प्रतियों की संख्या सौ से ऊपर है। इनकी एक अच्छी सूची डॉ० मोतीलाल मेनारिया के 'राजस्थानी पिंगल साहित्य' में दी हुई है।[1] उस सूची में ६० के लगभग प्रतियों के प्राप्ति-स्थान दिए हुए हैं। इनके अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के वार्षिक और त्रैवार्षिक हिन्दी हस्त लिखित पुस्तकों के खोज-विवरणों, 'राजस्थान में हिन्दी हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज' के विभिन्न भागों तथा विभिन्न पुस्तकालयों और व्यक्तियों के संग्रहों से जिन प्रतियों की सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं, उनकी संख्या भी ४०-४५ से कम नहीं है। किन्तु ये अलग-अलग आकार-प्रकार में उन प्रतियों में से किसी न किसी प्रति से मिलती-जुलती हैं जिनका उपयोग इस संस्करण के प्रस्तुत करने में किया गया है, और ये प्रयुक्त प्रतियाँ अपने आकार-प्रकार की प्रतियों में अनेक दृष्टियों से प्रायः सबसे अधिक महत्व की भी हैं, इसलिए नीचे इन्हीं का विवरण दिया जा रहा है।

(१) धा० : यह प्रति धारणोज, ताल्लुका पाटन, गुजरात में बारोट वीराजी पंथूजी के पास बताई जाती है। मैंने १९५३ के अन्त में उन्हें पत्र लिखा था, तो उन्होंने लिखा था कि उनके पास एक बहुत पुरानी पुस्तक है जो संस्कृत में लिखी हुई है,और जिसे वे पढ़ नहीं पाते हैं किंतु उनके स्वर्गीय पिता पंथूवजा जी कहा करते थे कि वह पोथी 'पृथ्वीराज रासो' की है। उन्होंने मुझे पुस्तक दिखाने के लिए तत्परता भी प्रकट की, किन्तु जो समय उन्होंने दिया था वह मुझे अनुकूल नहीं पड़ रहा था, और उनके पत्र से यह भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हो रहा था कि जिस पोथी के बारे में उन्होंने लिखा था वह 'पृथ्वीराज रासो' की ही थी, इसलिए मैंने उन्हें लिखा कि यदि वे कुछ दिनों के लिए वह पोथी प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय को भेज सकें तो अच्छा हो। इसका उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। इसके बाद भी मैंने उन्हें तीन पत्र डाले, और स्पष्ट लिखा कि यदि वे उसे विश्वविद्यालय के पुस्तकालय को न भेज सकते हों, तो मैं स्वतः वहाँ पहुंच कर उसे देखूँ, किन्तु फिर भी किसी पत्र का उत्तर उनसे न मिला। एक अनिश्चित वस्तु के लिए गुजरात की यात्रा और वह भी उसके एक देहात की, व्यावहारिक न समझ पड़ी; अतः मूल प्रति का उपयोग मैं नहीं ही कर सका। गुजरात के विश्वविद्यालयों में हिन्दी का अध्यापन हो रहा है। वहाँ के विश्वविद्यालय, उनके कोई उत्साही अध्यापक या अन्वेषण-छात्र इस प्रति की फोटोग्राफ प्राप्त कर सकें तो वह बहुत उपयोगी होगा।

इस प्रति का पता कई वर्ष हुए प्रसिद्ध प्राचीन प्रतियों के संग्रहकर्त्ता मुनि पुण्य विजय जी को लगा था। उन्होंने उसी समय इसकी एक प्रतिलिपि करा ली थी। उनसे यह प्रतिलिपि श्रीअगरचंद नाहटा ने ले ली थी। मूल प्रति के न मिलने पर मैंने मुनिजी को लिखा कि वे इस कार्य के लिए मुझे

[1] मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी पिंगल साहित्य, पृ० ४४।

कुछ समय के लिए उक्त प्रतिलिपि भिजवा दें, और मुनि जी ने नाहटाजी को इसलिए लिखा भी, किन्तु नाहटाजी ने सूचित किया कि उक्त प्रतिलिपि श्री नरोत्तमदास स्वामी के पास थी, और गुम हो गई; उसकी एक प्रतिलिपि स्वामीजी के पास अवश्य थी, जो उन्हीं की की हुई थी। किन्तु स्वामी जी ग्रंथ के 'लघुतम रूपान्तर' का संपादन कर रहे थे, इसलिए वे उसे देने में असमर्थ रहे।

कुछ समय पीछे मुझे यह ज्ञात हुआ कि स्वामी जी के द्वारा की हुई प्रतिलिपि की भी एक प्रतिलिपि डॉ० नामवरसिंह ने अपने 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' नामक खोज-प्रबंध के लिए की थी। मेरे अनुरोध पर इस कार्य के लिए उन्होंने उसे कृपापूर्वक मुझे दे दिया, जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। सं० १६६७ को लिखी प्रति की तीसरी पीढ़ी की यह आधुनिक प्रतिलिपि ही उक्त प्रति और उसकी प्रथम और द्वितीय प्रतिलिपियों के अभाव में उपयोग में आ सकी है।

मुनि जी के द्वारा कराई गई प्रतिलिपि और उसकी अपनी प्रतिलिपि का परिचय देते हुए श्री नरोत्तमदास स्वामी ने लिखा है, "प्रतिलिपिकार नें बड़ी सावधानी से प्रतिलिपि तैयार की थी, पर 'रासो' की भाषा और भाषा-शैली से परिचित न होने के कारण अनेक अशुद्धियाँ रह गयीं। मूल प्रति का पाठ भी संभवतः शुद्ध नहीं था, ऐसा प्रतीत होता है। फिर भी प्रति बड़ी महत्वपूर्ण थी। इस प्रतिलिपि पर से मैंने एक संशोधित प्रतिलिपि बहुत वर्षों पूर्व तैयार की थी। संशोधन प्रधानतया शब्दों की वर्त्तनी (Spelling) से ही सम्बन्ध रखने वाले थे जो छन्दानुरोध के कारण किए गए थे।"[1] इससे यह प्रकट है कि स्वामी जी के द्वारा की हुई प्रतिलिपि 'संशोधित प्रतिलिपि' थी और संशोधन 'प्रधानतया' शब्दों की वर्तनी के सम्बन्ध के किए गए थे। किन्तु स्वामी जी प्राचीन हिन्दी और राजस्थानी साहित्य के मान्य विद्वान हैं, इसलिए ये संशोधन पर्याप्त सावधानी से किए गए होंगे, यह हमें मान लेना चाहिए।

डॉ० नामवरसिंह के द्वारा की हुई इस प्रति-प्रतिलिपि की प्रतिलिपि अवश्य ही सावधानी से ही हुई है—उन्हें 'रासो' की भाषा पर कार्य करना था। किन्तु ऐसा लगता है कि उक्त आदर्श के कुछ उल्लेख, जो पाठ-निर्धारण की दृष्टि से महत्व के थे, उनके कार्य की दृष्टि से महत्व के न होने के कारण अथवा अनजाने ही छूट गए। संयोग से मुझे स्वामी जी की प्रतिलिपि भारतीय हिन्दी परिषद् के जयपुर अधिवेशन के अवसर पर १९५४ के दिसम्बर में हस्त लिखित ग्रन्थों की प्रदर्शिनी में उलट पुलट कर देखने को मिल गई थी। उस समय मैंने अपनी दृष्टि से उसकी एकाध महत्व की बातें लिख भी ली थीं। उन बातों के सम्बन्ध में डॉ० नामवरसिंह की प्रतिलिपि का मिलान करने पर एक-दो स्थलों पर अन्तर दिखाई पड़ा। स्वामी जी की प्रतिलिपि में निम्नलिखित दो दोहों के बीच में "तथा अउर पाठान्तर" शब्दावली मुझे मिली थी, जो डॉ० नामवर सिंह की उस प्रतिलिपि में नहीं मिली :—

> सुनि वर सुन्दर उभय हुव स्वेद कंप सुर भंग।
> मनु कमलिनि कल सम हरि अभ्रित करने तंन रंग॥
> सुनि रव प्रिय प्रिथिराज कउ उभद रोम सिन अंग।
> सेद कंप सुर भंग भयउ सपत भाइ तिहि अंग॥[2]

डॉ० सिंह की प्रतिलिपि में बाद वाला दोहा चौकोर कोष्ठकों के अन्तर्गत रक्खा हुआ है और उसकी क्रम-संख्या भी नहीं दी हुई है, किन्तु पाठालोचक के लिए 'तथा अउर पाठांतर' की शब्दावली स्वतन्त्र महत्व की थी, जो प्रतिलिपि में छोड़ दी गई है। इसी प्रकार स्वामी जी की प्रतिलिपि में निम्नलिखित उल्लेख पुष्पिका के रूप में मिलते हैं :—

[1] राजस्थान भारती, अप्रैल १९५४, 'पृथ्वीराज रासो का लघुतम रूपान्तर', पृ० ३।
[2] नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, ६१. ११५९।

" इति श्री कवि भट्ट चंदवरदायी कृत राजा श्री प्रिथीराज चहूआण रासउ रसाल संपूर्ण। सं० १६६७ वर्षे शाके १५३२ प्रवर्तमाने आसाढ मासे शुक्ल पक्षे पंचमी तिथौ महाराजाधिराज महाराजा श्री कल्याण मल्ल जी तत्पुत्र राजा श्री भाव जी तत्पुत्र राजा श्री भगवानदास जी पाठनार्थं।

यह रासो की बुक धारणोजग्राम निवासी बारोट पशुवजा की है। और वह धारणोज निवासी सेठ किशोरदास हेमचंद शाह के द्वारा कॉपी करने को प्राप्त हुई है।"

डॉ० सिंह की प्रतिलिपि में केवल प्रथम वाक्य आता है, शेष नहीं।

डॉ० सिंह की प्रतिलिपि के साथ एक और कठिनाई हुई—कन्नौज-प्रयाण तथा कन्नौज-युद्ध सम्बन्धी उसका सम्पूर्ण अंश मुद्रित रूप में ही मुझे प्राप्त हो सका, क्योंकि उस अंश की प्रतिलिपि प्रेस कापी के रूप में प्रेस चली गई थी और अप्राप्त हो गई थी। स्वाभाविक है कि इस मुद्रित अंश में मुद्रण-जनित कुछ पाठ-विकृतियाँ भी आ गई होंगी। किन्तु इन त्रुटियों के होते हुए भी चूँकि डॉ० सिंह ने अपनी ओर से पाठ-संशोधन का कोई प्रयास नहीं किया था इसलिए यह प्रतिलिपि उतनी ही विश्वसनीय थी जितनी सामान्यतः कोई भी हस्तलिखित प्रतिकृति हो सकती थी, इसलिए मूल प्रति तथा उसकी प्रथम और द्वितीय प्रतिलिपियों के अभाव में इसका उपयोग बिना किसी हिचक के किया जा सका है।

इस प्रति के पाठ की विशेषता यह है कि रचना के प्राप्त समस्त पाठों में यह सब से छोटा है, यद्यपि पूर्ण है। इसमें न खण्ड-विभाजन है और न छन्दों की क्रम-संख्या दी हुई है—कहीं-कहीं वार्त्ताओं के रूप में वर्णित कथा की सूचना मात्र दे दी गई है। गिनने पर कुल रूपक[1]-संख्या ४२२ ठहरती है। ति भी पूर्ण है, यह प्रसन्नता की बात है। इसकी पुष्पिका ऊपर दी ही जा चुकी है।

(२) मो०: यह प्रति प्रसिद्ध जैन विद्वान् मुनि जिनविजय के संग्रह की है। यह 'रासो' के सबसे छोटे पाठ की एक मात्र अन्य प्राप्त प्रति है, और उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी धा० है। इस प्रति के लिए मुनि जी को जब मैंने लिखा, वह श्री अगरचन्द नाहटा के पास थी। कदाचित् प्रति की जीर्णता के ध्यान से नाहटा जी ने मूल प्रति न भेजकर उसकी एक फोटो-स्टैट कापी मुझे भेज दी। इस बहुमूल्य प्रति के उपयोग के लिए मैं मुनि जी का अत्यन्त आभारी हूँ। प्रस्तुत कार्य के लिए इसी फोटो-स्टैट कापी का उपयोग किया गया है। मूल प्रति मैंने १९५६ के जून में डा० दशरथ शर्मा के पास दिल्ली में देखी थी। फोटो-स्टैट होने के कारण यह कॉपी प्रति की एक वास्तविक प्रतिकृति है।

इस प्रति के प्रारम्भ के दो पन्ने नहीं हैं, शेष सभी हैं। इसमें भी खण्ड-विभाजन और छन्दों की क्रम-संख्या नहीं है। इसमें वार्त्ताओं के रूप में इस प्रकार के संकेत भी प्रायः नहीं दिए हुए हैं जैसे धा० में हैं। प्रारम्भ के दो पन्ने न होने के कारण इसकी निश्चित छन्द संख्या कितनी थी, यह नहीं कहा जा सकता है, किन्तु इन त्रुटित दो पत्रों में से प्रथम पृष्ठ रचना के नाम का रहा होगा, जैसा अनिवार्य रूप से मिलता है, और शेष तीन पृष्ठ ही रचना के पाठ के रहे होंगे। तीसरे पत्रे के प्रारम्भ में जो छन्द आता है वह धा० १७ है, जिसका कुछ अंश पूर्ववर्तीय द्वितीय पत्र पर रहा होगा और धा० की तुलना में इसमें ३०—३१ प्रतिशत रूपक अधिक हैं, इसलिए धा० के १६ रूपकों के स्थान पर इसके प्रथम दो पत्रों में २०—२१ रूपक रहे होने चाहिए। फलतः इन निकले हुए दो पत्रों में २० छन्द मान लेने पर प्रति की कुल रूपक संख्या ५५२ ठहरती है। यह प्रति अत्यन्त सुलिखित है और उपर्युक्त दो पत्रों के अतिरिक्त पूर्णतः सुरक्षित भी है। इसका आकार ६'२५"×३" और इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :—

[1] ना० प्र० स० संस्करण में प्रारम्भ में रूपक और छन्द-संख्या दोनों दी गई हैं, किन्तु पीछे केवल छन्द-संख्या दी गई है। छन्द-संख्या छन्द के एक वृत्त में जितने चरण होने चाहिए, उसके आधार पर दी जाती है; किन्तु कुछ छन्द मालाओं के रूप में भी चलते हैं, यथा भुजंगी, पद्धडी आदि। ऐसे छन्दों के सम्बन्ध में पूरी माला की गणना एक रूपक के रूप में की जाती है। पुरानी प्रतियों में सामान्यतः रूपक-गणना ही मिलती है।

"इति श्री कविचन्द विरचिते प्रथीराज रासुं संपूर्ण। पंडित श्री दान कुशल गणि। गणि श्री राजकुशल। गणि श्री देव कुशल। गणि धर्म कुशल। मुनि गाव कुशल लषितं। मुनि उदय कुशल। मुनि मान कुशल। सं० १६९७ वर्षे पौष सुदि अष्टम्यां तिथौ गुरु वासरे मोहनपुरे।"

यह एक काफ़ी सुरक्षित पाठ-परम्परा की प्रति लगती है, क्योंकि इसमें पाठ-त्रुटियाँ बहुत कम हैं, और अनेक स्थलों पर एक मात्र इसी में ऐसा पाठ मिलता है जो बहिरंग और अंतरंग सभी सम्भावनाओं की दृष्टि से मान्य हो सकता है। फिर भी श्री नरोत्तमदास स्वामी ने कहा है कि इसका "पाठ बहुत ही अशुद्ध और भ्रष्ट है।" [1] उन्होंने यह धारणा इस प्रति के सम्बन्ध में कैसे बनाई है, यह उन्होंने नहीं लिखा है। किन्तु इस प्रकार की धारणा के दो कारण संभव प्रतीत होते हैं, एक तो यह कि इसमें वर्त्तनी-विषयक कुछ ऐसी विशिष्ट प्रवृत्तियाँ मिलती हैं जिनके कारण शब्दावली और भाषा का रूप विकृत हुआ लगता है, दूसरे यह कि इसका पाठ अनेक स्थलों पर अपनी सुरक्षित प्राचीनता के कारण दुर्बोध हो गया है, और उन स्थलों पर अन्य प्रतियों में बाद का प्रक्षिप्त किन्तु सुबोध पाठ मिलता है। कहीं कहीं पर ये दोनों कारण एक साथ इकट्ठा होकर पाठक को और भी अधिक उलझा देते हैं।

वर्त्तनी सम्बन्धी इसकी सबसे अधिक उलझन में डालने वाली प्रवृत्तियाँ आवश्यक उदाहरणों के साथ निम्नलिखित हैं:—

[१] इसमें 'इ' की मात्रा का अपना सामान्य प्रयोग तो है ही, 'अइ' के लिए भी उसका प्रयोग प्रायः हुआ है, यथाः

गुन तेज प्रताप ति वर्णि 'कहि'। दिन पंच प्रजंत न अंत लहए। (मो० ९५.५१-५२)
ब्रह्मा वेद नहि चवि अलप युधिष्ठिर 'बोलि'।
जु शायर (सायर) जल 'तजि' मेर मरजावह छोलइ। (मो० २२४.३-४)
रहि गय उर झंपेव उरह मि (=मइ) अवर न बुझइ।
मुष न जीवइ कोइ मोहि परमपर 'सूझि'। (मो० ५४५.३-४)
किरणाटी राणी 'कि' (=कइ) आवासि राजा विदा मांगन गयु। (मो० १२२ अ)
'पछि' (=पछइ) राजा परमारि आवासि विदामांगन गयु। (मो० १२३ अ)
'पछि' (=पछइ) राजा परमारि सुपुली विदा मांगन गयु। (मो० १२४ अ)
'पछि' (=पछइ) राजा वाघेली कै अवास विदा मांगन गयु। (मो० १२५ अ)

तुलना कीजिये:—

'पछइ' राजा कछवाही 'कइ' आवासि विदा मांगन गयु। (मो० १२६ अ)
मनु अकाल टडीअ गयन 'पवि' (=पव्वइ) छुटि प्रवाह। (मो० २३४.२)
तिन 'मि' (=मइ) दसि 'सि' (=सइ) भरि दुलन 'उप्पारि' (उप्पारइ) गज दंत। (मो० ४३८.२)
तिन 'मि' (=मइ) कवि गन पंच सिहि (=सइहि) साप भाष दिढउ काज।
चिन 'मि' (=मइ) दिवगति देवन समह तिन मधि पुहु प्रथीराज। (मो० ४११)
जे कछु साध मन 'मि' (=मइ) भइ सब इछा रस कीन्ह। (मो० ५११.२)
'असमि' (=असमइ) सोइ मग्यु सुकवि नृपति 'विचार' (=विचारइ) सब। (मो० ५१०.१)

इस प्रवृत्ति की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि कहीं कहीं 'इ' की मात्रा को 'अइ' के रूप में पढ़ा गया है:—

तम 'सरवगइ' (=सरवगि) सू केधि राज गुरु राज सम। (मो० ४०२.१)

[२] 'इ' की मात्रा का प्रयोग पुनः 'ऐ' के लिए भी हुआ मिलता है, यथाः ऊपर मो० १२२ अ, १२३ अ, १२४ अ, तथा १२५ अ के उद्धरणों में आए हुए 'कि' की तुलना कीजिए:—

[1] 'पृथ्वीराज रासो का लघुतम रूपान्तर', राजस्थान भारती, मार्च १९५४, पृ० १।

पछइ राजा भटिआनी कै आवासि बिदा मांगन गयु । (मो० १२७ अ)
भरी भोज 'भाजि' (=भाजइ) नही सारि भागि ।
भरि मल मानै नही लोह लागै । (मो० ३२७'१९-२०)
सुनि त पंग चहुआन कुं मुष जंपि इह 'विन' (=वैन)।
बोल सूर सामंत सब कहु एकहु शेन (=सेन)। (मो० २२९)
जल बिन भट सुभट भो करि अपहि भुज 'विन' (=वैन)।
परमतत्व सूक्षि (=सूक्षइ) नृपति मगि मगि फरमांनन (<फरमानेन)। (मो० ५४७)
'ति' (=तैं) राषु हींदुआन गंज गोरी गाहंतु ।
'तैं' राषु जालोर चंपि चालुक चाहंतु ।
'तै' राषु पगुरु भीम भटी 'दि' (=दै) मथु ।
'तै' राषु रणथंभ राय जादव 'सि' (=सइ) हिथु । (मो० ३०८.१-४)
भये तोमर मतिहीन करीय किली 'ति' (=तै) ढिली । (मो० ३३.४)
'ति' (=तै) जीतु गजंनु' गंजि अपार हमीरह ।
'ति' (=तै) जीतु चालुक विहरि संनाह सरीरह ।
'ति' (=तैं) पहुपंग सू गहुं इतु जिम गहि सू रहह ।
'ति' (=तै) गोरीय दल दहु धारि कठ जिन वन दहह ।
धुव तुंग तेग तव उचमन तिं (=तैं) तो पोशन मिलयु । (मो० ४२४.१-५)
भरे देव दानव जिम 'विर' (वैर) चीतु । (मो० ४५४.४९)

इस प्रवृत्ति की पुष्टि भी इस प्रकार होती है कि कहीं-कहीं पर 'इ' की मात्रा को 'ऐ' के रूप में पढ़ा गया है, यथा :—

विवुजन 'वोलै' (=बोलि) दिन धरहु आज । (मो० ४०.५४)

[३] कहीं-कहीं 'इ' की मात्रा का प्रयोग 'अय' के लिए भी हुआ मिलता है, यथा:—

'किमास' (मो० ७३.४)
वही (मो० ७७.१)
वही (मो० ८२.२)
वही (मो० ९९.२)
वही (मो० १०१.२)
वही (मो० १०५.१)
वही (मो० १०८.३)
वही (मो० ११६.१)
वही (मो० १२१.१)
वही (मो० ५४८.३)

तुलना कीजिए :—

सा रांभी 'कयमास' कांम अंधा देवी विहृदा गत्ति । (मो० ७४.४)
हि (=हइ) 'कयमास' कहूं कोइ जानहुं । (मो० ९८.४)

[४] 'इ' की मात्रा का प्रयोग 'ए' की मात्रा के लिए भी हुआ है, यथा:—

दुहु राय रुपत ति रत्त 'उठि' ।
विहुरे जन पावस अभ वठे । (मो० ३१४.५-६)
नीयं देह दिपि बिरपि ससाने ।

जिते मोह मज्जा लगये 'आसमानि'। (मो० ४९८.३५-३६)
शकुंने मरंने जनंने विहाने।
वजे दहुं हुंभिदे विभू 'मनि'। (मो० ४९८.३९-४०)

इस प्रवृत्ति की पुष्टि भी कहीं-कहीं 'इ' की मात्रा के 'ए' की मात्रा के रूप में पढ़े गए होने से होती है, यथा :—

विनि गंडु नृप अर्धनिसा सम दासी 'सुरिआते' (सुरिआति)।
देव धरह जळ घन अनिल कहिग चंद कवि प्रात॥ (मो० ८७)
पहिचानु जयचंद इहत ढिलीसुर पेषै।
नहिन चंद अनुहारि दुसह दारुण तब दिषै। (मो० २१२.१-२)
गहीय चंदु रह गजने जाहां सजन जु 'नरेंद'।
कबहूं नयन निरषहूं मनहुं रवि अरविंद। (मो० ४७४)

[५] 'इयइ' या 'इयै' के स्थान पर प्रायः 'ईइ' लिखा गया है यथा :—

सोइ एको बान संभरि धनी बीउ बान नह 'संधीइ'।
चरिआर एक लग मोगरीअ एक बार नृप हुकीयें। (मो० ५४४.५-६)
इम बोल रिहि कलि अंतरि देहि स्वामि 'पारथीइ' (=पारथियइ)।
अरि असीह लष को अंगमि वरणि राय 'सारथीइ' (=सारथियइ)। (३०५.५-६)
मंगल वार हि मरन की ते पति सधि सन 'पंडीइ' (=पंडियइ)।
जेत चढि ग्रुध कमधज सू मरन सब सुप 'मंडीइ' (=मंडियइ)। (मो० ३०९.५-६)
छिनु इक दाहि 'विलंबीइ' (विलंबियइ) कवि न करि मनु मंदु। (मो० ४८८.२)
सह सहाव दर 'दिपीइ' (=दिपियइ) सु कहू भूमि पर मिछ। (मो० ४७९.२)
सीरताज साहि 'सोभीइ' (=सोभियइ) सुदेसि। (मो० ४९२.१७)
'सुनीइ' (=सुनियइ) पुन्य सभ मह्न राज। (मो० ५१.५)

[६] 'इयउ' के स्थान पर प्रायः 'ईउ' लिखा मिलता है :—

इम जंपि चंद 'विरदीउ' (विरदियउ) सु प्रथीराज उनिहारि पहि। (मो० १८९-६; १९०.६)
इम जंपि चंद विरदीउ (=विरदियउ) पद स कोस चहुआंन गयु। (मो० ३३५.६)
इम जंपि चंद 'विरदीउ' (=विरदियउ) दस कोस चहुआंन गउ। (मो० ३४३.७)
जिम सेत वज 'साजीउ' (=साजियउ) पथ। (मो० ४९१.२४)

[७] 'उ' की मात्रा का प्रयोग प्रायः 'अउ' के लिए हुआ है, यथा :—

सघ ही दास कर इथ सुवंय सुनाययूउ।
बानावलि वि दहु बांन रोस रिस 'दाहयु'।
मनहू नागपति पत्तिन अप 'जगाइयु'। (मो० ८०.२-४)
पायक धनू धर कोडि गनि असी सहस हयमंत जहु।
पंगुर किहि सामंत सुइ जु जीवत महि प्रथीराज 'कुं'। (मो० २३०.५-६)
निकट सुनि सुरतान थांम दिसि उच इथ 'सु' (सउ)
जस अवसर सतु सचि अछि लूटीय न करीय 'भू' (भउ)। (मो० ५३३.३-४)
'सु' (= सउ) बरस राज तप अंत किन। (मो० २१ की अंतिम अर्द्धाली)
'सु' (= सउ) उपरि 'सु' (= सउ) सहस वीह अगनित लव हह। (मो० २८३.२)
कन [उ] ज राडि पहिलि दिवसि 'छु' (= छउ) मि सात निवटिया। (मो० २९८.६)

[८] कभी-कभी 'उ' की मात्रा से 'ओ' की मात्रा का भी काम लिया गया है :—

निशपल पंच घदोए दोई 'धायु' ।
आखेटकखंखे नृप आयौ । (मो० ९२.३-४)

[९] और कभी-कभी 'उ' की मात्रा से 'ओ' की मात्रा का काम लिया गया है:—

कवि देवत्त कवि कु मन 'रत्तु' ।
न्याय नयन कन [उ] जि पहुत्तो । (मो० १७६.१-२)

इसकी पुष्टि एकाध स्थान पर 'उ' के स्थान पर 'ओ' की मात्रा मिलने से भी होती है:—

प्रात राउ संप्रापतिग जाहां दर देव 'अनोप' ।
सयन करि दरबार जिहि सात सहस अंस भूप ॥ (मो० २१४)

[१०] इसी प्रकार कहीं कहीं 'उ' वर्ण का प्रयोग 'ओ' के लिए हुआ मिलता है:—

तुलंत जू तुज तराजून्ह गोप ।
मनु घन मझि तडितह 'उप' । (मो० १६१.२७-२८)
गंग जल जिमन भ्रर हलि 'उजे' ।
पंगरे राय राठुर फोजे । (मो० २८४.१५-१६)

प्रति की वर्त्तनी-सम्बन्धी ऐसी ही प्रवृत्तियों का यहाँ उल्लेख किया गया है जो हिंदी की प्रतियों में प्रायः नहीं मिलती है, और इसीलिए हिंदी पाठक को ऐसा लग सकता है कि ये प्रतिलिपिकार की अयोग्यता के कारण हैं । किन्तु ऐसा नहीं है । नारायणदास तथा रतरंग रचित 'छिताईवार्ता' की भी एकप्रति में, जो इस प्रति के कुछ पूर्व की है, वर्त्तनी-सम्बन्धी ये सारी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, यद्यपि वे परिमाण में कम हैं;[1] पश्चिमी राजस्थानी तथा गुजराती की इस समय की प्रतियों में तो ये प्रवृत्तियाँ प्रचुरता से पाई जाती हैं ।[2] फलतः वर्त्तनी-सम्बन्धी इन प्रवृत्तियों का परिहार करके ही प्रति के पाठ पर विचार करना उचित होगा । और इस प्रकार के परिहार के अनन्तर मो० का पाठ किसी भी प्रति से बुरा नहीं रहता है, वरन् वह प्रायः प्राचीनतर—और इसलिए कभी-कभी दुर्बोध भी—प्रमाणित होता है, यह सम्पादित पाठ और पाठांतरों पर दृष्टि डालने पर स्वतः स्पष्ट हो जायगा ।

(३) अ० : अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में रचना की तीन महत्त्व की प्रतियाँ हैं, जिन पर पुस्तकालय की संख्याएँ ५९, ६० तथा ६२ पड़ी हुई हैं । तीनों प्रतियाँ एक ही पूर्वज आदर्श की हैं—क्योंकि अनेक स्थलों पर तीनों में समान अशुद्धियाँ हैं, और तीनों में छन्द-भेद के आधार पर छन्दों की क्रम-संख्या देने की पद्धति, छन्दों का क्रम तथा दो-चार अपवादों को छोड़ कर छन्द-संख्या भी वही है। अन्तर तीनों में यह है कि ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियों में त्रुटित स्थल बहुतायत से हैं, जब कि ६० संख्यक प्रति में त्रुटित स्थल इने-गिने हैं । इससे सामान्यतः यह समझा जाता है कि ६० संख्यक प्रति उक्त पूर्वज आदर्श की उस समय की हुई किसी प्रतिलिपि की परम्परा में आती है जब वह अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित थी और ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियाँ उसकी उस समय की हुई किसी प्रतिलिपि की परम्परा में आती हैं जब वह कीटभक्षण से अथवा अन्य किसी प्रकार से स्थान-स्थान पर कुछ कट-फट

[1] दे० 'छिताईवार्त्ता', सम्पा० माताप्रसाद गुप्त, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९५८ ।

[2] दे० 'षष्टि शतक प्रकरण', सम्पा० भोगीलाल ज० सांडेसरा, वड़ोदा, १९५४,
'वसन्त विलास फागु', सम्पा० कान्तिलाल व्यास, बंबई, १९४२,
'औक्तिक प्रकरण' [प्राचीन गुजराती गद्य सन्दर्भ], सम्पा० मुनि जिन विजय, अहमदाबाद सं० १९८६,
'सम्यकत्व कथाओ' ,, ,, ,,
'जिन वल्लभसूरि गुरु गुण वर्णन' ,, ,, ,,
'कान्हड दे प्रबन्ध', सम्पा० कान्तिलाल व्यास, जयपुर, १९५३ ।

गया था ।[1] तथ्य यह है कि ५९ तथा ६२ का सामान्य पूर्वज तथा ६० का पूर्वज लगभग एक ही समय उक्त पूर्वज आदर्श से उतारे गए और उस समय ही वह पूर्वज कोटादि के द्वारा क्षत-विक्षत था। किन्तु पूर्वज आदर्श की उक्त प्रतिलिपि तथा ६० संख्यक प्रति के बीच की किसी पीढ़ी में इन क्षत-विक्षत स्थलों पर त्रुटित पाठ को पूरा करने के लिए काफ़ी मात्रा में प्रक्षेप-क्रिया हुई, जिसके परिणाम-स्वरूप देखने में ६० संख्यक प्रति ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियों की तुलना में अवश्य अधिक त्रुटिहीन लगती है, किन्तु ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियाँ प्रायः प्रक्षेपहीन हैं, जो निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जावेगा, इसीलिए इस शाखा के पाठ के पुनर्निर्माण की दृष्टि से ये ६० की अपेक्षा कहीं अधिक विश्वासनीय और महत्वपूर्ण हैं:—

खण्ड १. मोती० ८(=स० २.३५५) इसके दूसरे तथा तीसरे चरणों का पाठ अन्य प्रतियों में है:—

कमोदनि कुंदह केतुकि बील। कनेर करौंदिय केवर कोह।

५९ में 'कमोदनि' से 'कनेर' तक की शब्दावली छूटी हुई है। प्रति ६० में चरण २ तथा ३ को मिला कर निम्नलिखित शब्दावली रख दी गई है:—

करिकै सब ग्वारिनि हुंडे फिरि एक परस्पर अप्पत कोह।

६२ यहाँ खण्डित है।

२. भुजंग (= स० १.५—१०) के पूर्व ५९ में निम्नलिखित शब्दावली और आती है—

लाल माली कवित्तं।
जिनै उच्चरी शुद्धि गंगा पवित्तं।
गिरा शेष षाणी कवि काव्य चंदे।

अन्तिम छूटे हुए चरण के स्थान पर ६० में है:—

नाम वष्पाणनं चन्द छन्दे।

और ६२ में है:—

प्ररूपं ति वाणी भली कव्वि चन्दे।

वास्तव में ये त्रुटित चरण पूरे रूपक के अन्तिम चार चरण हैं, जो इन प्रतियों में भी अन्यत्र प्रायः इसी प्रकार आते हैं:—

सतं दंडमाली सुलाली कवित्तं। जिन बुद्धि तारंग गंगा पवित्तं।
गिरा शेष वाणी कवि कव्वि वंदे। तिनै हि पुछि उच्चिष्ट कवि चंद छंदे।

ये चरण इन प्रतियों के पूर्वज आदर्श में किसी प्रकार से रूपक के प्रारम्भ में भी त्रुटित रूप में आ गये थे, और ५९ में उसी प्रकार उतरे रहे, किन्तु ६० तथा ६२ के बीच के किन्हीं पूर्वजों में मनमाने ढंग से ठीक कर लिए गए।

उपर्युक्त रूपक में ही अन्य प्रतियों में आने वाला अन्त का निम्नलिखित चरण ५९ तथा ६२ में नहीं है:—

जिनै सेत बंध्यौ सु भोज प्रबन्धं।

६० में इसकी अभावपूर्ति निम्नलिखित चरण द्वारा की गई है:—

अनेकं धर्म अन्न हुए अनद्दं।

उपर्युक्त रूपक में ही अन्य प्रतियों में आने वाला अन्त का निम्नलिखित चरण ५९ में नहीं है:—

गिरा शेष वाणी कवि कव्वि वंदे।

[1] श्री अगरचन्द नाहटा: 'पृथ्वीराज रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ', राजस्थानी, भाग १, अंक २, पृ० ३३।

६० में इसकी अभावपूर्त्ति निम्नलिखित चरण द्वारा की गई है :—

कवि एम रच्यो जु अगों सु वंदे ।

६२ यहाँ पर खण्डित है ।

२. उधोर ८ (=स० १८४१—५६) : इस छन्द के चरण २९—३० अन्य प्रतियों में निम्नलिखित हैं :—

चढि बनसपति सोहति दंति । मानहुं इंद्रधनु की पंति ।

५९ तथा ६२ में 'चढि बनसपति' मात्र शेष है, ६० में वह भी निकाल दिया गया है ।

३. दो० ५ (= स० ४५. २१७) : इस दोहे का प्रथम चरण अन्य प्रतियों में है :—

घटि बढि केलि कनउज्जनी पेम स दीरघ होत ।

५९ तथा ६२ में 'केलि' के बाद की शब्दावली नहीं है, जब कि ६० में यह है :—

कलिंग अवर देस कहुं केन ।

३. कवि० ७ (=स० ४६.१११) का चतुर्थ चरण अन्य प्रतियों में है :—

छिति छितान घर धर्म कर्म हिय भरतिहि रोचन ।

५९ तथा ६२ में यह चरण छूटा हुआ है, और ६० में है :—

सूर वीर गम्भीर धीर क्षत्रिय मन रोचन ।

४. कवि० २ (= स० १२.५४) का प्रथम चरण अन्य प्रतियों में है:—

आसोजै रानिंग राव परबत वेहानै ।

५९ तथा ६२ में यह चरण छूटा हुआ है, जबकि ६० में है:—

होलाराइ हमीर धीर कहि कहूं बपानौ ।

४. कवि० ७ (= स० १२.१६९) का अन्तिम चरण अन्य प्रतियों में है:—

बेदलह धाइ वध्धाइयां बोल उंचा उंचा भरी ।

५९ तथा ६२ में यह चरण छूटा हुआ है, जबकि ६० में है:—

जो चढत दलहं बद्धयौ सुबल धरा धुंधु मिलि धरहरी ।

४.कवि० ९ (स० १३.३५) के अन्तिम दो चरणों का पाठ अन्य प्रतियों में है:—

उत्तंग ढाल की बैरषह को हंके अह्वारहां ।

सिसि जाम तीनि विस्तेपतिय पंजू राग सुढारहां ।

५९ तथा ६२ में 'वैरषह' तथा 'पंजू' के बीच की शब्दावली नहीं है, जबकि ६० में एक और चरण गढ़कर अभावपूर्ति निम्नलिखित प्रकार से की गई है:—

उत्तंग ढाल की बैरषह पंजू राग सुढारहां ।

गय थट्टह हया हेषारवां चलियारह हजारहां ।

५. नारा० १ (= स० १२.२१८) का अन्तिम चरण अन्य प्रतियों में है:—

परीस चारु चालुकं नरिंद को नरपती ।

५९ तथा ६२ में यह छूटा हुआ है, ६० में इसके स्थान पर है:—

गजपथटं हयपथटं नरपथटं नरप्पति ।

५. दो० ११ (= स० १२.१५५) के दूसरे चरण का पाठ अन्य प्रतियों में है:—

बीरंदाह घसीठियां द्वे हिंदू सुलतान ।

५९ तथा ६२ में यह चरण छूटा हुआ है और ६० में इसका पाठ है:—

धर धक्यौ लीनी धरा जित्यौ भीम परान ।

६. पद्ध० २ (= स० ४८.४९-६१) के चरण ७-१० का पाठ अन्यों में है:—

मुकले दूत तब तिहि रिसाइ। असमथ्थ सेव किम भूमि पाइ।
बंधौ समेत सामन्त सथ्थ। उत्तरे आनि दरबार तथ्थ।

५९ तथा ६२ में 'असमथ्थ' के बाद 'सथ्थ' तक की शब्दावली छूटी है। किन्तु ६० में इन चरणों के स्थान पर दो चरण निम्नलिखित कर लिये गए हैं:—

मुकले दूत तब तिहि समथ्थ। रिसाइ उत्तरे अगि दरबार तथ्थ।

१०. कवि० ५ (=स० ६१.१५३३) का चरण ३ अन्य प्रतियों में है:—

परयो चंद पुंडीर चंद पिष्यौ मारंतौ।

५९ तथा ६२ में प्रथम 'चंद' के बाद दूसरे 'चंद' तक के शब्द छूटे हुए हैं, ६० में इनके स्थान पर 'पुन्नपामार' शब्द रख दिये गए हैं।

११. कवि० ९ (=स० ६१.१८३१) के चरण १ और २ का पाठ अन्यों में है:—

हय हय हय आयास केलि सज्जी सुब्योम सिर।
किल किलंत कामकिक डक्क वज्जी सुहंस हर।

५९ तथा ६२ में 'सज्जी' के बाद 'बज्जी' तक की शब्दावली छूटी हुई है। ६० में दोनों चरणों का पाठ इस प्रकार है:—

हय हय हय आयास केलि सज्जिय सुहंस हरि।
कहुं गधरिग कहुं परिग अरिग थरहरिग सुहड भर।

१२. कवि० ३ (=स० ६१.२१६४) के चरण २ और ३ अन्यों में हैं:—

हय तुम दुस्सह मिलन स्वामि हुज्जै सुभथ घर।
हौं रविमंडल भेदि जीव लगि सत्त न छंडौं।

५९ तथा ६२ में 'मिलन' के 'मिल' के बाद 'लगि' के 'ल' तक का अंश छूटा हुआ है, ६० में दोनों चरण इस प्रकार कर दिए गए हैं:—

हम तुम दुसह मिलगि सत्त न छंड्यौ सद्धर।
इमह चंस भज्जिग नरेस करि पंड विहंड्यौ।

ये उदाहरण भी ग्रंथ के पूर्वार्द्ध मात्र से हैं, उत्तरार्द्ध में ६० में इस प्रकार के प्रक्षेप और भी अधिक हैं; ५९ तथा ६२ उत्तरार्द्ध में भी वैसे ही हैं, जैसे ऊपर पूर्वार्द्ध में मिले हैं। प्रकट है कि ६० अपनी शाखा के पाठ की वास्तविक प्रतिनिधि नहीं रह गई है, ५९ तथा ६२ ही में उसकी प्रतिनिधि होने की योग्यता है। पुनः ५९ और ६२ में से, जैसा हमने ऊपर देखा है, ६२ की अपेक्षा ५९ कम प्रक्षिप्त है। वह कुछ कम खण्डित भी है—केवल प्रारम्भ के ३½ रूपक इसमें नहीं हैं, जबकि ६२ में प्रारम्भ के १७ रूपक नहीं हैं। इसलिए अ० के पाठ के लिए ५९ संख्यक प्रति का ही उपयोग किया गया है, केवल प्रारम्भ के उस अंश के लिए जो ५९ संख्यक प्रति में खण्डित है, ६० संख्यक प्रति का उपयोग किया गया है। इस शाखा के पाठ में कुल १९ खण्ड हैं, और कुल रूपक-संख्या ११९० के लगभग है।

अ० परिवार की ये प्रतियाँ मुझे लुधियाना के श्री वेणीप्रसाद शर्मा के द्वारा प्राप्त हुई थीं, जिन्होंने इन्हें इस शाखा के पाठ संपादन के लिए प्राप्त किया था। इस कृपा के लिए मैं उनका आभारी हूँ।

५९ संख्यक प्रति सुलिखित है। इसका आकार १०'५"×६'२५" है। इनमें प्रतिलिपि-तिथि नहीं दी हुई है। अन्त में निम्नलिखित दोहा अवश्य आता है जो ६० तथा ६२ में नहीं है:—

महाराज नृप सूर सुव कूरमचंद उदार।
रासौ पृथ्वीयराज कौ राख्यौ लगि संसार॥

किन्तु यह दोहा पुष्पिका का नहीं लगता है, बल्कि निम्नलिखित पूर्ववर्ती छन्द पर आधारित उसका विस्तार मात्र लगता है:—

प्रथम वेद उद्धरिय बंभ मच्छह तनु किन्नउ ।
द्वितीय वीर वाराह धरनि उद्धरि जसु लिन्नो ।
कौमारिक भद्देस धम्म उद्धरि सुर सध्धिय ।
कूरम सूर नरेस हिंदु हद उद्धरि रष्षिय ।
रघुनाथ चरितु हनुमंत कृत भूप भोज उद्धरिय जिमि ।
पृथिराज सुजसु कविचंद्र कृत चंद्रसिंह उद्धरिय तिमि ॥

यह छन्द ६२ में भी है।

६० संख्यक प्रति में इसी प्रकार निम्नलिखित दोहे आते हैं :—

मन्त्रीश्वर मण्डन तिलक वच्छा वंश भरभाण ।
करमचंद सुत करम बद्द भागचंद सब जाण ॥१॥
तसु कारण लिखियो सही पृथ्वीराज चरित्र ।
पढता सुख संपत्ति सकल मन सुख होवे मित्र ॥२॥

इन कर्मचन्द तथा भागचन्द का ठीक पता लग गया है। कर्मचन्द कल्याणमल्ल के अमात्य थे, जिनके प्रयत्नों से कहा गया है कि अकबर ने कल्याणमल्ल को जोधपुर की अधीशता प्रदान की थी। इन कर्मचन्द के दो पुत्र थे, भागचन्द और लक्ष्मीचन्द। कर्मचन्द का यह वंश उनके एक पूर्वपुरुष 'वत्सराज' के नाम पर 'वच्छावत' कहलाता था। भागचन्द जहाँगीर के शासन काल में थे और कहा जाता है कि बीकानेर-नरेश सूरसिंह ने इन्हें सपरिवार बीकानेर लाकर धोखे से मरवा डाला था।[1] इसी प्रकार सूरसिंह सुत चन्द्रसिंह कूर्मवंशीय का भी पता लग गया है। ये चन्द्रसिंह कूर्म वंशी सूरसिंह के पुत्र थे जो प्रायः तीन सौ वर्ष पूर्व विद्यमान थे।[2] अतः यह प्रमाणित हो जाता है कि तीनों प्रतियाँ परस्पर बहुत आस-पास की हैं और इनमें ६० संख्यक प्रति—जिसमें भागचन्द का उल्लेख होता है—कुछ पूर्व की और ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियाँ उसके कुछ बाद की हैं। फलतः ६० संख्यक प्रति प्रायः सवा तीन सौ वर्ष और ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियाँ प्रायः तीन सौ वर्ष पुरानी होनी चाहिए और इन प्रतियों की जीर्णता देखने में भी इतनी ज्ञात होती है।

(४) फ० : यह प्रति मूलतः उसी आदर्श की है जिसकी अ० परिवार की प्रतियाँ हैं, क्योंकि उस परिवार का पाठ-त्रुटियों में से अधिकतर इसमें भी पाई जाती हैं। फिर उस परिवार की ६० संख्यक प्रति कि भाँति इसमें भी प्रक्षेप के द्वारा त्रुटि-परिहार का यत्न किया गया है। नीचे दिए हुए उदाहरणों से यह बात देखी जा सकती है :—

१. उधोर ८ : अ० परिवार की प्रतियों की भाँति इसमें भी चरण २१ नहीं था किन्तु इस त्रुटि का परिहार फ० में इस प्रकार किया गया कि चरण २३ के अंतिम शब्द बदल दिए गए जिससे उसका तुक चरण २२ से मिल जावे और फिर चरण २४ के बाद निम्नलिखित चरण अर्द्धाली पूरी करने के लिए बढ़ा लिया गया :—

सोभित भृकुटि भामिनि सोरु ।

२. कवि० ३ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण २ तथा ३ परस्पर स्थानांतरित थे, जिसके कारण अन्त्य-वैषम्य था, फ० में मूल के चरण ३ तथा ४ के अन्त के शब्दों को बदल कर इसे ठीक कर लिया गया।

३. कवि० ४ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण ४ नहीं था, उसके स्थान पर इसमें निम्न लिखित नया चरण गढ़ लिया गया :—

[1] दे० श्री शिवदत्त शर्मा : 'मन्त्री कर्मचन्द', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, १९८१ पृ० २९५।
[2] दे० श्री नरोत्तमदास स्वामी : 'पृथ्वीराज रासो', राजस्थान भारती, वर्ष १, अंक १, पृ० ५।

तू करिष्य शिष्यहि करै जू प्रीतम दाउन।

३. कवि० ७ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण ४ का अधिकांश नहीं था। उसके स्थान पर इसमें निम्नलिखित चरण गढ़ लिया गया :—

बंस मध्य वरु वीस अरिह संग्राम अरोचन।

४. कवि० २ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण १ नहीं था; उसके स्थान पर इसमें यथा चरण २ निम्नलिखित नया चरण गढ़ लिया गया :—

पुकारहु परमार जइत सब जगही जानै।

४ कवि० ७ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण ६ नहीं था, उसके स्थान पर यथा चरण ५ निम्नलिखित नया चरण गढ़ लिया गया :—

सावंत सकल सूरति मिलंति इह स बात दढांह करी।

४. कवि० ९ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण ५ तथा ६ की शब्दावली छूटी हुई थी जो एक चरण की शब्दावली के लगभग थी, इस त्रुटि को ठीक करने के लिए इसमें निम्नलिखित नया चरण गढ़ कर यथा चरण ६ रख लिया गया :—

सुलतान राउ प्रथीराज लघु लिषग्गि जेन प्रौढारहइ।

५. नारा० १ : अ० परिवार की भांति इसमें भी चरण ४ नहीं था; इसकी पूर्ति निम्नलिखित नवनिर्मित चरण ४ से कर ली गई :—

अलोक सोक संहरं सुता सुपाद संमभी।

५. दो० ११ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण २ नहीं था, जिसकी पूर्ति निम्नलिखित नवकल्पित चरण से कर ली गई :—

इच्छन इच्छइ नन भूरि ता भीम नृप मानु।

९. कवि० ३ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण १ नहीं था; इसकी पूर्ति यथा चरण २ निम्नलिखित नवनिर्मित चरण बढ़ा कर कर ली गई :—[1]

इच्छन इच्छा इच्छनन भूरि ता भीम नृप मानु।

१३. दो० १७ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण १ की शब्दावली छूटी हुई थी, उसकी पूर्ति निम्नलिखित नवकल्पित चरण २ जोड़ कर कर ली गई :—

प्रथीराज चहुवान कौ सौ जिनु अपै मोहिं।

ये सभी प्रक्षेप अ० परिवार के ६० संख्यक प्रति के प्रक्षेपों से भिन्न हैं, इसलिए दोनों का प्रक्षेप-सम्बन्ध नहीं है।

इस प्रकार के प्रक्षेपों के अतिरिक्त इसमें लगभग ९० रूपक और मिलते हैं, जो परिवार अ० की किसी प्रति में नहीं मिलते हैं; लगभग ये सभी छन्द आगे उल्लिखित ना० तथा स० में मिल जाते हैं, और फ० में उसकी अपनी क्रम संख्याओं के बाहर पड़ते हैं। इसलिए यह प्रकट है कि ये छन्द फ० में बाद में मिलाए गए, और प्रक्षेप अथवा पाठ मिश्रण के द्वारा उसमें आए।

इन दृष्टियों से देखने पर फ० प्रति अ० परिवार की प्रतियों के होते हुए महत्वहीन और भ्रामक प्रमाणित होती है, और इसलिए यह अ० परिवार की प्रतियों का स्थान नहीं ग्रहण कर सकती है। फिर भी इसमें अनेक ऐसे स्थल हैं जो अत्रुटित हैं और अ० परिवार की प्रतियों में त्रुटिपूर्ण अथवा प्रक्षिप्त हैं :—

२. भुजं० १, चरण १५

२. उधोर ८, चरण २८–२९

[1] यह द्रष्टव्य है कि उद्धृत ५, दो० ११ की त्रुटि-पूर्ति भी इसी नवकल्पित चरण द्वारा की गई है।

३. दो० ३, चरण २
३. दो० ५, चरण १ के कुछ शब्द
६. पद्ध० २, चरण ७–१०
९. कवि० ३, चरण १
१२. दो० १२ के पूर्व का कवित्त, चरण १, २ के कुछ शब्द
१५. कवि० ८, चरण १, ४
१५. कवि० १६, चरण १, २
१६. कवि० १६, चरण २
१७. कवि० ४ के बाद की विज्जुमाला, चरण ७, ८
१७. कवि० १५, चरण ४
१७. त्रोटक ५, चरण १४, १५
१८. कवि० २, चरण ३, ४
१८. दो० ११ के कुछ शब्द
१९. दो० १४, चरण २

इन पूर्ण पाठों के सम्बन्ध में जो कि प्रक्षिप्त नहीं हैं—क्योंकि अन्य शाखाओं की प्रतियों में भी मिलते हैं—दो बातें सम्भव हो सकती हैं : एक तो यह कि फ० उस समय की प्रतिलिपि है जबकि इसका और अ० परिवार का पूर्वज आदर्श और इतना त्रुटित नहीं था जितना अ० परिवार की प्रतियों की प्रतिलिपि के समय हो गया : दूसरा यह कि फ० में किसी अन्य शाखा के पाठ की सहायता से त्रुटियाँ दूर कर दी गईं। किन्तु अब भी फ० में ऐसे बहुतेरे स्थल हैं जहाँ पर पाठ उसी प्रकार त्रुटित है जिस प्रकार अ० परिवार की प्रतियों में है; अतः यदि पाठ त्रुटियों को दूर करने के लिए किसी अन्य शाखा की प्रति या प्रतियों का सहारा लिया गया होता तो इस पिछले प्रकार की त्रुटियाँ भी अधिकतर दूर हो गई होतीं, जैसा कि नहीं हुआ है। इसलिए यही सम्भावना अधिक प्रतीत होती है कि इसकी प्रतिलिपि अ० परिवार की प्रतियों के कुछ पूर्व हुई थी जब इन सबका सामान्य मूलादर्श क्षत-विक्षत होते हुये भी इतना क्षत-विक्षत नहीं हुआ था जितना अ० परिवार की प्रतियों की प्रतिलिपि के समय हो गया था। अतः अ० परिवार की प्रतियों के होते हुए भी इस प्रति का महत्व है, विशेष रूप से उन स्थलों पर अपनी शाखा का पाठ-निर्धारित करने के लिए जो अ० परिवार की प्रतियों में त्रुटित अथवा प्रक्षिप्त हैं।

इसका आकार लगभग १२″×७·२५″ तथा इसकी पुष्पिका निम्नलिखित है :—

"सं० १७२८ मार्गसिर सुदि १ बुधवासरे फतेपुरा मध्ये लिषतं अमरा आत्मार्थे।"

यह महत्वपूर्ण प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह की है और उन्हीं से मुझको प्रस्तुत कार्य के लिए प्राप्त हुई थी, जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

(५) म० : यह भांडारकर आरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट की १४५५ (१८८१–९५) संख्यक प्रति है। इसका पत्रा २ से ४२ तक का अंश खण्डित है। इसका पाठ खण्डों में विभाजित है। छन्दों की क्रम-संख्या कुछ दूर तक छन्द-भेद के अनुसार प्रायः उसी प्रकार चलती है जिस प्रकार अ० या फ० में पूरे पाठ में चला है, किन्तु तदनंतर वह एक सम्मिलित संख्या के रूप में चलने लगती है, जैसे वह ना० या स० में चली है, जिनका उल्लेख आगे होगा।

खण्डों के नामों में भी इसी प्रकार की अनेकरूपता परिलक्षित होती है। प्रथम खण्ड को 'अध्याय' कहा गया है, दूसरे को प्रारम्भ में 'पर्व' किन्तु अन्त में 'खण्ड' कहा गया है। इसके बाद एक अंश आता है जिसके न प्रारम्भ में कोई शीर्षक दिया गया है और न अन्त में कोई पुष्पिका ही दी गई है। अ० तथा फ० में यह अंश दूसरे ही खण्ड में सम्मिलित है जबकि ना० तथा स० में यह अंश स्वतन्त्र है

और तीन भिन्न-भिन्न खण्डों में बँटा हुआ है। इस दृष्टि से देखने पर यह अंश अ० और फ० के साथ सादृश्य रखता हुआ प्रतीत होता है, और उपर्युक्त दूसरे खण्ड का परिशिष्ट-सा लगता है। इसके अनन्तर जो खण्ड आता है उसके प्रारम्भ में कोई शीर्षक नहीं दिया हुआ है और वह पन्नों के निकल जाने से खण्डित है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि इसे क्या कहा गया था। इस खण्ड के प्रारम्भ के दो रूपकों तक क्रम-संख्या छन्द-भेद के अनुसार मिलती है किन्तु तदनंतर पद्धति बदल जाती है और प्रति के अन्त तक वह एक सम्मिलित क्रम-संख्या के रूप में चलती है। इस खण्डित अंश के बाद दो खण्ड आते हैं जिन्हें 'प्रस्ताव' कहा गया है, दो खण्ड आते हैं जिन्हें पर्व-खण्डादि कुछ नहीं कहा गया है, एक खण्ड आता है, जिसे 'खण्ड' कहा गया है, तीन खण्ड आते हैं जिन्हें पर्व-खण्डादि कुछ नहीं कहा गया है और एक खण्ड आता है जिसे 'प्रस्ताव' कहा गया है और यही प्रति का अन्तिमखण्ड है। 'अध्याय', 'पर्व', 'खण्ड' और 'प्रस्ताव'—चार भिन्न-भिन्न नामों के आधार क्या हैं, यह स्पष्ट नहीं होता है। इस प्रकार के अध्याय, पर्व, खण्ड और प्रस्ताव कुल मिलाकर इस प्रति में १० होते हैं। इस प्रति का आकार लगभग ८'५"×४'५" तथा इसकी प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है :—

"संवत् १८०५ वर्षे मागसिर सुदि ११ तिथौ शनिवासरे ग्राम मथांणीया लिषतं पं० उदैराज।"

इस प्रति में कन्नौज-युद्ध के अनन्तर पृथ्वीराज के दिल्ली-आगमन तथा उसकी केलि-विलास तक की कथा आती है। इतने अंश में यद्यपि यह खण्ड-विभाजन और कथा-क्रम में प्रायः अ० और फ० के साथ सादृश्य रखती है, किन्तु इसमें 'हांसी प्रथम युद्ध' तथा 'हांसी द्वितीय युद्ध' नाम के दो खण्ड ऐसे हैं जो अ० और फ० में नहीं हैं, ना० और स० में हैं और शेष खण्डों में भी अनेक छन्द अ० और फ० की तुलना में अधिक हैं, जो प्रायः संपूर्ण रूप से केवल स० परिवार की प्रतियों में मिलते हैं, ना० परिवार की प्रतियों में नहीं। फलतः जबकि अ० में कथा के इस अंश में कुल ६८३ रूपक हैं, इसमें प्रति के प्राप्त १८५ पन्नों में ही लगभग १८५० रूपक हैं, और यदि खण्डित २२ पन्नों में उसी अनुपात से २२० रूपक के लगभग मान लिये जावें तो इस प्रति की कुल रूपक-संख्या २०७० के लगभग पहुँचती है। फलतः इस प्रति के पाठ का आकार अ० की तुलना में लगभग तिगुना है।

यह प्रति इस प्रकार अपने ढंग की अकेली है। ऐसा लगता है कि इसका कोई पूर्वज प्रायः उसी आकार-प्रकार का था जिस आकार-प्रकार का अ० का था, किन्तु पीछे उसमें इतनी पाठ-वृद्धि की गई कि छन्दों की क्रम-संख्या देने में कुछ दूर तक, गलत-सही, पूर्ववर्ती विधि का निर्वाह करने के बाद यह असंभव दिखाई पड़ा कि और आगे भी उसको चलाया जा सके, इसलिए उक्त दूसरी पद्धति को अपना लिया गया। इस प्रक्रिया के अवशेष म० के खण्ड १० तथा ११ में अभी तक सुरक्षित हैं। खण्ड १० में १४२ तक छन्द-संख्या लिखी जाकर पुनः १२५ से प्रारम्भ हुई है और ११ में ९८ तक छन्द-संख्या पहुँचकर ९० से और पुनः ९७ तक पहुँच कर ९२ से प्रारम्भ हो गई है।[1]

इस प्रति में खण्ड १ में ही निम्नलिखित छन्द-लक्षण आते हैं :—

अ० १. नारा० ६ के बाद : पढमो बारह मत्ते लीयां अठारह साहिणा अट्ठो।
जहां पढमं तहां तीयौ दह पंचमि भूमीयं गाहा ॥१॥

" " : जां पढम ताय पंचम सत्तम असेस होइ गुरहुग।
गुढिमणी चिण पईणा गाहा दोस पयासई ॥२॥

अ० १. दो० ४ के बाद : सगुणा जिह च्यान पढंत परी।
ठचि सोलहमत्त विसाम्रु करी।
सुणि प्यंगलि णा जहि वीर हयं।

[1] दे० आगे 'म० के क्रम-संख्या के बाहर के छन्द' उपशीर्षक 'रचना का मूल रूप' शीर्षक के अन्तर्गत।

	यह तोडय जाणहु पायडियं ॥
अ० १. दो० ५ के बाद :	पयोहर च्यारि पसठिय तांम।
	ति सोलह मत्तह सुत्तीयदाम।
	णपुथह हारु भरे हय अंत।
	ति अठह अगल छप्पण मंत ॥
अ० १. दो० २२ के पूर्व :	पढ पंदह हरणं अट्ठसह हरणं फुनि वसु हरणं पट्ठ हरणं।
	अंते गुर सोहै ससहुवन सोहै सिठि सरोहै परतोहै।
	जै परय मनोहर हरई मनोहर सा सकई।

ये छन्द 'प्राकृत पैंगल' में क्रमशः १.५४, १.६५, २.१२९, २.१३३ तथा १.१९४ हैं। किन्तु 'प्राकृत पैंगल' में इन लक्षण के छन्दों के साथ 'पृथ्वीराज रासो' का एक भी छन्द उदाहरण में नहीं दिया गया है, इसलिए 'रासो' के इस पाठ में ये छन्द 'प्राकृत पैंगल' से आए होंगे और इस पाठ को अन्तिम रूप 'प्राकृत पैंगल' के बाद मिला होगा।

यह मूल्यवान् प्रति मुझको इन्स्टीट्यूट से ही प्राप्त हुई थी, जिसके लिए मैं उसका अत्यन्त आभारी हूँ।

(६) ना० : यह प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह में है, जिसकी एक प्रतिलिपि हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, प्रयाग के लिए उन्होंने करा दी थी। मूल प्रति के लिए मैंने नाहटाजी को लिखा था, किन्तु उसकी जीर्णावस्था के कारण उन्होंने भेजने में असमर्थता सूचित की। अतः इसकी उक्त प्रतिलिपि का ही उपयोग किया जा सका है।

इस प्रति का पाठ भी खण्डों में विभाजित है—कुल ४६ खण्डों में रचना समाप्त हुई है। यह प्रति आदि से अन्त तक पूर्ण है। कुल मिलाकर इसमें ३३९७ रूपक हैं।

इसके पाठ में दो बातें ऐसी हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इसके पूर्व की किसी पीढ़ी में न खण्ड-संख्या इतनी थी और न छंद-सख्या ही और दोनों में वृद्धि हुई है। खण्डों के वर्त्तमान पाठ में भी कुछ खण्डों की पुष्पिकाओं में उनकी पुरानी क्रम-संख्या पड़ी रह गई है जो उनकी वर्त्तमान स्थिति से बहुत पिछड़ी हुई है, यथाः—

पुष्पिका में दी हुई खण्ड-संख्या	वर्त्तमान पाठ में खण्ड-स्थिति
पृथ्वीराज वंशावलि राजाजन्म कथा : ३	२
मुगलपराजय पृथ्वीराज विजय : ७	८
कान्हपाटी बन्धन कथा : ८	१०
दिल्ली राज्याभिषेक चामण्ड राय हस्तेन पतिसाह ग्रहण : ९	१२
कनवज गमन जयचन्द द्वारे संप्राप्तो : ११	३१

इस सूची में से प्रथम ही ऐसा खण्ड है जो पुष्पिका के अनुसार वर्त्तमान स्थिति से आगे बढ़ा हुआ लगता है, शेष सभी वर्त्तमान स्थिति से पिछड़े हुए हैं। किन्तु प्रथम भी वर्त्तमान स्थिति में कदाचित् इसलिए तृतीय से द्वितीय हो गया है कि पहले वंशावली के सम्बन्ध का जो द्वितीय खण्ड था, वह वर्त्तमान पाठ में प्रथम के साथ मिला दिया गया, जैसा प्रथम खण्ड की पुष्पिका की वर्त्तमान शब्दावली "आदि प्रबन्ध मंगलाचरण वंशावलि वर्णन" से प्रकट है। पूर्ववर्ती ७,८, ९ क्रमशः वर्त्तमान ८, १०, १२ हैं। अतः इनके बीच में वर्त्तमान खण्ड ९ तथा ११ पीछे किसी समय मिलाये गए, यह प्रकट है। छन्द-संख्या के बारे में भी यही बात दिखाई पड़ती है : बीच-बीच में अनेक छन्द ऐसे मिलते हैं जो दी हुई क्रम-संख्या के बाहर पड़ते हैं। वर्त्तमान खण्ड ३१ में तो १४ तक रूपक-संख्या एक बार चल लेने के बाद पुनः १ से प्रारम्भ होकर ६४ तक चलती है।

इस प्रति की पुष्पिका निम्नलिखित है :—

"सम्वत १७९२ वर्षे मार्ग शीर्ष मासे शुक्ल...श्री तोलीयासर ग्रामे वाचक श्री पुन्योदय जी गणि शिष्य...श्रीरस्तु ॥ शुभम्"

इस प्रति का आकार १३.७५" × ९.५" है।

इस पाल की और भी कुछ प्रतियाँ मिलती हैं, और एकाध कुछ पहले की भी हैं, किन्तु वे खण्डित हैं। यह प्रति पूर्ण और अत्यन्त सुरक्षित है। इस महत्व पूर्ण प्रति का उपयोग मैं सम्मेलन के अधिकारियों की कृपा से कर सका, इसलिए उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

(७) द० : यह रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन के टॉड संग्रह की ८२ संख्यक प्रति है। यह रचना की प्राचीनतम प्राप्त प्रतियों में से है और सं० १६९२ की है। इसमें कुल ३६ खण्ड हैं। यह 'बान वेध खण्ड' के पूर्व ही समाप्त हो गई है। इसके अतिरिक्त चौथे 'नाहर राय कथा' खण्ड के छन्द ५-१२, सत्ताईसवें 'शुक वाक्य खण्ड' के दो पत्रे (छन्द ५-४८) तथा छत्तीसवें 'पृथ्वीराज ग्रहण खण्ड' का एक पत्रा (छन्द ४-१९) त्रुटित हैं, और सातवाँ खण्ड 'देवगिरि युद्ध' अपूर्ण छूटा हुआ है : केवल ९ रूपक उसके उतारे गए हैं। टॉड संग्रह की ६० तथा १५७ संख्यक प्रतियाँ भी मूलतः इसी परिवार की हैं, किन्तु उनमें 'शुकवाक्य' तथा 'देवगिरि' खण्ड नहीं है। इसलिए उपर्युक्त त्रुटित अंशों में से शेष तीन के सम्बन्ध में ही उनका सहारा लिया जा सकता है। नागरी प्रचारिणी सभा के संस्करण तथा उस संस्करण के पाठ वाली प्रतियों में 'देवगिरि समय' में द० के ९ रूपकों के बाद ४१ रूपक आते हैं और 'बानवेध खण्ड' में टॉड संग्रह की ६० संख्यक प्रति में २८६ रूपक हैं। द० के प्राप्त रूपकों में इतने और रूपक जोड़ने पर उसकी कुल रूपक-संख्या लगभग ३४७० होती है।

द० का आकार १३.८" × ९.५" है। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :—

"संवत् १६९२ वर्ष चैत्र मासे शुक्ल पक्षे २ द्वितीया रविवारे लखितं।"

इसके अनंतर कुछ और लिखा हुआ है जिस पर इस समय कुछ पोता हुआ है और इसलिए वह अपाठ्य हो गया है। उसके बाद आता है :—

"संवत् १९२६ वर्ष काती सुद ५ सो यै पोथी दसोरा कृपारांम सीतारांम कने थी मोल लीधु रूपीया २५ आंकरा दीधा पोथी वणारणजी श्री रूपचन्द जी...जी री उदैपुर मध्ये लीधी।"

इस पाठ में भी बाद में की हुई पाठ-वृद्धि के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं : 'रितु बर्नन' नामक ३४ वें खण्ड के प्रथम पाँच रूपकों के बाद ५१ रूपकोंका 'शुकचरित्र' रख दिया जाता है, और तदनंतर पुनः 'रितु बर्नन' खण्ड के रूपकों की क्रम-संख्या ५ से प्रारम्भ होकर १४० तक चलती है।

इस महत्व पूर्ण प्रति का माइक्रोफिल्म इलाहाबाद यूनिवर्सिटी पुस्तकालय से मुझे प्राप्त हुआ था, जिसके लिए मैं पुस्तकालय के अधिकारियों का अत्यन्त आभारी हूँ।

टॉड संग्रह में इस परिवार की और भी कुछ प्रतियाँ हैं, किन्तु वे प्रायः खण्डित हैं; ऊपर जिस अन्य प्रति का उल्लेख किया गया है, उसका भी आदर्श कीटादि से बहुत क्षत-विक्षत हो गया था जिसके कारण प्रतिलिपिकार को स्थान-स्थान पर त्रुटित पाठ को छोड़ना पड़ा है। अतः इस प्रति का महत्व अपने परिवार का प्रतियों में सबसे अधिक है।

(८) शा० : यह प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के पुस्तकालय में है। यह दो मोटी जिल्दों में है। यह प्रति रचना के सबसे बड़े पाठ की सब से प्राचीन प्रति है। इसमें खण्डों की संख्या तथा रूपक-संख्या प्रायः वही है जो सभा के संस्करण की है, केवल 'महोबा खण्ड' इसमें नहीं है। इसमें कुल रूपक-संख्या अन्त में १०७०९ दी हुई है।—

इसका आकार १२" × १०" के लगभग है, और इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :—

"रासारो पोथी रा रूपक संख्या १०७०९ बत्तीस अक्षर मोलने श्लोक ग्रन्थ जे दो छे। ए पोथी

श्री दीवाणजी रै थी उतरी छे। लिषतं गणि ज्ञान विजयै। श्री वड़ा तलाब मध्ये लिषतं। संव...४७वर्षे आश्विन मासे।"

'४७' के पूर्व के अङ्क तथा अक्षर पूर्ववर्ती पत्रे के यहाँ पर चिपक जाने के कारण मिट गए हैं।

इस प्रति की एक आधुनिक प्रतिलिपि, जो मशीन के कागज़ पर की हुई है, सौभाग्य से उस समय की की हुई मिल गई है जब यह विकृति नहीं हुई थी। यह प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई में है और उसकी बी. डी. २७४ है। इसके कुछ खण्डों के अन्त या प्रारम्भ में निम्नलिखित शब्दावली आती है, जो आदर्श की है :—

खण्ड २ अन्त : "महामहोपाध्याय श्री १०६ श्रीअमर विजय गणि। शिष्य चेला गणि ज्ञान विजय लिषतं आत्मार्थे श्री उदयपुर मध्ये सं० १७४७ रा भाद्रवा सुदि २ दिने।"

खण्ड ३ अन्त : "लिषतं गणि ज्ञान विजयै आत्मार्थे।"

खण्ड ४ अन्त : "गणि ज्ञान विजय लिषतं।"

खण्ड ७ अन्त : "सम्वत १७४७ वर्षे सकल वाचक शिरोमणि महामहोपाध्याय श्री अमर विजय गणि। तत् शिष्य ज्ञान विजय गणि लिषतं आत्मार्थे। सकल मासोत्तम भाद्रमासे।"

खण्ड २१ प्रारम्भ : "अथ सकल वाचक शिरोमणि महामहोपाध्याय श्री ५ श्री अमर विजय गणि गुरुभ्यो नमः।

खण्ड २१ अन्त : गणि गिनांन विजय लिषतं श्री उदयपूरे।

खण्ड २२ अन्त : सम्वत १७४७ वर्षे आसू सुदि १० दिने।

इधर बहुत दिनों से यह विवाद रहा है कि सभा की प्रति सं० १६४७ की है या १७४७ की। इस प्रतिलिपि से यह प्रवाद समाप्त हो जाता है।

खेद है कि सभा के अधिकारियों से सभा को प्रति न प्राप्त हो सकी, अतः इस प्रतिलिपि का ही उपयोग प्रस्तुत कार्य के लिए करना पड़ा है। इस प्रतिलिपि के लिए मैं रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई के अधिकारियों का अत्यन्त आभारी हूँ।

(९) उ०: यह प्रति पहले आगरा कालेज में थी और अब भारतीय सरकार की नेशनल गैलेरी आव् मॉडर्न आर्ट में है। यह रचना के सबसे बड़े पाठ की एक अत्यन्त सुरक्षित और मूल्यवान् प्रति है। यह चार जिल्दों में है और १६०० पृष्ठों में समाप्त हुई है। यह प्रति आगरा कालेज को १८६१ में उदयपुर के महाराजा ने भेंट की थी, यह उक्त प्रति के मुखपृष्ठ पर उस समय के प्रिंसिपल श्री पियर्सन द्वारा सितम्बर २, १८६१ की तिथि देते हुए लिखा हुआ है।

इसमें खण्डों या प्रस्तावों का क्रम और उनकी संख्या वही है जो उपर्युक्त श० अथवा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण में है, केवल 'महोबा समय' इसमें भी नहीं है और कुछ खण्ड सभा के संस्करण की तुलना में इसमें कुछ आगे-पीछे मिलते हैं। प्रस्तुत संस्करण में सुविधा के लिए उनकी क्रम संख्या वही दी गई है जो सभा के संस्करण में है।

प्रति का आकार लगभग १२"×१०" है। इतनी बड़ी प्रति एक ही व्यक्ति की लिखी है, केवल अन्त के दो पत्रे अन्य व्यक्ति के लिखे हैं। सम्भावना यह प्रतीत होती है कि पूर्ववर्ती पत्रों के जीर्ण होकर निकल जाने के बाद वे फिर से जीर्ण पत्रों से ही उतारकर लगाए गए हों। वर्तमान अन्तिम पत्र पर पुष्पिका के नाम पर केवल इतना है :—

"ह० गोकुललाल पुरोहित ॥"

कुछ खण्डों की पुष्पिकाएँ दी हुई हैं, किन्तु प्रतिलिपि-सम्बन्धी कोई उल्लेख कहीं नहीं है। 'राजा रयन सी समय' और 'विवाह समय के' बीच 'विज्ञप्ति' शीर्षक के साथ निम्नलिखित छन्द अवश्य आते हैं, जो सभा के संस्करण में नहीं हैं :—

मिलि पंकज ग (गुन ?) उदधि करद कागद कातरणी ।
कोटी कचीका जलद कमल कदि कते करनी ।
इहि तिथि संख्या गुनित कहे कका कवि यानै ।
इह श्रम लेपन (लेपन) हार भेद भेदे सो जानै ।
इन कष्ट ग्रंथ पूरन करय मन बंछा दुख ना लहय ।
यालियै जतन पुस्तक पवित्र लिखि लेखक विनती करय ॥१॥
गुन मनियन रस पोइ चंद कवियन करि द्विद्धीय ।
छन्द गुनि ते तुट्टि मंद कवि भिन भिन किद्धीय ।
देस देस बिष्परिय मेळ गुन पार न पावय ।
उद्दिम करी मेलवत आश्विन आलय आवय ।
चित्रकोट रान अमरेस नृप हित श्री मुख आयस दयौ ।
गुन बिन करुना उदधि लिखि रासो उद्दिम कीयो ॥२॥
लघु दीरघ ओछो अधिक जो कछु अन्तर होय ।
सो कवियन मुख सुद्ध ते कहो आप बुद्धि सोइ ॥
॥ इति विज्ञप्ति ॥

विज्ञप्ति के ये छन्द आदर्श के ज्ञात होते हैं; इनमें राणा अमरसिंह के आदेश से चन्द के बिखरे हुए छन्दों को इकट्ठा कर उसके पाठ के पुर्ननिर्माण का उल्लेख हुआ है। राणा अमरसिंह का राज्यकाल सं० १६५३ से १६७६ तक है। छन्दों का पाठ कुछ विकृत हो जाने के कारण ठीक तिथि नहीं ज्ञात हो रही है; वह सम्भवतः १६७३ है जो 'गुन' 'उदधि' के उलट कर पढ़ने से बनती है। किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि किन्हीं कक्का कवि ने उक्त राणा के आदेश से वह आदर्श विभिन्न प्रतियों की सहायता से बनाया जिससे यह प्रति या इसकी कोई पूर्वज प्रति उतारी गई। अन्य साक्ष्यों के अभाव में इसे २ सितम्बर, १८६१ (=सं० १९१८) के कुछ पूर्व की प्रतिलिपि मानना चाहिए।

यह महत्त्वपूर्ण प्रति मुझे भारतीय सरकार की नेशनल गैलेरी आव् मॉडर्न आर्ट, नई दिल्ली के क्यूरेटर, श्री मुकुल डे से प्राप्त हुई थी, इसलिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। इसे मेरे उपयोग के लिए प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व वाइस चांसलर श्री भैरवनाथ झा ने मँगा दिया था, इसलिए मैं उनका भी आभार मानता हूँ।

पिछली ना० तथा यह लगभग एक ही पाठ देती हैं, इसलिए रचना के पूर्वार्द्ध के पाठ के लिए एक तथा उत्तरार्द्ध के पाठ के लिए दूसरी का उपयोग कर लिया गया है।

(१०) स० : यह नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा कई जिल्दों में प्रकाशित रचना का प्रसिद्ध संस्करण है, जो श्री मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या द्वारा संपादित होकर कई वर्षों में १९१० ई० तक प्रकाशित हुआ था। इसका आकार वही है जो ना० का है, जो इस संस्करण का मुख्याधार है। ना० परिवार की कुछ अन्य प्रतियों का भी उपयोग इसके संपादन में किया गया है। इसमें 'महोबा समय' भी अन्त में जोड़ दिया गया है, जो इस पाठ की भी प्रति में नहीं मिलता है, केवल अलग स्वतन्त्र खण्ड के रूप में मिलता है। यह संस्करण सावधानी से तैयार किया गया है, और मुद्रण की भूलों के अतिरिक्त ना० परिवार के पाठ को प्रायः ठीक-ठीक प्रस्तुत करता है। अब यह संस्करण दुर्लभ हो गया है। इसकी प्रति मुझे प्रयाग विश्वविद्यालय पुस्तकालय से प्राप्त हुई थी, जिसके लिए मैं उसके अधिकारियों का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

—:०:—

२. पृथ्वीराज रासो
के
मूल रूप के निकटतम प्राप्त पाठ

ऊपर जिन प्रतियों का परिचय दिया गया है, उनमें रूपक-संख्या, हमने देखा है, निम्नलिखित है :—

(१) धा० : ४२२, (२) मो० : ५५२, (३) अ० : १११०, (४) फ० : १२००, (५) म० [अ० परिवार के ६८२ रूपकों के स्थान पर] : २०७०, (६) ना० : ३३९७, (७) द० : ३४७०, (८) शा० : १०७०९, (९) उ० : यथा शा०, (१०) स० : यथा शा०। साथ ही यह भी हम देखते हैं कि धा० के प्राय: सभी छन्द मो० में, मो० के लगभग सभी छन्द अ० में, अ० के सभी छन्द फ० में, फ० के लगभग सभी छन्द म० में, म० के अधिकतर छन्द ना० में किन्तु प्राय: सभी छन्द शा० उ० स० में; ना० के अधिकतर छन्द शा० उ० स० में, और द० के सभी छन्द शा० उ० स० में पाये जाते हैं।[1] अतः पहला प्रश्न यह उठता है कि इस पूरी पाठ-परम्परा में क्या निरन्तर पाठ-वृद्धि होती रही है, और आकार की दृष्टि से मूल या उसके सब से अधिक निकट पाठ धा० का रहा होगा, अथवा मूल या उसके सब से अधिक निकट पाठ शा० उ० स० का पाठ रहा होगा और उत्तरोत्तर संक्षेप होते-होते उस का आकार धा० का हुआ होगा; अथवा मूल पाठ की स्थिति बीच में कहीं पड़नी चाहिए और एक ओर जहाँ उसमें उत्तरोत्तर पाठ-वृद्धि हुई, दूसरी ओर उसका उत्तरोत्तर संक्षेप भी हुआ। ये विकल्प विचारणीय हैं। इन विकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् ही यह निश्चय किया जा सकेगा कि रचना के मूल पाठ का आकार क्या था। रचनाओं में पाठ-वृद्धि होना ही सामान्यतः देखा जाता है, संक्षेप-क्रिया अपवाद के रूप में ही मिल सकती है, इसलिए धा० को आधार मान कर पहले हमें यह देखना चाहिए कि अधिकाधिक छन्द-संख्या वाली प्रतियों के पाठों में उत्तरोत्तर पाठवृद्धि के प्रमाण मिलते हैं या नहीं; इस विकल्प के लिये सन्तोषजनक प्रमाण न मिलने पर ही अन्य दो विकल्पों के विषय में विचार करना आवश्यक होगा।

उक्ति-शृंखला

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह दिखाई पड़ेगा कि धा० में अनेक स्थलों पर एक रूपक में—प्रायः उसके अन्त में—जो उक्ति आई है उसकी कुछ न कुछ शब्दावली बाद वाले रूपक में—प्रायः उसके प्रारम्भ में—भी है और इस प्रकार एक उक्ति-शृंखला बनी हुई है, यथा निम्नलिखित रूपकों के बीच। जिन प्रतियों में उक्ति-शृंखला बीच में अन्य रूपकों के आने के कारण त्रुटित हुई है, उनका उल्लेख धा० का पाठ देते हुये नीचे दाहिने सिरे पर किया जा रहा है :—

(१) धा० ५१ : जो थिर रहै सु कहहुं किन हूं पुछ तुम्ह सोइ।

धा० ५२ : थिरु बाले वल्लभ मिलनु जउ जोवन दिन होइ।

१ देखिये विभिन्न परिशिष्ट।

(२) धा० ६८ : तद्दित करिग अंगुलि धरइ बान भरिग प्रिथिराज।
धा० ७० : भरिग बान चहुवान जानि दुर देव नाग नर।
(धा० मा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(३) धा० ७४ : तउ मानउं स्वामिनि सकल जइ तुंसी होइ परतक्खि।
धा० ७५ : भइ परतक्खि कवी मनि आइय। (शा० उ० स०)

(४) धा० ८१ : तिहुं पुर परागवानी अगो आउ राय आयेसु।
धा० ८२ : आइसु सुनि सुनि अगगे दियो मानकर अप्पु। (शा० उ० स०)

(५) धा० ८६ : कै बनाउ कैवास मोहिं कै हर सिद्धि वर छंडि।
धा० ८७ : जो छंडइ तपताप करि चरु छंडै कवि चन्द। (शा० उ० स०)

(६) धा० १०१ : अतिबल सूं बल ना कहूयौ किम चल्लइ भूआल।
धा० १०२ : चलौं चन्द सरथइ सेवग सुभ।

(७) धा० १२१ : अरि नयर नीर उत्तर कहे स।
धा० १२१ : भुल्लि भट्ट पुच्छहि चल्यो कहि उत्तर कनवज्ज।
(धा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(८) धा० १२९ : कंचन करस झकोलति गंगइ जलु भरहि।
धा० १३० : भरंति नीर सुन्दरी। (धा० म० ना० द० शा० उ० स०)

(९) धा० १४१ : अगम हट्ट पट्टन नयर रतन मोति मनियार।
धा० १४२ : अमग्गलि हट्टलि पट्टन मंझ। (शा० उ० स०)

(१०) धा० १४१ : जु पुच्छत चन्द गयो दरबार।
धा० १४६ : पुच्छत चन्द गयो दरबारह।
(धा० मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(११) धा० १६१ : एक चहुवान प्रिथिराज टारे।
धा० १६२ : सुनि नृपत्ति रिपु कै सबद तामस नयन सुरत्त। (ना०)

(१२) धा० १६६ : वरनइ वइ उनिहारि इह ज्यूं चहुवान संउत्त।
धा० १६७ : इम जंपइ चन्द वरद्दिया प्रिथीराज उनिहारि इहि।

(१३) धा० १७४ : सुमनु भट्ट सरथइ अछै जिह करंति ग्रिय लाज।
धा० १७५ : एक कहइ विट्ठिय सुभट इह न सत्थि प्रथिराज। (म० शा० उ० स०)

(१४) धा० १८३ : पुप्फांजली पंग सिर नाइ जयति पिय कामदेव।
धा० १८४ : पुप्फंजलि सिर मंडि प्रभु गुरु लग्गी फिरि वाइ।

(१५) धा० १८६ : किहु कामिनि सुख (सुख-शोध में) रति समर नृप निय निंद बिसारि।
धा० १८७ : सुक्खं सुक्ख म्रिदंग तार जयनैं रागं कला कोकिलं।...
ए सद सुक्ख सुखाइ तार सद्दिता जै राय राग्यं गता॥ (धा० म० शा० उ० स०)

(१६) धा० १८८ : तरुने प्रान लटापट प्पगयरा जइ राय संप्राप्तिं।
धा० १८९ : प्राप्ति राउ संपरपतिग जइ दर देव अनूप। (म० शा० उ० स०)

(१७) धा० १९१ : द्रव्यं दरिस बहु संग लिए भट्ट समप्पन जाइ।
धा० १९२ : गयो राज मिल्लान चन्द वरदिद्द समप्पन। (म० शा० उ० स०)

(१८) धा० १९२ : ... ... पान देहि दिढ़ हत्थ गहि।
धा० १९३ : सुनि तमूल सा पट्टि करि वर उठिय डिठि वंक। (धा० म० ना० शा० उ० स०)

(१९) धा० १९३ : सुनित मूल सा पट्टि करि घर उट्ठिय डिठि घंक।

धा० १९५ : भुव वंकिय करि पंगु नृप अप्पिग हत्थ तंबोल ।
(धा० मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(२०) धा० १९८ : जउ मुक्कहि सत सत्थअनु तो कस लीन्हसि सत्थ ।
धा० १९९ : जउ मुक्कउँ सत सत्थिअनु तो संभरि कुल लाज ।

(२१) धा० २०० : मनु अकाल तिडिय सघन चल्या तु छूटि प्रवाह ।
धा० २०१ : प्रवासी [प्रवाहे-पाठां०] त तज्जी न लज्जी अहारे ।
(मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(२२) धा० २०२ : जल छंडहि अच्छहि करइ मीन चरित्तनु भुल्ल ।
धा० २०३ : भुल्लयो पुहवि नरिंद त जुद्ध विजुद्ध सह । (म० शा० उ० स०)

(२३) धा० २०३ : भुल्लयो पुहवि नरिंद त जुद्ध विजुद्ध सह ।
धा० २०४ : भुल्यो रंग सुमीन नृप पंगु चढ्यो हय पुट्ठि। (म० ना० शा० उ० स०)

(२४) धा० २०४ : सुनि सुन्दरि वर वज्जने चढ़ी अवासन उट्ठि ।
धा० २०५ : दिक्खति सुन्दरि दूर वलनि चमकि चढंति अवास ।

(२५) धा० २०५ : नर कि देउ किधुं काम हर गंग हसंत अयास ।
धा० २०६ : इक्कु कहै सुर देव है इक कहइ इंदु फनिन्द । (म० ना० शा० उ० स०)

(२६) धा० २०६ : इक्क कहै असि कोटि भर इहु प्रिथिराज नरिंद ।
धा० २०७ : सुनि वर सुन्दर उभय हुय स्वेद कंप सुरभंग। (ना० द०)

(२७) धा० २११ : मनो दान दुज अंध समप्पति अंगुलिय ।
धा० २१२ : अपंति अंगुलीय दान जान सोभ लगाए । (म० ना० द० शा० उ० स०)

(२८) धा० २१८ : मिलत हत्य (हत्थ-पाठां०) कंकम (कंकन-पाठां०) लखिउ कहहिकन्ह यहु काहु ।
धा० २१९ : इह अपुब्व धीरत्त तुहि कंकन हत्थ नरिंद ।

(२९) धा० २३७ : सय रिपु दिल्लियनाथो स एव आला अश्य धुंसनं ।
धा० २३८ : सुनि स्रवननि प्रिथिराज कहु भग्गो निसानह घाउ ।

(३०) धा० २४२ : [मनुह लंक विग्रह करन चलउ रघुप्पति राउ-पाठां०]
धा० २४४ : [रामदल बंनर सयल] औहि रुक्खण बहु बंध ।
(धा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(३१) धा० २४५ : ... ... सहु दिक्खइ मयमत्त ।
धा० २४६ : दिक्खयहि मंत मयमत्त मत्ता । (म० ना० द० उ० स०)

(३२) धा० २४६ : जु कहि जु कहि प्रिथिराज गहियो ।
धा० २४७ : गहि गहि कहि सेनान सब चलि हयगय मिलि एक ।

(३३) धा० २४७ : जाणूं पावस चुब्बइ (पुब्बइ-पाठां०) अनिल हलि बद्दल बहु भेक ।
धा० २४८ : हयं गयं नरं भरं उने विये जलद्दरं (जलद्धरं-पाठां०) ।

(३४) धा० २६३ : [रावत्त कद्ध स रयरप्पनउ] रखत रक्खहि राव तिह ।
धा० २६४ : तैं रक्खे हिंदुवाण गंजि गोरी गाहंतो । (म० ना० द० शा० उ० स०)

(३५) धा० २६४ : पहु परनि जाहु ढिल्ली लगै जु होइ घरे घरु मंगुली (मंगली-पाठां०)
धा० २६५ : सूर मरन मंगली सार (स्यार-पाठां०) मंगली ग्रिह आये । (म० शा० उ० स०)

(३६) धा० २६५ : खित चहि राइ राठौर सउं मरण सनंमुख मंडियइ ।
धा० २६६ : मरन दिजइ प्रिथिराज दसहि छत्रिय करि पयठो ।

(३७) धा० २६९ : दल किपियत नयक तठक्क (ठठक्क-पाठां०) परी ।

धा० २७० : ठठक्की सेन सभि मीर मिल्ले । (धा० म० ना० द० शा० उ० स०

(३८) धा० २७० : चंपे चाहि चहुवान हरि सिंघ नायो ।
धा० २७१ : करि जुहार हर सिंघ नयो चहुवान पहिल्लो । (मो० म० शा० उ० स०)

(३९) धा० २७६ : निडर निसंक जुझत रन आठ कोस चहुवान गउ ।
धा० २७७ : सम रठोरनि राठवर निडर जुज्झ गिरि जाम ।
(मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(४०) धा० २७७ : दिनयर दल प्रिथिराज कूं चंपिउ पंग सम ताम ।
धा० २७८ : चंपति पिछोरिय गति चखह हय पट्टन तनु देख । (म० शा० उ० स०)

(४१) धा० २७९ : जब लगि सहु दल रुक्कियो तब सुकन्ह हयवर चढ्यो ।
धा० २८० : चढत कन्ह सामंत हय जय जय कहै सहु देव । (ना० शा० उ० स०)

(४२) धा० २८२ अ : सिर अधौं कर स्वामिकै हनौ गयंदन जोट ।—मो०]
धा० २८३ : सिर तुटै रुंधयो गयंद कढ्ढ्यो कट्टारो । (म० ना० शा० उ० स०)

(४३) धा० २८३ : तिम थहि सो लोयन गंगधर तिमतिम संकर सिर धुन्यो ।
धा० २८४ : धुनि सीस ईस सिर अहहनह धन धन कहि प्रिथिराज । (म० शा० उ० स०)

(४४) धा० २८७ : सामंत पंच खित्तहि खपिग मिरत भंति भट्ट विक्खहर (विप्पहर-पाठां०) ।
धा० २८८ : विखहर (त्रिपहर-पाठां०) पहट्ट परथं हय गय नर भार सार हत्थेन ।
(म० शा० उ० स०)

(४५) धा० २९० : सामंत निघट तेरह परिग नृपति सुपट्ठिअ पंच सर ।
धा० २९३ : संझ सपट्ठिय नृपति रण दिय पारस परिकोट ।
(धा० मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(४६) धा० ३०१ : मरन जानि मन मध्ध रिउ गिर लक्खिनह बघेल ।
धा० ३०० : जिते समर लक्खन बघेल आहनति खग्गवर । (म० शा० उ० स०)

(४७) धा० ३०४ : सामंत सप्त जुज्झे प्रथम ढिल्लीपति प्रिथिराज भउ ।
धा० ३०५ : ढिल्लीपति ढिल्लीय संपत्तउ ।
(मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(४८) धा० ३०६ : जस मंडन नरभर सयल महि मंडन महिलानु ।
धा० ३०७ : पहिलहि (महिलहि—पाठां०) मंडन त्रिपति ग्रिह कनकंति ललनानि । (मो०)

(४९) धा० ३१३ : गुरुबंधधव (बंधव-पाठां०) भूलि लोइ भई विपरीत गति ।
धा० ३१४ : सकल लोक पुच्छत गुरु इच्छहिं ।
(मो० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)

(५०) धा० ३१९ : मरन छंडि महिला मन मोह्यो ।
धा० ३२० : विहि महिला महिला विसराई ।

(५१) धा० ३२० : सुनि सुनि समो राजगुरु नाई ।
धा० ३२१ : समउ जानि गुरराज रहि कहि कहि कवि सहु पत्त ।

(५२) धा० ३२७ : उभय उभय रिस उप्पज्यो मिलिय चंद गुरराज ।
धा० ३२८ : मिलिय चंद गुरराज विराजहि राज दर । (ना० द० शा० उ० स०)

(५३) धा० ३३२ : कहा पयंपइ त्रिपति सूं कहो चंद गुरु भासि ।
धा० ३३३ : कागद अप्पहि राजगुरु मुख जंपइ इहु पत्त ।

(५४) धा० ३३३ : कागद अप्पहि राजगुरु मुखि जंपइ इहु पत्त ।

धा० ३३४ : अन्य महिल दासी निरखि परखि पयंपन जोगु। (अ०फ०ना०द०शा०उ०स०)

(५५) धा० ३४० : सवन मंडि कनवजिनी स सुपनंतरि तथ्थ ।

धा० ३४१ : सपनंतरि सुंदरिय रंभ लग्गी परिरंभइ । (मो०)

(५६) धा० ३४२ : तिहि दिवस देव प्रिथिराज वर संझ सुवर भर महल दिय (किय-पाठां०)।

धा० ३४३ : करि महल मंत मंड्यो छंदहि चामंडराय वर वंदी। (द० शा० उ० स०)

(५७) धा० ३४६ : जे भर भीर संमुह सहहि ते बत्तीस हजार ।

धा० ३४७ : लज्या धर तिणि वरि गणहि ते पहु पंच हजार ।

(५८) धा० ३४७ : लज्या घर तिणि वरि गणहि ते पहु पंच हजार ।

धा० ३४८ : पंच हजारह मंहि जुडइ जे अग्या वर स्वामि ।

(५९) धा० ३४८ : कर वज्जी वज्जइ सहइ ते सौ पंच अछामि ।

धा० ३४९ : तिनमंहि सौ जे भयहरण सीलसत्त जगजित्त ।

(६०) धा० ३४९ : तिनमंहि दसवारण दलण उप्पारहिं गयदन्त ।

धा० ३५० : तिनमंहि पंच प्रपंच से लखिय न गति तिन काज ।

(६१) धा० ३५९ : मिले पुब्ब पच्छिम हुती चाहुवान सुरत्ताण ।

धा० ३६० : मिले जाइ चहुवान सुरत्ताण खग्गे। (धा० मो० ना० द० शा० उ० स०)

(६२) धा० ३६५ : दुइ दुज्जी दुज्जी घरी दिन पलट्ट्यो (पलट्टयो-पाठां०) चहुवान ।

धा० ३६६ : दिन पलक्यौ पलट्यौ न मनु भुज वाहे सव शस्त्र ।

(६३) धा० ३६६ : अरि भिर्‌यौ (भिड्यौ-पाठां०) भिट्टे न को लखो जु धाता पत्र ।

धा० ३६७ : विधात्रा लिखतं यस्य न तेन मुच्चंति मानवा ।

(६४) धा० ३६९ : तजि पुत्र मित्र माया सकल गहिय चन्द गज्जनइ रहि ।

धा० ३७० : गहिय चन्द रह गज्जने जह सजन नूं नरिंद। (अ०फ०ना०द०शा०उ०स०)

(६५) धा० ३७५ : भवन भोग रहु छंडिकै किम जोगे (जोगी-पाठां०) रहु भट्ट।

धा० ३७६ : वहु संजोगी पहु संजोगी जमम परदारु ।

(६६) धा० ३७७ : छन इक दरहि विलंबिय मन न करिय कवि मंदु ।

धा० ३७८ : तिहि विलम्ब कवियन करिग सुरुचि अप्पनिय इच्छ। (शा० उ० स०)

(६७) धा० ३८१ : कर अनन्य (अनयन-पाठां०) दीधी असीस ।

धा० ३८२ : दइत असीस न सिर नयो वच अच्छयो फुरमान ।

(धा० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)

(६८) धा० ३८३ : जिहि बहुत चन्द महिमान कीन ।

धा० ३८४ : करहि चन्द महिमान सब अगर धूप दिव देह ।

(मो० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)

(६९) धा० ३८५ : सुणत चन्द मन मरनसूं इम इच्छयो सुविहानु ।

धा० ३८६ : भउ विहान दर घजे ता दव्व निसान । (शा० उ० स०)

(७०) धा० ३९१ : [दौरि चंदि संमुह चलै वे झुल्लै सुरतान ।—मो०]

धा० ३९२ : बोल्यो सु चंद हज्जूर गाहि । (मो० ना० द० शा० उ० स०)

(७१) धा० ३९२ : जोगहि विरुद्ध हम मिलण मत्ति ।

धा० ३९३ : हमहि मिलहि वे चंद सुनि विरहि दलिद्र सलोभ। (ना० द० शा० उ० स०)

(७२) धा० ३९२ : जोगहि विरुद्ध हम मिलण मत्ति ।

धा० ३९४ : जोग भोग रह रीति सब सब जाणउ सुविहान ।

(७३) धा० ३९८ : सु[दु] रोग मन रोग भो कढन करूं सु बिहान ।
धा० ३९९ : जू कडूढग कूं पतिसाह तुही । (शा० उ० स०)

(७४) धा० ४०० : अंखि हीन बलहीन तउ (भउ-पाठां०) को (का-पाठां०) मगगइ मति नट्ठ ।
धा० ४०१ : अंखि विनट्ठी बल घट्यो मति नट्ठी सुलतान ।

(७५) धा० ४०५ : पहिचानि चंद वर धुनिग सीस । सिर नयो नहीं मन भई रीस ।
धा० ४०७ : रिस धुनि सीसु निषेधु कीय जिय लुभि चंद सुहाल । (ना०द०शा०स०उ०)

(७६) धा० ४०६ : संभरि नरेस करि रीस सीस धुनहि न धनु सज्जहि ।
धा० ४०७ : रिस धुनि सीस निषेधु कीय जिय लुभि चंद सुहाल ।

(७७) धा० ४१६ : इनौं रिपू घरियार सउं जउ अप्पइ विय वान ।
धा० ४१७ : इक्क वाण चहुवाण राम रावण उथ्थप्पिय । (ना०)

(७८) धा० ४२० : सुलताण पर्यो खां पुकर्यो त दिन चंद राजन मरण ।
[धा० ४२२ : मरन चंद वरदिया राज पुनि सुनिग साह हनि ।—मो०] ।
(धा० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)

उपर्युक्त को देखने से ज्ञात होगा कि उक्ति-शृंखला के ७८ स्थलों में से ५४ स्थलों पर विभिन्न प्रतियों में ऐसे अंश आते हैं जो उस शृंखला को त्रुटित करते हैं, और अलग-अलग प्रतियों में इस शृंखला-त्रुटि की संख्या है : धा० : १३, मो० : १५, अ० फ० : १५, म० : २९,[1] ना० : ३३, द० : २७, शा० उ० स० : ४९ । शृंखला-त्रुटि उपस्थित करने वाले छन्द इन समस्त प्रतियों में अन्यथा भी सदोष हैं और प्रसङ्ग में अनावश्यक हैं, यह स्वतः देखा जा सकता है ।[2]

उपर्युक्त विश्लेषण से तीन बातें ज्ञात होती हैं :—

[१] धा०, मो० तथा अ० फ० में उक्ति-शृंखला प्रायः सब से कम स्थलों पर त्रुटित है, ना० और द० में उसके प्रायः दूने स्थलों पर त्रुटित है, म० में तिगुने और शा० उ० स० में साढ़े तीन गुने । उक्ति-शृंखला के इस प्रकार अधिकाधिक त्रुटित होने का एक मात्र कारण ऐसे व्यक्तियों के द्वारा की हुई पाठ-वृद्धि होनी चाहिये जो इसे जान नहीं सके और इसलिए इसे सुरक्षित रखते हुए पाठ-वृद्धि न कर सके । अतः यह प्रकट है कि धा०, मो० तथा अ० फ० रचना के मूल पाठ के सबसे अधिक निकट हैं, ना० तथा द० अपेक्षाकृत दूर और म० तथा शा० उ० स० सब से अधिक दूर । यदि संक्षेप-क्रिया हुई होती तो परिणाम इसका ठीक उलटा मिलता—शा० उ० स० म० के पाठ सब से अधिक सुशृंखलित मिलते, उनसे कम ना० तथा द० के और इनसे भी कम अ० फ०, मो० तथा धा० के ।[3]

[1] ऊपर हम देख चुके हैं कि म० में रचना का दो-तिहाई पाठ ही है, पूरा पाठ होता तो यह संख्या कदाचित् ४४ के लगभग होती ।

[2] आगे 'पृथ्वीराज रासो का मूल रूप' शीर्षक के अन्तर्गत धा० में मिलने वाली उक्ति-शृंखला-त्रुटियों पर विचार किया गया है ।

[3] कई वर्ष पूर्व जब मुझे रचना के अन्य पाठ प्राप्त नहीं हुए थे, इस समस्या पर विचार मैंने प्राप्त तीन पाठों अ०, ना० तथा स० में मिलने वाले अत्युक्ति-सूत्र की सहायता से किया था । (पृथ्वीराज रासो के तीन पाठों का आकार-सम्बन्ध—हिन्दी अनुशीलन पौष-चैत्र, सं० २०११) उक्त पाठों में आए हुए संख्यात्मक विवरणों की तुलना के अनन्तर मैं इस परिणाम पर पहुँचा था कि ना० और तदनंतर स० में उत्तरोत्तर अ० की तुलना में अत्युक्ति-वृद्धि हुई दिखाई पड़ती है, इस लिये वे उत्तरोत्तर अ० के अधिकाधिक प्रक्षिप्त रूपांतर होंगे, यह नहीं कि ना० और फिर अ०

[२] पहले हमने देखा है कि मो० पाठ आकार में धा० का लगभग सवाया है, अ० फ० पाठ मो० का लगभग दूना है, म० ना० तथा द० पाठ अ० के लगभग तिगुने हैं, और शा० उ० स० पाठ अलग-अलग म० ना० द० का भी तिगुना है। किन्तु यहाँ हम देखते हैं कि विभिन्न पाठों में शृंखला-त्रुटि इस अनुपात में नहीं मिलती है, यद्यपि मोटे ढंग पर धा०, मो० तथा अ० फ० की तुलना में वह ना० तथा द० में अधिक है, और ना० तथा द० की तुलना में वह म० तथा शा० उ० स० में अधिक है। प्रश्न हो सकता है कि इसका कारण क्या है। इसका कारण यही है कि पाठ-वृद्धि मुख्यतः दो दिशाओं में हुई है : एक तो नए-नए प्रसङ्गों और नई-नई कथाओं की कल्पना की दिशा में और दूसरे प्राप्त प्रसंगों और कथाओं को कुछ और विवरणों के साथ प्रस्तुत करने की दिशा में। ऊपर शृंखला-त्रुटियों पर जो विचार किया गया है उसमें इस दूसरी दिशा में की हुई पाठ-वृद्धि ही ली जा सकी है, पहली दिशा में की हुई पाठ-वृद्धि नहीं, क्योंकि उसमें ऐसे ही कथा-प्रसंग देखे जा सके हैं जो रचना के सब से छोटे पाठ धा० तक में मिलते हैं, शेष कथा-प्रसंग छूट गए हैं।

[३] रचना के जो सब से छोटे पाठ धा० तथा मो० हैं, वे भी इस प्रकार किए गये प्रक्षेपों से मुक्त नहीं है। दो-एक स्थलों तक इस प्रकार की कोई बात होती, तो यह समझा जा सकता था कि धा० तथा मो० में पाई जाने वाली वह उक्ति-शृंखला-त्रुटि अन्यों के द्वारा की हुई पाठ-वृद्धि के अतिरिक्त किसी और प्रकार से भी हुई हो सकती है, किन्तु एक दर्जन के लगभग स्थलों पर मिलने वाली यह उक्ति-शृखला-त्रुटियाँ प्रक्षेप पूर्ण पाठ-वृद्धि के कारण ही हुई हो सकती हैं, किसी अन्य प्रकार से नहीं।

छंद—शृंखला

ऊपर हमने जिस प्रकार धा० के छंदों को लेकर देखा है कि मूल रचना में आदि से अन्त तक उक्ति-शृंखलाएं रही होंगी, जो बीच में नवीन छंदों के रखने से उत्तरोत्तर त्रुटित होती रही हैं, उसी प्रकार यदि हम धा० के छंदों को लेकर पुनः ध्यान से देखें और विभिन्न पाठों का मिलान करें तो ज्ञात होगा कि पहले अनेक छंद या रूपक एक और अविभक्त थे किन्तु बाद में उनको विभक्त कर बीच-बीच में नए छंद रख दिए गए, जिससे पूर्ववर्ती छंद-शृंखला रचना में अनेक स्थलों पर त्रुटित हो गई। नीचे धा० में आने वाले ऐसे रूपक दिए जा रहे हैं, जो रचना की किन्हीं भी प्रतियों में त्रुटित हुए हैं। उनकी रूपक-संख्या धा० से देते हुए, जिन प्रतियों में वे त्रुटित हुए हैं उन का उल्लेख किया जा रहा है।

(१) धा० ३३-३४ : छंद पद्धडी है। अ० फ०, ना० तथा द० में यह एक ही रूपक है किन्तु धा० तथा मो० में यह दो रूपकों में बँटा हुआ है, जिनके छंद अलग-अलग बताए गए हैं, यद्यपि बीच में कोई अन्य रूपक नहीं आते हैं। म० यहाँ खंडित है। शा० उ० स० में धा० और मो० के दो रूपकों के बीच तीन अन्य रूपक भी आते हैं जो अन्य किसी प्रति में नहीं हैं।

(२) धा० ३६ : छंद पद्धडी है। धा० तथा अ० फ० में यह एक रूपक है। मो० में यह दो

उत्तरोत्तर स० के संक्षिप्त रूपांतरों के रूप में निर्मित हुए हों, क्योंकि संक्षेप-क्रिया में छन्द कम किए जा सकते हैं, पंक्तियाँ कम की जा सकती हैं, किन्तु यह नहीं हो सकता है कि संख्याएँ घटा-बढ़ा दी जावें। संख्याओं में परिवर्तन केवल प्रक्षेप की दृष्टि से किए जा सकते हैं, और अ० की तुलना में ना० में और ना० की तुलना में स० में जो पाठ-भेद संख्यात्मक विवरणों में मिलता है उसमें अत्युक्ति-मूलक प्रक्षेप की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रबल दिखाई पड़ती है, इसलिए अ० पाठ की तुलना में ना० पाठ तथा ना० पाठ की तुलना में स० पाठ को परवर्ती होना चाहिए। मुझे प्रसन्नता है कि उक्त परिणाम की पुष्टि उक्ति-शृंखला त्रुटियों के इन अधिक दृढ़ प्रमाणों द्वारा हुई है।

रूपकों में बँट गया है और दोनों के बीच में तीन नए रूपक आ गए हैं। म० खंडित है। द० शा० उ० स० में यह तीन तथा ना० में यही पाँच रूपकों में बँट गया है और इन खंडों के बीच अनेक छंद आते हैं जो धा० अ० फ० में नहीं मिलते हैं।

(३) धा० ४० : छंद पद्धडी है। धा० तथा अ० फ० में यह एक रूपक है। मो० में यह दो रूपकों में बँट गया है, और दोनों के बीच धा० ३९ (=अ० ६. दो० ३) को रख दिया गया है। म० खंडित है। ना० द० शा० उ० स० में भी यह दो रूपकों में बँटा हुआ है, और बीच में धा० ३९ (आ० ६. दो० ३) के अतिरिक्त एक अन्य रूपक भी रख दिया गया है।

(४) धा० १९३ : छंद दोहा है। यह धा० मो० अ० फ० ना० द० में एक रूपक है, किन्तु म० शा० उ० स० में दो और पंक्तियों को मिला कर दो रूपकों में बाँट दिया गया है।

(५) धा० २४१ : छंद भुजंगी है। यह धा० मो० अ० फ० में एक ही रूपक है, किन्तु म० ना० द० शा० उ० स० में दो रूपकों में बँट गया है, और उनके बीच में कुछ अन्य रूपक भी रख दिए गए हैं जो धा० मो० अ० फ० में नहीं हैं।

(६) धा० २६९ : छंद त्रोटक है। यह धा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स० में एक ही रूपक है। मो० में इसे दो रूपकों में बाँट कर धा० २३९ को रख दिया गया है।

(७) धा० २९१ : छंद दोहा है। यह धा० मो० अ० फ० द० में एक ही रूपक है, किन्तु म० ना० शा० उ० स० में दो रूपकों में बँट गया है जिनके बीच में एक और रूपक रख दिया गया है।

(८) धा० २७० : छंद त्रोटक है। यह धा० अ० फ० में एक ही रूपक है, किन्तु मो० म० ना० द० शा० उ० स० में इसे दो रूपकों में बाँटकर बीच में धा० २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४ तथा २९५ को तथा कुछ ऐसे रूपकों को भी रखा गया है जो धा० अ० फ० में नहीं हैं।

(९) धा० ३६०-३६२ : छंद भुजंगी है। यह मो० ना० द० उ० स० में एक ही रूपक है किन्तु धा० में दो रूपकों में और अ० फ० में तीन रूपकों में बँट गया है, जिनके बीच में अनेक रूपक ऐसे आते हैं जो धा० मो० में नहीं हैं, यद्यपि वे ना० द० शा० उ० स० में अन्यत्र आते हैं।

(१०) धा० ३६९ : छंद कवित्त है। यह केवल धा० में एक रूपक है, शेष समस्त अर्थात मो० अ० फ० ना० द० शा० उ० स० में दो रूपकों में बँट गया है : कवित्त के प्रथम चार चरणों के साथ अन्य दो चरण मिलाकर एक रूपक बना लिया गया है, बीच में अन्य अनेक रूपक और रख दिए गए हैं, तदनंतर पूर्ववर्ती कवित्त के शेष दो चरण एक स्वतन्त्र रूपक के रूप में आते हैं।

(११) धा० ३८३ : छंद पद्धडी है। यह धा० मो० अ० फ० ना० द० में एक ही रूपक है। शा० उ० स० में दो रूपकों में बँट गया है जिसके बीच में एक अन्य रूपक भी रख दिया गया है।

(१२) धा० ४०३-४०५ : छंद पद्धडी है। यह अ० फ० में एक रूपक है, धा० में यह दो रूपकों बँट गया है, मो० ना० द० शा० उ० स० में यह तीन रूपकों में बँट गया है, और बीच-बीच में दूसरे रूपक भी आ गए हैं, जिनमें से कुछ धा० अ० फ० में मिलते हैं और कुछ नहीं मिलते हैं।

इन छंदों को प्रसंग-शृंखला की दृष्टि से स्वतः देखा जा सकता है।[1] उपर्युक्त में द्वितीय अर्थात् धा० ३६ ही एक मात्र ऐसा छंद है जिसमें संयोगिता और उसकी सखियों की वसंतागमन में हर्षोत्फुल्लता का वर्णन करके अन्त के चार चरणों में एक भिन्न विषय-पृथ्वीराज के सामन्तों का मिलकर कन्नौज पर चढ़ाई करने के निश्चय—का उल्लेख है। शेष छंदों में आदि से अन्त तक एक ही विषय है और उनकी छंद-शृंखला त्रुटित होने के साथ साथ प्रसंग-शृंखला भी त्रुटित हुई है।

[1] धा० के छंद-शृंखला-अतिक्रमण पर विचार 'पृथ्वीराज रासो का मूलरूप' शीर्षक के अन्तर्गत आगे किया गया है।

विभिन्न प्रतियों में उपर्युक्त बारह छंद-त्रुटियाँ इस प्रकार आती हैं :—

धा०	:	१
अ० फ०	:	२
मो०	:	६
म०	:	४[1]
ना०	:	७
द०	:	७
शा० उ० स०	:	१०

यह ध्यान देने योग्य है कि विभिन्न प्रतियों के पाठों के बारे में जिस परिणाम पर हम ऊपर उक्ति-शृंखला-त्रुटियों के आधार पर पहुँचे हैं, लगभग उसी परिणाम पर हम ही यहाँ छंद-शृंखला त्रुटियों के आधार पर भी पहुँच रहे हैं। अन्तर केवल मो० के सम्बन्ध में पड़ा है : वहाँ मो० प्रति धा० तथा अ० फ० के साथ दिखाई पड़ी थी, और यहाँ वह म० ना० द० के साथ है।

सब से कम शृंखला त्रुटि वाली प्रतियों में पूर्वापर सम्बन्ध

अब प्रश्न यह उठता है कि जब धा० मो० तथा अ० फ० में उक्ति-शृंखला लगभग समान रूप से कम त्रुटित है, और छन्द-शृंखला धा० अ० फ० में सबसे कम त्रुटित है, फिर भी तीनों की रूपक-संख्या भिन्न भिन्न है, तो इन चारों के पाठों में कोई पूर्वापर सम्बन्ध भी है या नहीं, और यदि है तो वह किस रूप में है।

यदि हम अ० फ० के पाठ को लें, तो देखेंगे कि उसमें निम्न-लिखित उल्लेख-वैषम्य मिलते हैं :—

(१) अ० ८. भुजं० १ में अचलराय, जयसिंह चन्देल, देवराज बग्गर, बरगराय, बीकम कमधुज्ज, रूपरायदाहिमा, सदाशिव, सारंग तथा सेनचन्द्र पृथ्वीराज के साथ कन्नौज जाते हैं, किन्तु तदनन्तर न इनका उल्लेख उन योद्धाओं में होता है जो वहाँ युद्ध में मारे जाते हैं, और न वहाँ से लौटे हुए योद्धाओं की नामावली (अ० १२. पद्ध० ३) में होता है।

(२) अ० ९. भुजं० ३ = धा० १६१ में जिन स्थानों के जयचन्द द्वारा विजित होने का उल्लेख है, उनमें से अधिकतर का उल्लेख, अ० ३. दो० २, ३, तथा नारा० १ में उसके पिता विजयपाल के द्वारा विजित स्थानों में उसके पहले ही मिलता है, यथा कर्णाट, गूर्जर, गौड और मिथिला।

(३) अ० ६. साट० १ = धा० ४७ में मंडोवर को पृथ्वीराज द्वारा दलित कहा गया है, और अ० ६. साट० २ = धा० ४८ में उसी को जयचन्द द्वारा भी दलित कहा गया है।

(४) अ० १०. कवि० ५ = धा० २५६ में गोविंदराय गुहलौत के मारे जाने का उल्लेख है, जब कि बाद में अ० १४. कवि० २९ में शहाबुद्दीन के अन्तिम युद्ध के समय की गोष्ठी में उसके सम्मिलित होने का भी उल्लेख हुआ है।

(५) अ० ११. कवि० २ = धा० २८९ में थट्टा का शासक भान भट्टी (एक राजपूत) बताया गया है, जब कि अ० १४. कवि० १२ में उसके ब्राह्मण शासक का चामंडराय द्वारा पराजित किया जाना कहा गया है।

(६) अ० ११. कवि० ८ में पट्टन का स्वामी प्रतापराय कहा गया है, जो कन्नौज के युद्ध में जयचन्द की ओर से लड़ता है; अ० १८. कवि० ९ में इसका स्वामी सावलिंग सिंह बताया गया है, जो पृथ्वीराज की ओर से शहाबुद्दीन से लड़ता है।

[1] किन्तु म० में पूरी कथा का केवल दो-तिहाई आता है, इसलिए संपूर्ण कथा के अनुपात से यह संख्या ६ होगी।

(७) अ० ९. भुजंगी १ में० मारूराय कन्नौज गया है और वहाँ लड़ा भी है (अ० ११. कवि० ४ =धा० २९२); पीछे वह पुनः पृथीराज की ओर से शहाबुद्दीन के साथ के उसके अन्तिम युद्ध में भी लड़ता है (अ० १५. कवि० १९, १७. कवि० ७, कवि० ९, कवि० १०, दो० २)। फिर भी उन योद्धाओं की सूची (अ० १२. पद्ध० ३) में इसका नाम नहीं है जो पृथ्वीराज के साथ कन्नौज-युद्ध के अनन्तर वापस होते हैं।

(८) अ० २. पद्ध० ७ में गोरीराज के दल को सोमेश्वर ने नष्ट किया था, यह कहा गया है, अ० ६. साट० १ में पुनः पृथ्वीराज के सम्बन्ध में यही बात कही गई है, फिर भी अ० १५. कवि० १८ में वह पृथ्वीराज की ओर से शहाबुद्दीन से लड़ा है।

(९) अ० १३. कवि० १८ तथा अ० १४. वार्त्ता ४ में शहाबुद्दीन को जलालुद्दीन नन्दन कहा गया है, जबकि अ० १९. कवि० १३ में जलालुद्दीन स्वयं शहाबुद्दीन है।

(१०) अ० १६. दो० ४ तथा पूर्ववर्ती कुण्डलिया में जैत के मारे जाने का उल्लेख है, किन्तु अ० १७. साट० ३ तथा अ० १७. भुजं० ३ में उसे शहाबुद्दीन के विरुद्ध लड़ता हुआ दिखाया गया है।

(११) १८. कवि० १० में 'बदी' (=कृष्णपक्ष) का उल्लेख है, जबकि उसके पूर्व ही अमावास्या का उल्लेख हुआ है (१६. कवि० ७, १७. त्रो० ५)।

(१२) अ० १४. दो० २९ में चामंड राय को मानपुंडीर के कुल का कहा गया है, किन्तु अ० १४. दो० ३१ और दो० ३२ में उसे दाहिमा कहा गया है जब कि दाहिमा तथा पुंडीर दो भिन्न-भिन्न राजपूत जातियाँ हैं (अ० १४. दो० २९)।

(१३) अ० खण्ड ४ में जिन योद्धाओं का उल्लेख गोरी-पृथ्वीराज युद्ध में होता है वे हैं :— चामंडराय, प्रसंगराय खीची, देवराय बागरी, महनसिंह परिहार, जाज यादव, जामानी यादव, सलष पँवार, तथा आजानु बाहु लोहाना। किन्तु बाद में (अ० ७. त्रो० २) में जिन सामन्तों को उक्त युद्ध में विजय का श्रेय दिया जाता है वे हैं : नीडुर, पहाड़राय तोमर और अल्ह, जिनका नाम भी खण्ड ४ में कहीं नहीं आता है।

(१४) अ० खण्ड ५ में जिन योद्धाओं का उल्लेख भीम-पृथ्वीराज युद्ध में होता है, वे हैं :— देवराय बागरी, जामानी यादव, जाज यादव, रामराय बड़गूजर, जैत पँवार, गोविन्दराय गुहलौत, गाजी गौड़, असाराव हाड़ा, लंगा लंगरीराय, बलीराय, कहररराय कूरंभ, नियराय, गजू, अजू, अजूत, पहाड़ पारारि, और हमीर : किन्तु बाद में (अ० ७. त्रो० २) में जिन सामन्तों को उक्त युद्ध में विजय का श्रेय दिया जाता है, वे हैं हरसिंह तथा विझराज, जिनका कोई उल्लेख खण्ड ५ में नहीं होता है।

(१५) अ० ११. कवि० २७ (= धा० २६६) में अपने सामन्तों में यह विश्वास दिलाने पर कि वे कन्नौज से दिल्ली के 'पंच घाटि सौ कोस' के मार्ग भर एक-एक करके जूझते हुए जिस प्रकार भी सम्भव होगा पृथ्वीराज और संयोगिता को दिल्ली पहुँचा देंगे, पृथ्वीराज दिल्ली की ओर मुड़ पड़ता है। अ० १२. कवि० २३ (=धा० ३०४) में उन सामन्तों की नामावली मार्ग की उस दूरी के साथ दी गई है जो उन्होंने जूझते हुए पृथ्वीराज और संयोगिया को तै कराई है, और इसका योग पूर्वोक्त छन्द में दी हुई कन्नौज से दिल्ली की दूरी से मिलती है। अ० फ० के विभिन्न अतिरिक्त छन्दों में, जो धा० में नहीं मिलते हैं, अ० १२. कवि २३ (=धा० ३०४) में उल्लिखित सामन्तों के अतिरिक्त निम्नलिखित के भी लड़ते हुए जूझ जाने का विवरण मिलता है, और वह भी अ० १२. कवि० २३ (= धा० ३०४) के ठीक पूर्व :—

अ० १२. कवि० १६ : पट्टन के चालुक्क कचरा राय का,
अ० १२. कवि० १७, तथा कवि० २० : जंघारा राव भीम का,
अ० १२. भुज ० तथा कवि० १ : सिंह (सादूल) बारर का,

अ० १२. कवि० २० : अजमेर के सागर गौड़ का,

अ० १२. कवि० २० : एक जाँगरा शूर था।

प्रकट है कि यह विस्तार प्रक्षिप्त है।

इस उल्लेख-वैषम्य के अतिरिक्त अ० फ० में तीन ऐसे इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्तियों के उल्लेख भी आते हैं जो पृथ्वीराज के बहुत पीछे हुए हैं :—

(१) अ० ११. कवि० ६ : महाराष्ट्रपति कन्हराय,

(२) अ० १४. कवि० ६—अ० १६. कवि० २ : चित्तौर नरेश रावल समरसी,

(३) अ० १५. कवि० ८ : हम्मीर देव।

कन्नौज के युद्ध में महाराष्ट्रपति कन्हराय जयचन्द की ओर से सम्मिलित हुआ है, जब कि उसका राज्य-काल सं० १३०४ से १३१७ तक था।[1] गोरी और पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से रावल समरसी सम्मिलित हुआ है, जब कि उसके शिलालेखादि सं० १३३० से १३५८ तक के मिलते हैं।[2] वर-प्राप्ति के लिए हम्मीर के द्वारा देवी को अपना सिर काट कर भेंट करने की बात कही गई है,[3] जब कि उसने सं० १३५८ में अलाउद्दीन से लड़ कर वीर गति प्राप्त की थी।

किन्तु इनमें से एक भी धा० या मो० में नहीं है, यह तथ्य भी इसी ओर संकेत करता है कि अ० फ० पाठ धा० तथा मो० पाठों के बाद का है।

यहाँ पर यह शंका उठाई जा सकती है कि यदि अ० फ० पाठ धा० तथा मो० के बाद का है तो अ० फ० पाठ में भी लगभग उतनी ही उक्ति-शृंखला-त्रुटि क्यों मिलती है जितनी धा० अथवा मो० में मिलती है और छन्द-शृंखला त्रुटि भी प्रायः बराबर ही किन्तु मो० से बहुत कम मिलती है। इसका समाधान यही है कि अ० फ० के प्रक्षेपकार ने मुख्यतः नवीन प्रसङ्ग तथा कथा-कल्पना की दिशा में प्रक्षेप किया, प्राप्त प्रसंगों में विवरण-विस्तार का यत्न बहुत कम किया, जिससे कि पूर्व प्राप्त पाठ की उक्ति और छन्द शृंखलाएँ बहुत कुछ सुरक्षित रह सकीं; यह भी असम्भव नहीं है कि उक्ति और छन्द-शृंखलाओं को जान कर पाठवृद्धि करते हुए उसने उन्हें बचाने का यत्न किया हो।

कुछ समय पूर्व[4] 'पृथ्वीराज-रासो का लघुतम रूपान्तर (?)' शीर्षक एक लेख लिखते हुए मैंने धा० तथा मो० में कुछ ऐसी बातें दिखाई थीं कि जिनसे धा० और मो० रचना के पूर्ण पाठ की प्रतियाँ न ज्ञात होकर किसी प्रक्षेपयुक्त छन्द-चयन या संक्षेप मात्र की प्रतियाँ प्रतीत होती हैं। ये बातें तीन प्रकार की थीं। एक तो धा० पाठ के अन्त में मिलने वाले दोहे और उसकी पुष्पिका के सम्बन्ध की थी, जिनमें रचना को 'पृथ्वीराज रासउ रसाल' कहा गया है, दूसरी उन प्रसङ्ग-त्रुटियों के सम्बन्ध की थी जो धा० और मो० के पाठों में ही मिलती हैं, अन्य पाठों में नहीं, और तीसरी उन पाठ और प्रसङ्ग-त्रुटियों के विषय की थीं जो धा० और मो० के अतिरिक्त अ० फ० में भी मिलती हैं। नीचे उक्त लेख के आवश्यक अंश दिए जा रहे हैं :—

ऊपर उद्धृत [धा० तथा मो० का] पुष्पिकाओं को ध्यान से देखने पर ज्ञात होगा कि यद्यपि मो० में रचना का नाम "पृथ्वीराज रासु (रासौ)" दिया गया है, धा० में उसे "राजा श्री प्रिथीराज चहुआण रासु रसाल" कहा गया है। अभी तक जितनी भी अन्य प्रतियाँ रचना की प्राप्त हुई है,

[1] भांडारकर : अर्ली हिस्ट्री ऑव दि डेकन, पृ० २०९।

[2] ,, : इन्सक्रिप्शन्स ऑव नॉदर्न इण्डिया, पृ० ८२-५२।

[3] तुलना० 'हौं रनथंभउर नाँह हमीरू। कलपि माँथ जेइँ दीन्ह सरीरू।' जायसी-ग्रंथावली (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) 'पद्मावत' ४९१.३।

[4] दे० हिन्दी अनुशीलन, जुलाई-सितम्बर, १९५७, पृ० ९-१५।

उनमें से किसी में उसे "रसाल" नहीं कहा गया है। इतना ही नहीं, इस प्रति के पाठ के अन्त में एक दूहा आता है, और इसमें भी रचना का नाम यही है :—

सा... ... ...मरणहु चंद नरिंद।
रासउ रसाल नवरस निबंधि अचरिज इंदु फणिंद॥

और यह दूहा भी अन्य पाठ या प्रति में नहीं मिलता है। अतः उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने से पूर्व इस 'रसाल' शब्द पर विचार कर लेना आवश्यक होगा।

कोशों में इस शब्द के आम, ईख, गेहूँ आदि कुछ अर्थ मिलते हैं, जिनमें से कोई यहां संगत नहीं है। इससे मिलता हुआ एक शब्द 'रसालु' मिलता है, जिसका प्रयोग प्राकृत ग्रंथों में हुआ है, और 'पाइअ सद्द महण्णवो' में इसका अर्थ "मजिका या राज-योग्य पाक विशेष" देते हुए बताया गया है कि यह घृत, मधु, दही, मिर्च तथा चीनी से बनता है। इस अर्थ से भी हमें कुछ अधिक सहायता नहीं मिलती है। किन्तु इस शब्द का एक और प्रयोग भी मिलता है—वह है संकलन या चयन-ग्रंथ के अर्थ में। एक अज्ञात लेखक द्वारा संकलित 'उपदेश रसाल' नामक एक ग्रन्थ है, जिसमें जैन धर्मोपदेश को लक्ष्य करके अनेक कथा-कहानियाँ रत्नमन्दिर कृत 'उपदेश तरंगिणी' तथा अन्य ग्रन्थों से उद्धृत की गई हैं। उसकी पुष्पिका में लिखा है :—

"इति श्री उपदेश रसाल नामा ग्रन्थ उपदेश तरंगिणी २४ प्रबन्धादि बहु शास्त्राण्यऽवलोक्यउ [द्] धृतः[1]

यह अवश्य है कि 'रसाल' शब्द का यह प्रयोग पाक-विशेष अर्थ वाले 'रसाल' का ही एक साहित्यिक उपयोग प्रतीत होता है। मुझे ऐसा लगता है कि ऊपर 'पृथ्वीराज रासो' के साथ आए हुए 'रसाल' शब्द का अभिप्राय भी कुछ इसी प्रकार का है : 'पृथ्वीराज रासो' के विविध प्रसंगों से कुछ उत्कृष्ट छंद लेकर उक्त पाठ को तैयार किया गया, इसीलिए उसे 'पृथ्वीराज रासउ रसाल' कहा गया।

'राउल रसाल' के छन्द-संकलन पर दृष्टि डालने पर यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है।

(१) 'रासउ रसाल' में खट्टू में द्रव्य-प्राप्ति प्रकरण[2] का केवल एक छन्द है :—

[खट्टू आखेटक रमन] महिम सुरस्थल थांनु।
नागचरी गथरी गुरन मति निम्मल परधान॥ (धा० २६=स० २४.१)

कथा में इस छन्द की संगति क्या है, यह उक्त प्रकरण के अन्य छन्दों के अभाव में ज्ञात नहीं होता है।

(२) 'रासउ रसाल' में दिल्ली-दान प्रकरण[3] के केवल निम्नलिखित दो छन्द हैं :—

जोगिनिपुर चहुवान लिय पुत्तिय पुत्त नरेस।
अनंगपाल तोंवर तिरण किय तीरथ परवेस॥ (धा० २८=स० १८.९६)
पट्टह सह सामन्त सजि बजै निरघोष सुनिंद।
सोमेसुर नन्दन अटल दिल्ली सुचिर नरिंद॥ (धा० २९=स० १८.१०४)

स्वभावतः यहाँ पर प्रश्न उठता है कि योगिनीपुर (दिल्ली) को चहुवान पृथ्वीराज ने किस प्रकार लिया। अतः यह प्रसंग भी उसमें अधूरा रह जाता है।

[1] दे० 'कैटेलॉग आव् टॉड कलेक्शन इन दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी,' जर्नल ऑव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, अप्रैल १९४०, पृ० १३२।

[2] अ० २, साट० ३ से अ० २, कवि० ४ तक; स० खंड २४।

[3] अ० २, दो० १७ से अ० २, दो० २२ तक; स० खंड १८।

(३) 'रासउ रसाल' में जयचन्द तथा संयोगिता के पूर्व-परिचय,[1] भीम चौलुक्य तथा शहाबुद्दीन गोरी से पृथ्वीराज के संघर्ष और इंछिनी विवाह[2] के एक भी छन्द नहीं हैं। उसमें दिल्ली-दान प्रकरण के बाद ही 'कनवज के राजा की बात' प्रारम्भ हो जाती है और हमें संयोगिता प्रथम दर्शन में मृगों को अपने हाथों से यवांकुर चुगाती हुई दिखाई पड़ती है।[3] यह संयोगिता कौन है, न इस छंद में कहा जाता है और न इसके पहले कहीं। इसी प्रकार आगे कैंवास-वध प्रकरण[4] में पट्टराज्ञी इंछिनी के ही बुलाने पर आखेट से आकर पृथ्वीराज कैंवास का वध करता है और 'रासउ रसाल' में वहाँ इंछिनी पट्टराज्ञी होते हुये भी[5] एक ऐसे पात्र के रूप में हमारे सामने आती है जिससे पहले से हम बिलकुल परिचत नहीं हैं। 'रासउ रसाल' की कथा में जयचन्द, संयोगिता और इंछिनी के पूर्व-परिचय का अभाव इसलिए प्रबन्ध-त्रुटि लगता है। कथा में भीम चौलुक्य और शहाबुद्दीन गोरी से संघर्ष की कथायें इंछिनी विवाह की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती हैं।

(४) 'लघु पाठ' (अ० फ०) में जयचन्द ने संयोगिता के पास उसकी कुछ सखियों को इसलिए भेजा है कि वे उसे पृथ्वीराज के अनुराग से विरत करें, और इस प्रकरण में जयचन्द की उन दूतियों तथा संयोगिता का एक अच्छा संवाद है।[6] 'रासउ रसाल' में इस प्रकरण के कुछ स्फुट छन्द ही हैं, जिनमें उक्त संवाद सुशृंखलित और उत्तर-प्रतिउत्तर-पूर्ण नहीं है। उदाहरण के लिए दूतियाँ प्रेम की तुलना में यौवन की जो महत्ता प्रतिपादित करती हैं,[7] उसका कोई उत्तर संयोगिता की ओर से नहीं है, जो प्रसंग में अनिवार्य है।

(५) कैंवास-वध प्रकरण में 'लघु पाठ' (अ० फ०) के वे छन्द 'रासउ रसाल' में नहीं हैं जिनमें इंछिनी ने पृथ्वीराज को कैंवास को कर्नाटी के कक्ष में दिखाया है।[8] उक्त प्रकरण में इस प्रकार के संकेत के अभाव में पृथ्वीराज का कैंवास को वाण का संधान कर मारना, जैसा बाद के छन्दों में आया है, किसी प्रकार संभव नहीं लगता है।

(६) 'रासउ रसाल' में पृथ्वीराज के साथ जाने वाले १०६ योद्धाओं की वह संक्षिप्त परिचय-युक्त सूची नहीं है जो 'लघु पाठ' (अ० फ०) में है।[9] इन योद्धाओं में से अधिकतर के नाम 'रासउ रसाल' में भी बाद में आने वाले कन्नोज-युद्ध प्रकरण में आते हैं। अतः इस सूची के अभाव में उक्त युद्धाओं का उल्लेख अत्यन्त आकस्मिक लगता है, और कभी-कभी तो यहाँ तक नहीं पता चलता है कि कौन किस ओर से युद्ध कर रहा है।

इन प्रबन्ध-त्रुटियों से 'रासउ रसाल' का एक चयनात्मक संक्षेप मात्र होना प्रमाणित है। यह चयन किस पाठ से हुआ, यह दूसरा प्रश्न है जो विचारणीय है। ऊपर हम यह बता ही चुके हैं कि 'रासउ रसाल' के प्राय : समस्त छन्द 'लघु पाठ' (अ० फ०) में आते हैं। पुनः 'लघु पाठ' (अ० फ०)

[1] अ० खंड ३; स० खंड ४५—४७।

[2] अ० खंड ४—५, स० खंड १२—१३।

[3] धा० ३५; अ० ६. रासा १, स० ४८. ७९।

[4] अ० खंड ७, स० खंड ५७, धा० ४८—१०६।

[5] धा० ६१।

[6] अ० ६. दो० ४—खंड के अन्त तक; स० खंड ५०।

[7] धा० ५२; अ० ६. दो० ८; स० ५०.४४।

[8] अ० ७. दो० ६—दो० १०, स० ५७.८२—८६।

[9] अ० ७. दो० ११; स० ५७.८७; धा० ६८।

[10] अ० ८. भुजं० १; स० ६१. १०९—१३२

के भी समस्त छन्द, आधे दर्जन के लगभग छन्दों को छोड़कर, उस पाठ में आते हैं जिसे 'मध्यम'(ना०) कहा जाता है, और 'मध्यम' के भी अधिकतर छन्द उस पाठ में आते हैं जिसे 'बृहद' (ना० उ० स०) कहा जाता है। किन्तु 'रासउ रसाल' में तीन-चार छन्दों को छोड़ कोई छन्द ऐसे नहीं हैं जो 'मध्यम' या 'बृहद' में हों और 'लघु' में न हो, इसलिए यह प्रकट है कि 'रासउ रसाल' 'लघु' का ही एक संकलित संक्षेप है।

इस तथ्य की पुष्टि एक और प्रकार से भी होती है। 'रासउ रसाल' में जो पाठ-भ्रंश आदि के स्थल हैं, उनमें से कुछ 'लघु पाठ' (अ० फ०) में भी पाए जाते हैं। नीचे इस प्रकार के दो प्रमुख उदाहरण दिये जा रहे हैं :—

(१) 'रासउ रसाल' में नीचे लिखी गद्य-वार्त्ता आती है[1] :—

"पात्र नाम श्रपंकांगी नेतचंगी कुरंगी कोकाक्षी कोकिला रागीमें भागवतानी अंगाल लोल डोल एक बोल अमोल पुष्पांजली पंग सिर नाइ जयति पिय कामदेव।"

मो० में भी पाठ लगभग यही है, केवल साधारण पाठांतर के अतिरिक्त अन्त में आए हुये 'पिय' के स्थान पर पाठ 'बिअ' है।

प्रकट है कि यह केवल पातरों (नर्तकियों) की नामावली नहीं है, यह किसी छन्द का एक त्रुटित रूप है, जिसमें नर्तकियों के नाम गिनाकर कहा गया है कि उन्होंने पंग (जयचन्द) के सिर पर पुष्पांजलि डालते हुये एक स्वर से कहा, "हे प्रिय (मो० पाठ के अनुसार 'दूसरे') कामदेव, तुम्हारी जय हो!"

'लघु पाठ' (अ० फ०) में भी इस छन्द की स्थिति यही है, केवल इसे उसमें 'वार्त्ता' नहीं कहा गया है, न 'पात्र नाम' का शीर्षक दिया गया है, और अन्त में आये हुए 'पिय' या 'बिअ' के स्थान पर पाठ 'तुव' है।[2] केवल एक प्रति 'लघु पाठ' की ऐसी है जिसमें यह अंश एक साटक (शार्दूल विक्रीड़ित) के रूप में इस प्रकार आता है[3] :—

> दीपांगी चन्द्रनेत्रा नलिन अलि मिली नैनरंगी कुरंगी।
> कोकांषी दीर्घनाला सुरसरि कलिरवा नारिदं सारवंगी।
> इंद्रानी लोल डोला चपल मतिधरा एक बोली अबोली।
> दूहपा वानी विसाला सुभ गिरवरा जैतरंभा सुबोली॥

मेरा अपना अनुमान कि पाठभ्रंश के पूर्व 'लघु पाठ' में छन्द कुछ इस प्रकार रहा होगा :—

> दीपांगी चन्द्रनेत्रा नेत्रवंगी कुरंगी।
> कोकाक्षी कोकिलानी राग मे भागवानी।
> अंगोले लोल डोलं एक बोलं अमोलं।
> पुष्पांजलि पंग सिर नाइ जयति बिअ कामदेव॥

और किसी प्रकार पत्र-क्षति के कारण जब इस छन्द के कुछ अंश त्रुटित हो गए, 'रासउ रसाल' तथा 'लघु पाठ' (अ० फ०) की प्रतियों में इसका त्रुटित पाठ ही उतरा। तदनंतर छन्द का रूप तथा आशय पूरा स्पष्ट न होने के कारण 'रासउ रसाल' में इसे 'वार्त्ता' कह कर 'पात्र नाम' का शीर्षक दे दिया गया, जब कि 'लघु पाठ' की प्रतियों में इसे यथावत् रहने दिया गया; केवल 'लघु पाठ' की उपर्युक्त

[1] धा० १८४ के पूर्व; स० ६१.८४४।

[2] आ० ९. साट० ३।

[3] म० १०.४०८; यह प्रति पूना के भांडार ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट की संख्या १४५५ [१८८१-९५] (उपर्युक्त म०) है।

अपवाद वाली प्रति (म०) के आदर्श में त्रुटित पाठ को प्रक्षेप करके एक भिन्न छन्द के रूप में पूरा कर लिया गया।

(२) 'रासउ रसाल' में एक—निम्नलिखित में से प्रथम—तथा 'लघु पाठ' की समस्त प्रतियों (अ० फ०) में निम्नलिखित दो छन्द 'मध्यम' (ना०) तथा 'बृहद्' पाठ (शा० उ० स०) में मिलनेवाली 'दिल्ली किल्ली कथा' के ऐसे हैं जो उस कथा के अन्य छन्दों के अभाव में बिलकुल बेतुके लगते हैं।[1] इन छन्दों में जगजोति व्यास ने अनंगपाल से [दिल्ली की] कीली को ढीली कर देने का भावी दुष्परिणाम घोषित किया है :—

अनंगपाल चक्कवै बुद्ध जो इसी उकिल्लिय।
भयौ तुअंर मतिहीन करी किल्लीय तैं ढिल्लिय।
कहै व्यास जगजोति अगम आगम हौं जानौं।
तूंअर तैं चहुआन अंत ह्वै हैं तुरकानौं।
तूंअर सु अवट्टि मंडव धरह इक्क राय बलि बिचकवै।
नवसत्त अन्त मेवात पति इक्क छत्त महि चक्कवै॥ (धा० २७=स० ३,२६)
सोरै सै सत्योत्तरै विक्रम साक वदीत।
ढिल्ली धर मेवातपति लैहि पग्ग बल जीत॥
(अ० २. दो० २=स० ३.४४)

यह जगजोति व्यास कौन था, दिल्ली की वह कीली अनंगपाल ने क्यों और कैसे ढीली की—आदि बातों का इनमें कोई उल्लेख नहीं होता है। अतः ऐसा लगता है कि 'लघु पाठ' (अ० फ०) के आदर्श के इस प्रकरण में बुरी तरह से खण्डित हो जाने के कारण 'लघु पाठ' की प्रतियाँ (अ० फ०) में केवल दो छन्द आ पाए और 'रासउ रसाल' में इनमें से भी एक ही लिया गया।

इन दो पाठ-त्रुटियों में से कोई भी 'बृहद् पाठ' (शा० उ० स०) नहीं आती है और 'मध्यम पाठ' (ना०) में केवल प्रथम आती है, दूसरी नहीं; अतः इन पाठ-त्रुटियों से यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'रासउ रसाल' का संकलन 'लघु पाठ' (अ० फ०) से किया गया है, 'मध्यम' (ना०) या 'बृहद्' (शा० उ० स०) से नहीं।

यह 'लघुतम रूपान्तर' (धा० मो०) प्रक्षेपों से भी शून्य नहीं है। इसका एक प्रक्षेप तो अति प्रकट है। 'पृथ्वीराज रासो' के 'षट ऋतु वर्णन' के छन्द[2] संयोगिता के साथ पृथ्वीराज के दिल्ली-आगमन के अनन्तर के नवदंपति के संभोग शृंगार के हैं, यह भली भाँति प्रमाणित है, क्योंकि इनमें से एक छन्द में 'संयोग भोगायते' शब्दावली आती है,[3] और 'संयोगी' ग्रन्थ भर में संयोगिता के लिए आया है। किन्तु धा० और मो० में यह छन्दावली पृथ्वीराज के कन्नौज-प्रयाण के पूर्व आती है, और मो० में यहाँ तक कथा गढ़ ली गई है कि पृथ्वीराज की छः रानियाँ हैं जो कन्नौज-प्रयाण से उसे कम से कम एक वर्ष तक—प्रत्येक अलग-अलग एक-एक ऋतु की रमणीयता की ओर उसका ध्यान दिलाते हुए—रोक लेती हैं। इस प्रसंग में विचारणीय यह है कि 'पृथ्वीराज रासो' के समस्त पाठों में इस ऋतु-वर्णन के बहुत पूर्व यह कहा जा चुका है कि जयचंद के राजसूय यज्ञ और उसके साथ ही होने वाले संयोगिता के

[1] धा० २७; अ० २, कवि० ४ तथा २, दो० २ आ; स० ३.२६ तथा ३.४४।

[2] धा० १०७-११२, अ० १३, साट० २-साट० ७; स० ६१.१; ६१.१८; ६१.२७; ६१.३१; ६१.४१; ६१.६१।

[3] अ० १३, साट० २; स० ६१.१; धा० १०७ [धा० में यह शब्दावली छूटी हुई है, किन्तु मो० में है]।

स्वयंवर के लिए एक विशिष्ट योग युक्त मुहूर्त निश्चित हो गया और उस मुहूर्त को ध्यान में रखते हुए पृथ्वीराज ने कन्नौज पर चढ़ाई कर दी :—

सैंयंवर संग अरु जग्गु काज।
विद्वज्जन बुलि दिनधरहु आज ॥[१]
रवि जोग पुष्य ससि तीय धाम।
दिन धरिग देउ पंचमि प्रमान ॥[२]
पर उछह देखित भयो मलान।
विग्रहन देस चढ़ि चाहुवान ॥

अतः यह प्रकरण न केवल सर्वथा असंगत है, यह कल्पना भी कि उक्त मुहूर्त के साल भर आगे-पीछे तक पृथ्वीराज जयचन्द के यज्ञ-विध्वंस और संयोगिता के अपहरण के लिए कन्नौज जा सकता था, नितान्त हास्यास्पद है।

यह अवश्य है कि वे गद्य-वार्त्ताएँ जो मो० में विभिन्न रानियों का इस प्रसंग में उल्लेख करती हैं धा० में नहीं हैं, किन्तु गद्य-वार्त्ताओं के विषय में, जैसा ऊपर कहा है, इन प्रतियों के प्रतिलिपिकार बहुत साग्रह नहीं ज्ञात होते हैं, क्योंकि दोनों में ऐसी अनेक गद्य-वार्त्ताएँ आती हैं जो एक में हैं तो दूसरी में नहीं हैं, इसलिए दोनों के इस पाठांतर पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता।

फलतः (१) 'लघुतम रूपान्तर' की दोनों प्राप्त प्रतियाँ (धा० मो०) 'पृथ्वीराज रासो' के एक छन्द-चयन मात्र की प्रतियाँ हैं,

(२) यह छन्द-चयन 'पृथ्वीराज रासो' के 'लघु पाठ' (अ० फ०) से किया गया है, तथा

(३) छन्द-चयन के अनन्तर भी इस पाठ (धा० मो०) में प्रक्षेप किया गया है।

इसलिए इस पाठ (धा० मो०) को 'पृथ्वीराज रासो' का 'लघुतम पाठ' या उन्हीं अर्थों में 'लघुतम रूपान्तर' कहना और यह समझना कि इसे 'पृथ्वीराज रासो' का मूल—या कम से कम प्राचीनतम—पाठ माना जा सकता है, ठीक नहीं है।

किन्तु इधर और अधिक अध्ययन करने पर उक्त लेख में उठाई गई शंकाओं में से कुछ के किंचित् भिन्न समाधान मुझे स्वयं मिले, जिनका उल्लेख यथाक्रम नीचे किया जा रहा है।

धा० पाठ का अंतिम दोहा तथा उसकी पुष्पिका में दिया हुआ रचना का "प्रिथीराज चहुआण रासु (=रासउ) रसाल" नाम किसी भी अन्य प्रति में—मो० तक में—नहीं मिलते हैं। धा० के इस अन्तिम दोहे के स्थान पर जो छन्द समस्त पूर्ण पाठ की प्रतियों में समान रूप से मिलता है, वह [मो० के अनुसार] निम्नलिखित है :—

मरन चंद बरदीआ राजधुनि साह हन्युं (=हन्यउ) सुनि।
पुष्पांजलि असमांन सीस छोडि (=छोडी) त देवतनि।
मेछ्छ अवध्धित धरणि धरणि नव त्रीय सूहसिग।
तिनहि तिहीं सं योति (=जोति) योति (=जोति) योतिहि (=जोतिह) संपत्तिग।
रासु (=रासउ) असंभु नवरस सरस चंदु चंदु (छन्दु ?) कीअ अमीअ सम।
श्रृंगार वीर करुण विभक्षु (विभच्छु ?) भअ रुद्द सूत (संत ?) हसंत शम (सम) ॥

धा० के उक्त अन्तिम दोहे का भाव प्रायः वही है जो इस छन्द का है, दोहे की प्रथम पंक्ति की शब्दावली तक इस छन्द की भी प्रथम पंक्ति में मिलती है : दोहे के 'मरण', 'चंद' तथा 'नरिंद' इस

[१] धा० ३३; अ० ६, पद्य० २ : स० ४८, ७१।

[२] धा० ३६; अ० ६, पद्य० ४; स० ४८, ९९-१०० तथा ४८० १२७।

छन्द की प्रथम पंक्ति में मिलते ही हैं—केवल दोहे के 'नरिंद' के स्थान पर छन्द में उसका पर्याय 'राज' शब्द आता है; दोहे की दूसरी पंक्ति का पूर्वार्द्ध भी इस छन्द की अन्तिम पंक्ति के पूर्वार्द्ध के रूप में मिलता है, केवल दोहे के 'रसाल' के स्थान पर छन्द में 'असंभु' तथा उसके 'निबंधि' के स्थान पर इसमें 'सरस' शब्द आते हैं। ऐसा लगता है कि धा० के किसी पूर्वज में उसके अन्तिम पत्र के क्षत-विक्षत होने के कारण छन्द इस प्रकार त्रुटित हो गया था कि उसके प्रथम चरण के 'मरन चन्द बरदिआ राज' तथा पंचम चरण के 'रासउ असंभु नवरस' मात्र शेष रह गये थे और इन्हीं से, कुछ घटा-बढ़ा कर, सार्थक पाठ देने की दृष्टि से धा० पाठ का उक्त दोहा बना लिया गया, क्योंकि इतने बड़े और सुनियोजित काव्य का उपसंहार मूल में 'रासउ रसाल नवरस निबंधि अचरिज इदु फणिंद' मात्र शब्दों के द्वारा हुआ हो, कथा-नायक पृथ्वीराज का मरण एक अति सामान्य घटना के रूप में 'मरणहु चन्द नरिंद' शब्दों से उल्लिखित मात्र हुआ हो, और गोरी के बध पर कवि ने कोई टिप्पणी उसमें न की हो यह भी सम्भव नहीं ज्ञात होते हैं। धा० का पाठ प्रक्षेप मुक्त नहीं है, यह जैसा हमने ऊपर देखा है त्रुटित उक्त-शृंखलाओं से प्रमाणित है, इसलिए इस समाधान के सम्बन्ध में शंका के लिए कोई कारण न होना चाहिए।

पुष्पिका में आए हुए 'रसाल' शब्द का समाधान भी उपर्युक्त ही ज्ञात होता है। धा० के किसी पूर्वज आदर्श में उसके अंतिम पत्रे के क्षत-विक्षत हो जाने के कारण यदि पुष्पिका निकल गई हो और प्रतिलिपि-परम्पराओं में कहीं वह भी उपर्युक्त दोहे की भाँति गढ़ ली गई हो तो कुछ आश्चर्य नहीं।

जहाँ तक 'रसाल' के 'चयन' या 'संग्रह' ग्रन्थ के लिए प्रयुक्त होने की बात है, वह अपनी जगह पर ठीक लगती है, किन्तु दोहे में 'रसाल' शब्द 'नवरस' के प्रसंग में 'रसपूर्ण' के अर्थ में यदि प्रयुक्त हुआ हो, और उसी से वह उस दोहे के साथ गढ़ी गई पुष्पिका में भी आ गया हो तो असम्भव नहीं है।

धा० की प्रसंग-त्रुटियों के जो उल्लेख किए गए हैं, उनमें से प्रथम और द्वितीय 'द्रव्य प्राप्ति' और 'दिल्ली दान' प्रकरणों की हैं। विवेचन की सुविधा के लिये इन्हीं के साथ धा० की उस प्रसंग-त्रुटि को भी लेना होगा जिसका उल्लेख उक्त लेख में धा० मो० तथा अ० फ० की सामान्य प्रसंग-त्रुटि के रूप में बाद में किया गया है, जो 'ढिल्ली किल्ली' प्रकरण की है और उपर्युक्त दोनों के बीच में पड़ती है। ये छन्द ऐसा लगता है कि पहले धा० परम्परा के पूर्वागत पाठ में नहीं थे, पीछे पाठमिश्रण के द्वारा उसमें आए : उक्त अन्य प्रति में ये छन्द एक ही प्रकरण के रूप में या एक साथ पृथ्वीराज के 'वंशोत्पत्ति प्रकरण' के बाद दिए हुये थे, और उससे मिलान करने पर मिलान करने वाले को जब यह दिखाई पड़ा कि धा० के उसको उपलब्ध पूर्वज में ये नहीं हैं, उसने इन्हें धा० के उक्त पूर्वज में रख लिया। पुन : ऐसा लगता है कि यह अन्य प्रति अथवा इसका कोई पूर्वज किसी ऐसे पाठ के छन्द-चयन के द्वारा तैयार किया गया था जिसमें ये समस्त छन्द एक ही प्रकरण में आते थे। ऊपर हमने देखा है कि म० में उसके दूसरे खण्ड 'अर्बुद खण्ड' के बाद ही बिना किसी अथ-इति के कुछ छन्द आते हैं जो अ० फ० में उपर्युक्त दूसरे खण्ड में पूर्ण रूप से सम्मिलित कर लिये गये हैं: अ० फ० में न केवल म० की निम्नलिखित 'अर्बुद खण्ड' विषयक पुष्पिका नहीं रह गई है :—

"इति श्री कवि चन्द विरचिते श्री पृथीराज रासके अर्बुद खण्ड तुतीयर[२] ॥

इन अतिरिक्त छन्दों की क्रम संख्या भी उसी क्रम में कर दी गई है जिसमें पर्ववर्त्ती छन्द आते हैं। धा० २५, २६ इस अंश के प्रारम्भ के हैं, धा० २७ इस अंश के मध्य का है और धा० २८, २९ तथा ३० इस अंश के अन्त के हैं। धा० २६ ऊपर दिया जा चुका है, धा० २५ निम्नलिखित है :—

राजजी अजमेर केलि कविलं म्रिता रता संभरी।
दुढारा भर भार नीर वहनो दहनो दुरग्गं भरी।

सोमेसो सुर नंद वंद गहिला वहिलावन वासिनं।
सिरमानं विधनान जानि कविता दिल्ली पुर भासिनं ॥

धा० २७, २८ तथा २९ भी उद्धृत हैं। धा० ३० निम्नलिखित है :—

एका दस सय पंच दह विक्कम साकु अनन्द ।
तिहि पुर रिपु जय हरण भयो प्रिथिराज नरिन्द ॥

अत : उक्त पाठ-चयन की प्रति यदि म० अथवा अ० फ० परम्परा की किसी प्रति से तैयार की गई हो तो आश्चर्य न होगा। यहाँ पर यह शंका अवश्य उठाई जा सकती है कि छन्द-चयन की यह परम्परा विचित्र सी लगती है, किन्तु इस प्रकार की एक परम्परा के प्रमाण 'पृथ्वीराज रासो' के ही पाठों में मिलते हैं। रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन की दो प्रतियाँ इसी प्रकार की हैं : ये हैं टॉड संग्रह की प्रति संख्या १६० तथा १६१।[1] इन दोनों में छन्द-संकलन मनमाने ढंग से किया गया है।

उक्त संग्रह की १६० संख्यक प्रति के प्रथम खण्ड में, जिसे 'आदि पर्व' कहा गया है, केवल दस रूपक हैं और ये दस रूपक ठीक-ठीक वे ही हैं जो शा० उ० स० के प्रथम दस हैं। प्रथम चार रूपकों तक आदि देव, धर्म, कर्म तथा मुक्ति की स्तुति है, पाँचवें रूपक में पूर्ववर्ती कवियों की स्तुति है, जिसमें चंद द्वारा अपनी रचना को उनका 'उच्छिष्ट' कहा गया है, रूपक ६ तथा ७ में उसके 'उच्छिष्ट' कहने पर चंद की स्त्री शंका करती है, रूपक ८ में चंद उसका समाधान करता है, रूपक ९ में वह पुनः उसी सम्बन्ध में शंका करती है, और रूपक १० में चंद उसका समाधान करता है; यहीं पर 'आदि पर्व' की 'इति' की जाती है। ग्रन्थ का विषय क्या है और किस प्रकार उसके रचयिता को ग्रन्थ-रचना के लिए प्रेरणा मिली, यह सब कुछ नहीं कहा जाता है। इस प्रकार प्रकट है कि इस पाठ में खण्ड के प्रारम्भ के ही रूपक देकर उसकी इति दे दी गई है।

द्वितीय खण्ड में भी उस पाठ के उस खण्ड के केवल प्रारम्भ के तीन रूपक हैं और वे उसी क्रम में दिए हैं जिस क्रम में वे शा० उ० स० में मिलते हैं, तीसरा रूपक तो पूरा दिया भी नहीं गया है जिससे कृष्ण कथा तक भी पूरी नहीं हो पाई है, और स० २. ५७ पर खण्ड समाप्त कर दिया जाता है यद्यपि पुष्पिका में खण्ड को 'दशावतार वर्णन खण्ड' कहा जाता है। किन्तु इसीलिए नवें तथा दसवें अवतारों का नामोल्लेख तक नहीं हो पाता है।

तृतीय खण्ड में 'दिल्ली कीली' कथा है। इस खण्ड के प्रथम २० रूपक वे ही हैं जो शा० उ० स० के इस खण्ड के हैं और ठीक उसी क्रम में भी हैं। बीसवें रूपक में कीली को दोबारा शुभ मुहूर्त में गाड़ने का उल्लेख होता है और उसके अनन्तर ही खण्ड का ३१वां रूपक (स० ३.४४)—जो बीच का एक रूपक है और जिसमें सं० १६०७ में मेवातपति के द्वारा दिल्ली की धरा की जीते जाने की भविष्यवाणी है—दे दिया जाता है। यह भविष्यवाणी किसने की, क्यों की, आदि के सम्बन्ध का कोई विवरण नहीं है। यहीं पर खण्ड की 'इति' दे दी जाती है।

चौथा खण्ड 'कन्हपट्टी समय' है जो उस पाठ में पाँचवाँ है। इसमें खण्ड के प्रारम्भ के १६ रूपक शा० उ० स० पाठ के अनुसार ही आते हैं, जिनमें प्रताप सी के पृथ्वीराज की सभा में आने तक की कथा आती है; आगे क्यों कन्ह ने उसे मार डाला और इस पर किस प्रकार रुष्ट होकर पृथ्वीराज ने उसकी आँखों पर पट्टी बँधने का दण्ड दिया, जो कथा का सबसे आवश्यक भाग है, नहीं आता है।

इस प्रति का पाँचवाँ खण्ड 'लोहाना आजान बाहु समय' है जो उस पाठ का चौथा खण्ड है। अपवाद-स्वरूप यह खण्ड पूरा है और शा० उ० स० के खण्ड के समान है।

[1] इन प्रतियों के माइक्रोफ़िल्म प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में हैं।

प्रति के शेष खण्डों की दशा वही है जो इन पाँच खण्डों की बताई गई है। कहने को इसमें श० उ० स० पाठ के प्रायः समस्त खण्ड हैं, किन्तु है यह छन्द-संकलन मात्र, पूर्ण पाठ नहीं है।

टॉड संग्रह की १६१ संख्यक प्रति प्रथम खण्ड में द० के पाठ का अनुसरण करती है और तदनन्तर ना० परिवार की किसी प्रति के पाठ का।

इसके प्रथम खण्ड के रूपक ३५ (स० १. ११२) तक परीक्षित को सर्पदंशन से मृत्यु का शाप मिलने तक की कथा आती है, जो कि पिंगल-कर्त्ता नाग के अवतार प्रसंग में कही गई है।' किन्तु इसी रूपक के अनन्तर 'इति ढुंढा राकस कथा' उल्लेख मिलता है, जिससे यह प्रकट है कि बीच के अनेक छन्द, जिनमें ढुंढा राकस की कथा तक पृथ्वीराज के पूर्वजों की कथा आती थी, छोड़ कर उस कथा की 'इति' मात्र दे दी गई है।

इसके अनन्तर वीसलदेव के छत्र धारण करने से कथा फिर चलती है—यह प्रति के आदर्श का रूपक ९७ (स० १.३४०) है, और बीसल की कथा भी पूरी नहीं हो पाती कि प्रथम खण्ड समाप्त कर दिया जाता है; पृथ्वीराज के शेष पूर्वजों तथा उसके जन्म आदि की कथा छोड़ दी जाती है, यद्यपि इस खण्ड की पुष्पिका है "इति......अर्बद उतपति चहुआन उतपती ढुंढा उतपती प्रीथीराज जन्म नाम कथा प्रथम खण्ड समाप्तं।"

इसके बाद 'दशावतार वर्णन खण्ड' आता है, किन्तु कथा वाराह अवतार तक (स० २.१५८) ही आकर रुक जाती है; राम तथा कृष्ण अवतारों तक की कथा नहीं आती है। किन्तु तदनन्तर पुनः अनेक छन्द और कोई खण्ड भी छोड़कर इति 'ढोली कीली कथा' की दी जाती है।

इसके अनन्तर 'अथ हुसेन कथा' लिखकर वह कथा दी जाती है जो स० के खण्ड ११ में आती है, किन्तु स० ११.२५ तक के ही छन्द आते हैं, जिनमें किस प्रकार अरब खां से शहाबुद्दीन गोरी को चित्ररेखा मिलती है, यहाँ तक भी कथा पूरी नहीं कही जाती है और इति 'चित्ररेखा पात्र कथा' को दे दी जाती है।

यही दशा प्रति के अन्य खण्डों के पाठ की भी है, यद्यपि प्रति पूर्ण है और 'बाणवेध खण्ड' तक के छन्द इसमें आते हैं।

इन दो उदाहरणों से यह प्रकट है कि रचना की कुछ ऐसी प्रतियाँ भी तैयार की जाती थीं जिनमें प्रत्येक खण्ड के कुछ छन्द रख लिए जाते थे। किसलिए ऐसा होता था, यह एक भिन्न प्रश्न है, जिस पर विचार करना यह आवश्यक नहीं है।

धा० मो० की प्रसंग-त्रुटियों में से वे जो लेख में संख्या (३) पर दी गई हैं, अ० फा० के खण्ड ३, ४, ५ से सम्बन्धित हैं। अ० फा० खण्ड ३ में जयचन्द तथा संयोगता का पूर्व-परिचय है; खण्ड ४ में पृथ्वीराज-गोरी युद्ध है, और खण्ड ५ में पृथ्वीराज-भीम चौलुक्य युद्ध है।

जहाँ तक खण्ड ३ की बात है उसमें, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, विजयपाल की दिग्विजय में (अ० ३. नारा० १, दो० २, दो० ३) भी उन में से अनेक देशों का उल्लेख होता है जिनका पीछे जयचन्द की विजयों में (अ० ६. साट० २, ९. भुजं० ३ = क्रमशः धा० ४८, १६१) हुआ है, यथा: तिरहुत, गुंड, तिलिंग, गोवाल-कुंड कर्णाट और गूर्जर।

जहाँ तक खण्ड ४ तथा ५ की बात है, ऊपर हम देख चुके हैं कि जिन सामंतों के उल्लेख इनमें वर्णित युद्धों में होते हैं, उनसे सर्वथा भिन्न सामंतों को पीछे (अ० ७. त्रो० २ = धा० ८०) को इन युद्धों में विजय का श्रेय दिया जाता है। इससे प्रकट है कि अ० के खण्ड ४ तथा ५ की कल्पना अ० ७. त्रोट० २ = धा० ८० की रचना के भी बाद—जो स्वतः एक प्रक्षेप प्रतीत होता है जैसा हम आगे देखेंगे—किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा की गई जिसका ध्यान कैंवास-वध प्रकरण के इस छन्द पर नहीं गया था।

धा० मो० की प्रसंग-त्रुटियों में से वे जो लेख में संख्या (४) पर बताई गई हैं, संयोगिता के पृथ्वी प्रेम विषयक उसके और उसकी सखी के बीच हुए संवाद से सम्बन्धित हैं। अन्य प्रतियों में ५. प्रसंग में धा० मो० के अतिरिक्त जो छन्द आते हैं, उन पर विचार करना आवश्यक है। धा० ४६ तथा धा० ४७ के बीच धा० मो० के अतिरिक्त समस्त प्रतियों में एक ही छन्द आता है, जो निम्न-लिखित है :—

अथवा राजन राजगृह अथवा माह लुहानि।
विधि बंधिय पट्टल सिरह मुष कहि मंदौ जानि॥ (अ० ६. दो० ६)

अर्थात् संयोगिता ने कहा, "चाहे वह (पृथ्वीराज) राजन्य और राजगृह में [उत्पन्न] हो चाहे, हे सखी, वह लुहान (लघु या हीन) हो, जो कुछ भी विधाता ने सिर (भाग्य) के पटल पर बाँध दिया, [उसके सम्बन्ध में] मुख से कुछ कह कर तुम मानो मंद (बुरा) करती हो।"

इस कथन का भाग्यवाद बाद में आए हुये छन्द धा० ४७ के पृथ्वीराज-स्तवन के विरुद्ध पड़ता है, जिसमें संयोगिता ने पृथ्वीराज को एक पराक्रमी वीर बताया है, जिसने अनेक देशों पर विजय प्राप्त की है।

धा० ४७ तथा धा० ४८ के बीच केवल अ० फ० में तीन छन्द आते हैं, जो अन्य समस्त प्रतियों में इनके बहुत पूर्व आते हैं; ये छन्द पूर्ववर्ती वर्णन के हैं भी, संवाद के नहीं हैं। इनका वही स्थान सम्भव है जो इनका अ० फ० के अतिरिक्त प्रतियों में है। इस प्रकार वास्तव में धा० ४७ तथा धा० ४८ के बीच कोई छन्द किसी भी प्रति में नहीं आते हैं। धा० ४८ तथा धा० ५२ के बीच अ० में भी वे ही छन्द आते हैं जो धा० मो० में हैं। धा० ५२ तथा धा० ५३ के बीच धा० मो० के अतिरिक्त सभी प्रतियों में निम्नलिखित दो दोहे आते हैं :—

तुव सम मात न तात तन गात सु इंवरियाइं।
जुव्वसु घन अथिर रहै अंसु कि अंजुरियाइं॥ (अ० ६. दो० ९)
ताहि अनुग्रह तुम करहु जौं तुम सषी समान।
हौं लज्जा करि का कहौं तुम मो तात प्रमान॥ (अ० ६. दो० १०)

इनमें से प्रथम ही पूर्णतः सङ्गत और सुनिर्मित है : सखी ने धा० ५२ में यौवन की जिस महत्ता का प्रतिपादन किया है, उसका अच्छा उत्तर इस दोहे में है, और इसकी आवश्यकता है, क्योंकि अन्यथा, जैसा लेख में कहा गया है, संयोगिता सखी के उक्त कथन को सुन कर निरुत्तर रहती है। दूसरा दोहा अवश्य अनावश्यक ही नहीं प्रक्षिप्त भी लगता है : सखी से अनुग्रह न करने का जो अनुरोध संयोगिता करती है, और फिर उसे "तात (पिता?) समान" कहती है, ये दोनों बातें एक असमर्थ प्रक्षेपकार के प्रयास की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं।

धा० ५३ और ५४ के बीच केवल अ० फ० में दो छन्द आते हैं, जो संवाद के नहीं हो सकते हैं। ये दोनों छन्द अन्य समस्त प्रतियों में संवाद से कुछ पहले आते हैं और वहीं संगत हो सकते हैं।

इस प्रकार (४) संख्यक प्रसंग त्रुटियों में एक मात्र धा० ५२ तथा ५३ के बीच की प्रसंग-त्रुटि मान्य लगती है, किन्तु उनके बीच में आया हुआ केवल अ० ६. दो० ९ प्रसंगसम्मत है, दूसरा स्पष्ट प्रक्षेप लगता है।

(५) संख्यक प्रसंग-त्रुटि योद्धाओं की उस नामावली के अभाव के विषय की है जो पृथ्वीराज के साथ कन्नौज जाते हैं और कन्नौज-युद्ध में उसके साथ भाग लेते हैं। किन्तु ऊपर दिखाया जा चुका है कि इस नामावली में ऐसे अनेक नाम आते हैं जिनका तदनन्तर कोई उल्लेख नहीं होता है, न जिनके सम्बन्ध में यही कहा जाता है कि वे कन्नौज-युद्ध में मारे गए अथवा वे पृथ्वीराज के साथ दिल्ली लौटे (अ० १२, पद्ध० ३)। अतः यह नामावली भी प्रक्षिप्त लगती है।

इस प्रकार धा० तथा मो० पाठों की जो प्रसंग-त्रुटियाँ लेख में (३), (४), (५), (६)

...ा पर ही दी गई हैं, उनमें से एक ही—जो यौवन की महत्ता विषयक कथोपकथन से सम्बन्धित ...वास्तव में प्रसंग-त्रुटि है, शेष के स्थान पर जो छन्द धा० मो० के अतिरिक्त प्रतियों से मिलते हैं, के ... प्रसंग-सम्मत नहीं हैं और प्रक्षिप्त लगते हैं।

जहाँ तक धा० मो० में पाई जाने वाली नर्तकियों की नामावली विषयक छन्द की उस पाठ-त्रुटि की बात है, जो अ० फ० में भी पाई जाती है, वह संक्षेप-सम्बन्ध के कारण ही नहीं, अन्य प्रकार से भी धा० मो० के अ० फ० संबन्धित होने पर आ सकती थी।

उक्त लेख में धा० मो० के प्रक्षेपों की जो बात कही गई है, वह ठीक है और उनमें पाई जाने वाली उक्ति-शृंखला सम्बन्धी त्रुटियों से और भी पुष्ट हुई है।

अतः उक्त लेख में प्रस्तुत किए गए परिणामों को अब संशोधित रूप में इस प्रकार रखना अधिक उचित होगा :—

(१) 'लघुतम पाठ' की दोनों (प्रतियाँ) प्राप्त धा० तथा मो० मूलतः किसी पूर्ण पाठ की प्रतियाँ थीं किन्तु बाद में उस में कुछ छन्द एक ऐसी प्रति से लेकर मिला लिए गए जो ग्रन्थ के छन्द-चयन के किसी पाठ की थी;

(२) इस अन्य प्रति का छन्द-चयन रचना के 'लघु पाठ' की म० या अ० फ० जैसी किसी प्रति से किया गया था।

(३) धा० तथा मो० के पाठों में प्रक्षेपों का भी अभाव नहीं है।

(४) फिर भी, धा० तथा मो० के पाठ समस्त प्राप्त पाठों में से मूल के सबसे अधिक निकट पहुँचते हैं।

अब प्रश्न धा० और मो० के पाठों के बीच शेष रहा। दोनों में अन्तर अधिक नहीं है : फिर भी मो० में ऐसे छन्द हैं जो प्रक्षेप-पूर्ण पाठ-वृद्धि के परिणाम हैं और धा० में नहीं हैं। उदाहरणार्थ : आबू-राज सलष कन्नौज के युद्ध में लड़ता हुआ मारा जा चुका है (मो० ३५० = धा० २९९, मो० ३५१ = धा० ३०१), उसका पुत्र जैत भी 'आबूपति' होकर गोरी-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो चुका है (मो० ४५४ = धा० ३६२), फिर भी मो० में सलष को गोरी-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में सम्मिलित किया गया है (मो० ४५६, ४५७, ४५८, ४५९)। धा० में यह उल्लेख-वैषम्य नहीं है; इसके अरिरिक्त ऐसे कोई भी उल्लेख-वैषम्य नहीं हैं जो धा० में हों और मो० में न हों। और, यह कहा जा चुका है कि धा० के प्रायः सभी छन्द मो० में आते हैं। अतः यह सुगमता से जाना जा सकता है कि धा० स्थूल रूप में मो० की तुलना में एक पूर्वतर स्थिति का पाठ देती है।

फिर भी हम ऊपर देख चुके हैं कि धा० का पाठ सर्वथा मूल का नहीं हो सकता है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि आकार-प्रकार में वह मूल के सबसे अधिक निकट है एवं उत्तरोत्तर उससे बड़े पाठ मूल से उत्तरोत्तर दूर और दूरतर होते गए हैं।

—:o:—

३. पृथ्वीराज रासो
का
मूल रूप (आकार)

हम देख चुके हैं कि धा० पाठ भी रचना के मूल आकार में सुरक्षित नहीं है, यद्यपि वह मूल के निकटतम प्रमाणित होता है, अतः रचना का मूल आकार निर्धारित करने की आवश्यकता बनी रही जाती है। प्रश्न यह है कि वह किस प्रकार निर्धारित हो सकता है। किसी लेखक की अपनी प्रति अथवा उसकी प्रमाणित प्रतिलिपि के अभाव में उसकी रचना का मूल रूप तभी सुगमता से निर्धारित हो सकता है जबकि उसकी दो या अधिक ऐसी प्रतियाँ उपलब्ध हों जो परस्पर विकृति-सम्बन्ध से सम्बन्धित न हों, अर्थात् जो अलग-अलग प्रतिलिपि परम्पराओं की हों। किन्तु 'पृथ्वीराज रासो' की ऐसी कोई भी दो प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। उदाहरण के लिये जिन छन्दों के द्वारा ऊपर उल्लिखित निम्नलिखित छन्द-शृंखलायें त्रुटित होती हैं, वे सभी प्रतियों में समान रूप से पाये जाते हैं :—

(१) धा० ६८ तथा ७० के बीच,
(२) धा० १४२ तथा १४६ के बीच,
(३) धा० १९३ तथा १९५ के बीच, और
(४) धा० २९० तथा २९३ के बीच।

प्रश्न यह है कि ऐसी स्थिति में रचना के मूल आकार तक पहुँचना किस प्रकार संभव है। इसकी एक मात्र व्यावहारिक विधि यही प्रतीत होती है कि मूल के निकटतम प्राप्त पाठ धा० से किसी प्रकार से प्रक्षेपों को अलग किया जाये; और इस दृष्टि से हम निम्नलिखित उपायों का अवलंबन कर सकते हैं :—

(१) ऊपर हम देख चुके हैं कि रचना में अनेक स्थलों पर उक्ति-शृंखला मिलती है; धा० के जो छन्द या वार्तायें इन शृंखलाओं को अतिक्रांत करते हों, उन्हें बिना इसके विपरीत प्रमाण के मिले प्रक्षिप्त मान लेना चाहिये।

(२) ऊपर हम यह भी देख चुके हैं कि रचना में अनेक स्थलों पर छन्द-शृंखला मिलती है; धा० के जो छन्द या वार्तायें इन शृंखलाओं का अति क्रमण करती हों, उन्हें भी बिना इसके विपरीत प्रमाण के मिले प्रक्षिप्त मान लेना चाहिए।

(३) धा० में जहाँ पर दो छन्द एक ही वृत्त—या लगभग एक ही वृत्त—के हों और उनकी शब्दावली और उनके अर्थों में इतना ही अन्तर हो जितना 'पाठांतर' में हो सकता है, वहाँ पर दो में से एक ही छन्द को स्वीकार करना चाहिए।

(४) धा० के जो छन्द शेष अन्य प्रतियों में न मिलते हों, बिना विपरीत प्रमाण के मिले उन्हें प्रक्षिप्त मान लेना चाहिए।

(५) धा० के जो छन्द या छन्दांश किसी भी प्रति में किसी भी छन्द या छन्दांश की पुनरावृत्तियों के बीच में आते हों, उन्हें विपरीत प्रमाण के अभाव में प्रक्षिप्त मान लेना चाहिये। अन्तिम के सम्बन्ध में कुछ विस्तार से हमें समझ लेना चाहिए।

किसी भी पहले से प्रस्तुत प्रतिलिपि के पाठ में जब पाठ-वृद्धि की जाती है, तब यथास्थान हंस पद बनाकर या तो पाठ-वृद्धि का अंश हाशिए में लिख दिया जाता है और या तो—यदि वह अंश कुछ बड़ा हुआ—अलग कागज पर लिख कर उस प्रति में रख दिया जाता है। हंस पद कभी-कभी भूल से नहीं बनाया जाता है, हाशिए में लेख यों ही लिख दिया जाता है, अथवा उक्त संशोधित प्रति से प्रतिलिपि करने वाले का ध्यान हंस पद पर नहीं जाता है। इसके अतिरिक्त, हाशिया कम ही चौड़ा होता है, जिससे एक छोटे से छन्द का भी लेख उसमें किसी एक ही पंक्ति के सामने समाप्त न होकर कई पंक्तियों के सामने लिखा जाकर पूरा होता है। परिणाम यह होता है कि यदि हंसपद न बनाया गया अथवा उसपर प्रतिलिपिकार का ध्यान न गया, तो हाशिए के उक्त लेख के सामने पड़ने वाला छन्द या छन्दांश प्रतिलिपि में कभी-कभी दो बार लिख उठता है : एक बार तो उक्त बढ़ाये गये लेख के पूर्व और पुनः उक्त लेख के अनन्तर। अतः छन्दों की पुनरावृत्तियों के बीच आने वाले अंशों के बाद में बढ़ाए हुए होने की संभावना बहुत होती है।

(६) धा० के जो छन्द किसी भी प्रति के छन्दों की क्रम-संख्या में व्यवधान उपस्थित करते हों, उन्हें विपरीत प्रमाण के अभाव में प्रक्षिप्त मान लेना चाहिए।

आगे इन्हीं उपायों की सहायता से धा० के प्रक्षिप्त छन्दों का निर्धारण किया जा रहा है।

उक्ति-शृंखला का अतिक्रमण

धा० में निम्नलिखित स्थलों पर उक्ति-शृंखला का अतिक्रमण मिलता है :—

(१) धा० ६८ तथा ७० के बीच; (२) धा० १२१ तथा १२२ के बीच;
(३) धा० १२९ तथा १३० के बीच; (४) धा० १४२ तथा १४६ के बीच;
(५) धा० १८६ तथा १८७ के बीच; (६) धा० १९२ तथा १९३ के बीच;
(७) धा० १९३ तथा १९५ के बीच; (८) धा० २४२ तथा २४४ के बीच;
(९) धा० २६९ तथा २७० के बीच; (१०) धा० २९० तथा २९३ के बीच;
(११) धा० ३५८ तथा ३६० के बीच; (१२) धा० ३८१ तथा ३८२ के बीच; तथा
(१३) धा० ४२० तथा ४२२ के बीच।

नीचे आवश्यक अंश उद्धृत करते हुए अन्तर्साक्ष्य की दृष्टि से क्रमशः इन पर विचार किया जा रहा है।

(१) धा० ६८ : रतिपति मुच्छिय लच्छि तनु तरनी रवन घय काज।
तडित करिग अंगुल धरह वान करिग (भरिग-पाठां०) प्रिथीराज॥

वार्त्ता—एक वाण तो राजा चूक्यो। यांह नै कांख विचि आघात भयो। कइमास परन हारि दिये। कइवासेनोक्त।

धा० ६९ : अरुजनो नाम नास्ति वृशरथो नैव दृश्यते।
स्वामिनो आखेटकमती वाणो न चतुरो नरो॥

वार्त्ता—दूसरउ वाण आम दियउ।

धा० ७० : भरिग बान चहुवान जानि दुर देव नाग नर।
सुट्टि दिट्ठि रस छुलिग चुक्कि निक्करिग इक्क सर।
उभय आनि दिय हत्थि पूठि पावारि पचार्यो।
वानी वर तरकंत छुट्टि धार धर उपार्यो।

इय कल्लु सब्बु सरसइ मुनिस फुणि त कह्यो कविचंद तव ।
इम परयो अवास अयासतें जिम जिस......नक्षत्रपति ॥

यहाँ हम देखते हैं कि धा० ६८ का 'भरिग बान प्रिथिराज' तथा धा० ७० का 'भरिग बान चहुवान' सर्वथा एक हैं, और बीच में आई हुई दो वार्त्ताओं तथा श्लोक में वे ही बातें कही गई हैं जो धा० ७० में आती हैं, और वह भी उपर्युक्त 'भरिग बान चहुवान' के अनन्तर। वार्त्ताएँ तो इस विषय में स्पष्ट हैं, किन्तु श्लोक धा० ६९ का कथन भी पृथ्वीराज के द्वारा छोड़े हुए प्रथम बाण के चूक कर निकल जाने पर ही कहा जा सकता था, इसलिए उसकी स्थिति भी वही है जो ऊपर उद्धृत वार्त्ताओं की हैं। फलतः यह प्रकट है कि धा० ६९ तथा ७० के बीच आया हुआ सम्पूर्ण अंश प्रक्षिप्त है।

(२) धा० १२१ : नृप अमिग कहंगि (कहिंग-शेष में) पहु पुव्व देस।
अरिय नीर (अरिनयर-शेष में) नीर उत्तर कहेस।
वर सिंधु विधु कनवज्ज राउ।
तिहि चढ़िउ स्वर्ग धुरि धर्म चाउ॥

धा० १२२ : रवि तुम्हइ समुहउ उहइ इह तुम्ह भग्ग समुझ।
अुखिल भट्टि दुव्वहि चल्यो कहि उत्तर कनवज्ज॥

उद्धरण की प्रथम दो पंक्तियों तथा अंतिम दो पंक्तियों में उक्ति-शृंखला स्पष्ट है; बीच की दो पंक्तियाँ सर्वथा निरर्थक और असंगत लगती हैं और उक्ति-शृंखला को भंग करती हैं। ये पंक्तियाँ वस्तुतः धा० ३१ के प्रथम दो चरणों से बनी हैं, जो है :—

कलि अथ्थ पथ्थ कनवज्ज राज। सतपित्त सेव धरि धम्म चाउ॥

(३) धा० १२९ : चख चंचल तन सुद्धि त सिद्धिहु मनु हरिह।
कंचन करस झकोलति गंगह जलु भरहि।

वार्त्ता—ते किसी एक पनिहारी है।

धा० १३० : भरंति नीर सुन्दरी।
ति पानि पत्त अंगुरी।

धा० १२९ के 'गंगह जलु भरहि' तथा धा० १३० के 'भरंति नीर सुन्दरी' में उक्ति-शृंखला प्रकट है; बीच में आने वाली वार्त्ता उस उक्ति-शृंखला को भंग करती है और साथ ही शीघ्र प्रकृति की तथा अनावश्यक भी है। म० ना० द० उ० स० में बीच में कुछ छन्द आते हैं जो इस उक्ति-शृंखला को और भी अधिक त्रुटित करते हैं।

(४) धा० १४२ : दह दिसि देखि हअगय भार।
जु दिख्खत (पुच्छत-पाठां०) चंद गयो दरबार।

धा० १४३ : भाखत भाख सुमिल्लहि सि देइ सिखिर बन इंद।
रथनवै नवि रस्स अरु जोध सुपंग नरिंद॥

धा० १४४ : निसि नौबति पल प्रात मिलि हय गय दिख्खयो साज।
विरंचि सुहड करिवर गह्यो किमहि कह्यो प्रिथिराज॥

धा० १४५ : कहे चंद दंदु न करहु रे सामन्त कुमार।
तिश लख्ख निसि दिन रहंहि इह जैचन्द दुआर॥

वार्त्ता—चांद राजा के दरबार ठाढो रह्यो।

धा० १४६ : पुच्छन (पुच्छत-शेष में) चंद गयो दरबारह।
हेजम जह रघुवंस कुमारह।

यहाँ हम देखते हैं कि धा० १४२ का 'पुच्छत चन्द गयो दरबार' और धा० १४६ का 'पुच्छत

'चन्द गयो दरबारह' एक हैं; बीच में आए हुए धा० १४३ की सार्थकता और संगति स्पष्ट नहीं है; शेष के सम्बन्ध में यहाँ पर वर्णनीय यह है कि समय प्रभात का नहीं था। सूर्य तो (धा० १२२) उदित हो चुका था, उसके बाद पृथ्वीराज और उसके साथी गंगातट के प्रातः कालीन दृश्यों को देखते हुए (छन्द १२९) नगर-दर्शन करने लगे थे और (छन्द १४२) उन्होंने कन्नौज की हाटों का निरीक्षण कर लिया था। फिर, इसी छन्द के अन्त में आता है कि "पूछता-पूछता चन्द के दरबार को गया।" पृथ्वीराज को 'सामंत कुमार' कहना भी कुछ ठीक नहीं लगता है। वार्ता के बाद आए हुए छन्द धा० १४६ में 'पुच्छत चन्द गयो दरबारह' द्वारा चन्द के दरबार की ओर जाने मात्र की बात कही गई है, किन्तु वार्ता में कहा गया है "चन्द राजा (जयचन्द) के दरबार में पहुँचकर खड़ा हो रहा।" इन उल्लेख-विरोधों से भी प्रकट है कि धा० १४२ तथा धा० १४६ के बीच का अंश प्रक्षिप्त है। इनमें से धा० १४३ अ० फ० में नहीं है, शेष में है, और धा० १४४ तथा १४५ सभी में है। वार्ता धा० के अतिरिक्त किसी में नहीं है।

(५) धा० १८६ : जाम एक छनि रास घटि सखिहु सखि न वारि।
किहु कामिनो मुख (सुष-शेष में) रतिसमर बृद निय निंद विसारि॥

वार्ता— राजा कइसी नींद विसारी।

धा० १८७ : सुक्ख सुक्ख मिदंग तार जयने रागं कला कोकिलं।
कंठी कंठ सुवासिनं मनयितं कामंकला पोखनं।
उभ्भी रंभ पिता गुना हरिहरी सुभ्रीय पवनायता।
ए सह सुक्ख सुखाइ ताह साहिता जै राय रायं गता॥

दोनों छन्दों में उक्ति-शृंखला प्रकट है : धा० १८६ के 'सुख' को लेकर धा० १८७ में उसका विस्तार दिया गया है। दोनों के बीच धा० में एक वार्ता आती है; वार्ता-कार को यह ध्यान नहीं था कि धा० १८७ में धा० १८६ के 'सुख' का विस्तार किया गया है, न कि 'नींद' का। इसलिए वार्ता स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है। म० ना० उ० स० में धा० १८६, तथा धा० १८७ के बीच कुछ छन्द आते हैं। वे भी इसी प्रकार प्रक्षिप्त हैं।

(६) धा० १९२ : थिर रहै थवाहंस (थवाहत-शेषमें) विज्जुकर छंडि सिकरहि
... ... पान देहि दिढ हथ्थ गहि॥

मो० का इन पंक्तियों का अत्रुटित पाठ है :—

थिर रहिहि थवाहत वज्ज कर छंडि सीकारह पिसु परिहि।
जिहि असी लष्ष पवलाणिइहि तिन पांन देहि दिढ हथ्थ गहि॥

वार्ता—राजा आइसुते गीज सोधा चहुवान को भट्ट आयो है ताहि इसनो दइयो।

धा० १९३ : सुनि तमूल सा पट्टि करि वर उट्ठिय डिठि बंक।
मनो मोहनि सुमन मलिग मनु नव उदित मयंक॥

यहाँ पर धा० १९२ के अन्तिम शब्दों 'पान देहि दिढ हथ्थ गहि' तथा धा० १९३ के 'सुनि तमोल' का उक्ति-सम्बन्ध प्रकट है, और बीच में आई हुई वार्ता उस उक्ति-शृंखला को भंग तो करती ही है साथ ही असंगत और निरर्थक भी है। म० ना० द० उ० स० में यहाँ कुछ छन्द आते हैं; वे भी उक्त उक्ति-शृंखला को इसी प्रकार भंग करते हैं।

(७) धा० १९३ : सुनि तमूल सा पट्टि करि वर उट्ठिय डिठि बंक।
मनो मोहनि सु मन मलिग मनु नव उदित मयंक॥

धा० १९४ : तुललाइ विप्र हस्तेपु विभूतिः वर योगिनां।
चंद्रिय पुत्र तंबोरह श्रीणि देयानि सादरं॥

धा० १९५ : भुव वंकीय करि पंगुनृप अप्पिग हथ्थ तंबोल ।
मनहु वज्जपति वज्ज गहि सह अप्पिया सजोर ॥

यहाँ हम देखते हैं कि धा० १९३ की वर 'ठढ्ढिय डिठि वंक' और धा० १९५ की 'भुव वंकिय करि' की शब्दावली एक है, और बीच में जो आर्या आती है वह सर्वथा असंगत है; उसमें कहा गया है : "तुलसी-दल विप्र के हाथ में, विभूति श्रेष्ठ योगी के हाथ में, और तांबूल चंडीपुत्र के हाथ में सादर देना चाहिये।" किन्तु जयचन्द किन अर्थों में 'चंडी पुत्र' है, यह नहीं ज्ञात होता है : 'चण्डी पुत्र' का अर्थ 'चण्डी का भक्त' या 'चण्डी का उपासक' ही हो सकता है, किन्तु जयचन्द एक राजा के रूप में अपने अतिथि चन्द के सामने उपस्थित हुआ है, चण्डी के उपासक के रूप में नहीं और न उसे रचना भर में कहीं भी चण्डी-भक्त कहा गया है। इसके अतिरिक्त इस आर्या के कथन की प्रतिक्रिया पृथ्वीराज में क्या दिखाई पड़ी, धा० १९५ में इसका कोई उल्लेख नहीं किया जाता है। अतः यह प्रकट है कि धा० १९३ तथा धा० १९५ के बीच आई हुई आर्या प्रक्षिप्त है।

(८) धा० २४२ धा० का पाठ प्रथम चरण के पूर्वार्ध के बाद किसी प्रतिलिपिकार की भूल से वही हो गया है जो धा० २०० का है और धा० २४४ का पाठ त्रुटित है; २४३, तथा धा० २४४ का पाठ अतः मो० से दिया जा रहा है :—

धा० २४२ : सुनि वजन रजन चढिग बहु पष्षर समहाउ ।
मनुह लंक विग्रह करन चलु (चलउ) रघुप्पति राय ॥

धा० २४३ : चढिय सूर सामंत सहु नृप धर्मह कुल काज ।
सह समूह दिखिलय नयन त्रिणवर गिन प्रिथिराज ॥

धा० २४४ : राम दल वंनर सयल उहि रष्षण बहु बंधु ।
असी लष्ष सु(सउ)सम भिरिग सु धनि प्रथिराज नरेंद ॥

धा० २४२ के दूसरे तथा धा० २४४ के प्रथम चरण में उक्ति-श्रृंखला स्पष्ट है—धा० २४४ में कवि ने धा० २४२ की उक्ति पर भी एक विशेषोक्ति जड़ने की चेष्टा की है; बीच में आया हुआ धा० २४३ उसे त्रुटित करता है और असंगत भी है।

(९) धा० २६९ : सर एक स विच्छत (विच्छत-शेष में) सष करी ।
दल लिक्खियत नयक तठक (ठठक-शेष में) परी ।
कहं जानइ सूरन भीर परी ।
ठिल्लइ चहुआन सु अप्प थरी ।
धा० २७० : ठठकी सेन समि मीर मिल्ले ।
विझुरिय सेन सब्बे नकिल्ले (निकल्ले-पाठां०) ।

धा० २६९ से उद्धृत दूसरी 'दल...ठठक्क परी' तथा धा० २७० की प्रथम पंक्ति के 'ठठकी सेन' में उक्ति-श्रृंखला प्रकट ही है, बीच की दो पंक्तियाँ उस श्रृंखला को भंग करती हैं और स्पष्ट ही अनावश्यक तथा असंगत हैं : विपक्षी दल का पृथ्वीराज के शौर्य से ठिठक पड़ना उसकी एक निश्चित समय की मनस्थिति की सूचना देता है, जिसके बाद उसका 'बिडरना' एक संलग्न परवर्ती क्रिया के रूप में प्रारम्भ हो जाता है। इन दोनों के बीच में उस दल का पृथ्वीराज के दल पर आक्रमण करते रहना और पृथ्वीराज का उन्हें पिछड़ाते रहना एक भिन्न और अधिक व्यापक समय की अपेक्षा करते हैं।

(१०) धा० २९० : अरि असन रस कोतुक कलह भयो न भवह निरंत भर ।
सामंत निवट तेरह परिग नृपति सुपढ्ढिअ पंच सर ॥

धा० २९१ : दुइ सर अस्व सि पक्खरह दुइ नृप इक संजोगि ।
जुरि धर अत्थि नरत्थि करि अप जंगलवै भोगि ॥
धा० २९२ : रयन रास (राम) रावत्त रनह रन रंग रंग रंग रस ।
उठत एकु धावत्त पंच घाइल्ल वीर दस ।
चलि चालुउ मोहिल्ल मयंदु मारुत्र सुह संधउ ।
अकन अरि लंधिया पंग पारस दल खंधउ ।
नारयन नीर बंधउ वरन दिव दिवान गो देवरउ ।
कलहंस जीव सामंत सुभ रहिउ स्वामि सिर सेहरउ ।
धा० २९३ : संझ सपत्तिअ (सुपट्टिअ-पाठा०) नृपति रन द्दिय पारस परि कोटि ।
रहे सूर सामंत जकि दिखिय नृपति तन चोट ॥

धा० २९० की अन्तिम शब्दावली 'नृपति सुपट्टिय पंच सर' और धा० २९३ की प्रारम्भ की शब्दावली 'सझ सुपट्टिय नृपतिरन' में साम्य यथेष्ठ है। बीच में धा० २९१ में 'पंचसर' का जो विवरण प्रस्तुत किया गया है, वह सर्वथा अग्राह्य है। 'सपट्टिअ' का अर्थ धा० २९० तथा २९३ दोनों में 'अलंकृत' या 'विभूषित' प्रतीत होता है [दे० पाइअ स द्द महण्णवो]। धा० २९० में कहा गया है कि 'नृपति (पृथ्वीराज) पाँच वाणों से अलंकृत हुआ।' और धा० २९३ में कहा गया है कि "संध्या को [इस प्रकार] अलंकृत नृपति......" किन्तु धा० २९१ में पाँच वाणों से अलंकृत होने के स्थान पर उसे दो वाणों से अलंकृत कहा गया है, शेष तीन में से दो वाण उसके अश्व के पक्खर में और एक संयोगिता को लगे कहे गए हैं। यहाँ पर कथन वैषम्य स्पष्ट है। धा० २९२ में धराशायी सामंतों की सूची मात्र खड़ी करने का प्रयास है। इसलिए प्रकट है कि धा० २९० तथा २९३ के बीच आने वाले छन्द उनकी उक्ति-शृंखला को भङ्ग करते हैं और उनके विरुद्ध भी जाते हैं।

(११) धा० ३५८ : दुरस दल चद्दल विषम राग लाग अलि निसान ।
मिले पुब्ब पच्छिम हुति चाहुवान सुरताण ॥
धा० ३५९ : दुह दल ढोल सुमाल हक्कि दुहुं दल सिन्धुअराग ।
जु रहिति सुभग सुभाग तिन मुरि कायरह अभाग ।
धा० ३६० : मिले जाइ चहुवान सुरताण खग्गे ।
मनो वारुणी छवे वारुणी लग्गे ।

धा० ३५८ के दूसरे चरण की शब्दावली धा० ३६० के प्रथम चरण में आई है, इसलिए दोनों में उक्ति-शृंखला प्रकट है। धा० ३५९ इस शृंखला को भंग करता ही है और असंगत भी है: अभी तो युद्ध प्रारम्भ भी नहीं हुआ है, केवल दोनों ओर से सेनाएँ इकट्ठी हुई हैं, अतः सैनिकों के युद्ध में 'जुटने' या युद्ध से 'मुड़ने' का कोई प्रसंग नहीं है।

(१२) धा० ३८१ : बन बहु विभूति अवधूत दीस ।
कर अनग्य (अन्यन—मो०) दीधी असीस ॥
वार्ता— विरदावली किसी दीन्ही ।
साहि क्षार साहिब सार ।
वरिया साहि कंध कुदार ।
सबर साहि मान मर्दन ।
निबर साहि थापना चार ।
दुरी साहि धारी लरक्क ।
नारी साहि मस्तक त्रिसूल ।

छोली साहि पूर्व साहि ।
पश्चिम साहि दखनी साहि ।
च्यारि पाहि वेला वीधालित वलेश्वर ।

धा० ३८२ : दइत असीस न सिर नयो वन अच्छयो फुरमान ।
दुसह भट्ट पिख्यौ नयन के पूछ्यो सुरतान ॥

धा० ३८१ के अन्तिम चरण के 'दीधी असीस' तथा धा० ५८२ के प्रथम चरण के 'दइत असीस' में उक्ति-शृंखला स्पष्ट है, बीच की समस्त पंक्तियां इस उक्ति-शृंखला को भंग करती हैं, और सर्वथा अनावश्यक और बहुत-कुछ निरर्थक हैं। वे स्पष्ट ही बाद में रखी गई लगती हैं, जैसा उनके शीर्षक 'विरदावली किसो दीन्ही' से प्रकट है।

(१३) धा० ४२० : लह दलण रसण दस रंभ हुई बहु कपट विध्धिग सघण ।
सुलताण पर्यो खां पुक्कीयो त दिन चंद राजन मरण ।
धा० ४२१ : परत भूमि सुलताण 'खान मिछि पलक पिट्टि सिर ।
मइं षाजिउ बहु वार साहि दुसमन असंभ वर ।
भोग छंडि कार जोग भट्ट आयो जु संधि करि ।
वचन विध्धि तिहि कमय लियो गोरीह नरिंद हरि ।
टुक मंझि टुंट टुकरे करहु तवसु साहि गोरी धरउ ।
इजि जाण खाण इम उच्चरिय अथ कवित्त कोइ कवि करउ ।
धा० ४२२ : सो ... ... मरणहु चंद नरिंद ।
रासउ रसाल नवरस निबंधि अचरिज इंदु फणिंद ॥

धा० ४२० के 'चंद राजन मरण' और धा० ४२२ के 'मरणहु चंद नरिंद' में उक्ति-शृंखला अति प्रकट है। धा० ४२१ में केवल धा० ४२० के 'सुलताण पर्यो खां पुकर्यो' का अनावश्यक विस्तार किया गया है, जिसके कारण उक्ति-शृंखला समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन तेरह स्थलों पर पाठवृद्धि के कारण धा० में उक्ति-शृंखला का अतिक्रमण मिलता है, वह प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के कारण है।

परिणामस्वरूप उक्ति-शृंखलाओं को भंग करने वाले धा० के निम्नलिखित अंश प्रक्षिप्त प्रमाणित होते हैं :—

(१) धा० ६८ के अनन्तर की वार्त्ता, धा० ६९ तथा धा० ६९ के अनन्तर की वार्त्ता,
(२) धा० १२१ के अन्तिम दो चरण,
(३) धा० १२९ के बाद की वार्त्ता,
(४) धा० १४३, धा० १४४, धा० १४५ तथा धा० १४५ के बाद की वार्ता,
(५) धा० १८६ के बाद की वार्त्ता,
(६) धा० १९२ के बाद की वार्त्ता,
(७) धा० १९४,
(८) धा० २४३,
(९) धा० २६९ के अन्तिम दो चरण,
(१०) धा० २९१, धा० २९२,
(११) धा० ३५९,
(१२) धा० ३८१ के बाद की वार्त्ता, तथा
(१३) धा० ४२१ ।

छंद-शृंखला-अतिक्रमण

धा० में छंद-शृंखला के अतिक्रमण का एक ही स्थल है, जो निम्नलिखित प्रकार से मिलता है :—

धा० ४०२ : छन्द—सुरतान जमन फुरमान दीन। (१)
सब नयर छोरि धरियार लीन। (२)
मुक्किलिउ चंद राजनहि पास। (३)
तुम गहहु हम दिखवहि तमास। (४)

धा० ४०३ : दस हत्थ रक्खि दीनौ असीस। (५)
सिर नयो नयो नहि आन रीस। (६)
राजन है सुरत्ति इक्क। (७)
धरियार सस सर विद्द नेक्क। (८)

वार्ता : हम तमास गीर हा आई वे हुज [।]ब खा हबसी इसके साहिब कूं दस हत्थ राखि गहही कराउ राजा छइ दिखाउ किस्यो देख्यो।*

धा० ४०४ : दूहा—चक्खहीन दुब्बल निपत्त बंभन रहियो पासि।
रोस अगनि तन निप जरइ अरि चिंतइ चिंता स ॥

वार्ता : राजा हे समस्या साहि आसीर्वाद दीन्हउ।

धा० ४०५ : धर पंथ राइ आजान बाह।
दुज्जने राइ धर वीर दाह।
चालुक्क राइ पर पेजु पारि।
पंगुरे राइ जग जग्गु वारि।

धा० ४०३ की पुनरुक्ति पर आगे विचार किया गया है : वहाँ हम देखते हैं कि कदाचित् पाठ-मिश्रण के कारण धा० ४०३ में धा० ४०५ की स्फुट पंक्तियाँ आ गई हैं। शेष पाठ में से प्रथम वार्त्ता धा० ४०२ के चरण ३ और ४ के भाव का अधिकांश में विस्तार करती है, द्वितीय वार्त्ता धा० ४०५ का शीर्षक मात्र देती है। अन्य अनेक प्रतियों में धा० ४०२ तथा धा० ४०५ एक ही रूपक के दो अंश है जो बीच की इन पंक्तियों के द्वारा जुड़े हुए हैं :—

गयउ चंद तब तेहि ठाहि।
नृप मिल्ल बयट्ठउ जहां चाहि।

धा० ४०४ के 'बंभन रहियो पासि' की कोई संगति प्रसंग में नहीं है और किसी ब्राह्मण की समक्षता में पृथीराज और चन्द की गोरी का प्राणांत करने के सम्बन्ध की कोई बात होना असंभव भी थी, अतः धा० ४०४ स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है। धा० पाठ में पृथ्वीराज के पास चन्द के जाने का भी कोई उल्लेख नहीं होता है, जैसा बीच की ऊपर उद्धृत पंक्तियों द्वारा कुछ अन्य पाठों में हुआ है। इन दृष्टियों से विचार करने पर धा० में जो छन्द-शृंखला का अतिक्रमण हुआ है, वह स्पष्ट ही धा० ४०२ तथा धा० ४०५ के बीच प्रक्षिप्त सामग्री को रखने के लिए किया गया है।

पाठांतर-ग्रहण

धा० १५० तथा १५२ :—

धा० १५० : ति कवि आइ कवियहि संपत्ते।
नवरस भाख ज पुच्छन लत्ते।
कवि अनेक बहु बुधि गुन रत्ते।
कहि न एक कवि चन्द समत्ते।

धा० १५२ : हे कवि आज कवियहि संपत्तउ।
गुण व्याकरणह रहि रस रत्तउ।
थकि प्रवाह गंगा सुख पंती।
सुर नर स्रवण गंठि रहि पंती।

दोनों छन्दों में अन्तर होते हुए भी प्रथम चरण के विषय में पूर्ण साम्य है, और दोनों छन्द एक-दूसरे के अत्यन्त निकट आते हैं, केवल एक छन्द बीच में पड़ता है, इसलिए दो में से एक धा० में अपने कुल के पाठ के अनुसार तथा दूसरा पाठ-मिश्रण के कारण किसी अन्य कुल के पाठ के अनुसार आया होगा। धा० १५२ सभी प्रतियों में समान रूप से मिलता है, जबकि धा० १५० की स्थिति विभिन्न प्रतियों में भिन्न-भिन्न है। मो० में धा० १५० है नहीं, अ० फ० में उसके केवल चरण २, ३, ४ हैं, दोनों पाठों में पहला चरण एक ही होने के कारण उसे फिर नहीं लिखा गया है, और म० ना० द० उ० स० में केवल प्रथम दो चरण हैं, शेष दो चरण नहीं हैं। इसलिए धा० १५० धा० १५२ का 'पाठांतर' मात्र लगता है जो हाशिए की भूल के कारण कुछ पहले लिख उठा।

(२) धा० १५५—५६ इस प्रकार हैं :—

अहो चंद जरदासि कहूँ हूँ। (१)
कनवज्जह दिक्खन आय हूँ। (२)
जे सरसइ जवनहुं नृप संचउ। (३)
गउपति गरुव गेह किमि गंजहु। (४)
किमि गुनि पंगु राइ मन रंजहु। (५)
जो सरसइ जानहु पर रंचउ। (६)
सो अद्रिस्ट वरनहि नृप संचउ। (७)

उपर्युक्त तीसरी तथा छठवीं पंक्तियाँ एक ही हैं, जिनमें पुनरावृत्ति हो गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि ४ थी तथा ५वीं पंक्तियाँ ६ठी-७वीं पंक्तियों के 'पाठांतर' के रूप में हाशिए में लिखी थीं—आशय दोनों पाठों का बहुत-कुछ एक है, किन्तु इन पाठांतर की पंक्तियों को सम्मिलित करते हुए उपर्युक्त तीसरी पंक्ति को प्रतिलिपिकार ने दो बार लिख डाला। विभिन्न प्रतियों में उपर्युक्त ४थी तथा ५वीं पंक्तियों की स्थिति इस प्रकार है : मो० में ये पंक्तियाँ नहीं हैं, अ० फ० में ५वीं पंक्ति नहीं है, म० ना० द० उ० स० में ५वीं का एक और पाठ है : 'ओसर बरनि पंग मन रंजहु' और इस पाठ को लेकर पंक्ति ५ म० उ० स० में पंक्ति ४ के साथ दो बार आई है। म० द० उ० स० में पंक्तियाँ ४ और ५ पुनः उपर्युक्त पंक्तियाँ १, २ के स्थान पर भी आई हैं।

(३) धा० २०७ तथा धा० २०८ :—

धा० २०७ : सुनि बर सुन्दर उभय दुव स्वेद कंप सुर भंग।
मधु फसकिनि फल सरसहरि अभुत हरषे तन रंग॥
धा० २०८ : सुनि रस मिथ प्रिथीराज कउ उभय रोम तिन अंग।
सेद कंप सुरभंग भयउ सपत भाइ तिहि अंग॥

धा० में इन दो छन्दों के बीच लिखा हुआ है "तथा अउर पाठांतर"। मो० में इनमें से केवल धा० २०७ है, अ० फ० में भी धा० की भाँति दोनों छंद हैं, केवल पाठांतर विषयक उल्लेख नहीं है। म० उ० स० में धा० २०७ के चरण १ का पूर्वार्द्ध तथा धा० २०८ के शेष अंश हैं; ना० में म० उ० स० की भाँति एक दोहा की शब्दावली तो है ही, उसके बाद धा० २०७ का दूसरा चरण भी दे दिया गया है। इसलिए प्रकट है कि धा० २०८ धा० २०७ का 'पाठांतर' मात्र है।

पाठांतर-ग्रहण के कारण परिणामतः धा० के निम्नलिखित छंद पाठ-वृद्धि के हैं :—
धा० १५०, १५६, २०८।

गो० धा० फ० म० ना० द० उ० शा० स० में छन्दाभाव

धा० के निम्नलिखित छन्द गो० अ० फ० म० ना० द० उ० शा० स० में नहीं हैं :—

(१) धा० १५७ : यह छंद धा० के अतिरिक्त किसी प्रति में नहीं है। यह प्रहेलिका के रूप में दिया गया नारी का नख-शिख है। यह जयचन्द को सम्बोधित किया गया है (चरण ५), किन्तु अभी चन्द जयचन्द के सामने पहुँचा नहीं है, जयचन्द के कविगण उसकी परीक्षा लेने आए हैं, और उन्होंने अदृष्ट जयचन्द का वर्णन करने को चन्द से कहा है। इसमें 'सुजानगिरि' की छाप (चरण ५) आती है, इसलिए यह छन्द चन्द का हो भी नहीं सकता है। यदि कहा जावे कि 'सुजान गिरि' जयचन्द का विशेषण है :

जयचन्द राय सुज्जान गिरि राठोर राय गुन जानिहै।

तो यह कथन ठीक नहीं हो सकता है : 'गिरि' शब्द का इस प्रकार का प्रयोग कहीं नहीं देखा जाता है। अतः धा० १५७ प्रक्षिप्त है।

(२) धा० ४२२ : यह छन्द भी धा० के अतिरिक्त किसी प्रति में नहीं है। यह निम्नलिखित है:—

दूहा—सा ... ... सरणहु चन्द नरिंद।
रासउ रसाल नव रस निबंधि अवरिज इंदु फणिंद॥

निम्नलिखित कवित्त इसी विषय का है, जो शेष सभी प्रतियों में मिलता है (मो० पाठ) :—

कवित्त—सरन चंद बरदीआ राज धुनि ला ह्म्युं (= ह्मयउ) सुनि।
पुष्पांजलि असमान सीस छोडि (= छोडी) स देवतनि।
मेछ अवधि स धरणि धरणि नव ग्रीव सूहसिग।
तिन हि तिही सं योति योति योतिहि संपत्तिग।
रासु (=रासउ) असंभु नवरस सरस चंद चंदु (छंदु ?) कीअ अमीअ सम।
शृंगार वीर करुण बिभछु (=बिभछु) भय रुद्र सूत (संत ?) हसंत सम॥

दोहे के अधिकतर शब्द इस कवित्त में मिलते हैं, केवल अन्त के कुछ शब्द नहीं मिलते हैं। 'रासउ रसाल' शब्दावली पर विचार करते हुए, इसलिए, जैसा पहले भी कहा जा चुका है, ऐसा लगता है कि कवित्त के किसी त्रुटित पाठ से धा० के दोहे की रचना की गई है।

गो० धा० फ० म० द० उ० शा० स० में छन्दाभाव

[illegible] का निम्नलिखित छन्द गो० अ० फ० म० द० उ० शा० स० में नहीं है :—

([illegible]) धा० ३५९ : ऊपर धा० की उक्ति-शृंखला-त्रुटियाँ दिखाते हुए यह दिखाया जा चुका है कि धा० [illegible]८ तथा ३६० में स्पष्ट उक्ति-शृंखला है, जिसको धा० ३५९ त्रुटित करता है जो प्रसंग में संगत भी [illegible] है। अतः धा० ३५९ प्रक्षिप्त है।

गो० धा० फ० म० ना० में छंदाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द गो० अ० फ० म० ना० में नहीं है :—

(१) धा० ३६१ : धा० ३६० तथा ३६२ में स्पष्ट छन्द-शृंखला है, धा० ३६१ जिसको त्रुटित करता है। धा० ३६० में केवल निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं:—

मिले जाइ चहुआन सुरताण खग्गे।
मनो वारुणी छके वारुणी लग्गे।

यह छन्द अधूरा है यह प्रकट है। यह भुजंगी है, जिसे धा० में गलत ही 'निबंधु' कहा गया है, और भुजंगी रचना भर में कहीं भी दो चरणों का नहीं आया है, कम से कम चार चरणों का आया है। फिर इस छन्द का कथन भी अधूरा रह जाता है, वह धा० ३६१ के अनन्तर आई हुई भुजंगी धा० ३६२ में चलता रहता है। अतः धा० ३६१ प्रक्षिप्त है।

म० ना० द० उ० झा० स० में छन्दाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द म० ना० द० उ० झा० स० में नहीं है:—

(१) धा० १२६ : आगे हम देखेंगे कि यह छन्द ना० की पुनरावृत्तियों के बीच आता है और प्रसंग में अनावश्यक भी है। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त है।

अ० म० में छन्दाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द अ० म० में नहीं है :

(१) धा० १ : इसकी प्रथम पंक्ति है :

प्रथम मंगल मूल श्रुत बीय ।

और धा० २ की प्रथम पंक्ति है :

प्रथम भुजंगी सुधारी ग्रहण्णं ।

अतः दोनों छन्दों को प्रामाणिक मानने पर 'प्रथम' विषयक पुनरुक्ति होती है, जिसका मूल रचना में इस प्रकार होना संभव नहीं लगता है। धा० २ सभी प्रतियों में मिलता है और धा० २ में प्रथम, द्वितीय आदि संख्या-शृंखला भी है, जो धा० १ में नहीं है। धा० १ वंदना का है भी नहीं, उसमें श्रुतियों, पुराणों आदि की उत्पत्ति विषयक उक्ति मात्र है, जो कि ग्रंथारंभ में उपयुक्त नहीं है। अतः धा० १ प्रक्षिप्त लगता है।

गो० में छन्दाभाव

धा० के निम्नलिखितछन्द गो० में नहीं है :—

(१) धा० १५० : यह, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, धा० १५२ का 'पाठांतर' मात्र है और धा० १५२ सभी प्रतियों में है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(२) धा० १५६ : यह जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, धा० १५५ का 'पाठांतर' मात्र है और धा० १५६ सभी प्रतियों में मिलता है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(३) धा० २०८ : यह, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, धा० २०७ का 'पाठांतर' मात्र है और धा० २०७ सभी प्रतियों में मिलता है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(४) धा० २२४ : यह सुभाषित के ढंग का एक श्लोक है, जिसके न होने पर भी प्रसंग को कोई क्षति नहीं पहुँचती है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(५) धा० २४३ : ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० २४२ तथा २४४ में उक्ति-शृंखला है, जो धा० २४३ से त्रुटित होती है, अतः धा० २४३ प्रक्षिप्त है।

(६) धा० ३९६ : ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० ३९५ तथा ३९७ में उक्ति-शृंखला है जो, धा० ३९६ से त्रुटित होती है, और धा० ३९६ प्रसंग-विरुद्ध भी है, क्योंकि पृथ्वीराज के पूर्व पराक्रम का, जो इस दोहे में आता है, यहाँ कोई प्रसंग नहीं है, अतः वह प्रक्षिप्त है।

(७) धा० ४२१ : ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० ४२० तथा ४२२ में उक्ति-शृंखला है, जो धा० ४२१ से त्रुटित होती है, फिर उसमें आया हुआ 'तब सु साहि गोरी धाउ' सर्वथा असंगत भी है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त है।

अ० फ० में छन्दाभाव

धा० के निम्नलिखित छन्द अ० फ० में नहीं हैं :—

(१) धा० ११४ : ना० के संख्या-व्यतिक्रम के छन्दों पर विचार करते हुए आगे देखेंगे कि यह छन्द प्रक्षिप्त है।

(२) धा० १२० : यह छन्द प्रसंग में आवश्यक है, क्योंकि पूर्ववर्ती छन्द में दिन का उल्लेख है और परवर्ती में प्रभात का, अतः बीच में रात्रि और उसके अनंतर प्रभात होने का उल्लेख होना चाहिए जो इसी छन्द में होता है। इसलिए यह छन्द अ० फ० में भूल से छूटा लगता है।

(३) धा० १४३ : हम ऊपर देख चुके हैं कि धा० १४२ तथा धा० १४६ के बीच स्पष्ट उक्ति-शृंखला है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त है।

(४) धा० १७० : प्रसंग में यह छन्द आवश्यक है। धा० १६९ में जयचन्द ने चन्द को पान अर्पित करने के लिए और उसके बहाने उसके अनुचर (पृथ्वीराज) का रहस्य जानने के लिए आदेश किया है कि कुमारियाँ तांबूल के साथ प्रस्तुत हों; धा० १७० उन्हीं कुमारियों के सम्बन्ध में कहता है कि ऐसी कुमारियाँ जिनके हाथों के लिए राजाओं ने याचना की थी, चन्द को पान अर्पित करने के लिए चल पड़ीं; धा० १७१ में कहा गया है कि उन षोडस वर्षीया सुन्दरियों ने चतुर दासियों को साथ लेकर धवल-गृह छोड़ा। अतः धा० १७० इस प्रसंग में संगत लगता है और प्रक्षिप्त नहीं प्रतीत होता है।

(५) धा० २३२ : धा० २३१ तथा २३२ में स्पष्ट प्रसंग-शृंखला है : धा० २३१ में युद्ध में न प्रवृत्त हुए पृथ्वीराज को आता देखकर संयोगिता ने यह कह कर सिर पीट लिया है कि 'जिस प्रियजन के लिए लोगों उँगलियाँ उठें, उस प्रियजन का क्या प्रयोजन?' धा० २३२ में कहा गया है कि संयोगिता के इस वाक्य को सुनकर पृथ्वीराज के सामंतों ने कहा कि '[पृथ्वीराज यहाँ युद्ध से भयभीत होकर आया है उसे यह न समझना चाहिए, क्योंकि]' इसके साथ जो सामंत-भट हैं, वे हाथियों को भी ठेल देते हैं।' अतः धा० २३२ प्रसंग में आवश्यक है और प्रक्षिप्त नहीं लगता है।

(६) धा० ३०८ : इस छन्द में 'कामाग्नि-भोग' की बात कही गई है, जो युक्ति-औचित्य की दृष्टि से ठीक नहीं है, अग्नि भोग की वस्तु नहीं हो सकती है, 'सरह नि खल्लु लग्गत पलिति निप नयनन ति संयोग' के उत्तरार्द्ध का शेष वाक्य से कुछ सम्बन्ध भी नहीं ज्ञात होता है, फिर इस प्रसंग में केवल सामान्य विलास-वैभव का वर्णन किया गया है (धा० ३०६—३१२), उसके बीच संयोगिता और पृथ्वीराज के प्रेम की बातें लाना असंगत लगता है। अतः धा० ३०८ प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

(७) धा० ३५७ : मो० की पुनरावृत्तियों के प्रसंग में हम देखेंगे कि यह छंद उनके बीच आता है और प्रक्षिप्त है।

म० में छंदाभाव

धा० के निम्नलिखित छंद म० में नहीं हैं :—

(१) धा० १५ : आगे हम देखेंगे कि यह छंद ना० की पुनरावृत्तियों के बीच आता है और प्रक्षिप्त है।

(२) धा० ५२ : धा० ५१ के साथ इसकी उक्ति-शृंखला है, यह हम ऊपर देख चुके हैं, अतः यह छंद प्रक्षिप्त नहीं है।

(३) धा० ६१ : इसमें कैवाँस-करनाटी केलि के प्रसंग में 'निसि भद्दव' कहा गया है किंतु आगे इसी प्रसंग में धा० ८४ में 'उदित अगस्त' कहा गया है और कन्नौज-प्रयाण इसी घटना के बाद होता है, इसलिए धा० ६१ प्रक्षिप्त लगता है।

(४) धा० ८२ : आगे स० की पुनरावृत्तियों पर विचार करते हुए हम देखेंगे कि यह उसकी पुनरावृत्तियों के बीच आता है और प्रक्षिप्त है।

(५) धा० १३७ : यह छन्द धा० १३८ से प्रसंगतः संबद्ध है; धा० १३७ में कहा गया है :—

यह चरित्त कब लगि गिनै चलउ संदेह हुवार।

और धा० १३८ की प्रथम पंक्ति है :—

देष्पियं जाइ संदेह सोहं।

अतः धा० १३७ प्रक्षिप्त नहीं हो सकता है।

(६) धा० २८० : धा० २७९ तथा इस छन्द में उक्ति-शृंखला हम ऊपर देख चुके हैं, अतः यह छन्द प्रक्षिप्त नहीं लगता है।

ना० में छंदाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द ना० में नहीं है :—

(१) धा० ८ : ना० की पुनरावृत्तियों में, आगे हम देखेंगे, वह उन छन्दों में आता है जो प्रक्षिप्त माने गए हैं।

द० में छंदाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द द० में नहीं है :—

(१) धा० २१ : यह छन्द ग्रन्थ की छन्द-संख्या विषयक है, जिसमें "सहस पंच (या 'सहस सत्त') नषसिष" इसका आकार बताया गया है, किन्तु यह छन्द-संख्या ग्रन्थ के किसी पाठ में नहीं मिलती है, अतः छन्द प्रक्षिप्त लगता है।

उ० शा० में छंदाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द उ० शा० में नहीं है :—

(१) धा० ८१ : स० की पुनरावृत्तियों पर विचार करते हुए आगे हम देखेंगे कि यह छन्द उनमें आता है और प्रक्षिप्त है।

उपर्युक्त छन्दों के अतिरिक्त धा० में अनेक वार्ताएँ भी आती हैं, जिनमें से कुछ के सम्बन्ध में हम ऊपर उक्ति-शृंखला-त्रुटियों का विवेचन करते हुए हम विचार कर चुके हैं। शेष भी प्रायः उसी प्रकार की हैं और इनमें से एक भी समान रूप से शेष समस्त प्रतियों में नहीं पाई जाती है, अतः इन पर विचार करना अनावश्यक होगा। इस प्रकार धा० की समस्त वार्ताएँ प्रक्षिप्त लगती हैं।

परिणामतः हम देखते हैं कि विभिन्न प्रतियों में न मिलने वाले धा० के छन्दों में से निम्नलिखित प्रक्षिप्त प्रमाणित होते हैं :—

मो० अ० फ० म० ना० द० उ० शा० स०	में अप्राप्य	:	धा० १५७।
मो० अ० फ० म० द० उ० शा० स०	,,	:	धा० ३५९।
मो० अ० फ० म० ना०	,,	:	धा० ३६१।
म० ना० द० उ० शा० स०	,,	:	धा० १२६।
अ० म०	,,	:	धा० १।
मो०	,,	:	धा० १५०, १५६, २०८, २२४, २४३, ३९६, ४२१।
अ० फ०	,,	:	धा० ११४, १४३, ३०८, ५७।
म०	,,	:	धा० १५, ६१, ८२।
ना०	,,	:	धा० ८।
द०	,,	:	धा० २१।
उ० शा०	,,	:	धा० ८१।

धा० छ० फ० ना० म० ज्ञा० उ० स० में पुनरावृत्ति

(१) धा० २३९ के चरण २१ तथा ३६ :—

धा० २३९. २१ : निृप जोड़ कनवज्जनि बढ़ि लियं।

धा० २३९. ३६ : निृप जोड़ कनवज्जह बंड लियं।

ये दोनों चरण एक-दूसरे से इतने अभिन्न और दूर हैं कि कोई भी किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण न किया गया होगा। मो० के अतिरिक्त सभी प्रतियों में ये पंक्तियाँ इसी प्रकार दो बार आती हैं, केवल मो० में धा० २३९.३६ के स्थान पर है :—

निृप इक इक योजन बंटि लियं।

किन्तु यहाँ पर कन्नौज और दिल्ली की दूरी को एक-एक योजन करके बाँट लेने का कोई प्रसंग नहीं है, यह प्रसंग तो काफी बाद में आता है; और 'निृप' (पृथ्वीराज) ने 'एक-एक योजन बाँट लिया' यह वास्तविक भी नहीं है, कन्नौज से दिल्ली की दूरी को उसके सामन्तों ने आपस में बाँटा है (धा० २६१)। इसलिए मो० का पाठ अग्राह्य है, और दूसरे स्थान पर भी धा० का पाठ ही ग्राह्य है, यह प्रकट है। प्रश्न यह है कि ऐसी पुनरावृत्ति क्यों हुई। यह पुनरावृत्ति पाठ-वृद्धि के कारण ही हुई ज्ञात होती है। पुनरावृत्ति के बीच की पंक्तियों में चामंडराय के सेना के मुख पर नियुक्त होने का उल्लेख होता है, किन्तु पूरे कन्नौज-युद्ध में चामंडराय का उल्लेख पुनः कहीं नहीं मिलता है; इसी प्रकार आरम्भ, कूरम्भ, और मोरीराज की भी नियुक्तियाँ इन पंक्तियों में उल्लिखित हुई हैं, किन्तु कहीं भी इनका उल्लेख कन्नौज-युद्ध में अन्यत्र नहीं होता है। इसके विपरीत मोरीराज को सोमेश्वर और पृथ्वीराज दोनों ने अलग-अलग पहले दलित किया है (धा० १७, ४७), इस लिए उसका पृथ्वीराज के पक्ष में लड़ना असम्भव ही है। धा० में पूरे कन्नौज-युद्ध में ४६ योद्धाओं के नाम आए हैं।[1] इन पंक्तियों में कुल छः नाम ही आते हैं, और उनमें भी तीन इस प्रकार गलत हैं यह प्रमाणित करता है कि ये पंक्तियाँ प्रक्षिप्त हैं और पुनरावृत्ति प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के कारण हुई है।

धा० मो० ना० ज्ञा० उ० स० में पुनरावृत्ति

(१) धा० ४०३ : दस हत्थ रक्खि दीनी असीस।
सिर नयो नयो नहि मान रीस।
राजन......है सुरति इक्क।
घरियार दस सर विद्ध नेक्क।

धा० ४०५ : राजन सुदान है सुरत इक्क।
घरिआर सत्त सिर विधन इक्क।...
पहिचानि चंद बर धुनिय सीस।
सिर नयो नयो नहि मान रीस॥

दोनों छन्दों में साम्य इतना अधिक है कि 'पाठांतर' के नाते दोनों में से किसी एक को न लिया गया होगा। धा० ४०३ जहाँ पर है, वहाँ पर सर्वथा असंगत है: धा० ४०२ में गोरी ने चंद से कहा है कि वह पृथ्वीराज से घड़ियालों के बेधने की बात कहे और यदि पृथ्वीराज स्वीकार करे तो वह तमाशा देखे, धा० ४०३ के बाद एक वार्ता आती है, जिसमें गोरी हुजाबखाँ हबशी को हुक्म देता है कि वह चंद को पृथ्वीराज से दस हाथ दूर रख कर उससे बातें करावे, धा० ४०४ में आता है कि चंद ने राजा को दुर्बल और

[1] दे० धा० २५३, २५६, २८९, २९०, २९२, ३०४।

उदास पाया, इसके अनन्तर धा० में एक शीर्षक जैसी वार्ता आती है कि चंदने राजा को आशीर्वाद दिया, धा० ४०५ में उसका राजा को आशीर्वाद देना और उसे उस के वचन की स्मृति कराना आता है जिसमें उसने सात घड़ियालों को एक शर से वेधने की बात कही थी। ऐसी दशा में प्रकट है कि धा० ४०३ की पंक्तियाँ अपने स्थान पर सर्वथा असंगत हैं। ये इतनी फुटकल भी हैं कि इनमें कोई एकसूत्रता नहीं है। लगता है कि किसी प्रति के क्षत-विक्षत हो जाने के अनंतर एक पूरे रूपक की येही पंक्तियाँ ठीक-ठीक पढ़ी जा सकती थीं और मिलान करते समय धा० ४०५ से इन्हें भिन्न छंद की पंक्तियाँ समझकर उसी प्रति से ये उतारी गईं। इसलिए धा० ४०३ उसमें पाठ-वृद्धि के रूप में आया, यह प्रकट है।

धा० में पुनरावृत्तियाँ

(१) धा० १२० तथा १८० :—

धा० १२० : भइत निसा दिस मुदित विम उडनिप तेज विराज।
कथित साथि कथहे कथा सुक्ख सयन प्रिथिराज॥

धा० १८० : भयत निसा दिसि मुदित वसु उड निप तेज विराज।
कथिक सत्थ (सत्थ) कथहित कथा सुक्ख सयन प्रिथिराज॥

पाठ की दृष्टि से दोनों छन्द प्रायः परस्पर अभिन्न है और स्थान की भी दृष्टि से एक दूसरे से बहुत दूर हैं, इसलिए कोई भी किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है।

अ० फ० के अतिरिक्त शेष प्रतियों में धा० १२० के स्थान पर (मो० पाठ) है :—

ऊयत यांम वासर त्रिसर घटिग हंस लघु रात।
जुकछु कृच्छि चच्छनु हूति (हुती) सैं सब विपध प्रात॥

प्रसंग से यह प्रकट है कि धा० १२० के स्थान पर प्रभात होने का उल्लेख होना चाहिए जैसा मो० आदि हुआ में है, क्यों कि धा० १२१ में प्रभात-कालीन दृश्यों का वर्णन है, और धा० १८० के स्थान पर, जैसा सभी प्रतियों में है, रात्रि होने का उल्लेख होना चाहिए, क्यों कि धा० १८१ में जयचन्द के 'अवखर' (नृत्य-संगीत-समाज) का वर्णन है। इसलिए यह स्पष्ट है कि धा० में छन्द अपने वास्तविक स्थान के अतिरिक्त एक गलत जगह पर भी आ गया है। प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों हुआ होगा। एक सम्भावना तो यह है धा० में भी यहाँ वही दोहा था जो मो० आदि में है और उसके 'ऊयत' को 'भइत' पढ़कर—क्यों कि पुरानी राजस्थानी लिपि के ऊ और भ में किंचित साम्य मिलता है—प्रतिलिपिकार ने स्मृति-भ्रम से उस दोहे के स्थान पर भी धा० १८० को लिख डाला। दूसरी संभावना यह है कि धा० के किसी पूर्वज में पत्र त्रुटित होने के कारण इस छन्द का 'ऊइत' मात्र शेष था, उसको 'भइत' पढ़कर स्मृति-प्रमाद से धा० १८० को यहाँ भी लिख डाला गया। इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नहीं हो सकती है।

(२) धा० २०० तथा २४२ :—

धा० २०० : भय दामक दिसि विदिसि हुइ लोह पषर सिह राउ।
मनु अकाल तिडिय सघन चवथा सु छुटि प्रवाह॥

धा० २४२ : सुणिम वयण राजन चढिय वहु पक्खर भर राहु।
मनु अकाल तेढिय सघन पवय छुटि परवाहु॥

दोनों छन्दों में पाठ-भेद केवल दोनों के प्रथम चरणों के पूर्वार्द्ध में है, शेष छन्द दोनों में एक ही है। किन्तु दोनों परस्पर इतने कम भिन्न होते हुए भी एक दूसरे से इतने दूर हैं कि कोई भी एक दूसरे के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। वस्तुस्थिति क्या रही होगी, यह विचारणीय है।

मो० तथा अन्य प्रतियों में धा० २०० तो अपने स्थान पर है, किंतु धा० २४२ के स्थान पर (मो० पाठ) है :—

सुनि बजन रजाय चढ़िग बहु पष्षर समहाउ।
मनुह लंक विग्रह करन चलु (= चलउ) रघुपति राय ॥

धा० २०० तथा २०१ में उक्ति-शृंखला प्रकट है :—

धा० २०० : मनु अकाल तिड़ित सघन चलया तु छूटि प्रवाह।

धा० २०१ : प्रवासी (प्रवाहे—शेष में) त तजी न छजी अहारे ॥

इसी प्रकार धा० २४१ तथा २४२ (मो० पाठ) में प्रसंग-शृंखला है। धा० २४१ में रण-वाद्यों के बजने का वर्णन है, और फिर कहा गया है :—

उष्पमा खंड नव नयन लग्गी।
मनो राम रावन्न हथ्थे विलग्गी ॥

धा० २४२ (मो० पाठ) में वाद्यों को सुनकर चढ़ाई करने का उल्लेख है, और कहा गया है कि पृथ्वीराज जयचन्द से विग्रह करने उसी प्रकार चल पड़ा जैसे रावण से विग्रह करने राम चल पड़े थे। इसलिए प्रकट है कि धा० २४२ के स्थान पर भी गलत ढङ्ग पर धा० २०० आया हुआ है।

यह पुनरावृत्ति भी पूर्ववर्त्ती की भाँति स्मृति-भ्रम से हुई लगती है : प्रथम चरण के उत्तरार्द्ध में दोनों में 'बहुपष्षर' आता था और एक का 'समहाउ' तथा दूसरे का 'भरराहु' (भहराउ—शेष में) भी एक से थे, इसलिए धा० २४२ के लिखते समय प्रतिलिपिकार ने 'बहु पष्षर' तक तो ठीक प्रतिलिपि की किंतु उसके बाद वह बहँक गया और शेष शब्दावली स्मृति-भ्रम से उसने धा० २४२ के स्थान पर भी धा० २०० की लिख डाली। अतः प्रकट है कि यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं हो सकती है।

मो० में पुनरावृत्तियाँ

(१) मो० २५२ तथा मो० २७२ :—

मो० २५२ : आलोक्य नृप नयनं वचनं धर्मस्य कातरं।
स्वामि दोस अहं कावे सेसि लिद्रा स उद्दये ॥

मो० २७२ : आलोकित नृप नयनं वचनं जिह्वा सु कातरा।
श्रवन सुनत सामंतया सुरभासि लिद्रा उदिगं तया ॥

दोनों पाठों में पर्याप्त साम्य है, किन्तु एक दूसरे से दोनों काफी दूर पड़े हैं इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित हो सकती है, और न 'पाठांतर'-ग्रहण जनित। ऐसा लगता है कि पहले छंद मो० में उपर्युक्त दो में से एक ही स्थान पर था, किन्तु किसी अन्य प्रति से मिलान करने पर मिलान करने वाले को यह छंद भिन्न स्थान पर मिला और उसने यह समझा कि उसकी प्रति में यह छंद नहीं है, इस लिए उक्त अन्य प्रति से इस भिन्न स्थान पर भी उसने छंद को उतार लिया।

(२) मो० ३१४ तथा मो० ४४८ :—

दोनों छंद सर्वथा एक ही हैं, पाठ भी दोनों का सर्वथा एक ही है, यहाँ तक कि दोनों में निम्न-लिखित गलत पंक्ति अन्त में रूपान्तर से आती है :—

नृप इक इक योजन बांटि लियं।

और दोनों एक दूसरे से बहुत दूर भी हैं, एक कन्नौज-युद्ध में और दूसरा गोरी-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में; अतः दो में से कोई भी पाठ 'पाठांतर' समझ कर न उतारा गया होगा। इस छंद में निर्वान चन्देल के पृथ्वीराज के द्वारा सेना में एक विशिष्ट स्थान पर नियुक्त किए जाने की बात कही गई है,

और मो० ३१९ (= धा० २८९) में निर्वान वीर के युद्ध में धराशायी होने का भी उल्लेख हुआ है, अत: यह निश्चित है कि छंद का वास्तविक स्थान मो० ३१९ (= धा० २८९) से पूर्व होना चाहिए, और मो० ४५० इसका वास्तविक स्थान नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त इसके द्वितीय तथा पंचम चरण क्रमश: इस प्रकार हैं :—

दुहु राय अद्दा भर थं गिलियं।
दुहु राय स्पष्ट लि रख उद्दे।

इस लिए भी यह छंद पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध का होना चाहिए, पृथ्वीराज-गोरी युद्ध का नहीं। अब प्रश्न है कि मो० ४५० के स्थान पर यह पुन: कैसे लिख उठा। धा० में यह मो० ३१४ के स्थान पर ही है, किन्तु मो० के अतिरिक्त शेष प्रतियों में यह मो० ४५० के स्थान पर है। ऐसा लगता है कि पहले मो० में यह पहले स्थान पर ही था किन्तु बाद में किसी अन्य प्रति के अनुसार दूसरे स्थान पर भी रख लिया गया। यह अन्य प्रति भी मो० के ही कुल की लगती है, क्योंकि छन्द के अन्तिम चरण का उपर्युक्त गलत पाठ मो० में दोनों स्थानों पर आता है। फलत: यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं लगती है।

(३) मो० ४४६ के चरण ११, १२ तथा उसी के २९, ३० :—

चरण ११, १२ : प्रजरि (= प्रज्जरइ) पंथ पद्दनि ति सिध।
मिलि चलहि संग आरम्भ सिधि॥
चरण २९, ३० : प्रजलहि पंथ पद्दनि (= पट्टणह) सिंधु।
मिलि चलिग अ आरंभ सिधु॥

ये चरण दो बार 'पाठांतर'-ग्रहण के परिणाम-स्वरूप आए हुए नहीं हो सकते हैं, क्योंकि दोनों स्थान एक दूसरे से दूर हैं। धा० अ० फ० में ये चरण बाद वाले स्थान पर हैं और ना० शा० स० में पहले स्थान पर हैं; ऐसा लगता है कि मो० में पहले स्थान पर ये चरण अपने पूर्ववर्त्ती पाठ के कारण बने रहे, और दूसरे स्थान पर किसी अन्य प्रति के पाठ-मिश्रण के परिणाम-स्वरूप आ गए। फलत: यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं लगती है।

(४) मो० ४४६ के अन्तिम दो चरण तथा मो० ४५० :—

मो० ४४६ के अन्तिम दो चरण ;

उच्चरहि चंद भर भरम काज।
रापीयु (= रापियउ) आज प्रथीराज राज॥

मो० ४५० : उच्चरइ चंदु भर भरम काज।
रषिउ (= रषिअउ) आज प्रथीराज राज॥

दोनों स्थानों पर इन चरणों का पाठ बहुत-कुछ एक ही है और ये दोनों स्थान एक दूसरे से कुछ दूर हैं, इस लिए यह पुनरावृत्ति 'पाठांतर'-ग्रहण के कारण हुई नहीं लगती है। दूसरे स्थान पर छन्द के केवल दो चरण हैं, चार भी नहीं—पूरा छंद मो० में ४० चरणों का है। इस लिए यह भी सम्भव नहीं है कि छंद को किसी अन्य प्रति में दूसरे स्थान पर देख कर यहाँ भी उतार लिया गया हो। यहाँ स्पष्ट ही पाठ-वृद्धि जनित पुनरावृत्ति दिखाई पड़ती है। मो० ४४६ और ४५० के बीच आए हुए मो० ४४७, ४४८, ४४९ में से मो० ४४८ के विषय में कुछ ऊपर विचार किया जा चुका है। उसके साथ और दो छंद (मो० ४४७, ४४९ = धा० ३५६, ३५७) इस स्थान पर मो० के आदर्श में बढ़ाए गए, इसी कारण मो० में यह पुनरावृत्ति हो गई।

(५) मो० ५२२.४ तथा मो० ५२६.४ :

मो० ५२२.४ : सिर नाइ नहीं तिहि करीय रीस।

मो० ५२६.४ : सिर नाइ नहीं मन भई रीस।

दोनों का पाठ बहुत-कुछ समान है, और दोनों एक दूसरे से काफी दूर भी हैं, इस लिए दोनों में से कोई भी दूसरे का 'पाठांतर' समझ कर ग्रहण नहीं किया गया होगा। दोनों के बीच जो छंद मो० में आते हैं, वे अन्य प्रतियों में भी आते हैं और प्रसंग में आवश्यक हैं। इस लिए लगता यह है कि मो० में पहले बीच के छंद छूट गए थे, बाद में वे किसी अन्य प्रति के आधार पर बढ़ाए गए, जिससे पुनरावृत्ति हो गई। फलतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नहीं लगती है।

(६) मो० ५२६.२ तथा मो० ५२९.३ :—

मो० ५२६.२ : अंषि पांन मधु चिंतह लग।
मो० ५२९.३ : अंषि पांन मधु चिंतह लग।

ये दोनों एक दूसरे से कुछ दूरी पर हैं, इस लिए यह सम्भव नहीं है कि दोनों में से कोई अन्य का 'पाठांतर' समझ कर ग्रहण किया गया हो। दोनों के बीच में जो छंद मो० में आते हैं, वे अन्य प्रतियों में भी आते हैं और प्रसंग में आवश्यक हैं, इस लिए ऊपर की पुनरावृत्ति की भाँति यहाँ भी, ऐसा लगता है, मो० में कुछ छंद छूट गए थे जिन्हें किसी दूसरी प्रति की सहायता से जब उतारा गया, उस अन्य प्रति का 'पाठांतर' भी उतर आया, यद्यपि वह 'पाठांतर' समझ कर नहीं उतारा गया। अतः यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं लगती है।

अ० फ० में पुनरावृत्ति

(१) अ० १. अन्त तथा अ० २. भुजं० १ : अ० फ० में अ० २. भुजं १ के कुछ चरण अ० खण्ड १ के अन्त में भी आ गए हैं। दोनों के बीच में कोई छन्द नहीं है और पाठ भी दोनों का एक ही है, इसलिए लगता है कि अ० फ० के किसी पूर्वज में इस छन्द की पंक्तियाँ भूल से दो बार लिख उठी थीं।

फ० में पुनरावृत्ति

निम्नलिखित पुनरावृत्ति फ० में ही है, अ० में नहीं है :—

(१) अ० फ० १४. कवि० १० के बाद फ० में आया हुआ दोहा तथा अ० फ० १४. दो० ३५ : अ० फ० १४. कवि० १० के बाद फ० में है :—

तब सावंत स सिर धरिय भुव जंपी इह बैंनु।
तुम काहू के नृपति हौ बिभीक गोरी सैन॥

अ० फ० १४. दो० ३५ : तब सावंत सु सिर धरी भुव जंपयिहु बैन।
जा सिर पर प्रिथिराज है कभौ गोरी सैनु॥

दोनों छन्द एक दूसरे से काफी दूर हैं और दोनों के पाठों में भी अधिक अन्तर नहीं है, इसलिए इनमें से किसी के भी 'पाठांतर' के रूप में गृहीत हुए होने की सम्भावना नहीं है। अतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित ही लगती है।

इस पुनरावृत्ति के बीच में धा० ३४४, तथा ३४५ आते हैं।

म० स० में पुनरावृत्ति

(१) म० १२. ५८६ तथा १२. ६०७ और स० ६१. २४५७ तथा ६१. २४८९ :—
म० १२. ५८६, स० ६१. २४५७ :

एक अंग तिय सकल विकल उच्चरिय राजभुप।
भृकुटि अंक बंकुरिय सुत्तिहि लिषिय मद्धि रुप।
चिंय विमान उप्पारि देव सुल्लिय मिलि चल्लिय।

भ्रम भ्रमंकि अभ्यास भ्रान ति अच्छरि मिलीय।
दस एक चवै कवि कवि कमल असि सुगति भ्रम करि करिय नृप।
तन राज काज जाजह भिरिग सुगति सीह भई देव बप॥

म० १२.६०७, स० ६१.२४८९ :

एक अंग तिय सकल विकल विपरीय राज सुष।
भ्रकुटि भ्रम अंकुरिय प्रमान तरु लगित सद्धि रुष।
विय विमान उचरीय देव डुल्लिय मिलि चल्लीय।
आभा भ्रम कीय आय पंति अछरीय सु सिल्लिय।
दस एक चवक्कवि कवि कमल अस मग तिन भ्रम करिय नृप।
तन राज काज जाजह भिरिग मिल्त सीह मिलि देव तिय॥

दोनों छन्द एक दूसरे से दूर हैं, और दोनों के पाठ लगभग एक हैं, इसलिए इनमें से कोई भी किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया गया होगा, इसकी सम्भावना नहीं है। पाठवृद्धि के कारण हुई पुनरावृत्ति की भी सम्भावना नहीं है, क्योंकि दूसरे स्थान पर युद्ध का कोई प्रसंग ही नही है; वहाँ तो युद्ध से लौटे हुए पृथ्वीराज और संयोगिता का केलि-विलास वर्णन प्रारम्भ हुआ है। इसलिए प्रकट है कि दूसरे स्थान पर यह छंद किसी प्रकार भूल से पहुँच गया है।

स० में दूसरे स्थान पर अन्तिम दो चरण भिन्न हैं। ऐसा लगता है कि छंद को उस प्रसंग में खपाने के लिए जाज के धराशायी होने की बात ठीक न समझ कर पाठ-परिवर्तन किया गया है। स० में इनका पाठ है :

स० ६१.२४८९ : संजोग जोग रचि ब्याह मन गुरु जन सुत अरु निगम घन।
प्रोहित पंग अरु इहां रिपि ग्रसत सुष्प घर दुष्प मन।

किन्तु ब्याह की बात तो बहुत पीछे आती है, और यह शब्दावली कुछ न कुछ वहीं की है :

स० ६१.२५३७ : हेम हयग्गय अंबरह दासि सहस सत दीन।
प्रोहित पंग सुब्रह्म रिपि ब्याहु विद्धि बहु कीन॥

म० ना० स० में पुनरावृत्ति

(१) म० ५.१ तथा म० ८.१ (= धा० ५८), ना० २०.४० तथा २८.७२ के बाद का छंद और स० ५०.१, ५५.१२२ तथा ५७.३६ :—

सभी स्थानों पर इस छंद का पाठ प्रायः एक ही है और निम्नलिखित है :

तिहि तप आखेटक भमै थिर न रहै चहुआन।
घर प्रधान जोगिनि पुरह धर रप्पै घर बान॥

सभी स्थल एक दूसरे से बहुत दूर हैं, इसलिये 'पाठांतर'-ग्रहण के कारण पुनरावृत्ति हुई, यह सम्भव नहीं है। म० ८.१, स० ५७.३६, ना० २८.७२ के बाद के छंद के स्थान पर इसकी संगति प्रकट है, वहाँ प्रसंग कैंवास-करनाटी-केलि का है : प्रधान अमात्य (कैंवास) का इसीलिए इस छंद में उल्लेख होता है और जहाँ म० ५.१ है और वहाँ कैंवास का कोई प्रसंग नहीं आता है, केवल पृथ्वीराज के आखेट का प्रसंग आता है, इसलिए छन्द पूरा-पूरा उक्त स्थल पर संगत नहीं है। इसी प्रकार ना० २०.४०, स० ४५.१२२ के पूर्व जयचन्द की दिल्ली पर चढ़ाई वर्णित है, जिसका कैंवास-करनाटी-केलि से कोई सम्बन्ध नहीं है जो परवर्ती स्थल पर मिलती है। केवल सामान्य प्रसंग-साम्य के कारण यह छन्द वहाँ भी रख लिया गया होगा, ऐसा लगता है; पाठवृद्धि के कारण यह पुनरावृत्ति हुई नहीं ज्ञात होती है।

म० में पुनरावृत्ति

(१) म० ९.२४ तथा म० १२.६३० (= धा० ३१३) :—

म० ९.२४ : अह लिखि सुधि न जानिय जानिय प्रौढ रति।
गुर बंधव भ्रत भोय अद्दय रीति गति॥

म० १२.६३० : अह लिखि सुधि न जानिय जानिय प्रौढ रति।
गुर बंधव भ्रत भोइ भई रीति गति॥

दोनों छन्द एक दूसरे से बहुत दूर हैं, और पाठ दोनों का सर्वथा एक है यहाँ तक कि 'लोइ' और 'विपरीत' के स्थान पर दोनों में गलत पाठ 'भोइ' तथा 'रीति' है, इसलिए यह प्रकट है कि दोनों में से कोई दूसरे के 'पाठांतर' के रूप में नहीं ग्रहण किया गया होगा। किंतु यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित भी नहीं हो सकती है, क्यों कि प्रथम स्थान पर छन्द सर्वथा असंगत है : छन्द के प्रथम दो चरणों में कहा गया है :—

इन विधि विलसि आसार (असार) सुसार कीय।
दै सुष जोगि संजोगि भोगि प्रथिराज प्रीय॥

किंतु म० खण्ड ९ में तो पृथ्वीराज ने कन्नौज के लिए प्रयाण तक नहीं किया है, संयोगिता को संयोग-सुख देने की बात तो दूर है। इसलिए किसी प्रकार भूल से यह छन्द म० खण्ड ९ में भी पहुँच गया है।

ना० द० उ० स० में पुनरावृत्ति

(१) ना० १३.५७ तथा १३.३०, द० १५.२८ तथा २६.७७, और स० १४.१६३ तथा ४६.११२ :—

तीनों प्रतियों में दोनों स्थानों पर इस छन्द का पाठ प्रायः एक ही है, और निम्नलिखित है :

सुनत कथा अछि बत्तरी गइ रत्तरी बिहाइ।
दुज कही दुजि संभरइ जिहि सुष स्रवन सुहाइ॥

और दोनों छंद एक-दूसरे से काफी दूरी पर हैं, इसलिए यह प्रकट है कि दो में से कोई भी 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। तीनों प्रतियों में ये 'इंछनी विवाह' तथा 'विनय मंगल' के समयों के अन्त में आते हैं, और दोनों स्थानों पर संगत है। अतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित लगती है।

ना० में इस पुनरावृत्ति के बीच धा० के कोई छन्द नहीं पड़ते हैं, किंतु द० तथा स० में धा० २८ तथा २९ पड़ते हैं। ये दोनों छन्द क्रमशः अनंगपाल द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली-दान तथा पृथ्वीराज के दिल्ली-सिंहासनारोहण विषयक हैं, और अन्यथा भी प्रक्षिप्त जान पड़ते हैं। सा० में इनके अतिरिक्त धा० २६ भी पड़ता है, जो 'घन कथा' का है, और वह भी प्रक्षिप्त जान पड़ता है।

ना० उ० स० में पुनरावृत्ति

(१) ना० १३. ५७ तथा १६. ३४ और स० ४६. २७ तथा ४८. १०१ :—

दोनों स्थानों पर छन्द का पाठ लगभग एक ही है और निम्नलिखित है :

अन्यथा नैव विघ्यंति द्विजस्य वचनं यथा।
ग्रामे च जुग्गिनी नाथे संयोगिता तत्र गच्छति॥

दोनों छन्द एक दूसरे से दूर भी हैं, इसलिए कोई छन्द शेष अन्य के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण न किया गया होगा, यह प्रकट है। प्रथम स्थल पर छन्द 'विनय मंगल' खण्ड के अन्तर्गत द्विज-द्विजी संवाद में आता है और संगत लगता है, द्वितीय स्थल पर छन्द ना० में शुकवर्णन प्रसंग में

आता है और संगत नहीं लगता है। स० में भी प्रथम स्थल पर यह संगत है, जहाँ यह 'विनय मंगल' खण्ड में द्विज-द्विजी संवाद में आता है; द्वितीय स्थल पर इसके बाद आने वाले छन्दों का प्रथम स्थल पर इसके पूर्व आने वाले छन्दों से कोई सम्बन्ध नहीं है : वे पृथ्वीराज के दूत के द्वारा अपने अपमान की बात सुनकर कन्नौज आक्रमण की तैयारी से सम्बन्धित हैं। इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नहीं है।

ना० में पुनरावृत्तियाँ

(१) ना० १.१६ तथा २.१२४ :—

छन्द का पाठ दोनों स्थलों पर प्रायः एक है और निम्नलिखित है :

छंद प्रबंध कवित्त जुति साटक गाह दुअथ्थ ।
लहु गुरु मंडित खंडियह पिंगल अमर भरथ्थ ॥

और दोनों छन्द एक-दूसरे से काफी दूर हैं, इसलिए यह प्रकट है कि उपर्युक्त में से कोई भी शेष अन्य के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। प्रथम स्थान पर यह ग्रन्थ के मंगलाचरण के अनन्तर उसकी भूमिका के प्रारम्भ में आता है। इन दोनों स्थानों के बीच में ५[illegible] छन्द आते हैं जिनमें पृथ्वीराज के कुल का इतिहास है, और वे भूमिका के नहीं हो सकते हैं। अतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित है, यह प्रकट है।

इस पाठवृद्धि के अन्तर्गत धा० के जो छंद आते हैं, वे हैं धा० ३ से धा० १९ तक।

(२) ना० २८.१ तथा ना० ३० के प्रारम्भ का संख्याहीन छंद :—

दोनों स्थानों पर इस लम्बे छंद का पाठ प्रायः एक ही है, केवल बाद वाले स्थान पर प्रथम स्थान के पाठ के चरण ५, ७, तथा ८ नहीं हैं; और दोनों स्थल एक-दूसरे से दूर भी हैं। इसलिए यह सम्भव नहीं लगता है कि दोनों स्थलों में से किसी स्थल का पाठ शेष अन्य के 'पाठांतर' होने के कारण ग्रहण किया गया हो। यह छन्द जयचन्द के राजसूय यज्ञ से सम्बन्धित है और ना० के खण्ड २८ के प्रारम्भ में ही आ सकता है। ना० खंड ३० 'दुर्गा केदार समय' है, जिसमें कहा गया है कि शहाबुद्दीन के दुर्गा केदार भट्ट और पृथ्वीराज के राज कवि चंद में पृथ्वीराज के तत्वावधान में तन्त्र-मंत्रोपचार तथा वाद-विवाद प्रतियोगिता होती है, जिसमें दोनों तुल्य प्रमाणित होते हैं, और जब दुर्गा केदार लौटकर जाता है, शहाबुद्दीन पृथ्वी पर आक्रमण करता है। प्रकट है कि इस कथा से विवेच्य छंद का कोई सम्बन्ध नहीं है। ना० खंड ३० के प्रारम्भ में यह छंद-संख्या-हीन भी है, इसलिए यह निश्चित है कि यह वहाँ किसी प्रकार बाद में सम्भवतः किसी भूल के कारण पहुँच गया।

(३) ना० २९. १० तथा ३९. १५१ :—

ना० २९. १० :

छे बेरी लोहान गोह चामंड सपत्तौ।
धरि अग्गै चामुंड दिष्षि गज्जरि चित चिंतौ।
कहै राइ चामंड सुनौ लोहान तुम्ह घर।
नृप अग्या सिर रख्खं नतरु जानौ तुम्ह हित हर।
नीय स्वामि धर्म लेहु नहीं हीय आरोहीय सहर।
लिन्नी सु बेरि चामंड बिहसि पत्र आरोहीय अप्प कर ॥

ना० ३९. १५१ :

छे बेरी लोहान गोह चामंड सपत्तौ।
धरि अग्गै चामुंड ... ...
... ... सुनौ लोहान तुम्ह घर।
नृप आज्ञा सिर संजु नतरु जानहु तुम हित हर।

नीय स्वामिधर्म छंडु नहीं हथ्थ आरोहीय सह हर।
तिम्नी सु वेरि चामंड विहसि पथ आरोही अप्प कर ॥

दोनों छन्दों का पाठ एक ही है, और दोनों एक दूसरे बहुत दूर भी हैं, इसलिये यह प्रकट है कि इनमें से कोई किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। ना० खंड २९ कैंवास-वध विषयक है। वहाँ इस छंद की कोई संगति नहीं है। यह ना० खंड ३९ का ही हो सकता है, जिसके अन्य कुछ छंदों में भी (ना० ३९.१०९—१११) चामंड की बेड़ी का प्रसंग आता है। ना० खंड २९ में यह छद अतः भूल से किसी प्रकार चला गया लगता है और पाठवृद्धि के परिणाम-स्वरूप गया हुआ नहीं प्रतीत होता है।

(४) ना० २९. ८६ के बाद का साटक और ना० ४१.१० :—
दोनों छंदों का पाठ प्रायः एक है और निम्नलिखित है :

लामगं कल धूत चूत सिषरे मधुरेहि मधु वेष्टिता।
वाता सीत सुगंध मंद सरसा आलोल सा चेष्टिता।
कंठी कूल कुलाहले मुकलया कामस्य उद्दीपनो।
रत्ते रत्त बसंत पत्त सरसा संजोगि भोगाइते ।।

दोनों छन्द एक दूर से भी हैं इसलिए कोई किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। यह छंद पहले स्थान पर असंगत है, क्यों कि तब तक संयोगिता के 'भोगाइत' होने की कोई बात नहीं है और न तब तक उसकी प्राप्ति के लिए कन्नौज-प्रयाण ही पृथ्वीराज ने किया है। पहले स्थान पर यह संख्या-हीन भी है, जिससे यह वहाँ बाद में रखा गया लगता है, और इस लिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नहीं ज्ञात होती है।

(५) न० ३१.२८ तथा ३१.३७ :—
दोनों छन्दों का पाठ प्रायः एक ही है, और निम्नलिखित है :

हो सावंत सु गंग कहु सुहरि चित्त तजि बाज।
त्रिपथ लोक पिथिराज सुनि नमसकार किय साज ।।

और ये छन्द एक-दूसरे से दूरी पर भी हैं, इसलिए 'पाठांतर' समझ कर इनमें से कोई भी ग्रहण न किया गया होगा। यह छन्द ना० ३१.२८ के पूर्ववर्ती तथा ना० ३१.३७ के परवर्ती छन्दों के प्रसंग में हैं, इसलिए पुनरावृत्ति पाठ-वृद्धि जनित ज्ञात होती है।

इस पुनरावृत्ति के बीच धा० १२५ और धा० १२६ आते हैं जो धा० १२७ के होते हुए प्रसंग में आवश्यक भी नहीं हैं, क्योंकि धा० १२७ में भी गंगा की स्तुति है जैसी इन छन्दों में है। इसलिए ये छन्द प्रक्षिप्त लगते हैं।

(६) ना० ३३.१०७ तथा ३५.५ (= धा० २४०) :—

ना० ३३.१०७ :
जदिन रोस राठौर चंपि चहुआन गहन कहुं।
सै उप्परि सै सहस बिग्गह अगनित लथ्थ दह।
तुटि तुंगर जल थुरिग भजिग जल गंग प्रवाहहि।
सह अच्छरि अच्छहि बिवान सुरलोक भाग तिहि।
कहि चंद दंद दुहु दल भयो घन जिम सिर सारह धरिगु।
धर सेस हार हर मधुतन त्रिहु समाधि तन्निन टरिगु ॥

ना० ३५.५ :
जदिस रोस राठौर चंपि चहुवान गहन कहु।
सैं उप्परि सै सहस बिग्गह अगनित लथ्थ दह।

दुटि डूंगर जल भरिग फुट्टि जल थलनि प्रवाहिग ।
सह अच्छरि अच्छहि विमान सुरलोक वनाइग ।
कहि चंद दंद दुहु दल भयौ घन जिम सिर धारह झरिग ।
घर सेस हार हर ब्रह्म तन विहु' समाधि लहिन हरिग ॥

दोनों पाठों में अन्तर अवश्य है, किन्तु इतना नहीं है कि किसी के 'पाठांतर' के रूप में शेष अन्य ग्रहण किया गया हो। दोनों छन्द एक दूसरे से काफी दूर हैं, यह तथ्य भी इसी बात की पुष्टि करता है। साथ ही, कुछ प्रतियों में यह छन्द पहले स्थान पर है और कुछ में दूसरे। इसलिए यही सम्भावना प्रतीत होती है कि ना० में एक स्थल पर छन्द अपने कुल के पाठ के अनुसार था और दूसरे स्थल पर किसी अन्य कुल के पाठ-मिश्रण के कारण आया। प्रसंग से छन्द की स्थिति पर कोई निश्चित प्रकाश नहीं पड़ता है।

(७) ना० ३४.६१ तथा ना० ३६.५ :—

ना० ३४.६१ :
तूरि निसान गत भानु कलाकर सुदूदयउ।
सुनि सामंत नरेस छिनकु धर धुक्कयउ।
चिष्प पंगदल दिष्टि छिष्टि निहारयउ।
अंचरि असा संजोग रेन भझारयो ॥

ना० ३५.५ :
घुरि निसान उगि भान कलाकर सुदयउ।
स्रम सामंत नरिंद छिनकु धर धुक्कयउ ॥
सपिष पंग दल दिष्टि सरोस निहारयउ।
अंचर असी संजोगि रेन मझारयउ ॥

ये छंद एक दूसरे से दूर हैं, और इनके पाठ में अन्तर साधारण है। इस लिए इनमें कोई शेष अन्य के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। साथ ही कुछ प्रतियों में यह छंद पहले स्थान पर है और कुछ में दूसरे; इसलिए सम्भावना यही लगती है कि एक स्थान पर छंद अपने कुल की परम्परा के अनुसार है और दूसरे स्थान पर पाठ-मिश्रण के कारण किसी अन्य कुलकी परम्परा के अनुसार आया है। प्रसंग के अनुसार यह छंद पहले स्थान पर ही आना चाहिए, क्यों कि वहाँ दिनांत का वर्णन है, दूसरे स्थान पर दिन उगने का वर्णन आता है। इसलिए छंद वहाँ संगत नहीं है। छंद में दूसरे स्थान पर 'गत भान' के स्थान पर इसीलिए 'उगि भान' किया गया है; किंतु दूसरे चरण में सामंतों और पृथ्वीराज के श्रमित हो कर धरा पर झुकने का उल्लेख होता है, और चतुर्थ चरण में अञ्चल द्वारा संयोगी के पृथ्वीराज की रेणु झाड़ने की बात आती है, जो प्रभात-कालीन परिस्थितियों में असंभव है।

(८) ना० ३५ १५ : तथा ना० ३५.२० :—

ना० ३५.१५ :
संझ संपत्तिय नरपति रण फिरि सज्जे दलपंग।
चलिग पंग पहु पंति मिलि सौ भर नि किय अंगु ॥

ना० ३५.२० :
संझ संपत्तिय रण भर कलि सज्जे दल पंग।
चलिग पंग पहुपंति मिलि सौ भर नि किय अंगु ॥

दोनों छन्दों में जो पाठ-सादृश्य है, उससे यह नहीं लगता है कि कोई भी छन्द किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया गया होगा और दोनों के बीच के अंश के निकल जाने पर प्रसंग को कोई क्षति भी नहीं पहुँचती है, इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित लगती है।

इन पुनरावृत्ति के बीच धा० २९१ तथा २९२ आते हैं। धा० २९० तथा धा० २९३ में उक्ति-शृंखला प्रकट है, धा० २९१ में धा० २९० के 'नृपति सपक्खिय पंचसर' का जो विस्तार किया गया है उसमें

दो ही पृथ्वीराज को, शेष दो अश्व के पाखर, में तथा एक संजोगी को लगे बताये गए हैं, जो स्पष्ट ही धा० २९० से भिन्न कल्पना है। अतः धा० २९१ तथा २९२ प्रक्षिप्त हैं।

द० में पुनरावृत्तियाँ

(१) द० १३.१ तथा २६.७८ :—

दोनों स्थानों पर छन्द का पाठ प्रायः एक ही और निम्नलिखित है :

अठतालीसा सुक्रवार पच्चह पंग वारीय।
भोरे राइ भीमंग सोर सिवपुरी प्रजारिय।
आरज साइ सलष्य राज संभरि संभारिय।
चाहुवान सामंत मंति कयमास पुकारिय।
घर जात पवांरां पट्टनह बोले बंक दुराइ दिलि।
कै बार कथ्थ नाथह तनी पंगे राज क्रिवान बल।।

यह छन्द द० खण्ड १३ के प्रारम्भ में तो संगत है, द० खण्ड १३ पृथ्वीराज-भीम युद्ध का है, किन्तु खण्ड द० २६ के अन्त में संगत नहीं है, क्योंकि द० खण्ड २६ संयोगिता के 'विनय मंगल' का है। ना० में 'विनय मंगल' खण्ड 'भीम युद्ध' खण्ड के ठीक पहले आता है। द० भी मूलतः उसी परिवार की है, इसलिए यदि इसमें भी वह उसी प्रकार पहले आता रहा हो तो आश्चर्य नहीं होगा। ऐसा लगता है कि पीछे किसी समय 'विनय मंगल' खण्ड को द० परम्परा में बाद में रखने का जब निश्चय हुआ तो हाशिए में जो तत्सम्बन्धी संकेत लिखा गया वह 'विनय मंगल' खण्ड के अन्त और 'भीम युद्ध' खण्ड के प्रथम छन्द-दोनों के सामने पड़ता था, इसीलिए द० में यह पुनरावृत्ति हो गई। फलतः इस पुनरावृत्ति के बीच में जो छन्द पड़ते हैं, पाठवृद्धि के कारण द० में आए नहीं माने जा सकते हैं।

उ० ज्ञा० स० में पुनरावृत्तियाँ

(१) स० ५७. १७१ तथा ५७.२१९ :—

दोनों स्थलों पर छन्द का पाठ प्रायः एक ही है और निम्नलिखित है :।

मद्धि पहर पुच्छै प्रभु पंडिय।
कहि कवि विजै साहि जिहि मंडिय।
सकल सूर बैठवि सभ मंडिय।
आसिष आनि दीय कवि चंदिय।।

दूसरे तथा तीसरे चरणों में 'मंडिय' 'मंडिय' का तुक पुनरुक्तिपूर्ण तो है ही, दूसरे चरण में 'मंडिय' पाठ असम्भव भी है : आशय शाह के विजय मांडने का नहीं है, बल्कि पृथ्वीराज के द्वारा शाह पर मांडी हुई उस विजय का है जिसमें शाह दंडित हुआ था। इसलिए अन्य प्रतियों का 'दंडिय' ही द्वितीय चरण का अन्तिम शब्द हो सकता है। इस प्रकार स० के दोनों पाठ प्रायः सर्वथा एक ही हैं— क्योंकि दोनों में अशुद्धि तक एक ही है। स० ५७.१७१ के पूर्व तथा ५७.२१९ के बाद के छंद प्रसंग द्वारा सम्बन्धित भी हैं : ५७.२१९ के बाद उस सभा का वर्णन है जिसको ५७.१७१.३ में माँडा गया है। इसलिए बीच के छन्द पाठवृद्धि के हैं और पुनरावृत्ति पाठवृद्धि जनित है।

इस पुनरावृत्ति के बीच धा० ७९, ८०, ८१, तथा ८२ आते हैं।

परिणामतः विभिन्न प्रतियों में मिलने वाली पुनरावृत्तियों से प्रक्षिप्त प्रमाणित होने वाले धा० के छन्द निम्नलिखित हैं :—

धा० अ० फ० ना० म० शा० उ० स० : धा० २३९ चरण २२-३५।

धा० मो० ना० शा० उ० स० : धा० ४०३।

मो० : धा० ३५६, धा० ३५७।
अ० फ० : X
फ० : धा० ३४४, धा० ३४५।
म० उ० स० : X
म० ना० उ० स० : X
म० : X
ना० द० उ० स० : धा० २६, धा० २८, धा० २९।
ना० उ० स० : X
ना० : धा० ३—१९, धा० १२५, धा० १२६, धा० २९१, धा० २९२।
द० : X
उ० स० : धा० ७९—८२।

नीचे विभिन्न प्रतियों में आने वाले छन्द-संख्या-व्यतिक्रम और उनके कारणों का विश्लेषण किया जा रहा है।

धा० फ० में छन्द-संख्या-व्यतिक्रम

धा० तथा मो० में छन्दों की क्रम-संख्याएँ नहीं दी हुई हैं, यह बताया जा चुका है, इसलिए इस दृष्टि से उनके छन्दों पर विचार नहीं किया जा सकता है, शेष प्रतियों के छन्दों पर ही विचार किया जा सकेगा।

अ० फ० में छन्दों की क्रम-संख्या छन्द (वृत्त) भेद के आधार पर दी गई है, यथा किसी खण्ड में आए हुए कवित्त की क्रम-संख्या एक है, दोहा की दूसरी, गाथा की तीसरी, किन्तु वे छन्द जिनकी मालाएँ मिलती हैं, अर्थात् जिनके चरणों के सम्बन्ध में यह प्रतिबन्ध नहीं माना गया है कि उनकी संख्या सर्वत्र एक सी हो, यथा भुजंगी, त्रिभंगी, त्रोटक, पद्धड़ी, वे सभी एक सम्मिलित क्रम-संख्या में डाल दिए गए हैं और उनकी क्रम-संख्या छन्द (वृत्त) भेद के आधार पर नहीं चली है।

इस दृष्टि से देखने पर धा० के निम्नलिखित छन्द जो अ० फ० में उपर्युक्त संख्या-विधान के बाहर पड़ते हैं, विचारणीय हैं :—

(१) धा० २८, २९, ३०। ये छन्द अ० फ० के उन पाँच दोहों में से हैं जो उसके खण्ड २ के अन्त में आते हैं। इनके पूर्व जो दोहा अ० फ० में मिलता है वह ॥ २० ॥ है, किन्तु अ० में धा० २८ को ॥ २ ॥, धा० २९ को ॥ २२ ॥ तथा धा० ३० को ॥ २२ ॥ की क्रम-संख्या दी गई है। ॥ २० ॥ के अनन्तर इसी प्रकार फ० में इन छन्दों की संख्या ॥ १ ॥ से प्रारम्भ कर दी गई है और इस नवीन संख्या-विधान में धा० २८ ॥ १ ॥ है, धा० २९ ॥ ४ ॥ है और धा० ३० ॥ ५ ॥ है। यह ध्यान देने योग्य है कि अ० में केवल ॥ २१ ॥ नहीं है और ॥ २२ ॥ की संख्या दो दोहों को समान रूप से दी गई है, जब कि फ० में इन सभी की क्रम-संख्या नई कर दी गई है। प्रश्न यह है कि धा० २८ को ॥ २ ॥ क्रम-संख्या अ० में किस प्रकार दी गई है। इसका स्पष्ट समाधान यह है कि जब अ० फ० में पूर्ववर्ती दोहा ५ तथा दोहा ६ के बीच एक दोहा बढ़ाया गया और उसके साथ ही अ० फ० दोहा २० के बाद कुछ दोहे बढ़ाए गए, तो प्रथम स्थान की पाठवृद्धि को ॥ १ ॥ तथा द्वितीय स्थान की पाठवृद्धि को ॥ २ ॥ की संख्याएँ देकर छोड़ दिया गया, और इन्हीं के साथ अ० फ० के ॥ २१ ॥ की क्रम-संख्या भी बदल कर ॥ २ ॥ कर दी गई। इसके बाद किसी समय एक और दोहा जोड़ा गया और ऊपर के तीन दोहों में लगातार ॥ २ ॥ क्रम-संख्या देखकर इस नवीन दोहे को पूर्व-

वर्ती दोहा ॥ २२ ॥ के अनुसरण में ॥ २२ ॥ की क्रम-संख्या दे दी गई। इस दृष्टि से देखने पर धा० २८ तथा धा० ३० अ० फ० में बाद में रक्खे गए लगते हैं।

(२) धा० १५८, धा० १८७, धा० १८८ : अ० फ० खण्ड ९, साटक १ (=धा० १५१) के बाद उसमें ये तीन साटक और आते हैं जिनकी क्रम-संख्या नहीं दी हुई है। किन्तु ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० १८६ तथा १८७ और इसी प्रकार धा० १८८ तथा १८९ में स्पष्ट उक्ति-श्रृंखला है, अतः धा० १८७ तथा धा० १८८ प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के नहीं हैं। धा० १५८ की स्थिति इतनी स्पष्ट नहीं है।

(३) धा० १९३ : अ० फ० खण्ड ९ में यह दोहा संख्याहीन है, और इसके पूर्व अ० फ० खण्ड ९ दोहा ॥ ४३ ॥ तथा बाद में दोहा ॥ ४४ ॥ आता है, अतः यह प्रकट है यह दोहा अ० फ० की क्रम-संख्या के बाहर पड़ता है। किन्तु हम ऊपर देख चुके हैं कि धा० १९२ तथा १९३ और इसी प्रकार धा० १९३ तथा १९५ के बीच उक्ति-श्रृंखला है। अतः यह प्रकट है कि धा० १९३ प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(४) धा० २४८, धा० २५० : अ० फ० खण्ड १० में ये दोनों छन्द एक रूपक के अन्तर्गत हैं और संख्याहीन हैं। ये उस प्रकार की छन्दमाला में आते हैं जिनकी अ० फ० में सम्मिलित क्रम-संख्या दी गई है : इनके पूर्व भुजंगी ॥ २ ॥ है और बाद में रसावला ॥ ४ ॥ है। ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० २४७ तथा २४८ में स्पष्ट उक्ति-श्रृंखला है। और अ० फ० में धा० २५० अलग छन्द नहीं है, वह धा० २४८ के सिलसिले में ही आता है, इसलिए दोनों की सम्मिलित संख्या ॥ ३ ॥ होनी चाहिए थी, जो किसी प्रकार छूट गई है। अतः धा० २४८ तथा धा० २५० प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के नहीं हैं।

(५) धा० ३१०-३१३ : ये रासा अ० फ० में १३. दो० ७ के बाद आते हैं और पूर्व या बाद में इस खण्ड में और रासा नहीं आते हैं। इन छन्दों का संख्या-व्यतिक्रम अतः स्पष्ट नहीं है। किन्तु ये छन्द एक वर्णन-श्रृंखला के हैं और इनमें से अन्तिम का उक्ति-श्रृंखला सम्बन्ध, जैसा हमने ऊपर देखा है, धा० ३१४ से है, अतः ये प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के नहीं हैं।

(६) धा० ३४३ : यह दोहा अ० में १४. कवि० ५ के बाद आता है। इसकी संख्या अ० में ॥ १ ॥ और फ० में ॥ २१ ॥ दी हुई है, यद्यपि पूर्ववर्ती दोहा ॥ १९ ॥ है और अ० फ० का दोहा ॥ २१ ॥ बाद में ही आता है, इसलिए संख्या-व्यतिक्रम स्पष्ट है। किन्तु धा० ३४३ की धा० ३४४-३४५ से प्रसंग-श्रृंखला है, और धा० ३४४-३४५ फा० की पुनरावृत्तियों के द्वारा प्रक्षिप्त प्रमाणित हो चुके हैं, अतः यह छन्द भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

(७) धा० ३८६ : यह छन्द अ० में संख्याहीन है, फ० यहां पर खण्डित है। यह अ० में १९. दो० १९ के बाद आता है और इसके बाद दो दोहे और आते हैं तब १९. दो० २२ आता है। किन्तु हम ऊपर देख चुके हैं धा० ३८६ धा० ३८५ से उक्ति-श्रृंखला से सम्बद्ध है। इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

(८) धा० ३९० : यह छन्द भी अ० फ० खंड १९ में क्रम-संख्या के बाहर पड़ता है। यह दोहा है और इसके पूर्व का दोहा ॥ २३ ॥ तथा बाद का ॥ २४ ॥ है। यह तातार खाँ और गोरी के संवाद का है, और इसके पूर्व तथा इसके बाद के दोहों अर्थात् धा० ३८९ तथा ३९१ में परस्पर प्रसंग-श्रृंखला स्पष्ट है : धा० ३८९ में गोरी का आदेश है, और धा० ३९१ में कहा गया है :

यह सहाब सुप उच्चरिय ... ...

इन दोनों के बीच धा० ३९० के रूप में तातार खाँ का कोई कथन आना असंगत है। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का लगता है।

म० में छन्द-संख्या-व्यतिक्रम

(१) धा० ५९ : म० में ८.२ और ८.३ के बीच यह छन्द आता है। धा० ५८ के साथ यह प्रसंगतः सम्बद्ध है। धा० ५९ में कहा गया है कि पृथ्वीराज 'अपने श्रेष्ठ प्रधान (प्रधानामात्य) कैंवास को धरा (राज्य) की रक्षा के लिए दिल्ली छोड़ कर आखेट के लिए चला गया था।' इस छंद में कैंवास के सम्बन्ध में कहते हुए कहा गया है, 'राजं जा प्रतिमा' अर्थात् 'जो राजा का प्रतिनिधि था ......।' इस लिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं लगता है।

(२) म० खण्ड १० में छन्द-संख्या १४२ तक चल कर पुनः १२५ से प्रारम्भ होती है, और खण्ड के अन्त तक चलती है। इस व्यतिक्रम का एक कारण तो यह हो सकता है कि दूसरी बार की १२५ से १४२ तक की संख्याओं के छन्द पीछे बढ़ाए गए हों और उनकी क्रम-संख्या भी १२४ के बाद दे दी गई हो, दूसरी सम्भावना यह है कि १४२ को भ्रम से ४ तथा २ को विपर्यय से १२४ समझ कर संख्या १४२ के बाद पुनः १२५ से प्रारम्भ कर दी गई हो। दूसरी सम्भावना अधिक युक्ति-संगत लगती है क्योंकि प्रथम के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि यदि बढ़ाए हुए छन्दों की संख्या १४२ तक ही गई होती तो बाद के छन्दों की क्रम-संख्याओं में भी संशोधन किया गया होता। इसलिए इस खण्ड की १२५ से १४२ तक की संख्या-विषयक पुनरावृत्ति इस प्रसंग में विचारणीय नहीं है।

(३) धा० १९६ : म० में १०.४६४ के अनंतर यह छन्द पुनः ॥ ४६४ ॥ की संख्या देकर आता है। किन्तु प्रसंग में यह आवश्यक है; धा० १९५ में पृथ्वीराज के द्वारा जिस भंगिमा से जयचंद को तांबूल अर्पित करने की बात कही गई है, उसका परिणाम यही होना चाहिए जो इस छन्द में वर्णित है—कि जयचन्द पहिचान गया हो कि पान देने वाला पृथ्वीराज है। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(४) धा० २०६ : म० में छन्द का उत्तरार्द्ध मात्र आया है और ११.९० के बाद उसकी कोई संख्या नहीं दी हुई है। ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० २०५ तथा धा० २०७ के साथ इसका उक्ति-शृंखला सम्बन्ध है, इसलिए यह छंद प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

(५) म० में ११.९८ के अनन्तर छन्द-संख्याएँ ॥ ९० ॥ से ॥ ९७ ॥ तक दुहरा उठी हैं: यह ९८ को विपर्ययभ्रम से ८९ पढ़ने के कारण हुआ ज्ञात होता है, जैसा हमने ऊपर इस प्रति की एक अन्य संख्या-सम्बन्धी पुनरावृत्ति के विषय में भी देखा है। अतः इस पुनरावृत्ति के बीच में आए हुए छन्दों पर पाठवृद्धि की दृष्टि से विचार करना उचित न होगा।

(६) म० में उपर्युक्त पुनः आने वाले ११.९७ के अनन्तर की छन्द-संख्याएँ ॥९२॥ से ॥९८॥ तक दुहरा उठी हैं, और तदनंतर खण्ड की छंद-संख्याएँ इस संख्या के क्रम में चली हैं। यह भी ९७ के ७ को १ पढ़ने की भूल के कारण हुई प्रतीत होती है—७ की नोक यदि कुछ आगे तक खींच कर न बनाई जावे तो उससे १ का भ्रम हो सकता है। अतः क्रम-संख्या सम्बन्धी इस पुनरावृत्ति के बीच आए छन्दों पर भी प्रक्षिप्त पाठवृद्धि की दृष्टि से विचार करना उचित न होगा।

(७) धा० २४५ : म० में १२.२८ के बाद पुनः ॥२८॥ की संख्या के साथ यह छन्द दे दिया गया है। किन्तु धा० २४६ के साथ इसकी उक्ति-शृंखला ऊपर देखी जा चुकी है, इसलिए यह छंद प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

(८) धा० २९७ : म० में १२.५३३ के अनन्तर पुनः ॥५३३॥ की संख्या के साथ यह छन्द दिया गया है। धा० २९८ में विझ चालुक्य के धराशायी होने पर जयचन्द के दल की प्रतिक्रिया वर्णित है, धा० २९७ में उसका युद्ध करना और धराशायी होना वर्णित है, उसके पूर्व के एक छन्द में जो

धा० २८६ है, जिस का युद्ध में प्रवृत्त होना कहा गया है, अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

ना० में छंद-संख्या-व्यतिक्रम

(१) धा० १९ : ना० में २. १२२ के अनन्तर यह छन्द भी ॥ १२२ ॥ करके दिया गया है। इसमें चन्द के जन्म ग्रहण करने का उल्लेख है। धा० १८ में पृथ्वीराज के जन्म ग्रहण करने तथा धा० २० में 'रासो' की विविध छन्दों में रचना करने की प्रस्तावना है। धा० १९ दोनों के बीच में अतः खटकता है और प्रक्षेप के रूप में रक्खा गया लगता है।

(२) धा० ६६ : ना० में २०.३३ के अनन्तर यह छन्द भी ॥ ३३ ॥ की संख्या के साथ दिया गया है। इसमें पट्टराज्ञी की दूती के साथ कैंवास-वध के लिए पृथ्वीराज के आने का उल्लेख किया गया है। धा० ६५ में केवल उसकी दूती के द्वारा पृथ्वीराज के जगाए जाने का कथन है, और धा० ६७ में कैंवास के ऊपर उसके बाण-संधान का; अतः बीच का धा० ६६ का उल्लेख प्रसंग में आवश्यक है, और प्रक्षिप्त नहीं है।

(३) धा० ६७ अ (छन्द ६७ के बाद वार्ता के साथ आया हुआ छन्द का अवशेष): ना० में २९.३२ के बाद यह छन्द भी ॥ ३२ ॥ करके दिया गया है। इसमें पृथ्वीराज का इस विषय में आश्चर्यान्वित होना कहा गया है कि दनुज, देवता या गन्धर्व कौन करनाटी के साथ विलास-लिप्त था। किन्तु यह तो पट्टराज्ञी को ज्ञात ही था कि उक्त व्यक्ति कैंवास था और पृथ्वीराज ने भी यही जान कर उसे मारा था, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त लगता है। धा० में यह छन्द कुछ भिन्न और त्रुटित पाठ के साथ आता है और छन्द के पूर्व एक वार्ता भी आती है जिसमें कहा जाता है कि पट्टराज्ञी ने चित्रशाला में काम-रत कैंवास की ओर संकेत किया।

(४) धा० ७६ : ना० में २९.४६ के बाद यह छन्द भी ॥ ४६ ॥ करके दिया गया है। धा० ७५ निम्नलिखित है :—

> भइ परतषिख कवी मनि आइय।
> उकति कंठ कंठह समझाइय (समुहाइय—पाठां०)।
> वाहन हंस हंस (अंस—पाठां०) सुखदाइय।
> सब तिहि रूप चंद कवि धाइय (गाईयं—पाठां०)।

धा० ७६ में सरस्वती के इसी रूप का ध्यान वर्णित है और उसका शिख-नख निरूपित है। अतः धा० ७६ प्रसंग में आवश्यक लगता है।

(५) धा० ९२ : ना० में यह छन्द २९.६५ के अनन्तर पुनः ॥ ६५ ॥ करके दिया गया है। धा० ९० में चंद ने कैंवास-वध का रहस्योद्घाटन पृथ्वीराज की सभा में किया है। धा० ९१ में उसके अनन्तर रात्रि में सभा के विसर्जन की बात कही गई है। धा० ९३ में प्रातः ही कैंवास की स्त्री का चंद के पास उसकी सहायता से पति का शव प्राप्त करने के लिए आगमन कहा गया है। धा० ९२ में कहा गया है कि चंद के उक्त रहस्योद्घाटन के अनन्तर कैंवास के वध की बात घर-घर फैल गई थी। अतः यह छन्द प्रसंग में आवश्यक लगता है।

(६) धा० ११३ : यह छन्द ना० में ३१. १ के बाद पुनः ॥ १ ॥ की संख्या देकर रक्खा गया है। इसमें पृथ्वीराज के कन्नौज के लिए प्रस्थान करने की तिथि सं० ११५१, चैत्र तृतीया, रविवार दी गई है। यह तिथि असम्भव तो है ही—सं० ११५१ में पृथ्वीराज जन्मा भी नहीं था—इस छन्द के न रहने से पूर्वापर के प्रसंग-क्रम में कोई व्याघात नहीं होता है। इसलिए यह छन्द प्रक्षेपपूर्ण पाठवृद्धि का लगता है।

(७) धा० ११४ : यह छन्द ना० में ३१.४ के बाद पुनः ॥ ४ ॥ करके दिया गया है। इसमें कहा गया है कि पृथ्वीराज ने 'एक सौ सुभटों को लेकर कन्नौज के लिए प्रस्थान किया, (फिर भी वे कहां जा रहे थे) यह या तो चन्द जानता था या पृथ्वीराज।' किन्तु साथ में सौ योद्धा हों और उन्हें यहाँ तक न बताया गया हो कि उन्हें किधर ले जाया जा रहा है, यह प्रायः असम्भव है; फिर कन्नौज पहुँचने पर इन योद्धाओं ने इस पर कोई आश्चर्य भी नहीं प्रकट किया है कि वे कहाँ ले आए गए हैं। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का लगता है।

(८) धा० १४६ : यह छन्द ना० में ९.४ के अनन्तर पुनः ॥४॥ की संख्या देकर रक्खा गया है, किन्तु ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० १४२ के साथ इसका उक्ति-शृंखला सम्बन्ध है, अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(९) धा० १४७ : यह छन्द ना० में ९.६ के अनन्तर पुनः ॥६॥ की संख्या देकर रक्खा गया है। धा० १४६ में चन्द ने हेजम को अपना परिचय दिया है, धा० १४७ में हेजम जयचन्द को उसके आगमन की सूचना देने गया है, और धा० १४८ में उसने जयचन्द को उक्त सूचना दी है। अतः धा० १४७ प्रसंगतः पहले तथा पीछे के छन्दों से निकट रूप से संबद्ध है, और प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(१०) धा० २०७ : ऊपर दिखाया जा चुका है कि धा० २०७ तथा २०८ एक ही छन्द के दो भिन्न-भिन्न पाठ हैं; ना० में धा० २०८ यथा ३३.३९ है और धा० २०७ का दूसरा चरण भी उसमें ॥ ३९ ॥ संख्या देकर 'पाठांतर' के रूप में सम्मिलित कर लिया गया है।

(११) धा० २८१ : ना० में ३६.२८ के अनन्तर यह छन्द भी ॥ २८ ॥ संख्या देकर दिया गया है, किन्तु धा० २८० तथा २८२ से प्रसंगतः यह सन्निकट रूप से संबद्ध है : धा० २८० में कन्ह घोड़े पर युद्ध के लिए चढ़ा है, धा० २८१ में वह लड़ता हुआ मारा गया है, और धा० २८२ में कन्ह के मरने पर जयचन्द के दल की प्रतिक्रिया वर्णित है। इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(१२) धा० ३५३ : ना० में ४३.५५ के अनन्तर यह छन्द पुनः ॥ ५५ ॥ की संख्या देकर दिया हुआ है। किंतु यह पूर्ववर्त्ती छन्द धा० ३५२ से प्रसंगतः सम्बन्ध है: धा० ३५२ में गोरी ने तातार खाँ तथा रुस्तम खाँ से कुरान की सौगन्ध लेकर पृथ्वीराज का सामना करने और उसे पकड़ कर बन्दी करने के लिए कहा है, और धा० ३५३ में तातार खाँ तथा रुस्तम खाँ ने सौगन्ध लेकर तदनुसार प्रतिज्ञा की है। इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(१३) धा० ४०६ : ना० में ४६.१३७ के अनन्तर यह छन्द पुनः ॥ १३७ ॥ की संख्या देकर दिया गया है। किन्तु ऊपर हम देख चुके हैं कि यह छन्द धा० ४०७ के साथ उक्ति-शृंखला द्वारा संबद्ध है, इसलिए यह प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

द० में छंद-संख्या-व्यतिक्रम

(१) धा० १६ : द० में १.१३५ के अनन्तर पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। इसमें ढुंढा के द्वारा आनल्ल को राज्य मिलता है। ढुंढा की शेष कथा इसके पूर्व आती है, और धा० १७ की प्रथम पंक्ति में ही आता है कि आनल्ल ने राजा होकर अजमेर में निवास किया। अतः यह छन्द प्रसंग में आवश्यक है, और इस प्रति में पाठवृद्धि के परिणाम स्वरूप नहीं आया है, यद्यपि ढुंढा की पूरी कथा के छन्द—जैसा हमने ऊपर ना० स० की पुनरावृत्तियों में देखा है—प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के हैं।

(२) धा० १०९ : द० में ३४.५ के अनन्तर 'शुक चरित्र' के छन्द आते हैं, जो स्पष्ट ही बाद में

रक्खे गए हैं, क्योंकि उनकी क्रम-संख्याएँ इस खण्ड के बीच होते हुए भी स्वतन्त्र हैं और उनके बाद पुनः पूर्ववर्त्ती क्रम-संख्या में छन्द दिए जाते हैं। किंतु इस बार का प्रथम छन्द भी ॥ ५ ॥ ही है, जब कि पिछली बार का अन्तिम छन्द ॥ ५ ॥ था। फिर भी यह छन्द धा० के षट ऋतु वर्णन के छः छन्दों में से है और इसके अभाव में एक ऋतु का वर्णन ही नहीं रह जाता है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

(३) धा० १४० : द० में ३३.६१ के अनन्तर पुनः वही संख्या देकर यह छंद दिया गया है। पूर्ववर्त्ती छन्द धा० १३९ में नगर-वर्णन के अन्तर्गत नायिकाओं के गीत-नृत्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनके भाव का वर्णन करना कठिन लगता है। यह कह कर कहा गया है कि 'उस पट्टन के गृह सँवारे हुए दिखाई पड़े।' इससे ज्ञात होता है कि नायिकाओं का वर्णन धा० १३९ में ही समाप्त कर दिया गया। अतः धा० १४० में पुनः उनके गीत-नृत्यादि का वर्णन प्रक्षिप्त लगता है।

(४) धा० १४५ : द० में ३३.६७ के अनन्तर पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। इसके पूर्व धा० १४४ में कहा गया है कि 'पृथ्वीराज ने किसी से कहा कि वह सुभट [दरबार तक पहुँचने के लिए] युक्ति पूर्वक कोई श्रेष्ठ हाथी पकड़ लावे।' इस छन्द में कहा गया है कि यह सुन कर चन्द ने मना किया कि 'यहाँ पर झगड़ा करना ठीक नहीं है, क्योंकि जयचन्द के द्वार पर तीन लाख सैनिक दिन-रात रहते हैं' और इसके अनन्तर हाथी पकड़े जाने का कोई उल्लेख नहीं होता है। प्रकट है कि धा० १४५ धा० १४४ से प्रसंगतः संबद्ध है, अतः यह धा० १४४ के बाद की पाठवृद्धि का नहीं है, यद्यपि दोनों प्रक्षेपपूर्ण पाठवृद्धि के छन्द हैं, यह हम धा० की उक्ति-शृंखला की त्रुटियों पर विचार करते हुए देख चुके हैं।

(५) धा० २६३ : द० में ३३.२५५ के अनन्तर पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। धा० २६३ में धा० २६२ में पृथ्वीराज के इस कथन का उत्तर है कि 'वह अपने सामन्तों का यह बोझ (अहसान) नहीं चाहता कि, वे अपनी जान गँवा कर इसे बचावें और वह युद्ध छोड़ कर दिल्ली जावे।' धा० २६३ के निकल जाने पर उसके इस कथन का कोई उत्तर नहीं रह जाता है यद्यपि वह सामन्तों के द्वारा उपस्थित की गई इसी युक्ति का अनुसरण करता है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(६) धा० २९५ : द० में ३३.४१४ के बाद पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। इसमें कन्नौज के युद्ध में सोलह धराशायी शूरों के नाम देने की बात कही गई है :

परे सूर सोलह तिके नाम भानं।

किन्तु कुल मिला कर केवल बारह ऐसे शूरों के नाम इस छन्द की सूची में आते हैं; ये हैं : मंडलीराय, माल्हन हंस, जावला, जाल्ह, बाघराय बागरी, बलीराय यादव, सारंग गाजी, पाधरी राय परिहार, सांखुला सिंह, सिंहली राव (सिंघ सिंघा—धा०), सातल मोरी, भोज तथा भुवाल राय। इसलिए इस छन्द की स्थिति संदिग्ध लगती है। यह अवश्य असम्भव नहीं है कि ऊपर जो बारह नाम दिए गए हैं, उनमें से किन्हीं चार में दो-दो नाम मिल गए हों। पूर्ववर्त्ती छन्द धा० २०४ में भी सोलह सामंतों-शूरों के धराशायी होने की बात कही गई है, और जहाँ-जहाँ धराशायी शूरों-सामंतों की संख्या दी गई है, उनकी नामावली भी दी गई है, इसलिए यह छन्द मूल रचना का भी हो सकता है।

परिणामतः विभिन्न प्रतियों की छन्द-संख्या-व्यतिक्रम से धा० के निम्नलिखित छन्द प्रक्षिप्त ठहरते हैं :—

अ० फ० : धा० २८, ३०, ३४३, ३९०।
ना० : धा० ६७ अ, ११३, ११४।
द० : धा० १४०।

धा० के प्रक्षिप्त छंद

ऊपर विभिन्न उपायों का अवलंबन करके हमने देखा है कि धा० में वार्त्ताओं के अतिरिक्त निम्नलिखित छन्द और छन्दांश प्रक्षिप्त ठहरते हैं :—

धा० १, ३-१९, २१, २६, २८-३०, ६१, ६७ अ, ६९, ७९-८२, ११३, ११४, १२१ के अंतिम दो चरण, १२५, १२६, १४०, १४३, १४४, १४५, १५०, १५६, १५७, १९४, २०८, २२४, २३९ के चरण २२-२५, २४३, २६९ के अंतिम दो चरण २९१, २९२, ३०८, ३४३-३४५, ३५६, ३५७, ३५९, ३६१, ३९०, ३९६, ४०३, ४०४, ४२१।

उपर्युक्त के अतिरिक्त धा० का केवल निम्न लिखित छंद और प्रक्षिप्त ज्ञात होता है :—

(१) धा० २७ : यह ढीली कीली कथा का एक मात्र छंद है जो धा० में आया हुआ है : *इसमें जगजोति व्यास के द्वारा अनंगपाल को [ढीली की] कीली ढीली करने का परिणाम यह बताया गया* है कि तोमरों के बाद चहुवान और चहुवानों के बाद तुर्क दिल्ली के अधीश्वर होंगे। किन्तु अनंगपाल तोमर ने कीली किस प्रकार ढीली की, और वह कीली कैसी थी आदि किसी बात का उल्लेख धा० के अन्य किसी छंद में नहीं होता है। अनंगपाल तोमर और दिल्ली-दान के संबंध के धा० के अन्य छंद भी (धा० २६, २८, ३०) ऊपर प्रक्षिप्त प्रमाणित हो चुके हैं। इसलिए धा० २७ भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है। प्रक्षेप-क्रिया के समस्त चिह्न प्राप्त प्रतियों से किसी न किसी में सुरक्षित हैं, यह नहीं माना जा सकता है, इसलिए इस प्रकार के एकाध अपवाद के लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

धा० में छूटे हुए छंद

धा० में केवल निम्न लिखित दो छंद छूटे जान पड़ते हैं, जिन्हें प्रसंग की दृष्टि से मूल का मानना आवश्यक जान पड़ता है :—

(१) मो० ३४५ : यह छंद धा० के अतिरिक्त सभी प्रतियों में है। इसमें कन्ह के धराशायी होने पर कल्ह के युद्ध में प्रवृत्त होने का उल्लेख होता है। धा० २८३ में उसके लड़ते हुए धराशायी होने का उल्लेख है। इसलिए उसके युद्ध में उतरने के संबंध का मो० ३४३ भी प्रसंग अनिवार्य है।

(२) अ० ६. दो० ९ : यह छन्द धा० मो० में नहीं है, शेष समस्त प्रतियों में है। इसमें जयचन्द की दूती द्वारा यौवन की महत्ता प्रतिपादित करने वाले कथन का संयोगिता द्वारा दिया गया उत्तर है। यह उत्तर प्रसंग में नितान्त आवश्यक है क्योंकि अन्यथा उक्त दूती का कथन उत्तरहीन रह जाता है, यद्यपि संवाद आगे चलता है, और संयोगिता उसका उत्तर न दे इस बात का कोई कारण नहीं दिखलाई पड़ता है। अतः यह छंद भी मूल पाठ का प्रतीत होता है।

एक प्रति में एक छन्द का छूटना साधारण बात है, और दो प्रतियों में भी किसी एक छोटे छन्द का स्वतंत्र रूप से अलग-अलग छूट जाना असंभव नहीं है, इसलिए इन दोनों छंदों को मूल का स्वीकार करना चाहिए।

उपर्युक्त प्रक्षिप्त छन्दों और वार्त्ताओं को निकाल देने तथा इन दो छन्दों को सम्मिलित कर लेने पर धा० का आकार प्रसंग-शृंखला, उक्ति-शृंखला, प्रबंध-शृंखला आदि की समस्त दृष्टियों से इतना सुगठित हो जाता कि वह मूल का प्रतीत होने लगता है।[1] आगे हम देखेंगे कि वह अन्य प्रकारों से भी प्रायः मूल का ही प्रमाणित होता है।

[1] इन छंदों की ग्रंथ की विभिन्न प्रतियों में पाठ स्थिति के लिए दे० आगे 'पृथ्वीराज रासो के निर्धारित मूल रूप की छंद-सारिणी' शीर्षक।

—:*:—

४. पृथ्वीराज रासो
का
मूल रूप (पाठ)

मूल रचना में कौन-कौन से छंद रहे होंगे यह निर्धारित कर लेने के बाद पाठभेद के स्थलों पर कौन-से पाठ स्वीकृत होने चाहिए और कौन-से नहीं, यह निर्धारित करना रह जाता है। इस प्रकार के पाठ-निर्धारण का कार्य संतोषजनक रूप से तभी संभव हो सकता है जब विभिन्न प्रतियों का पाठ संबंध निर्धारित हो जावे। यह अवश्य है कि इस प्रकार का संबंध-निर्धारण हम विभिन्न प्रतियों के उन्हीं अंशों तक सीमित रख सकते हैं जो ऊपर निर्धारित मूल के अन्तर्गत आते हैं, क्यों कि हमारा अभीष्ट इसी मूल का पाठ-निर्धारण है। ये प्रतियाँ अपने अन्तिम रूपों में परस्पर किस प्रकार संबद्ध हैं, यह निश्चय करना प्रस्तुत कार्य के लिए आवश्यक नहीं है।

इस पाठ-संबंध-निर्धारण के लिए हमें विभिन्न प्रतियों में इन्हीं छंदों में आने वाली ऐसी समस्त पाठ-विकृतियों का लेखा लेना होगा जो किन्हीं भी दो या अधिक प्रतियों के पाठ-संबंध पर प्रकाश डाल सकें। केवल सुनिश्चित पाठ-विकृतियों को ही यहाँ लिया जा सकेगा। ये प्रायः संपादित पाठ में निर्दिष्ट स्थलों को देखने पर स्वतः स्पष्ट हो जावेंगी, इसलिए नीचे संपादित पाठ और उसके अनंतर विकृत पाठ देते हुए इनके संबंध में वहीं पर कुछ विस्तार से कहा जावेगा जहाँ इनके संबंध में संकेत करना मात्र पर्याप्त न समझा जाएगा।

धा० मो० म० ना० उ० ज्ञा० स०

(१) धा० ३०३. ३: हर हथ्थहि हरि गहहि वाम रविवहि इनि बारहि।
प्रसंग पहाड़ राय तोमर द्वारा किये हुए भयानक युद्ध का है। इन प्रतियों में 'हर हथ्थहि' के स्थान पर धा० मो० में 'हरि हथ्थहि', ना० में 'हरि हत्थह' और यह म०उ०स० में 'हरि हथ्था' है।

(२) धा० ३२४. २ : संजोगि जीवन जंबनं।
सुनि श्रवण दे गुरराजनं।

प्रसंग संयोगिता के नख-शिख वर्णन का है। इन प्रतियों में 'श्रवण दे' के स्थान पर पाठ 'सर्वदा' है।

(३) धा० ३२४.७ : नग हेम हीर सु थप्पनं।
गय हंस मग्ग उथप्पनं।

प्रसंग संयोगिता के चरणों के वर्णन का है। इन प्रतियों में 'हीर' के स्थान पर पाठ 'हंस' है।

धा० मो०

(४) धा० १३६'३२ : रोहि आरोहि मंजीर संदं।
मन्द मृदु तेज परकीर बंदं।

प्रसंग संयोगिता के नूपुरों की ध्वनि के वर्णन का है। धा० मो० में परकीर (<प्राचीर) के स्थान पर 'प्राकार' है।

(५) धा० १६९.२ : जे चिय पुच्छ रत्त पल्लव मिलु उड्डिय राम सुर साल।
घघ्घर मूल ते काजसरइ सद्दहि आणन्द पान ॥

प्रसंग स्वतः प्रकट है। धा० और मो० में 'सद्दहि आणन्द' के स्थान पर क्रमशः है 'रिपु मंगन सूं' तथा 'रिपु मंगन कहं'।

(६) धा० १८८.१ : कांती भार पुरा पुरन्दिगलिहं आरत्त गंड स्थलं।
सच्छं तुच्छ पुरा स शशिकलाज करि कुंभ सिन्धूरियं।

प्रसंग प्रातः की वेला के वर्णन का है। धा० मो० में 'कांती भार' के स्थान पर पाठ 'कांता भार' है।

(७) धा० १९३.२ : सुनि संजोग्य पहिय सुकर वर उठि दिठ्ठिय चंक।
मनु रोहनि सु यमुन-मिलिय मनु मिलि उदित मयंक ॥

प्रसंग थवाइत वेषधारी पृथ्वीराज के द्वारा जयचन्द को पान अर्पित किए जाने का है। धा० और मो० में 'मनु रोहनि सु यमुन मिलिय' के स्थान पर क्रमशः है 'मनो मोहनि सु मन मलिग,' तथा 'मन मोहनि सुं मन मिलिग'।

मो० ना० उ० शा० स०

(८) धा० ३४७-३५० : सहहिं सीस त्रिय पी जिहिं जिन सिर भारहिं दुधार।
लाज धरहिं तिनअरि गाजहिं ते पुहु 'पंच हजार' ॥
'पंच हजार' ति मांझि 'दुइ' जे अग्गा धर सामि।
कर वज्जइ धज्जइ सबद्दु ते 'सै पंच' अकुलामि ॥
तिन मद्धि 'सौ' जे सत्त धरण सील सन्त जस जित्त।
तिन मद्धि 'दस' दारुण दुज्जण उप्पारहि गयदन्त ॥
तिन मद्धि 'पंच' प्रपंच से लखिय न गति तिन काज।
देवगति देवानसउं तिन मद्धि पहु प्रथिराज ॥

प्रसंग पृथ्वीराज की सेना-वर्णन का है। इन प्रतियों में उपर्युक्त (१) 'पंच हजार', (२) 'दुइ' [हजार], (३) 'सै पंच', (४) 'सौ', (५) 'दस' तथा (६) 'पंच' के स्थान पर क्रमशः (१) 'बीस हजार' (२) 'दस [हजार]',(३) 'पंच [हजार]', (४) 'दोइ [हजार]' मो०, 'बीस से'—ना०, 'पञ्च से'—शा० (५) 'दस' सहं,(६) 'पञ्च सह' है।

(९) धा० ३६२.२७ : परे सहस 'सोरह' भार सेन गोरी।

प्रसंग गोरी-पृथ्वीराज युद्ध में गोरी की सेना के संहार का है। इन प्रतियों में 'सोरह' के स्थान पर 'पंचीस' है।

(१०) धा० ३८६ : सथ बिहान 'सुरितान' दर बजि निसांन निसांन।
तम चूरन जूरण किरणि स प्रगटि दिसांन दिसांन ॥

इन प्रतियों में 'सुरितान' के स्थान पर 'सु बिहान' है, जब कि पूर्ववर्ती शब्द भी 'बिहान' है।

मो० ना०

(११) धा० १४७ : सुनत बोल हेजमछु उठत दिसित चन्द छिल तासि।
त्रिप अग्गह गुहरन गयउ जहां पंगु त्रिप आसि ॥

ना० मो० में इसके पूर्व निम्नलिखित दोहा आता है (शा० पाठ) :—

सुभर हेत हेजम उठ्यौ कह्यौ चन्द कवि आउ ।
बलि सम्राट बलि करन सुख दुह ओसरि पाव राउ ॥

ना० में धा० १४७ के दोहे को इस दोहे का 'पाठांतर' कहा गया है ।

(१२) धा० २९७'६ : बलि मध्य व शीदिय बिलि रहस मरज जाणि छुट्टाख धनी ।
चिंम छनि छाप तिलक जिलि 'बहु बहु बहु रखगुल धनी' ॥

प्रसंग पृथ्वीराज की रक्षा के लिए हुए 'विंझराज' के युद्ध का है । इन प्रतियों में 'बहु बहु बहु भगुल धनी' के स्थान पर पाठ है : मो० 'बहुल भगि संभरि धनी' ना० [बा] हु भंग संभर धनी' । विंझ ने पृथ्वीराज की ओर से युद्ध किया था (धा० ३०४) इसलिए 'बहुल भंगि संभरि धनी' अथवा '[बा] हु भंग संभरि धनी' पाठ असम्भव है ।

(१३) धा० ३१६'१ : तब 'गुरराज राज कवि' बुझाइ ।
तुहि बरदाइ रिम्न गुरु सुझाइ ।

इन प्रतियों में 'गुरराज राज कवि' के स्थान पर पाठ है : मो० 'गुरु राज राज गुरु' और ना० 'कविराय राजगुरु' । दूसरे चरण से प्रकट है कि प्रश्न बरदाई से राजगुरु ने किया है ।

(१४) धा० ३२४'४५ : 'मणि बन्ध' पुष्प सु दीसये ।
जानु कन्द कालीय सीसये ।

प्रसंग संयोगिता के नख-शिख वर्णन का है । इन प्रतियों में 'मणि बन्ध' के स्थान पर 'मणि बिंब' है ।

(१५) धा० ३७६.१ : 'हउं सु जोगिय हउं सु जोगिय' अमल परिहार ।

प्रसंग गोरी के दरबान के द्वारा चंद से किए गए 'किमि तइं जोगी भयु भट्ट' विषयक प्रश्न के उत्तर का है । इन प्रतियों में 'हउं सु जोगिय हउं सु जोगिय' के स्थान पर है : मो० 'तब पेष्यु', ना० 'तब पिष्षै' । किन्तु दरबान चन्द को पहले ही देख चुका है (धा० ३७५.३); यहाँ तो दरबान के प्रश्न का उत्तर चन्द के द्वारा दिया जाना चाहिए था ।

धा० ध० फ० म० ना० उ० शा० स०

(१६) धा० १०५.१ : आनंदउ 'कविचंदु जिय' नृप किय संच विचार ।

प्रसंग कन्नोज को चलने के लिए चन्द से पृथ्वीराज द्वारा किए गए अनुरोध पर चंद के आनंदित होने का है । इन प्रतियों में 'कवि चदु जिय' के स्थान पर पाठ है : धा० 'कवि कव्वयनु', अ०फ '०कवि सुनि वयनु', न० 'कवि वयन विनु', ना० 'कवि इक वयन', उ०स० 'कवि के वयन' । इस छन्द के पूर्व सभी प्रतियों में पृथ्वीराज के वाक्य आते हैं, इसलिए इन प्रतियों के पाठ सम्भव नहीं हैं ।

(१७) धा० १२१. १३.१४ : जुद्ध कहिय बहिग सरधरि सरीर ।
झलकंति दुबंक दिव्य अम नीर ।

इन प्रतियों में ठीक इसके पहले और है :—

पर हरिग सीस जुर संचु गंद ।
कब्बउतो युद्ध आयध्य वंद ॥

किन्तु यहाँ प्रसंग पृथ्वीराज के कन्नौज पहुँचने मात्र का है, युद्ध के छन्द तो बहुत बाद में प्रारम्भ होते हैं ।

(१८) धा० १७२.१० : चतुरप भउंह अंकुरे ।
नयन्न बान बंकुरे ।

प्रसंग जयचन्द की दासियों के नख-शिख का है । इन प्रतियों में 'नयन्न बान' के स्थान पर पाठ 'मनो नयन्न' है, किन्तु 'नयन' भौंहों के उपमान नहीं हो सकते हैं ।

(१९) धा० १९६.६ : पारस्य मंडि प्रथिराज कउ कहइ भले रजपूत सउ ॥

प्रसंग छद्मवेशी पृथ्वीराज को जयचन्द के पहचानने और उसको पकड़ने की आज्ञा देने पर पृथ्वीराज के सामंतों की प्रतिक्रिया का है। इन प्रतियों में पाठ है : धा० म० उ० स० 'सावंत सूर हरि राजसू (सौ—म०)', अ० फ० 'सावंत सूर हरि परसपर', ना० 'गर भरणि आउ पुजीय घरीय'। 'पारस्व मंडि प्रथिराज कउ' (= पृथ्वीराज के पार्श्व में आकर) के एक दुर्बोध पाठ को हटाकर इन प्रतियों में एक सरल पाठ को रखा गया है।

(२०) धा० २१०.१ : जउ इन लष्षन सब सहित विचार न तव्व करि।

प्रसंग संयोगिता के अपनी दासी को मोतियों का थाल लेकर पृथ्वीराज के पास भेजने का है। इन प्रतियों में 'सहित' शब्द नहीं है। 'इन लष्षन' शब्दों से प्रकट है कि 'सहित' होना चाहिए।

(२१) धा० २११.३ : करालिति कोमल पानि कलिकुल अंगुलिय।

प्रसंग उपर्युक्त दासी के मोती अर्पित करने का है। इन प्रतियों में 'कलि कुल' (= कलिका-कुल) के स्थान पर 'केलि कुल' है, जो उँगलियों के लिए निरर्थक है।

(२२) धा० २२९.२ :
बहुत जतन संजोगी समवै।
सोम अमृत कमल तुम्ह सु छवै।
इह कहि बाल गवष्षिन पत्तिय।
पति देषत मन महि गहि रत्तिय।

प्रसंग संयोगिता को वरण करके पृथ्वीराज के चले जाने पर उसके विरह का है। इन प्रतियों में दूसरे चरण का पाठ है : धा० अ० फ० 'सोम कमल अम्रित दरसाए,' म० ना० उ० स० 'सोम कमल दिनयर दरसाए'। कहा गया है "[उस विरह-दाह को शांत करने के लिए] संयोगिता ने बहुत से उपाय किए, [किन्तु कोई लाभ न होता देखकर] वह कहने लगी, 'हे सोम, अमृत और कमल तुम्हें [कोई] न छूवे।' और यह कह कर वह गवाक्षों तक गई"।" इन प्रतियों का पाठ चरण तीन के 'इह कहि' को निरर्थक कर देता है। 'दरसाए' तो निरर्थक है ही—कमल और अमृत के दरसाने से कोई शीतलता नहीं प्राप्त होती है।

(२३) धा० २२९.३ : ऊपर के छन्द में तीसरे चरण का पाठ इन प्रतियों में है : 'उझकि झंकि दिष्षउ पन पत्तिय'। यह परिवर्तन पूर्ववर्ती से संबद्ध है।

(२४-२५) धा० २३९.२०, २२ :
दरसी दल कोदल झल्लरियं। (१९)
समरे घर कायर बल्लरियं। (२०)
जिनके सुप सुच्छ ति मच्छरियं। (२१)
निरषे तिनके तन अच्छरियं। (२२)

इन प्रतियों में २० तथा २२ वें चरण नहीं है, स्पष्ट है कि वे छूटे हुए हैं।

(२६) धा० २५०.३ : नीच कंधे 'प्रही' रोम सीसं।

प्रसंग मीर बंदन के वर्णन का है। इन प्रतियों में 'प्रही' के स्थान पर पाठ 'तुच्छ' है। 'प्रही' का अर्थ 'खड़े हुए' होता है और वही संगत लगता है। यहाँ अर्थ की दुर्बोधता के कारण सरल पर्याय रख दिया गया है।

(२७) धा० २६२.१ : मति घट्टी सामंत मरण 'हउ' सोहि दिखावहु।

इन प्रतियों में 'हउ' के स्थान पर 'भय' है। 'हउ' 'भय' का अपभ्रंश रूप है, किन्तु 'भय' की अपेक्षा 'हउ' (<हउआ) अधिक उपयुक्त शब्द है। 'हउ' दुर्बोध होने के कारण बदल दिया गया, और कर उसके स्थान पर 'भय' कर दिया गया है।

(२८) धा० २६९.१ : धर पेह मऊप स पीत पनी। (९)
दिपि लज्जति रेण सरद्द सनी। (१०)

चरण ९ का पाठ इन प्रतियों में है : धा० अ० फ० 'हरिपथि हिमाउत पीत पनी', ना० उ० स० 'हरिपथ्व हुमा (इमा—स०, उमा—उ०) उपवीत (उअपीत—स०, पतिपीत—उ०) बनी (पनी—ना० उ०)'। प्रसंग सेना के प्रयाण का है। निर्धारित पाठ का आशय है : 'धरा की धूल [उड़कर] सूर्य की किरणों में [ऐसा] पीलापन ला रही है'........।' इन प्रतियों के पाठ निरर्थक हैं।

(२९) धा० २७०.२ : 'बिजे सब सेन' तिक्के नकरे।

इन प्रतियों में 'बिजे सब सेन' के स्थान पर पाठ है : धा० अ० फ० ना० 'बिडुरिय सेन', म० उ० स० 'डरं बिड्डुरो सेन'। 'बिज्' का अर्थ भागना होता है, उसके स्थान पर उसकी दुर्बोधता के कारण प्रसंग से समझकर 'बिड्डरिय' शब्द दे दिया गया है।

(३०) धा० २७३.१ फुनि प्रथिराज अछिछ 'देह' चल्लु रट्ठिवर नरेस।
सिर सरोज चहुआंन कउ अमर सस्त्र सस सेस॥

इन प्रतियों में 'देह' के स्थान पर 'दल' है। संपादित पाठ के प्रथम चरण का अर्थ है : 'फिर पृथ्वीराज को आँखों से देखकर राठौर नरेश [जयचन्द] घूम पड़ा।' 'देह' का अर्थ देखना है, उसको न समझ कर प्रसंग के सहारे पाठ 'दल' कर दिया गया है।

(३१) धा० २८५.३ : मछछू तिहिवर फुरहि कछछू गज कुंभ 'बिदारहि'।
उअहंस उड़ि चलहि हंसगुण कमल बिराजहि॥

इन प्रतियों में 'विदारति' के स्थान पर भी 'विराजति' है जो उसके तुक में बाद की ही पंक्ति में आता है।

(३२) धा० ३२७ : उहि उहि उभय रस उप्पजउ मिले चन्द गुरुराज।
कइ बन्धव सउं मनसिनउ कइ धन निरिष्पयति राज॥

इन प्रतियों में द्वितीय चरण का पूर्वार्द्ध है : धा० 'के बयनन अयनन' मिलहि, अ० फ० 'कै पिय वहि अवनिहि मिलै', ना० 'के वयन अपन न मिलनि', शा० स० 'कय बयनन आनन मिलै'। प्रसंग पृथ्वीराज की विलास-मग्नता का है; दूसरे चरण में गुरु राज तथा चंद का यह सम्मिलित अनुमान दिया गया है कि 'या तो राजा बांधवों से मनसिन् (उनका ध्यान रखने वाला) होगा, और या तो वह अपनी स्त्री (संयोगिता) को ही देखेगा (उसी पर ध्यान देगा)।' प्रकट है कि इन प्रतियों का पाठ निरर्थक है, और एक दुर्बोध पाठ के स्थान पर इनमें एक सरल पाठ प्रसंग की सहायता से रखने का प्रयास किया गया है।

(३३) धा० ३३१.१ : 'आसन आइस सुध्धि दिय' कच झारिय सइ रेनु।
सुभ सिंगार सुंदरिय 'अंगे आभरनेन'॥

प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध का पाठ इन प्रतियों में है : धा० 'आसन असु दिय चरन की', अ०फ० 'आसन दिय अनु चरन (चरनि) परि', ना० 'आसन असु दिय चरन किय' शा० स० 'आसन असु दिय चरन रज'। किंतु चरण पड़ने की बात तो पूर्ववर्ती छंद में आ चुकी है :

तब कुंडिल मोह चप सोह ति मोहन दास दस।
कछु हंसि कछु पय लग्गि पयंपइ स्त्रीय रसि॥

(३४) धा० ३३१.२ : पूर्वोल्लिखित दोहे के ही द्वितीय चरण का उत्तरार्द्ध इनमें है : धा० अ०फ० शा० स० 'आदर आभर नैन (आभरनेन—धा०)' ना० 'आभर आम नैन'।

इन प्रतियों का पाठ निरर्थक है यह प्रकट है।

(३५) धा० ३३८.२ : कहु सु जियह पत्तिनिय कंत घनु धरउ तउ न घन ।
सुग सुग मार आरोहु 'असर' संसार मरण मन ॥

इन प्रतियों में द्वितीय चरण के 'असर' के स्थान पर पाठ 'सार' है। 'असर' का अर्थ है अ+स्मर =काम विहीन है, और वही सार्थक है । 'सार' प्रसंग में निरर्थक है । 'असर' का अर्थ न समझ पाने के कारण पाठ-परिवर्तन किया गया है ।

(३६) धा० ३५४.२ : मेच्छ मसूरति सचि किय नंचि कुलीन कुरान ।
'वीर चिक्क वसलिह कियउ' दिअउ मिलान मिलान ॥

इन प्रतियों में दूसरे चरण के पूर्वार्द्ध का पाठ है : 'वीर बिचार ति (त—अ०) रत्त (रत्ति—धा० शा० स० हुअ)'। स्वीकृत पाठ का अर्थ होगा 'तथैव उन वीरों में बातें थोड़ी कीं।' 'चिक्क (< स्तोक)'[१०] को न समझ पाने के कारण पाठ-परिवर्तन किया गया है ।

(३७) धा० ३६०.५ : बढ़े सो ओलग्गी वजी धार धारं ।
गयी सेन तुक्कह दुह सार सारं ।

उद्धृत प्रथम चरण का पाठ इनमें है : धा० शा० स० 'वढ़ी संग लग्गी (लज्जी-धा०, लागी—शा०)', अ० फ० 'बढ़ी भंग लग्गी', ना० 'बढ़ी सिंग लग्गी'। ये सभी पाठ निरर्थक हैं, और 'ओलग्गि (<अवलग्न) भृत्य' के अर्थ को न समझने के कारण पाठ-परिवर्तन किया गया है ।

(३८) धा० ३१८.१ : तिहि आयउ सुनि आस करि सुहितु धारा चालु जान ।
सोइ सुरंग लग्गहुँ समह कढ्ढन कच्च सु विहान ॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण का पाठ है : 'आगमान (दा सुनंत-शा० स०) कंप्यो (करवरो-धा०) हियो दिल न रह्यो (रहै—धा० ना०) थिर थान (काम—धा०)'। ये पाठ प्रसंग में निरर्थक हैं, यह स्वतः देखा जा सकता है ।

धा० शा० फ० ना०

(३९) धा० २८३.४ : अमिय कलस आयास लिअउ सच्छरि उच्छंगह ।
सब सु भई परतक्खि 'अरीत अरीत कहत कह' ॥

उद्धृत दूसरे चरण के उत्तरार्द्ध का पाठ इन प्रतियों में है 'सह जय जय सु चाह कह'। 'अरीत (<अरिक्त)' का अर्थ न समझने के कारण यह पाठ-परिवर्तन किया गया है : दुर्बोध पाठ को निकाल कर प्रसंग से अनुमोदित एक सुगमतर पाठ दे दिया गया है ।

(४०) धा० ३८०.२। हदफ साह पेलन चढ़उ अप्पुहु 'उव्वउ अरुणंन' ।

इन प्रतियों में 'उव्वउ अरुणंन' के स्थान पर पाठ है 'उदधि अररान।' हदफ (=लक्ष्यवेध) खेलने के लिए घोड़े पर सवार हुए शाह की कल्पना 'उदित अरुण' के अप्रस्तुत के साथ ही संगत लगती है, 'उदधि अररान' की उक्ति तो किसी 'सेना' के ही अग्रसर होने के सम्बन्ध में संगत हो सकती थी ।

धा० शा० फ०

(४१) धा० ५७.३,.४ : 'जिउ' सूर तेज तुक्कय जल मीनह ।
'तिउ' पंगह भंय तुज्जन राय पीनह ।

इन प्रतियों में दोनों चरणों में 'जिउ' और 'तिउ' नहीं हैं। इनके न होने से अर्थ दुरूहता से लगता है; केवल छन्द में मात्राधिक्य समझ कर इन शब्दों को निकाल दिया गया है ।

(४२) धा० १०२.२ : चलउं अट्ठ सेवग छोड़ खग्गहं ।
जउ बोलउं 'स हत्थु तुह मत्थहं' ।

इन प्रतियों में दूसरे चरण का उत्तरार्द्ध है 'अत्थि दुल्लै सुव', जो निरर्थक है। यह 'तुम्हारे मस्तक पर मेरा हाथ है' की सौगंध न समझ पाने के कारण बदल कर किया गया है ।

(४३) धा० १९०.१ : मिलि पज्जहि गंगह रयनि 'दान कवि पति लेइ' ।
चढ़ित सुवासन सज्जुह हुअ सब सामंत समेत ॥

इन प्रतियोंमें प्रथम चरण का उत्तरार्द्ध है : 'धा०... ..मोह, अ० फ० 'कनि पति भृत (भृति-अ०) समूह (मूह—अ०)'। धा० त्रुटित है किन्तु उसके पाठ के अन्तिम अक्षर 'मोह' 'समूह' का ही कोई अंश है—उकार, ऊकार और ओकारमें प्रायः भ्रम किया जाता रहा है।[1] यह पाठ असंगत और अर्थहीन है, यह स्पष्ट है, स्वीकृत पाठ ही सार्थक है।

(४४) धा० २२७.३ बिन उत्तर 'तु मौन' सुघ रष्षी।
जिम वासुकि पावस रति नष्षी।

उद्धृत प्रथम चरण के 'तु मौन' के स्थान पर धा० अ० में है 'मोहन'; फ० में यह चरण छूटा हुआ है। 'मोहन' प्रसंग में निरर्थक है।

(४५) धा० २४७.१,.२ : गहि गहि कढ़ि सेना तिसह 'चलि हय गय मिलि सब्ब।'
जिम पावस पुब्बह अनिल 'हलि गत बद्दल सब्ब॥'

इन प्रतियों में प्रथम तथा द्वितीय चरणों के उत्तरार्द्ध क्रमशः हैं 'चलि (हलि—फ०) हय गय मिलि इक्क,' तथा 'हति बद्दल (चंदलु—फ०) बहु भिण्ण (भेव—धा०, भष्णि—फ०)'। 'इक्क' पाठ प्रसंग में सर्वथा निरर्थक है, यह प्रकट है। दूसरे चरण में पाठ-परिवर्तन 'हलिगत=हिलगते हैं—आस-पास आ जाते हैं' को न समझ पाने के कारण किया गया है।

(४६) धा० २६०.१ : यतो नीरं ततो नलिनी यतो नलिनी ततो नीरं।
त्यजति ग्रहं न यत्र ग्रहनी यतो ग्रहनी ततो ग्रहं।

इन प्रतियों में प्रथम चरण का उत्तरार्द्ध भी वही है जो पूर्वार्द्ध है : 'यतो (जेतो—अ० फ०) नीर ततो नलिनी'। अशुद्धि प्रकट है।

(४७) धा० २८७.६ : सामंत पंच पैसह परिग भिरइ भंति भए 'बिप्पहर।'
इन प्रतियों में 'बिप्पहर'=दो पहर, के स्थान पर 'बिब्बहर' है। अशुद्धि प्रकट है।

(४८) धा० ३०४.२ : 'काम' बान हर नयन निडर नीडर सोइ सुझार।
इन प्रतियों में 'काम' के स्थान पर पाठ 'इक्क' है। प्रसंग विभिन्न सामंतों के पृथ्वीराज को कन्नौज से दिल्ली की दिशा में आगे बढ़ाने की दूरी का है। धा० २७६ में नीडर के सम्बन्ध में कहा गया है :

नीडर निसंक झुझ्झोर रण अट्ठ कोस चहुआंन गहु।

इस 'अठ' की संख्या के लिए 'काम वाण (५)+हर नयन (३)' पाठ ही ठीक है, 'इक्क वाण हर नयन' स्पष्ट ही अशुद्ध है।

(४९) धा० ३११.१ दादुर 'सादुर' सोर नच पुर नारि सम।
इन प्रतियों में 'सादुर' शब्द नहीं है। 'दादुर' से वर्ण-साम्य होने के कारण प्रतिलिपि करते समय यह शब्द छूट गया है, यह स्वतः प्रकट है।

(५०) धा० ३१८.३ : 'जिहि' घन त्रिअ मरणु मिलि घर जाने।
सो काम देव त्रिअ चलि करि आने॥

इन प्रतियों में 'जिहि' शब्द नहीं है। छंद का मात्राधिक्य ठीक करने के लिए यह निकाल दिया गया है, यद्यपि इससे वाक्य अपूर्ण रह जाता है।

[1] देखिए इसी भूमिका में 'प्रयुक्त प्रतियाँ और उनके पाठ' शीर्षक के अन्तर्गत मो० सम्बन्धी विवेचन।

(५१) धा० ३५३.१, २ तब पाँन पुरसान ततार षाँन रुस्तम कर जोरह ।
आन साहि मरदान आन सुबिहान बिछोरहि ।

इन दो चरणों के स्थान पर धा० तथा अ० में एक ही चरण है :

धा० तबहि पान पुरसान पान रुस्तम बिच्छोरहि ।

अ० फ० षाँ पुरसान ततार पान सुबिहान बिछोरे ।

ऐसा लगता है कि प्रथम चरण के 'कर' से लेकर द्वितीय चरण के 'आन' तक का अंश निकला हुआ था, धा० या उसके किसी पूर्वज में दूसरे चरण के 'सुबिहान' तथा अ० या उसके किसी पूर्वज में 'रुस्तम' को निकाल कर पंक्ति की मात्राएँ ठीक करली गई । फ० में यह भूल नहीं है, किंतु फ० के परिचय में ऊपर हम चुके हैं कि उसमें ऐसे लगभग ९० छंद हैं जो अ० के छंदों की क्रम-संख्या के बाहर पड़ते हैं और ना० तथा स० में मिलते हैं । इस लिए यदि का फ० का पाठ उक्त पाठ-मिश्रण के अनंतर ठीक कर लिया गया हो तो आश्चर्य न होगा ।

(५२) धा० ३६२.१९ : परे चाह चालुक्क ते साठिसूने ।
मुरे मोरिआ सब्ब भये जात सूने ॥

अ० फ० में उद्धृत प्रथम चरण की 'साठि' तक की शब्दावली नहीं है । धा० में इस छूटी हुई शब्दावली के स्थान पर है : 'निने नूप सा सूप भाखेन' जो कि सर्वथा निरर्थक है, और केवल चरण पूर्ति के लिए गढ़ ली गई है ।

(५३) धा० ३९३.२ : हमहि मिलइ जि चंद सुनि चरह दलिद्दी लोभ ।
अरु जि दुनी गहि संचरइ हम सउं मिलत न सोभ ॥

द्वितीय चरण का उत्तरार्द्ध इन प्रतियों में है : धा० 'हय गय गहि न सोभ', अ० फ० 'हय गय गहि तन सोभ' । संभवतः पूर्व में पाठ त्रुटित होगया था, उसके स्थान पर प्रसंग के अनुकूल एक नवीन पाठ की कल्पना कर ली गई ।

(५४) धा० ३९९.३ : बहुन बउ पतिसाहि तुही ।
मन मझ्झ रहउ कवि साल जु ही ।
गयउ तु आज करि पइज्ज तुही ।
बनि जाउं साहि सुरतान सही ।

तीसरे चरण का पाठ इनमें है : 'दे अज्ज किधौं करि हे (करिहुं–अ०, करिहौं फ०) जु (कि–अ०, के–फ०) नही' । प्रथम तथा द्वितीय चरणों के साथ स्वीकृत पाठ ही संगत है । प्रसंग यहाँ पर 'साल'='शल्य' का है । चंद गोरी से कहता है कि "(१) उस शल्य को काढ़ने में तूही समर्थ है [२] यह जो शल्य कवि के मन मे [खटकता] रहा है, [३] वह आज गया ही है यदि तू [उसके निकालने की] प्रतिज्ञा कर, [४]और (तदनंतर) हे सुल्तानों के शाह, मैं वन चला जाऊँ [यही मेरे मन में है] ।" प्रकट है कि इस प्रसंग में गोरी से 'नही' कराने की बात, जो इन प्रतियों के पाठ में आती है चंद मुख पर भी ला नहीं सकता था ।

अ० फ० म० ना० उ० ज्ञ० स०

(५५) धा० २४२.१ : सुनि कज्जम राजन चढिअ 'बहु पष्वर समाहाउ ।'
मनुह लंक बिग्रह करन चलउ रघुप्पतिराउ ॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के उत्तरार्द्ध के रूप में है : 'सहस संष धुनि चाव (चाय–म०, चाउ ना०, चाइ–उ० स०)' । इन प्रतियों में आगे शंखध्वनि नाम के योगी-दल का प्रक्षिप्त प्रसंग है । हो सकता है कि इन प्रतियों के इस पाठांतर का संबंध उक्त प्रक्षेप से हो । अन्यथा युद्ध के प्रसंग में शंखध्वनि का उल्लेख ग्रंथ में नहीं हुआ है ।

(५६) धा० ३१२.४ : केवर भाष पराक्रति संक्रति देव सुर।
के गुन स्थान सुजान विराजहि राजवर।

उद्धृत दूसरे चरण का पाठ इन प्रतियों में है : 'के वरवीन विराजहि वीर वर', फ० 'के वरि वीन प्रवीनु विराजहि वीर वर', म० 'कें वर वीन विराजत राज दरवार वर', उ० स० 'के भर बीन विराजित राजहि बार पर'। किंतु वीणा में प्रवीण दासियों का उल्लेख इसके पूर्ववर्ती छंदमें ही हो चुका है।
तहं सहं अथ्यि सुवीन प्रवीन ति दासि दस।
इस लिए इन प्रतियों की पाठ-विकृति प्रकट है।

(५७) धा० ३२६.१ : किय अचिरज तब राजगुरु स्यायनु राज रस रत्त।
जस भावी नर भोगवइ तस विधि अप्पइ मत्त।

इन प्रतियों में प्रथम चरण का पाठ है: 'मानि (मन्नि-शा० स०) राजा गुरु राजरस (रसि-फ०) तें कवि (कविवर-ना० शा० स०) बरनी (बरनी-फ०) रत्ति।' 'स्यायनु राज रसरत्त' में पृथ्वीराज के भावी पतन की जो व्यंजना है, वही चरण २ के साथ संगत है, इन प्रतियों के पाठ में वह संगति नहीं है।

श० फ० ना०

(५८) धा० ३०२ : परत बघेल सु मेल किय इन राठउर सु भार।
'जब दसकोस ढिलिय रही' फिरि तोमर पाहार॥

इन प्रतियों में द्वितीय चरण के पूर्वार्द्ध के स्थान पर है 'दस योजन ढिल्लीय रहि (ढिल्ली परहू—ना०)'। कुल दूरी कन्नौज और दिल्ली के बीच 'पांच धाट सो कोस' कही गई है (धा० २६६.३), और इस दूरी को ग्यारह सामन्तों ने निपटाया है, जिनमें से अन्तिम पाहाड़ तोमर है (धा० ३०४)। प्रकट है कि यह दूरी जिसे पाहाड़ तोमर ने तै कराया दस कोस की ही हो सकती है, दस योजन की नहीं।

म० ना० उ० शा० स०

(५९) धा० ४५.३-४ : षट छह जिहि सामंत सोइ प्रथीराज कोइ।
दान षग्ग भय मानि न मुक्कइ तात सोइ॥

इन चरणों के स्थान पर इन प्रतियों में है :
सत्त सेन सामंत सूर छह मंडलिय।
बरन इच्छ वर मो हिअ हंति अखंडलिय॥

'षट+दह'=सोलह के स्थान पर सामन्तों की संख्या १०० करने के लिए उद्धृत प्रथम चरण में पाठ-परिवर्तन किया गया लगता है, किन्तु इन प्रतियों का चरण का शेष पाठ अर्थहीन हो गया है; उद्धृत द्वितीय चरण का उत्तरार्द्ध भी इसी प्रकार इन प्रतियों में अर्थहीन हो गया है।

(६०) धा० ६३ : सं साहिस्स 'सहाब' साहि सबलं इच्छामि दुव्वाइने।

इन प्रतियों में 'साहिस्स सहाब' के स्थान पर म० 'साहि साहि', द० 'बसाइ', उ० स० 'बसाह साह' ना० 'बसाहि बद्ध' पाठ हैं। ऐसा लगता है कि पूर्ववर्ती पाठ 'साहिस्स [सहा] ब साहि' का 'सहा' निकल गया था, इसलिए इन प्रतियों में यह पाठ-विकृति हुई : म० में प्रक्षेप का प्रयास कदाचित् नहीं किया गया, शेष में प्रसंग से 'बसाहि' के बाद 'साहि' जोड़ कर पाठ पूरा कर लिया गया।

(६१) धा० १७८.१ : आयस राषम सथ्थि चलि 'असिअ सहस' तिहि सथ्थ।

इन प्रतियों में 'असिय सहस' के स्थान पर 'अयुत एक' है, जो स्पष्ट प्रक्षेप है और संख्या बढ़ा कर बताने के लिए किया गया है।

(६२) धा० २८४.१ : पुष्फंजलि 'सिरि मंडिप्रभु' फिरि लग्गी गुर पाय।

'सिरि मंडि प्रभु' के स्थान पर इन प्रतियों में है 'दिसि बाम कर' जो कि सर्वथा अर्थहीन है। पूर्व के छन्द से इस छन्द की उक्ति-शृंखला है और उसका अन्तिम चरण स्वीकृत पाठ का ही समर्थन करता है :

पुष्फांजलि पंग सिर पाइ जयति बिअ कामदेव।

(६३) धा० १८६.१ : जाम एक छनदा घटित 'ससि हू सत्ति' निवारि।
कहुं कामिनि सुख रति समर नृपति हु नींद बिसारि॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के 'ससि हू सत्ति' के स्थान पर पाठ 'सत्तमि सत्त' है। सप्तमी को केवल एक प्रहर रात्रि गत होने से उसके सत्व का निवारण नहीं हो जाता है, सप्तमी को लगभग दो प्रहर रात्रि तक उसका सत्व बना रहता है, उसके अनन्तर उसमें परिवर्तन आता है। इसलिए इन प्रतियों का पाठ विकृत है।

(६४) धा० १९२.३ : 'बहुत किअउ आलाप' आउ कनवज्ज मुकट मनि।
इह ढिल्लिअसुर वृत्त बिअउ नन कहुं तुइझ गिनि॥

उद्धृत प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध का पाठ इन प्रतियों में है 'कवि आदर बहु कियौ'। किन्तु इस पाठ में आगे आए हुए कथन के विषय में 'कहा' अर्थ वाची कोई क्रिया नहीं आती; 'बहुत किअउ आलाप' में यह त्रुटि नहीं है। अतः इन प्रतियों का पाठ विकृत लगता है।

(६५) धा० १९७.१ : सुनउ सबै सामंत हो कहइ नृपति प्रथीराज।
जउ अछ्छउ बिन षेत मइ तउ दक्खिन नयर बिराज॥

प्रथम चरण के स्थान पर इन प्रतियों में है :

सकल सूर सामंत सम वर बुल्यौ प्रथीराज।

इस पाठ में एक तो कोई सम्बोधन नहीं है, दूसरे 'सूर' शब्द अनुपयुक्त है : केवल सूर सामन्तों से नहीं, पृथ्वीराज ने सभी सामन्तों से कहा होगा; फिर 'वर' शब्द भी भरती का है। स्वीकृत पाठ में ये त्रुटियाँ नहीं हैं।

(६६) धा० २३३.१ : मदन सराल ति विनष्टा 'निमिष दइत' प्रांन प्रानेन।
नयन प्रवाह ति विनष्टा दिवा कथय कथा॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के 'निमषि दइत' के स्थान पर 'जिह्वा रट्योति' है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है 'मदन के शर रूपी काल से विनष्टा [संयोगिता] के प्राण एक निमिष के लिए दयित (प्रिय पति) के प्राणों से [अभिन्न] हो रहे।' प्रकट है कि 'निमिष दइत' स्थान पर 'जिह्वा-रट्योति' शब्द सर्वथा निरर्थक हैं, और पूरे वाक्य के अर्थ को छिन्न भिन्न करते हैं।

(६७) धा० २३४.४ : मोहि कंप सुरलोक 'कंप तप्पिय तह' नाग नर।

इन प्रतियों 'कंप तप्पिय तह' के स्थान पर पाठ है : 'पन्न (पंति–म० उ० स०) पन्नग अरु (पंग नरु–म० पंनगरु–उ० स०)'। 'नाग' ठीक बाद में आता ही है, इसलिए 'पन्नग' वाले कोई भी पाठ सम्भव नहीं हैं।

(६८) धा० २४६.१९ : 'सिंधु सा बंध' बंधे धुरंगा।
संग संगीत डरि येभ संगा।

'सिंधु सा बंध' स्थान पर इन प्रतियों में है। 'विरद (विरुद–ना०) वरदाइ'। प्रसंग युद्ध में लाए गए हाथियों का है। प्रथम चरण का आशय है 'सिंधु देश के धुरंगे (हाथी) बन्धनों से बँधे हुए हैं'। यहाँ पर 'विरद वरदाइ' सर्वथा निरर्थक है।

(६९) धा० २७८,१ : 'चंपत पिच्छोरिय गति' चषइ अपन तन दिष्ष।

तन तुरंग तिलु ति तिलु कर भयउ कन्ह मन भिच्च ॥

प्रथम चरण पूर्वार्द्ध का पाठ इन प्रतियों में है : म० उ० स 'चंपत अच्छरि रिंह (रिंठ–उ०) लगि', ना० 'चंपित अच्छरि डिभ लगि' जो सर्वथा अर्थहीन है; अप्सरा का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है।

(७०) धा० २८२.२ : धरणी कन्ह परत प्रगट उट्ठि पंगु नृप हंकि।
मनु अकाल 'अवली जरल' गहि अतुट्टि धनु रंक ॥

इन प्रतियों में 'अवली जरल' के स्थान पर है 'संकरह हसि'। अकाल के समय शंकर का हँसना एक भद्दी कल्पना है, जो कि पूर्ववर्ती पाठ की दुर्बोधता के कारण उसको हटाकर रक्खी गई है; स्वीकृत पाठ का आशय है : मानो अकाल में [रंक-] अवली ने, जो रो–चिल्ला रही थी, अटूट धन प्राप्त किया हो।'

ना० उ० ज्ञा० स०

(७१) धा० ३४७ : सहहिं भीर नृप पीर जिहिं 'जिन सिर झरहिं तुधार।'
लाज धरहिं तिन वरि, गणहिं ते पुहु पंच हजार ॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के 'जिन सिर झरहिं तुधार' के स्थान पर है, 'लज्या धर (धरन–ज्ञा०) भर भार', तथा दूसरे चरण के 'लाज धरहिं' के स्थान पर है 'धरनि (भिरण–ना०) धरणि।' 'धरनि धरणि' असम्भव है, और 'भिरण धरणि' निरर्थक। स्वीकृत पाठ ही सम्भव है।

(७२) धा० ३५२.५ : तिहि गहन हउं इछहुं 'सुमन सच्च' करतार करु।
मग्गहु अगम्म भूत संगहहु धरहुं लज्ज लज्जहुं न भर ॥

इन प्रतियों में 'सुमन सच्च' के स्थान पर है 'साच झूठ'। यहाँ गोरी अपने सामंतों को आक्रमण का उद्देश्य बताता हुआ कह रहा है कि 'उसी पृथ्वीराज को मैं पकड़ना चाहता हूँ, मेरे मन की वह बात कर्त्तार सच्ची (पूरी) करे।' यहाँ पर 'साच' के साथ 'झूठ' असंगत है, 'झूठ' कहने से सामंतों से वह उत्साहपूर्ण सहयोग की अपेक्षा नहीं कर सकता है।

(७३) धा० ३६५.२ : सहउं न बोल संमुह हनयउ बान षांन पुरासन।
'दुहु दुज्जन पूजिअ धरी' दिन पलटउ चहुआन ॥

इन प्रतियों में दूसरे चरण के पूर्वार्द्ध के स्थान पर है 'इह अपुब्ब संजोगि सुनि'। संयोगिता यहाँ पर कहीं नहीं आती है, युद्ध-विषयक विभाई–संयोगिता सम्वाद के प्रक्षेप को रचना में पिरोने के लिए यह प्रक्षेप किया गया है।

म० उ० स० ज्ञा०

(७४) धा० ११५.३-४ : चहुआंन राठवर जाति पुंडीर गुहिल्ला।
बड गूजर पामार कुरंभ जांगरा रोहिल्ला।
इत्ते सहित्त भुअ पति चलउ उडी रेन किन्नउ छुभउ।
एक एकु लष्ष वह लष्षवइ चले सथ्थ रजपुत्त सउ ॥

उद्धृत प्रथम दो पंक्तियों का पाठ इन प्रतियों में है :

चाहुआन कूरंभ गौर गाजी षडगुज्जर।
जादव रा रघुवंस पार पुंडीर ति पष्षर॥

'रा' 'राज' के लिए आता है, किन्तु यहाँ किसी राजा या सामंत का प्रसंग नहीं है, यहाँ तो उन राजपूत जातियों का प्रसंग है जो पृथ्वीराज के साथ कन्नौज गईं थीं; 'पार पुंडीर ति पष्षर' तो सर्वथा निरर्थक है।

(७५) धा० १८४ अ. ३-४ : अंगोले लोल डोलं एक बोलं अमोलं।
पुष्पांजलि पंग सिर-नाइ जयति विश्व कामदेव ।

इन पंक्तियों के स्थान पर इन प्रतियों में है :

इंद्रानी लोल डोला चपल मतिधरा एक बोली अमोली।
पूहपा (पूहपा-म०) चानी विसाला सुभग (सुभ-म०) गिरवरा जैतरंभा सुबोली।

स्वीकृत पाठ का अर्थ है : 'उन [नर्तकियों की] अंगूठियाँ [उनकी घूमती-फिरती उँगलियों के साथ] चपलता पूर्वक डोल रही थीं और [उनके मुखों में] एक ही अमूल्य बोल था, पंग (जयचन्द) के सिर पर पुष्पाञ्जलि डाल कर [वे कह रही थीं] "हे दूसरे कामदेव, तुम्हारी जय हो !" इन प्रतियों के पाठ में 'सुबोली' अन्तिम चरण में पुनः आता है, किन्तु 'एक बोली अमोली' और 'जैत रंभा सुबोली' का कोई कर्म नहीं है। 'पूहपा बानी विसाला सुभग गिरवरा' तो निरर्थक है ही।

(७६) धा० १९१ : 'दस हथ्थिअ' मुत्तिय सघन 'सत तुरंग जिति भाय।'
दब्ब सरस बहु संगि लिय भट्ट समप्पण जाय ॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के 'दस हथ्थिय' के स्थान पर है 'तीस करिय' (करी—म० उ०) और 'सत तुरंग जिति भाय' के स्थान पर है : म० 'द्वै से चपल तुरंग', उ० स० 'द्वै से तुरंग बनाय'। इसके अतिरिक्त म० में द्वितीय चरण के 'जाय' के स्थान पर 'अंग' है। प्रक्षेप-क्रिया अति प्रकट है।

(७७) धा० २०४.२ : सुनि सुंदरि वर वज्जने 'चढ़ी अवासह उट्ठि'।

इन प्रतियों में चरण के उत्तरार्द्ध का पाठ है : 'अई अपुब्ब कोइ (कौ-म०) दिठ्ठ (दुट्ठ-उ०, दुट्ठि-म०)'। प्रसंग में इस पाठ की कोई सार्थकता नहीं है। वाक्यों को सुनकर 'अई (?) अपूर्व कोई दिखाई पड़ा' संगतिहीन भी लगता है।

(७८) धा० २२७.४ : विन उत्तर तु मौनमुष रष्पी।
जिम चातुकि पावस रति नष्षी ॥

उद्धृत दूसरे चरण का पाठ इन प्रतियों में है : 'मन वच क्रम प्रीतम रस कष्षिय' (चषीय—म०)। ऐसा लगता है कि अन्तिम चरण किसी प्रकार नष्ट हो गया था, इसलिए उसके स्थान पर प्रसंग के अनुसार एक सर्वथा नवीन चरण की कल्पना कर ली गई।

(७९) धा० २२८.४ : दे अंचल चंचल दिग मुदइ।
कुल सुभाउ तुरी जिम कुदइ।

इन प्रतियों में उद्धृत दूसरे चरण का पाठ है 'विरहायन दाहन रवि उदहि'। यह पाठ सर्वथा असंगत है। प्रथम मिलन के अनन्तर पृथ्वीराज के चले जाने पर संयोगिता की जो दशा होती है, उसी का इन पंक्तियों में वर्णन है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है, 'वह अञ्चल देकर अपने चञ्चल नेत्रों को मूंदती [किन्तु वे न मान रहे थे] जैसे अपने कुल-स्वभाव के कारण बाँधने पर भी घोड़ा कूदा-उछला करता है।' विरह का भाव कुछ और तीव्रता के साथ लानेके लिए यह प्रक्षेप किया गया लगता है।

(८०) धा० २६७.८ : मिटयउ न जाइ कहनो वय कवि चंद सार सा मंत।
प्राची हय गय वहनो रहनो गत चिंता नरेंद्र लह ॥

इन प्रतियों में दूसरे चरण का पाठ है : 'प्राची क्रम्म विधानं नागानं भावई गत्तं।' किन्तु यहाँ 'कर्म्म विधान' का कोई प्रसंग नहीं है : 'प्राची' को प्राचीन समझ लिया गया है। स्वीकृत पाठ ही सार्थक और संगत है, जिसका आशय है 'जब कि प्राची (पूर्व—कन्नौज) के हय, गय, वाहन, रथादि तथा नरेन्द्र (जयचन्द) गतचिंता हो रहे हैं'।

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित पाठ सम्बन्ध स्थापित होते हैं :—

१—धा० मो० म० ना० उ० ज्ञा० स०

२—धा० मो०

३—मो० ना० उ० शा० स०
४—मो० ना०
५—धा० अ० फ० म० ना० उ० शा० स०
६—धा० अ० फ० ना०
७—धा० अ० फ०
८—अ० फ० म० ना० उ० शा० स०
९—अ० फ० ना०
१०—म० ना० उ० शा० स०
११—ना० उ० शा० स०
१२—म० उ० शा० स०

इन पाठ-सम्बन्धों को हम स्थूल रूप से निम्नांकित रेखाचित्र द्वारा व्यक्त कर सकते हैं :—
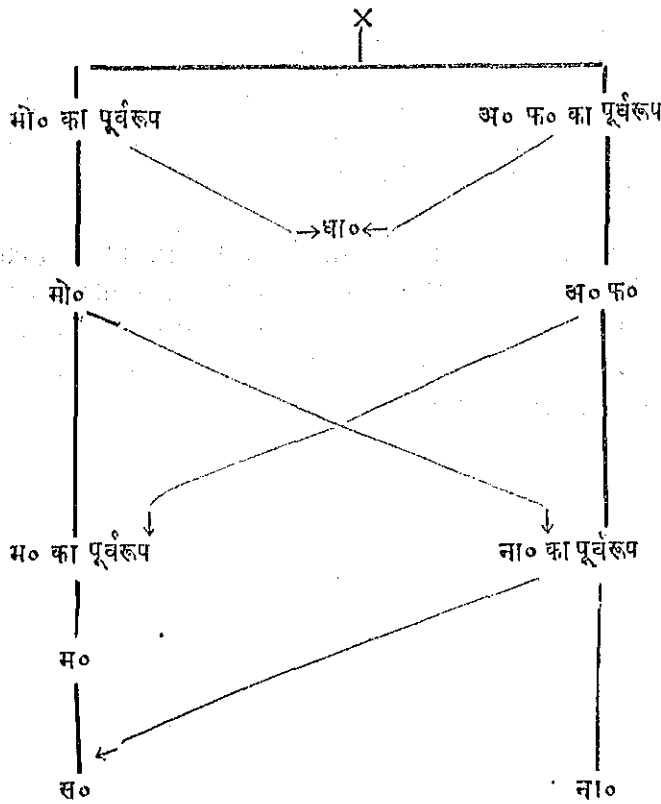
यहां पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह पाठ-सम्बन्ध-निर्धारण विभिन्न प्रतियों के उन्हीं अंशों के आधार पर किया गया है जो रचना के मूल रूप के लिए स्वीकृत हुए हैं।

पाठ-निर्धारण के आधार और सिद्धान्त

ऊपर के पाठ-सम्बन्धों को देखने पर ज्ञात होगा कि रचना के समस्त पाठ स्थूल रूप से मो० तथा अ० फ० के पूर्वरूपों से विकसित हुए हैं, और पाठ की दृष्टि से स्वतन्त्र शाखाओं का निर्माण

केवल मो० तथा अ० फ० के ये पूर्वरूप ही करते हैं, शेष समस्त पाठ उक्त दोनों के मिश्रण से निर्मित होते हैं। इसलिए पाठ-निर्धारण की दृष्टि से मो० तथा अ० फ० सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। धा० पाठ मो० तथा अ० फ० के उक्त पूर्वरूपों के मिश्रण से निर्मित है, उनके प्राप्त पाठों से नहीं, इसलिए उसका भी महत्व है, यद्यपि पाठ-मिश्रण के कारण वह महत्व पाठ-निर्धारण के लिए घट गया है। रचना के प्रारम्भ के जिन अंशों में मो० का पाठ अप्राप्य है, उन अंशों के लिए धा० का महत्व प्रकट है। मो० के अन्यत्र के त्रुटित पाठों के लिए भी धा० की सहायता ली जा सकती है। इसी प्रकार अ० फ० के त्रुटित पाठों के स्थलों पर धा० की सहायता ली जा सकती है। एक बात और धा० के मिश्र पाठ से प्रमाणित होती है, वह यह है कि मो० तथा अ० फ० के वे पूर्वरूप जिनके मिश्रण से धा० तैयार हुआ, धा० से बड़े नहीं थे। ऊपर रचना के मूल रूप का जो आकार निर्धारित हुआ है, वह धा० से भी कुछ छोटा है, यह हम देख चुके हैं।

अतः पाठ-निर्धारण के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त निकलते हैं :—

अपने मूल रूपों में मो० तथा अ० फ० पाठ मात्र स्वतन्त्र हैं, इसलिए जहाँ पर इन दोनों में एक पाठ मिलता है, अन्य कोई पाठ मान्य नहीं होना चाहिए।

जहाँ पर मो० तथा अ० फ० भिन्न-भिन्न पाठ देते हों, और एक दूसरे से विकृत हुआ प्रमाणित होता हो, वहाँ वही पाठ स्वीकृत होना चाहिए जिससे अन्य पाठ विकृत हुआ प्रमाणित होता है।

जहाँ पर मो० तथा अ० फ० एक दूसरे से सर्वथा भिन्न पाठ देते हों, वहाँ पर समस्त प्रकार की सम्भावनाओं पर ध्यान रखते हुए दोनों में से जो पाठ मूल का लगता हो उसे स्वीकार करना चाहिए।

कहना नहीं होगा कि प्रस्तुत कार्य में इन सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से पालन किया गया है। किंतु प्रतिलिपि-परम्परा में भाषा निरन्तर अधिकाधिक आधुनिक होती जाती है, केवल इसी बात को ध्यान में रखते हुए मो० तथा अ० फ० पाठों में जहाँ पर समान किन्तु अपेक्षाकृत बाद का रूप मिलता है, और धा० या किसी अन्य प्रति में प्राचीनतर रूप मिलता है, वहाँ पर अपवाद स्वरूप इस प्राचीनतर रूप को स्वीकार किया गया है।

—।*।—

८. पृथ्वीराज रासो के निर्धारित पाठ की छंद-सारिणी

संपादित	धा०	मो०	अ० फ०	म०	ना०	द०	स०
१.१	२१	३०	१. साट० १	१. साट०१	१.१	१.८	१.५४
१.२	२४	२९	१. साट० २	१. साट०२	१.२	१.७	१.५३
१.३	२२	२७	१. विरा० १	१. विअ०	१.५	१.११	१.७०-७५
१.४	२	खं०	२. भुजं० १	२. भुजं०	१.८	१.३	१.५.१०
१.५	२०	२५	२. दो० ९	२. दो० ९	१.१६/ २.१२४	१.१६	१.८१
१.६	२५	३१	२. साट० ३	२. साट०	४.१	३.१	३.१
२.१	३१	३८	६. पद्ध० १	खं०	२८.३	२८.५	४८.१९-३२
२.२	३२	३९	६. गाथा १	खं०	२८.५	२८.७	४८.९
२.३	३३-३४	४०-४१	६. पद्ध० २	खं०	२८.६	२८.८	४८.४९-७४
२.४	३५	४२	६. रासा १	खं०	२८.९	२८.११,	४८.७९
२.५	३६/१	४३	६. पद्ध० ४/१	खं०	२८.११, १३,१५,१६	२८.१३, १५	४८.८१-८२, ८४-८५,९१-९८
२.६	३६/२	४७	६. पद्ध० ४/२	खं०	२८.२६	२८.१७/ २८.२८	४८.९९-१००/ ४८.१२७
२.७	३७	४८	६. भुजं० ५	खं०	२८.४२	२९.१	४८.२२५.२६७
२.८	३८	४९	६. दो० १	खं०	२८.४३	२९.२	४८.२७१
२.९	३९	५१	६. दो० ३	४.३	२८.४७	२९.६	४९.२२
२.१०	४०	५० ५२	६. पद्ध० ६	खं०, ४,४	२८.४५, ४८	२९.५, २९.७	४९.१२,२३, २६
२.११	४१	५३	६. दो० ४	५.२३	२८.४९	२९.८	५०.२७
२.१२	४२	५४	६. दो० ५	५.२५	२८.५०	२३.९	५०.२८
२.१३	४३	५७	६. नारा० ७	५.१६	२८.५३	२९.११	५०.१६-२०,
२.१४	४४	५८	६. रासा २	५.१८	२८.५४	२९.१३	५०.२२
२.१५	४५	५९	६. रासा ३	५.२७	२८.५६	२९.१५	५०.३०
२.१६	४६	६०	६. गाथा २	५.३०	२८.५७	२९.१६	५०.३३

२.१७	४७	६१	६. साट० १	५.३३	२८.५९	२९.१८	५०.३६
२.१८	४८	६२	६. साट० २	५.३४	२८.६०	२९.१९	५०.३७
२.१९	४९	६३	६. अनु० २	५.३५	२८.६१	२९.२०	५०.३८
२.२०	५०	६४	६. साट० ३	५.४३	२८.६२	२९.२२	५०.४७
२.२१	५१	६५	६. दो० ७	५.३८	२८.६३	२९.२३	५०.४१
२.२२	५२	६६	६. दो० ८	—	२८.६४	२९.२४	५०.४२
२.२३	—	—	६. दो० ९	५.४०	२८.६६	२९.२६	५०.४४
२.२४	५३	६७	६. साट० ४	५.४१	२८.६७	२९.२७	५०.४५
२.२५	५४	६८	६. अनु० ३	५.४५	२८.६८	२९.२८	५०.४९
२.२६	५५	६९	६' दो० १३	५.४८	२८.६९	२९.२९	५०.५२
२.२७	५६	७०	६. दो० १४	५.५२	२८.७१	२९.३०	५०.५६
२.२८	५७	७१	६. अडि०	५.५५	२८.७१	२९.३१	५०.६६
३.१	५८	७२	७. दो० १	५.१/ ८.१	२०.४०/ २०.७२अ	३०.४०	५०.१/ ५७.१२२,५७.३६
३.२	५९	७४	७. साट० २	८.२आ	२९.३	३१.३	५७.५८
३.३	६०	७५	७. दो० २	८.३	२९.१८	३१.१६	५७.४५
३.४	६२	७७	७. कवि० २	८.५	२९.२६	३१.२४	५७.६२
३.५	६४	७८	७. गाथा १	८.६	२९.२९	३१.२७	५७.७०
३.६	६३	७९	७ साट० ३	८.७	२९.३०	३१.२८	५७.७१
३.७	६५	८०	७. रासा १	८.९	२९.३३	३१.३१	५७.७४
३.८	६६	८१	७. रासा२	८.११	२९.३३अ	३१.३३	५७.७९
३.९	६७	८२	७. दो० ५	८.१२	२९.३४	३१.३४	५७.८०
३.१०	६८	८३	७. दो० ११	८.१८	२९.४०अ	३१.४१	५७.८७
३.११	७०	८५	७.कवि० ३	८.२०	२९.४२	३१.४३	५७.९०
३.१२	७१	८६	७. गाथा२	८.२१	२९.४३	३१.४४	५७.९१
३.१३	७२	८७	७. दो० १२	८.२३	२९.४४अ/१	३१.४५/१	५७.१०२
३.१४	७३	८८	७. दो० १३	८.२५	२९.४४अ/२	३१.४५/२	५७.११४
३.१५	७४	८९	७. दो० १४	८.२६	२९.४५	३१.४७	५७.१०१
३.१६	७५	९०	७.अडि० १	८.२७	२९.४६	३१.४८	५७.११८
३.१७	७६	९१	७. नारा० १	८.२८	२९.४६अ	३१.४९	५७.११९·१३४
३.१८	७७	९२	७.अडि० २	८.२९.१	२९.४७	३१.५०	५७.१३७
३.१९	७८	९३	७.अडि० ३	८.२९.२	२९.४९	३१.५२	५७.१५१ ५७.२११
३.२०	८३	९८	७.अडि० ४	८.३०	२९.५४	३१.५९	५७.२२४
३.२१	८४	९९	७. दो० १६	८.३४	२९.५५	३१.५८	५७.२२५
३.२२	८५	१००	७. दो० १७	८.३५	२९.५६	३१.५९	५७.२२७
३.२३	८६	१०१	७. दो० १८	८.३६	२९.५९	३१.६०	५७.२२८
३.२४	८७	१०२	७. दो० १९	८.३७	२९.५८	३१.६१	५७.२३०
३.२५	८८	१०३	७. दो० २०	८.३८	२९.५९	३१.६२	५७.२३१

३.२६	८९	१०४	७.दो० २१	८.३९	२९.६०	६१.६३	५७.२३३
३.२७	९०	१०५	७. कवि० ४	८.४१	२९.६२	६१.६५	५७.२३६
३.२८	९१	१०६	७. अडि० ५	८.४३	२९'६४	६१'६७	५७.२४०-२४८
३'२९	९२	१०७	७.क[illegible]० ५	८.४४	२९.६५अ	३१.६८	५७.२४९
३.३०	९३	१०८	७. भुजं० [ ]	८.४५	२९.६७	३१.७०	५७.२५९
३.३१	९४	१०९	७. कवि० ६	८.४७	२९.७३	३१.७६	५७.२६७
३.३२	९५	११०	७. कवि० ७	८.४८	२९.७४	३१.७७	५७.२६९
३.३३	९६	१११	७. कवि० ८	८.४९	२९.७५	३१.७८	५७.२७१
३.३४	९७	११२	७.गाथा० ६	८.५१	२९.७७	३१.८०	५७.२७३
३.३५	९८	११३	७. दो० २२	८.५२	२९.७८	३१.८१	५७.२७४
३.३६	९९	११४	७.कवि० ९	८.५३	२९.७९	३१ ८२	५७.२७५
३.३७	१००	११६	७.दो० २२	८.५५	२१.८१	३१.८४	५७.३०८
३.३८	१०१	११७	७.दो० २३	८.५६	२९.८२	३१.८५	५७.३०९
३.३९	१०२	११८	७.अडि० ६	८.५७	२९.८३	३१.८६/१	५७.३१०
३.४०	१०३	११५	७. दो० २४	८.५४	२९.८०	३१.८३	५७.३०७
३.४१	१०४	११९	७.अडि० ७	८.५८	२९.८४	३१.८६/२	५७.३११
३.४२	१०५	१२०	७. दो० २५	८.५९	२९.८५	३१.८७	५७.३१२
३.४३	१०६	१२१	७.रासा ४	८.६०	२९.८६	३१.८८	५७.३१३
४.१	११५	१३२	८.कवि० १	१०.३४	३१.४अ	३३.५	६१.१०५
४.२	११६	१३३	८.दो० ११	१०.६१	३१.२०	३३.१६	६१.१८१
४.३	११७	१३४	८. दो० १०	१०.६१	३१.२१	३३.१७	६१.१८२
४.४	११८	१३५	८. दो० ९	१०.६१	३१अ.१७	३३.१८	६१.१८३
४.५	११९	१३६	८. दो० १२	१०.१०५	३१अ.२०	३३.२१	६१.२७२
४.६	१२०	१३७	—	—	३१अ.२१ क	३३.२२	६१.२७५
४.७	१२१	१३८	८. पद्ध० २	१०.११९	३१अ.२३	३३.२४	६१.२९०-२९८
४.८	१२२	१३९	८.दो० १३	१०.१२२	३१अ.२५	३३.२६	६१.३०१
४.९	१२३	१४०	८. दो० १४	१०.१२३	३१अ.२६	३३.२७	६१.३०२
४.१०	१२४	१४१	८. भुजं० ३	१०.१२६	३१अ.२७	३३.२८	६१.३०५-३१०
४.११	१२७	१४३	८. त्रिभं० ५	१०.१३६	३१अ.३८	३३.३५	६१.३२६-३२९
४.१२	१२८	१४५	८. साट० १	१०.१३४	३१अ.४१	३३.३८	६१.३२४
४.१३	१२९	१४६	८.रासा१	१०.१३९	३१अ.४२	३३.३९	६१.३३५
४.१४	१३०	१४७	८.नारा० [ ]	१०.१४१	३१अ.४४	३३.४०	६१.३३९-३४१
४.१५	१३१	१४८	८. दो० १८	१०.१२५अ	३१अ.४६	३३.४२	६१.३४९
४.१६	१३२	१४९	८. दो० १९	१०.१२६ अ	३१ अ. ४७	३३.४३	६१.३५०
४.१७	१३३	१५०	८. दो० २०	१०.१२८अ	३१अ.४९	३३.४५	६१.३५२
४.१८	१३४	१५१	८. दो० २१	१०.१२९अ	३१अ.५०	३३.४६	६१.३५३
४.१९	१३५	१५२	८. दो० २२	१०.१३१अ	३१अ.५२	३३.४८	६१.३५५
४.२०	१३६	१५३	८. भुजं० १७	१०.१३३अ	३१अ.५५	३३.५०	६१.३५८-३६९
४.२१	१३७	१५४	८. दो० २३	—	३१अ.५७	३३.५२	६१.४४६

४.२२	१३८	१५५	८. भुजं०८	१०.१५२	३१अ.५८	३३.५३	६१.३८८-३९४
४.२३	१३९	१५७	८. भुजं०९	१०.१६९	३१अ.६५	३३.६०	६१.४२५-४३०
४.२४	१४१	१६०	८.दो०२५	१०.१७२	३१अ.६८	३३.६२	६१.४३५
४.२५	१४२	१६१	८. मोती०[ ]	१०.१७३	३१अ.६९	३३.६५	६१.४३६-४४५
५.१	१४६	१६५	९.मुडि०१	१०.१९२	३२.४आ	३३.६८	६१.४६४
५.२	१४७	१६८	९. दो०६	१०.२०६	३२.६आ	३३.७३	६१.४७८
५.३	१४८	१६९	९. रड्डा १	१०.२०९	३२.९-१०	३३.७४	६१.४८१
५.४	१४९	१७२	९. मुडि०२	१०.२१८	३२.१३	३३.७७	६१.४९०
५.५	१५२	१७३	९. आडि०१	१०.२२१	३२.१५	३३.७९/१	६१.४९७
५.६	१५३	१७४	९मुडि०[५]/१	१०.२२२	३२.१६	३३.७९/२	६१.४९८
५.७	१५१	१७५	९. साट०१	१०.२२८	३२.२२	३३.८०	६१.५०४
५.८	१५४	१७६	९.मुडि०[५]/२	१०.२२९	३२.२४	३३.८१	६१.५०५
५.९	१५५	१७८	९. मुडि०४	१०.२३४/ १०.२३७	३२.२५	३६.८२,८५	६१.५१०, ६१.५१३
५.१०	१५८	१८०	९. साट०२	१०.२४१	३२.३०	३३.८८	६१.५२४
५.११	१५९	१८१	९.दो०२८	१०.२४४	३२.३१	३२.८९	६१.५२७
५.१२	१६०	१८२	९. दो०११	१०.२४५	३२.३२	३३.९०	६१.५४९
५.१३	१६१	१८३	९. भुज०३	१०.२६७	३२.३६	३३.९४	६१.५७१-७७
५.१४	१६२	१८४	१. दो०१२	१०.२६८	३२.४२	३३.९५	६१.५७८
५.१५	१६३	१८५	९. दो०१३	१०.२७७	३२.४४	३३.१००	६१.५८८
५.१६	१६४	१८६	९. दो०१४	१०.३१२	३२.७६	३३.१३२	६१.६४८
५.१७	१६५	१८७	९. दो०१५	१०.३१४	३२.७७	३३.१३३	६१.६५०
५.१८	१६६	१८८	९. दो०१६	१०.३१७	३२.७९	३३.१३५	६१.६५३
५.१९	१६७	१८९	९. कवि०२	१०.३१८	३२.८०	३३.१३६	६१.६५४
५.२०	१६८	१९०	९. दो०१७	१०.३२१	३२.८२	३३.१३८	६१.६५७
५.२१	१६९	१९२	९. दो०२३	१०.३३१	३२.८३	३३.१३९	६१.६८७
५.२२	१७०	१९३	—	१०.३३४	३२.८५	३३.१४१	६१.६९०
५.२३	१७१	१९४	९. दो०२४	१०.३३५	३२.८६	३३.१४२	६१.६९१
५.२४	१७२	१९५	९. प्रवा०[ ]	१०.३३६	३२.८७	३३.१४३	६१.६९२-७१२
५.२५	१७३	१९६	९. अडि०३	१०.३३८	३२.८८	३३.१४४	६१.७१४
५.२६	१७४	१९७	९. दो० २५	१०.३४१	३२.९१	३३.१४६	६१.७१७
५.२७	१७५	१९८	९. दो० २६	१०.३४६	३२.९०	—	६१.७२२
५.२८	१७६	१९९	९. दो० २७	१०.३४७	३२.९२	३३.१४७	६१.७२३
५.२९	१७७	२००	९. दो० २९	१०.३४८	३२.९३	३३.१४८	६१.७२४
५.३०	१७८	२०१	९. दो० ३०	१०.३४९	३२.९४	३३.१४९	६१.७२५
५.३१	१७९	२०२	९. दो० ३१	१०.३८२	३२.११७	३३.१६९	६१.७९०
५.३२	१८०	२०४	९. दो० ३२	१०.३९७	३२.१२७	३३.१७७	६१.८२४
५.३३	१८१	२०६	९. दो० ३६	१०.४०४	३२.१३०	३३.१८०	६१.८३२

५.३४	१८२	२०७	[९. दो० ३७]*	१०.४०६	३२.१३१	३३.१८१	६१.८३४
५.३५	१८३	२०८	[९. दो० ३८]*	१०.४०७	३२.१३२	३३.१८२	६१.८३५
५.३६	१८३ अ	२०९	९. [साट० ३]	१०.४०८	३२.१३३	३३.१८३	६१.८४४
५.३७	१८४	२१०	९. दो० ३९	१०.४०९	३२.१३४	३३.१८४	६१.८४५
५.३८	१८५	२११	९. नारा० ६	१०.४१२	३२.१३५	३३.१८५	६१.८४८-८५८
५.३९	१८६	२१२	९. दो० ४०	१०.४१३	३२.१३६	३३.१८६	६१.८५९
५.४०	१८७	२०५	९. साट० [४]	१०.४१५	३२.१३७	३३.१८७	६१.८६१
५.४१	१८८	२१३	९. साट० [५]	१०.४१६	३२.१३८	३३.१८८	६१.८६२
५.४२	१८९	२१४	९. दो० ४१	१०.५११	३२ १३९	३३.१८९	६१.८६५
५.४३	१९०	२१५	९. दो० ४२	१०.४३०	३२.१४०	३३.१९०	६१.८८७
५.४४	१९१	२१६	९ दो० ४३	१०.४३४	३२ १४१	३३.१९१	६१.९००
५.४५	१९२	२१७	९. कग्वि० ४	१०.४४२	३२.१४२	३३.१९२	६१.९१३
५.४६	१९३	२१८	९. दो० [ ]	१० ४४८ १	३२.१४८	३३.१९३	६१.९१९/१,
				१०.४४५/२			६१.९१६/२
५.४७	१९५	२२२	९. दो० ४५	१०.४५६	३२.१५३	३३.१९९	६१.९२७
५.४८	१९६	२२३	९. कवि० ५	१०.४६४ अ	३२.१५९	३३.२००	६१.९७५
६.१	१९७	२२६	९. दो० ४६	११.३३	३३.१०	३३.२०७	६१.१०४७
६.२	१९८	२२७	९. दो० ४७	११.३५	३३.११	३३.२०८	६१.१०५०
६.३	१९९	२२८	९. दो० ४८	११.३६	३३.१२	३३.२०९	६१.१०५१
६.४	२००	२३१	९. दो० ५०	११.५६	३३.२५	३३.२२२	६१.१०७८
६.५	२०१	२३५	९. भुज० [ ]	११.५७	३३.२६	३३.२२३	६१.१०७९-१०८०
६.६	२०२	२३७	९. दो० ५३	११.८६	३३.२८	३३.२५	६१.११३६
६.७	२०३	२३८	९. रासा [ ]×	११.९०	३३.२९	३३.२६	६१.११४४
६.८	२०४	२३९	९. दो० ५४	११.९३	३३.३१	३३.२७	६१ ११४७
६.९	२०५	२४०	९. दो० ५५	११.९४	३३.३२	३३.२९	६१.११४८
६.१०	२०६	२४१	९. दो० ५६	११.९०क	३३.३३	३३.२३०	६१.११५८
६ ११	२०७	२४२	९. दो० ५७	११.९१क/१	३३.३९अ	३३.२३७	६१.११५९/१
६.१२	२०९	२४३	९. मुडि० ११	११.९६क	३१.४३	३३.२४१	६१.११६८
६.१३	२१०	२४४	९. रासा० २	११.९८क	३३.४५	३३.२४३	६१.११७१
६.१४	२११	२४५	९. रासा० ३	११.९४ख	३३.४७	३३.२४५	६१.११७४
६.१५	२१२	२४६	९. नारा० ८	११.९७ख	३३.५०	३३.२४८	६१.११७७-११८५
६.१६	२१३	२४७	९. दो० ५९	११.११३	३३.५६	३३.२५०	६१.१२०६
६.१७	२१४	२४८	९. गाथा १	११.११५	३३.५८	३३.२५१	६१.१२०८
६.१८	२१५	२४९	९. दो० ६०	११.१४४	३३.६१	३३ २५४	६१.१२४३
६.१९	२१६	२५०	९. दो० ६१	११.१४५	३३.६२	३३.२५५	६१.१२४४
६.२०	२१७	२५३	९. दो० ६३	११.१४७	३३.६४	३३.२५७	६१.१२४६
६.२१	२१८	२५४	९. दो० ६४	११.१४९	३३.६५	३३.२५८	६१.१२४८

* ये छन्द अ० फ० में नहीं हैं किन्तु उसी कुल की उस प्रति में हैं जो भागचन्द के लिए लिखी गई थी।

× यह छन्द अ० में नहीं है, किन्तु अ० में बाद वाले दोहे के पूर्व 'रासा' शब्द है; फ० में यह छन्द है।

६.२२	२१९	२५५	९. दो० ६५	११.१५०	३३.६६	३३.२५९	६१.१२४९
६.२३	२२०-२२३	२५६-२५९	९. चौ० १ ३	११.१५३,	३३.७१	३३.२६१	६१.१२५३,
				१५४,१५६	७४-	२६२,२६४	१२५४, १२५६
६.२४	२२५	२६०	९. दो० ६६	११.१६०	३३.७६	३३.२६५	६१.१२६०
६.२५	२२६	२ १	९. मुडि० १३	११.१६२	३३.७८	३३.२६७	६१.१२६२
६.२६	२२७	२६२	९. अडि० १४	११.१६४	३३.८०	३३.२६९	६१.१२६४
६.२७	२२८	२६३	९. मुडि० ४	११.१६३	३३.७९	३३.२६८	६१.१२६३
६.२८	२२९	२६४	९. मुडि० १५	११.१६७	३३.८१	३३.२७०	६१.१२६७
६ २९	२३०	२६५	९. अनु० ४	११.१७२	३३.८७	३३.२७५	६१.१२७२
६.३०	२३१	२६६	९. दो० ७०	११.१७३	३३.८८	३३.२७६	६१.१२७३
६.३१	२३२	२६८	—	११.१७८	३३.९१	३३.२७८	६१.१२७८
६.३२	२३३	२६९	९. गाथा ५	११.१७९	३३.९२	३३.२७९	६१.१२७९
६.३३	२३४	२७३	९. कवि० १७	११.१९५	३३.१०२	३३.२८४	६१.१२९५
६.३४	२३५	२७४	९. रासा ४	११.२२०	३३.१०४	३३.२८६	६१.१३२२
७.१	२३६	२७५	९. दो० ८१	१२.१३	३३.१०६	३३.२९५	६१.१३४०
७.२	२३७	२८१	९. गाथा ७	१२.१८	३४.९	३३.२९९	६१.१३४५
७.३	२३८	२८२	९. दो० ७८	१२.१९	३४.१०	३३.३००	६१.१३४६
७.४	२३९	३१४/४५२	१५ भग० [ ]	—	४३.९५	—	६६.८७६-८८५
७.५	२४०	२८३	१२ कवि० १९	१२.२१८	३३.१०७/	३३.३८८	६१.१७०६
				—	३५.३		
७.६	२४१	२८४	१०. गुजं० १	१२.२०,२६	३४.११,	३३.३०१,	६१.१३४७ १३५६,
					१३	३३.३०३	६१.१३६२-१३६६
७.७	२४२	२८५	९. दो० ७९	१२.२७	३४.१५	३३.३०४	६१.१३६७
७.८	२४४	२८६	९. दो० ८०	१२.२८	३४.१६	३३.३०५	६१.१३६८
७.९	२४५	२८७	१०. दो० २	१२.२८अ	३४.१७	३३.३०६	६१.१३६९
७.१०	२४६	२८८	१०. गुजं० २	१२.३०	३४.१९	३३.३०८	६१.१३७१-७७
७.११	२४७	२८९	१०. दो० ३	१२.३१	३४.२०	३३.३०९	६१.१३७८
७.१२	२४८	२९०	१०. प्रवा० [ ]	१२.३२	३४.२१	३३.३१०	६१.१३७९-१३८५
७.१३	२४९	२९१	१०. दो० ४	१२.४१	३४.२३	३३.३१२	६१.१४०१
७.१४	२५०	२९२	१०. [भुज०]	१२.५३	३४.३२	३३.३२१	६१.१४१३
७.१५	२५१	२९३	१०. रसा० ४	१२.५४	३४.३३	३३.३२२	६१.१४१४-१४१९
७.१६	२५२	२९४	१०. अडि० १	१२.५५/१	३४.३४/१	३३.३२३/१	६१.१४२०
७.१७	२५३	२९५	१०. गुजं० ५	१२.५५/२,	३४.३४/२,	३३.३२३/२	६१.१४२१ १४२२,
				१२.१०६	३४.३६		६१.१५११-१५२१
७.१८	२५४	२९६	१०. गाथा १	१२.११२	३४.५०	३३.३३९	६१.१५३१
७.१९	२५५	२९७	१०. दो० १०	१२.११५	३४.५१	३३.३४०	६१.१५३४
७.२०	२५६	२९८	१०. कवि० ५	१२.११४	३४.५३	३३.३४२	६१.१५३३
७.२१	२५७	२९९	१०. कवि० ७	१२.१२०	३४.५५	३३.३४४	६१.१५४३
७.२२	२५८	३००.	१०. रासा १	१२.१२५	३४.५९	३३.३४८	६१.१५४८

७.२३	२५९.	३०१	१०. राधा १	१२.१२६	३४.६०	३३.३४९	६१.१५४९
७.२४	२६०	३०२	१०. अनु० १	१२.१२७	३४.६२	३३.३५०	६१.१५५०
७.२५	२८७	३१७	१०. कवि० १	१२.२३०	३५.६	३३.३८९	६१.१७३३
७.२६	२८८	३१८	१०. गाथा १	१२.२२०	३५.७	३३.३९०	६१.१७०८
७.२७	२८९	३१९	११. कवि० २	१२.२२४	३५.८	३३.३९१	६१.१७१८
७.२८	२९०	३२०	११. कवि० ३	१२.२२५	३५.९	३३.३९२	६१.१७१९
७.२९	२९३	३२३	११. दो० ३	१२.२४१	३५.१४	३३.३९७	६१.१७७०
७.३०	२९४	३२६	११. कवि० १२	१२.३१९	३५.२८	३३.४०९	६१.१९२६
७.३१	२९५	३२७	११. भुजं० ६	१२.३२०	३५.२४	३३.४१४अ	६१.१९२७ १९३२
८.१	२६१	३०५	११. कवि० २२	१२.१३७	३४.६६	३३.३५४	६१ १५६१
८.२	२६२	३०६	११. कवि० २३	१२.१४०	३४.६७	३३.३५५	६१.१५६४
८.३	२६३	३०७	११. कवि० २४	१२.१४३	३४.७०	३३.३५५अ	६१.१५६७
८ ४	२६४	३०८	११. कवि० २५	१२.१४८	३४.७४	३३.३५९	६१.१५७२
८.५	२६५	३०९	११. कवि० २६	१२.१५०	३४.७५	३३.३६०	६१.१५७४
८.६	२६६	३१०	११. कवि० २७	१२.१५१	३४.७६	३३.३६१	६१.१५७५
८.७	२६७	३११	११. गाथा २	१२.१६४	३४.७७	३३.३६२	६१.१५८८
८.८	२६८	३१२	११. गाथा ३	१२.१८७	३४.९०	३३.३७१	६१.१६२८
८.९	२६९	३१३, ३१५	११. त्रोट० ९	१२.१९५	३४.९७	३३.३७८	६१.१६४० —१६४९
८.१०	२७०	३१६, ३३१	१२. छंद १	१२.२१६, १२.४५३/१	३५.४, ३६.१२/१	३३.३८७, ३३.४६४	६१.१६९५-१७४२, ६१.२१४६
८.११	२७१	३३२	१२. कवि० १	१२.४५८	३६.१३	३३.४६५	६१.२१६१
८.१२	२७२	३३३	१२. दो० ६	१२.४५९	३६.१५	३३.४६७	६१.२१६२
८.१३	२७३	३३४	१२. दो० ७	१२.४६०	३६.१६	३३.४६८	६१.२१६३
८.१४	२७४	३३५	१२. कवि० ३	१२.४६० अ	३६.१७	३३.४६९	६१.२१६४
८.१५	२७५	३३६	१२. दो० ८	१२.४६५	३६.१८	३३.४७०	६१.२१७८
८.१६	२७६	३३७	१२. कवि० ४	१२.४७४	३६.१९	३३.४७१	६१.२२०८
८.१७	२७७	३३९	१२. दो० १०	१२.४७३	३६.२२	३३.४७४	६१.२२०७
८.१८	२७८	३४०	१२. दो० ११	१२.४७८	३६.२३	३३.४७५	६१.२२१२
८.१९	२७९	३४१	१२. कवि० ५	१२.४७९	३६.२४	३३.४७६	६१.२२१३
८.२०	२८०	३४२	१२. दो० १२	—	३६.२७	३३.४७७	६१.२२१७
८.२१	२८१	३४३	१२. कवि० ६	१२.४९८	३६.२८ अ	३३.४७९	६१.२२४७
८.२२	२८२	३४४	१२. दो० [१३]	१२.५१३	३६.२९	३३.४८०	६१.२२८३
८.२३	—	३४५	१२. दो० १४	१२.५१४	३६.३०	३३.४८१	६१.२२८४
८.२४	२८३	३४६	१२. कवि० ७	१२.५१७	३६.३२	३३.४८२	६१.२२९७
८.२५	२८४	३४७	१२. दो० १५	१२.५१९	३६.३३	३३.४८३	६१.२२९९
८.२६	२८५	३४८	१२. कवि० ८	१२.५२५	३६.३४	३३.४८४	६१.२३१२
८.२७	२८६	३४९	१२. दो० १६	१२.५२७	३६.३५	३३ ४८५	६१.२३१४
८।२८	२९७	३५०	१२. कवि० ९	१२.५३३ अ	३६.३६	३३.४८६	६१.२३४५

८.२९	२९८	३५१	१२. दो० १७	१२.५३४	३६.३७	३३.४८७	६१.२३४६
८.३०	२९९	३५२	१२.कवि० १०	१२.५४२	३६.३९	३३.४८९	६१.२३।६२
८.३१	३०१	३५३	१२. दो० १९	१२.५४३	३६.४०	३३.४९०	६१.२३६३
८.३२	३००	३५४	१२.कवि० ११	१२.५४६	३६.४१	३३.४९१	६१.२३७२
८.३३	३०२	३५५	१२. दो० २०	१५.५५०	३६.४२	३३.४९२	६१.२३७६
८.३४	३०३	३५६	१२.कवि० १२	१२.५५७	३६.४३	३३.४९३	६१.२३८३
८.३५	३०४	३६३	१२.कवि०२३	१२.५६५	३६.४५	३३.४९५	६१.२४०३
८.३६	२९६	३५७	१२. दो० २८	१२.४१६	३७.२०	३३.४५५	६१.२०९२
९.१	३०५	३६५	१३.अडि० १	१२ ६०५/२	३८.७	३३.५२५	६१.२४८७
९.२	३०६	३६६	१३.दो० ५	१२.६१८	३८.१०	३३.५२७	६१.२४९२
९.३	३०७	३६९	१३.दो० ६	१२.६११	३८.११	३३.५२८	६१.२४९३
९.४	३०९	३७१	१३.दो० ७	१२.६२५	३८.१३	३३.५३०	६१.२५४०
९.५	३१०	३७२	१३.[रासा १]	१२.६२७	३८.१४/१	३३.५३१ १	६१.२५४२
९.६	३११	३७३	१३.[रासा २]	१२.६२८	३८.१४/२	३३.५३१/२	६१.२५४३
९.७	३१२	३७४	१३.[रासा ३]	१२.६२९	३८.१४/३	३३.५३१/३	६१.२५४४
९.८	३१३	३७५	१३.[रासा ४]	९.२४, १२.६३०	३८.१४/४	३३.५३१/४	६१.२५४५
९.९	१०७	१२३	१३. साट० २	९.२०	२९.८६ आ/ ४१.१०	३४.१७८	६१.९
९.१०	१०८	१२४	१३. साट० ३	९.१	३९.२	३४.१	६१.१८
९.११	१०९	१२५	१३. साट० ४	९.५	३९.६	३४.५ अ	६१.२७
९.१२	११०	१२६	१३. साट० ५	९.१०	३९.१३	३४.१६८	६१.३९
९.१३	१११	१२७	१३. साट० ६	९.१३	४१.३	३४.१७१	६१.४९
९.१४	११२	१२८	१३. साट० ७	९.१६*	४१.६	३४.१७४	६१.६२
१०.१	३१४	३८६	१४. मुडि० १		४२.४१	३६.३५	६६.१९२
१०.२	३१५	३८७	१४. दो० २		४२.४२	३६.३६	६६.१९३
१०.३	३१६	३८८	१४. मुडि० २		४२.४३	३६.३७	६६.१९४
१०.४	३१७	३८९	१४. दो० ३		४२.४४	३६.३८	६६.१९५
१०.५	३१८	३९०	१४. अडि० १		४२.४५	३६.३९	६६.१९६
१०.६	३१९	३९१	१४. मुडि० ३		४२.४६	३६.४०	६६.१९७
१०.७	३२०	३९२	१४. अडि० २		४२.४७	३६.४३	६६.१९८
१०.८	३२१	३९३	१४. दो० ४		४२.४८	३६.४४	६६.१९९
१०.९	३२२	३९४	१४. दो० ५		४२.४९	३६.४५	६६.२००
१०.१०	३२३	३९५	१४. गाथा ३		४२.५०	३६.४६	६६.२०१
१०.११	३२४	३९६	१४. गीता० १		४२.५१	—	६६.२०३-२५
१०.१२	३२५	३९७	१४. दो० ६		४२.५२	३६.४७	६६.२१७
१०.१३	३२६	३९८	१४. दो० ७		४२.५३	३६.४८	६६.२१८

* म० प्रति यहीं पर समाप्त हो जाती है।

१०.१४	३२७	३९९	१४.दो०८
१०.१५	३२८	४००	१४.रासा१
१०.१६	३२९	४०१	१४.दो०९
१०.१७	३३०	४०२	१४.रासा २
१०.१८	३३१	४०३	१४.दो०१०
१०.१९	३३२	४०५	१४.दो०११
१०.२०	३३३	४०६	१४.दो०१२
१०.२१	३३४	४०७	१४.दो०१४
१०.२२	३३५	४०८	१४.दो०१५
१०.२३	३३६	४०९	१४.कवि०२
१०.२४	३३७	४१०	१४.दो०१६
१०.२५	३३८	४११	१४.कवि०३
१०.२६	३३९	४१२	१४.दो०१७
१०.२७	३४०	४१४	१४.दो०१९
१०.२८	३४१	४१६	१४.कवि०४
१०.२९	३४२	४१७	१४.कवि०५
११.१	३४६	४३५	१५.दो०१७
११.२	३४७	४३६	१५.दो०१८
११.३	३४८	४३७	१५.दो०१९
११.४	३४९	४३८	१५.दो०२०
११.५	३५०	४३९	१५.दो०२१
११.६	३५१	४४१	१५.दो०२२
११.७	३५२	४४२	१५.कवि०१५
११.८	३५३	४४३	१५.कवि०१६
११.९	३५४	४४५	१५.दो०१५
११.१०	३५५	४४६, ४५०	१५.छंद०[ ]
११.११	३५८	४५२	१५.दो०२५
११.१२	३६२ ३६२	४५४	१६.भुजं०१
११.१३	३६३	४५५	१८.दो०६
११.१४	३६४	४६५	१८.दो०७
११.१५	३६५	४६६	१८.दो०८
११.१६	३६६	४६७	१८.दो०९
११.१७	३६७	४६८	१८.अनु०१
११.१८	३६८	४६९	१८.कवि०२४
१२.१	३६९	४७०	१८.कवि०२७

४२.५४	३६.४३	६६.२१९
४२.५९	३६.५५	६६.२२७
४२.६०	३६.५६	६६.२२८
४२.६१	३६.५७	६६.२३२
४२.६२	३६.५८	६६.२३३
४२.६४	३६.५९	६६.२३६
४२.६५	३६.६०	६६.२३७
४२.६९	३६.६४	६६.२४१
४२.७०	३६.६५	६६.२४२
४२.७१	३६.६६	६६.२४४
४२.७२	३६.६७	६६.२४५
४२.७६	३६.७०	६६.२४९
४२.७३	३६.६८	६६.२४७
४२.७८	३६.७२	६६.२५१
४२.७९	३६.७३	६६.२५२
४२.८०	३६.७५	६६.२५४
४३.४७	३६.२३८	६६.७६८
४३.४८	३६.२३९	६६.७६९
४३.४९	३६.२४०	६६.७७०
४३.५०	३६.२४१	*
४३.५१	३६.२४२	६६.७७१
४३.५२	३६.२४३	६६.७७४
४३.५४	३६.२४४	६६.७७५
४३.५५अ	३६.२४५	६६.२४८
४३.७७	—	६६.८२८
४३.७९	—	६६.८३५
४३.१०४	३६.२९०	६६.९३०
४३.१०६, ४३.१११	३६.२९४	६६.९३२-९३४, ६६.९३८-९४५
४५.७	३६.४१०	६६.१५२४
४५.९	३६.४१३	६६.१५२७
४५.१०	३६.४१४	६६.१५२८
४५.११	३६.४१५	६६.१५२९
४५.१२	३६.४१६	६६.१५३०
४५.४७	३६.४५१	६६.१६१०
४५.५१	३६.४५५×	६६.१६२६

* यह छन्द स में नहीं है किन्तु शा० में ६२.४१० है।

× व० प्रति खंड ३६ पर समाप्त हो जाती है। खंड ३७ के स्थल-निर्देश टॉड ६१ के अनुसार हैं।

		४७३	१८. दे० १४	४६.९	३७.१५	६७.१९
१२.२	३७०	४७४	१९. दो० २	४६.१७	३७.२२	६७.९३
१२.३	३७१	४७५	१९ दो० ३	४६.१६	३७.२३	६७.७६
१२.४	३७२	४७६	१९. दो० ४	४६.२१	३७.३४	६७.८९/९५
१२.५	३७३	४८४	१९. दो० १२	४६.३८	३७.५८	६७.१४१
१२.६	३७४	४८५	१९. दो० १३	४६.३९	३७.५९	६७.१४३
१२.७	३७५	४८६	१९. वथू० १	४६.४१	३७.६६	६७.१७३
१०.८	३७६	४८७	१९. वथू० २	४६.४२	३७.६७	६७.१७४
१२.९	३७७	४८८	१९. दो० १४	४६.४४	३७.७४	६७.१८२
१२.१०	३७८	४८९	१९. दो० १५	४६.४५	३७.७५	६७.१८७
१२.११	३७९	४९०	१९. भुजं० ४	४६.४७	३७.७६-७९	६७.१८९-१९६
१२.१२	३८०	४९१	१९. दो० १६	४६.४८	३७.८०	६७.१९८
१२.१३	३८१	४९२	१९. पद्ध० ५	४६.४९	३७.८१-८८	६७.२०२-२१९
१२.१४	३८२	४९३	१९. दो० १७	४६.५१	३७.९०	६७.२२१
१२.१५	३८३	४९४	१९ पद्ध० [ ]	४६.५३	३७.९१	६७.२२४-३६
१२.१६	३८४	४९६	१९. दो० [१८]	४६.७२	३७.११४	६७.२३९
१२.१७	३८५	५००	१९. दो० १९	४६.७७	३७.१२७	६७.२४१
१२.१८	३८६	५०१	१९. दो० [ ]	४६.७८	३७.१२८	६७.२९५
१२.१९	३८७	५०२	१९. पद्ध० ९	४६.८०	३७.१२७	६७.२९९
१२.२०	३८८	५०३	१९. दो० २२	४६.८३	३७.१३९	६७.३०७
१२.२१	३८९	५०४	१९. दो० ३	४६.८१	३७.१४०	६७.३०८
१२.२२	३९१	५०७	१९. दो० २४	४६.९१	३७.१४२	६७.३१९
१२.२३	३९२	५१०	१९. पद्ध० १०	५६.९७	३७.१५७-१६६	६७.३३२-३४१
१२.२४	३९३	५११	१९. दो० २५	४६.१०५	३७.१६७	६७.३५७
१२.२५	३९४	५१२	१९. दो० २६	४६.१०६	३७.१६८	६७.३६४
१२.२६	३९५	५१३	१९. दो० २७	४६.१०७	३७.१८२	६७.३६५
१२.२७	३९८	५१४	१९. दो० २९	४६.१०९		६७.३६६
१२.२८	३९८	५१५	१९. दो० ३०	४६.११०/ ४६.१११	३७.९८४	६७.३६७/ ६७.३६८
१२.२९	३९९	५१६	१९. त्रोट० ११	४६.११२	३७.१८५	६७.३७०
१२.३०	४००	५१७	१९. दो० ३१	४६.११४	३७.१८६	६७.३७१
१२.३१	४०१	५१८	१९. दो० ३२	४६.११५	३७.१८७	६७.३७२
१२.३२	४०२	५२१	१९. पद्ध० १२	४६.११६		६७.३७७
१२.३३	४०३, ४०५	५२१,५२३ ५२६,५२९	१९. पद्ध० १४/४	४६.१२७, ४६.१३१	३७.१९२-१९४ ३७.२०६	६७.३९१-३९५, ६७.४०२
१२.३४	४०७	५३२	१९. दो० ३४	४६.१३५	३७.२१०	६७.४०८
१२.३५	४०६	५३३	१९. कवि० १	४६.१३७अ	३७.२५२	६७.४०३
१२.३६	४०८	५२५	१९. दो० ३५	४६.१२८	३७.२०१	६७.३९६

१२.३७	४१०	५२७	१९. दो० २६	४६.१३२	३७.२०७	६७.४०५
१२.३८	४०९	५३४	१९. कवि० ३	४६.१३८	३७.२१९	६७.४११
१२.३९	४११	५२८	१९. [चउ०]१	४६.१३३	३७.२०८	६७.४०६
१२.४०	४१२	५३७	१९. कवि० ४	४६.१४५	३७.२४४	६७.४३५
१२.४१	४१३	५३८	१९. कवि० ५	४६.१४६	३७.२४५	६७.४३६
१२.४२	४१५	५४२	१९. कवि० ६	४६.१५०	३७.२४८	६७.४५५
१२.४३	४१४	५३९	१९. दो० ३८	४६.१४७	३७.२२५	६७.५३८
१२.४४	४१६	५४३	१९. दो० ३९	४६.१६५	—	६७.५१४
१२.४५	४१७	५४४	१९. कवि० ७	४६.१६७	३७.२५०	६७.५१५
१२.४६	४१८	५४८	१९. कवि० ९	४६.१७१	३७.२५३	६७.५२४
१२.४७	४१९	५३५	१९. दो० ४०	४६.१६४	३७.२२२	६७.४८८
१२.४८	४२०	५५१	१९. कवि० १०	४६.१७४	३७.२७९	६७.५४९
१२.४९	४२२	५५२	१९. कवि० १२	४६.१७६	३७.२८३	६७.५५६

—※—

६. पृथ्वीराज रासो
का
कथा-सार

नीचे रचना के प्रस्तुत संस्करण की कथा का सार दिया जा रहा है। यह सार जान-बूझ कर कुछ विस्तारों के साथ दिया जा रहा है, जो कि सामान्यतः छोड़े जा सकते थे। ऐसा इसलिए किया जा रहा है कि रचना की कथा के समस्त तत्व पाठक की दृष्टि में एक-साथ आ सकें और इस सार को देखकर ही वह न केवल प्रबन्ध की दृष्टि से रचना के सम्बन्ध में धारणा बना सके, वरन् उसके ऐतिहासिक, अर्द्ध ऐतिहासिक और इतर तत्वों के सम्बन्ध में भी पूर्ण रूप से अवगत हो सके। इसलिए आशा है कि यह विस्तार रोचक और उपयोगी सिद्ध होगा। विभिन्न सर्गों का सार देते हुए नीचे कोष्ठकों में दी हुई संख्याएँ उनके छन्दों की हैं।

१. मंगलाचरण और कथा की भूमिका

गणेश (१) और सरस्वती (२) की वन्दना करने के अनन्तर शिव को नमस्कार करके (३) अपने पूर्व के कवियों को 'पृथ्वीराज रासो' के कवि ने स्मरण किया है, और ये हैं शिव, यम, व्यास, शुकदेव, श्रीहर्ष, कालिदास तथा दण्डी (४); छन्द-प्रबन्ध के प्रसंग में उसने पिंगल[1], [के छन्द-सूत्र] भरत [के नाट्य सूत्र] तथा महाभारत को भी [पीछे ?] छोड़ने का संकल्प किया है (५) और इसके अनन्तर उसने कथारंभ किया है।

पृथ्वीराज का पूर्व-परिचय देते हुए उसने कहा है कि उसकी कपिल (धूल-धूसरित) केलि अजमेर में हुई थी, रक्त (राग पूर्ण) जीवन के वृत्त साँभर में हुए थे, वह सोमेश्वर का पुत्र और बहिला वन का निवासी था और दिल्लीपुर में भासित होने के लिए ही मानो वह विधाता द्वारा निर्मित हुआ था (६)।

२. जयचन्द का राजसूय और संयोगिता का प्रेमानुष्ठान

इसी समय जयचन्द कन्नौज का शासक था जो धार्मिक था तथा हय-गजादि से सम्पन्न था; उसने कीर्ति-वर्धन के लिए राजसूय यज्ञ करने की ठानी; उसने पृथ्वीतल के अनेक राजाओं को जीत लिया (१)। उसने पृथ्वीराज के पास दूत भेजे कि वह भी उसके राजसूय यज्ञ में सहयोग करे; पृथ्वीराज की सभा में उसके इन दूतों ने जयचन्द का सन्देश सुनाया; पृथ्वीराज चुप रहा किन्तु उसके एक गुरुजन गोविन्दराज ने जयचन्द के इस प्रस्ताव का विरोध किया; यह गोविन्दराज यमुना तटवर्ती [कुरु] जांगल का निवासी था, उसने कहा कि वह तो जरासंध के वंश के उस पृथ्वीराज को ही

[1] यह सम्भव नहीं है कि कवि का 'पिंगल' से तात्पर्य 'प्राकृत पैंगल' से हो, भरत के भी पूर्व पिंगल का नाम लेने से उसका तात्पर्य उन छन्द-सूत्रों के रचयिता से ही ज्ञात होता है जो पिंगल के नाम से प्रसिद्ध रहे हैं।

राजा मानता था जिसने तीन बार शहाबुद्दीन को बन्दी किया था और जिसने भीमसेन (भीम चौलुक्य) [की शक्ति] को नष्ट किया था; उसने कहा कि जब तक उस (पृथ्वीराज) के कन्धे पर सिर था, राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता था; उसके इन वचनों को सुनकर कन्नौज के दूत लौट गए; कन्नौज-राज ने इस समय पृथ्वीराज से झगड़ा न करके यज्ञ सम्पन्न करने का निश्चय किया; उसने द्वारपाल के रूप में पृथ्वीराज की एक सोने की प्रतिमा स्थापित की और उसने यज्ञ और उसके साथ ही अपनी कन्या संयोगिता के स्वयंवर की तिथि निश्चित करदी (३)। सूर्य के पुष्य नक्षत्र में तथा चन्द्रमा के तीसरे स्थान पर होने का देव पंचमी का दिन निर्धारित हुआ; [यह सुनकर] पृथ्वीराज ने कन्नौज पर चढ़ाई करने का निश्चय किया (६)।

पृथ्वीराज ने खोखन्द (कोहकन्द) और बलख के राजाओं को परास्त किया था, गजनी में विक्षोभ उपस्थित कर दिया था (८) और उसने मरुधरा को दण्डित किया था (९), [इस पृष्ठभूमि में] पृथ्वीराज के वैमनस्य की बात सुनकर जयचन्द के उक्त आयोजन का रंग फीका पड़ गया था, और जयचन्द की पुत्री संयोगिता ने पृथ्वीराज के वरण के लिए व्रत लिया था, यह समाचार पृथ्वीराज को मिला (१०)। उसने सुना कि संयोगिता ने पिता के वचन और उक्त आयोजन की उपेक्षा कर यह निश्चय किया है कि वह या तो पृथ्वीराज का पाणिग्रहण करेगी, अन्यथा गंगा में कूद कर प्राण दे देगी (११)। यह सुनकर पृथ्वीराज को उसके अनुराग का विश्वास हो गया (१२)। उधर जयचन्द ने संयोगिता को उसके इस संकल्प से विचलित करने के लिए कुछ दासियाँ उसके साथ रख दीं (१३)। उन्होंने उससे प्रश्न किया कि वह अपने पति के रूप में किसे चाहती थी (१४)। संयोगिता ने बताया कि वह पृथ्वीराज को चाहती थी, जिसके साठ (?) सामन्त थे (१५)। उन दासियों ने कहा कि वह तो लघु (हीन) कुल का था (१६)। इस पर संयोगिता ने कहा कि पृथ्वीराज की ही कृपाण ने अजमेर में धूम मचा रक्खी थी, मण्डोवर को तहस-नहस कर डाला था, मरुस्थल के मोरी राजा को दण्डित किया था, रणस्तम्भपुर (रंथंभौर) को आग की लपटों के समान दग्ध किया था, कालिंजर को जलमग्न कर दिया था, और गोरी-धरा पर वह घन बनकर घहराई थी; क्या फिर भी उसे लघु (हीन) कहा जा सकता था (१७)? इस पर उन दासियों ने कहा कि उसे स्मरण रखना चाहिए कि वह ऐसे महाराज (जयचन्द) की पुत्री है जिसने महाराष्ट्र, थट्टा, नीमच, और वैरागर को भ्रष्ट किया, कर्णाट, करवीर, गुण्ड और गुर्जर की कांति को राहु के समान ग्रस लिया और मालव, मेवाड़ और मण्डोवर को निर्माल्य के समान हस्तगत किया; उसकी सेवा में रहने वाले देव-तुल्य राजाओं में से वह किसी को क्यों नहीं वरण करती थी (१८)। संयोगिता ने उत्तर दिया कि वह किन्हीं भी बातों में नहीं आ सकती थी, और उसने संकल्प कर लिया था कि चाहे सौ जन्म ग्रहण करने पड़ें, वह पृथ्वीराज को ही वरण करने वाली थी (१९)। जब अनेक प्रकार से संयोगिता को समझाने पर भी वे दूतियां कृतकार्य नहीं हुईं तो जयचन्द ने रुष्ट होकर उसको गंगातटवर्ती एक आवास में भिजवा दिया (२७)।

३. कैंवास-वध

[संयोगिता के इस विरह-] ताप में पृथ्वीराज का मन स्थिर नहीं रहता था, इसलिए वह राजधानी में प्रधान अमात्य कैंवास को छोड़कर आखेट में फिरने लगा था (१)। इधर कैंवास पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में उसकी कर्नाटी दासी पर अनुरक्त होकर एक रात्रि उसके कक्ष में पहुँच गया (३)। पटरानी की तांबूल वाहिका सखी ने यह देख लिया और उसने पटरानी को इसकी सूचना कर दी; यह सुनते ही पटरानी ने भूर्जपत्र पर पत्र लिखकर एक दासी को पृथ्वीराज के पास भेजा और पृथ्वीराज को दो घड़ियों के भीतर आने के लिए लिखा (५)। जिसने जयचन्द की विशाल सेना से भय नहीं माना था, शहाबुद्दीन से साहस और इच्छापूर्वक युद्ध किए थे, और जो जिस समय चौलुक्य भीम को मन्त्री कैंवास ने बन्दी किया था, स्वतः दूर विश्वासर में रहा था, खेद कि ऐसे पृथ्वीराज

को भी वह कैंवास नहीं जान पाया था (६)। पत्र पाते ही पृथ्वीराज दो घड़ियों में आ गया (८)। कैंवास और कर्नाटी को लक्ष्य करके उसने रात्रि के अन्धकार में ही एक बाण छोड़ा; किन्तु वह बाण क्रोध के कारण उसकी मुट्ठी के हिल जाने से चूक गया; तदनन्तर [पटरानी] परमारिनी ने उसे दो बाण और दिए; उन बाणों के लगते ही कैंवास धराशायी हो गया (११)। दासी के साथ कैंवास को रातों-रात पृथ्वीराज ने गड्ढा खनवा कर गड़वा दिया (१३), और वह आखेट के लिए वन फिर चला गया (१४)। यह घटना और किसी को ज्ञात नहीं होने पाई, केवल चन्द को इसे सरस्वती ने स्वप्न में बताया (१४)। पृथ्वीराज सबेरा होने पर राजधानी को लौट आया (१८)। मध्य के प्रहर में उसने पण्डित [जयानक] को बुलाकर उससे शहाबुद्दीन पर प्राप्त अपनी विजय-गाथा के कहने [लिखने] के लिए कहा, और तदनन्तर उसने सभा बुलाई, जिसमें चन्द ने आकर उसे आशीर्वाद दिया (१९)। उस सभा में पृथ्वीराज ने पहले शूरों [सामन्तों] से कैंवास के बारे में पूछा, किन्तु कोई बता नहीं सका कि वह कहाँ था (२०)। तदनन्तर उसने चन्द से यही प्रश्न किया (२१)। चन्द ने पहले उत्तर न देना ही ठीक समझा, किन्तु पृथ्वीराज के हठ करने (२५) पर उसने उत्तर दिया (२६)। उसने उस रात्रि की सारी घटना सुना दी (२७)। सभा विसर्जित हुई (२८)। कैंवास की स्त्री को जब यह ज्ञात हुआ, उसने चन्द से मृत पति का शव दिलाने के लिए कहा; चन्द के बहुत कहने पर पृथ्वीराज ने कैंवास का शव दिलाना इस शर्त पर स्वीकार किया कि चन्द उसे जयचन्द का दर्शन करावेगा (३७)। पृथ्वीराज अनुचर के रूप में चन्द के साथ जाने को प्रस्तुत हुआ (३९); दोनों कसकर गले मिले और रोए और पृथ्वीराज ने कहा कि उस अपमानपूर्ण जीवन से मरण अच्छा था (४०)। कवि ने उसके इस विचार का समर्थन किया (४२) और कैंवास का शव उसकी विधवा स्त्री को दिया गया (४३)।

४. पृथ्वीराज का कन्नौज-गमन

पृथ्वीराज ने चंद के साथ कन्नौज के लिए प्रयाण किया, साथ में अनेक शूर सामन्त भी थे, कुल सौ राजपूत थे (१)। तीन दिन, तीन रात और एक पल कम तीन प्रहर में वे इक्कीस योजन पहुँच गए (५)। रात्रि के अनंतर प्रभात होने पर वे कन्नौज पहुँच गए (८)। उन्होंने गंगा का दर्शन किया और उसकी स्तुति की (११)। घाटों पर उन्हें जल भरती हुई सुन्दरियाँ दिखाई पड़ीं (१३)। उन्होंने जाकर संदेह देवी के दर्शन किए; पृथ्वीराज को देख कर उसने आशीर्वाद दिया कि विजय उसके पक्ष में हो (२२)। वे लोग तदनंतर नगर-दर्शन करते हुए आगे बढ़े (२३-२५)।

५. पृथ्वीराज का कन्नौज में प्राकट्य

दरबार को पूछता-पूछता चंद कन्नौज के कोटपाल के पास पहुँचा (१)। उसने जयचंद को चंद के आने की सूचना दी (३)। जयचन्द ने अपने गुणीजन को चन्द की परीक्षा ले [कर उसे ला] ने को भेजा (४)। चन्द से मिल कर उन्होंने उसके बिना देखे ही जयचन्द का वर्णन करने के लिए कहा (९)। जयचन्द (१०) तथा उसकी सभा (१२) का वर्णन करते हुए चन्द ने उसकी विजय-गाथा कही : उसने कहा कि जयचन्द ने सिंधु [नदी] का अवगाहन कर तिमिर (म्लेच्छ-दल) को भगाया, उसने हिमालय में स्थित राज्यों को ढहाया और एक दिन में आठ सुलतानों को वश में किया, तिरहुत में जाकर उसने सेना स्थापित की, उसने डाहल के कर्ण को दो बार बंदी किया, [गूर्जर के] सोलंकी (चौलुक्य) सिद्ध (जैन) राजा को कई बार खदेड़ा; उसने तिलंग और गोवलकुण्ड को तोड़ा, गुण्ड के जीरा शासक को बंदी करके छोड़ा, वैरागर के सब हीरे लिए, गजनी के शाह शहाबुद्दीन के सेवक निसुरत्त खाँ को बंदी किया, भूल कर लंका जा पहुँचा और विभीषण से कलह कर बैठा, और खुरासान के अमीर को बंदी किया; ऐसा विजयपाल का पुत्र जयचन्द

था (१३)। इसके अनन्तर वे गुणीजन चन्द को जयचन्द की सभा में लिवा ले गए (१४)। जयचन्द ने कवि का आदर करने के अनन्तर उससे पृथ्वीराज के शौर्य तथा रण-कौशल के बारे में पूछ कर (१५-१७) उसकी उनहार पूछी (१८)। चन्द ने बताया कि पृथ्वीराज उस समय ३६ वर्ष तथा ६ मास का था, दुर्जनों के लिए राहु के समान था, और चारों दिशाओं के हिन्दू उसकी मुट्ठी में थे (१९)। इस समय जयचन्द ने चन्द के अनुचर (अनुचर-वेशी पृथ्वीराज) को स्थिर दृष्टि से देखा तो नेत्रों-नेत्रों में बल पड़ गया (२०)। जयचन्द ने चन्द को पान अर्पित करने के लिए राज-भवन की कुमारी दासियों को बुलवाया (२१) और वे सुंदरियाँ एक साथ भट्ट (चन्द) को पान अर्पित करने के लिए चल पड़ीं (२२)। इनमें एक पहले पृथ्वीराज की दासी रह चुकी थी, और वहाँ से लुप्त होकर जयचन्द की सेवा में आ गई थी; वह बाल खोले रहा करती थी; किन्तु [अनुचर-वेशी] पृथ्वीराज को देखते ही उसने सिर ढँक लिया (२५)। दासी का यह कृत्य देखकर जयचन्द को शंका हुई कि वह पुरुष जो चन्द के साथ उसके अनुचर के रूप में था, कदाचित् पृथ्वीराज था (२६), किन्तु किसी ने कहा कि चन्द पृथ्वीराज का अभिन्न सखा था इसलिए दासी ने चन्द को देखकर इस प्रकार लज्जा की (२७)। तदनन्तर एक सुवासित आवास में चन्द को ठहराया गया (२८)। उस आवास में पृथ्वीराज की सभा लगी (३१) और तदनन्तर उसने शयन किया (३२)। इसी समय जयचन्द का अवसर (संगीत-समारोह) नियोजित हुआ (३३)। सबेरा होने पर जयचन्द चन्द के लिए उपहारादि लेकर उसके समक्ष उपस्थित हुआ (४४), किन्तु जब वहाँ पहुँच कर उसने सिंहासन और उस पर अनुचर वेशी पृथ्वीराज को बैठा देखा, वह ठमक गया; चन्द ने उसका स्वागत करते हुए उसे बताया कि यह सिंहासन पृथ्वीराज से उसको मिला था और इसके अनन्तर उसने अपने अनुचर (पृथ्वीराज) से जयचन्द को पान अर्पित करने के लिए कहा (४५)। अनुचर ने उसको पान देने के लिए हाथ आगे बढ़ाया और वक्र दृष्टि से उसे देखा (४६)। जयचन्द ने पहचान लिया कि यह पृथ्वीराज है और उसने आदेश किया कि संगठित रूप में पृथ्वीराज पर आघात (आक्रमण) किया जावे, ताकि वह भाग न सके (४८)।

६ संयोगिता-परिणय

इधर पृथ्वीराज अपने साथी सामंतों से युद्ध-क्षेत्र में होने (जाने) के लिए कह कर नगर की प्रदक्षिणा के लिए निकल पड़ा (१)। वह गङ्गा-तट पर पहुँच कर मछलियों की क्रीड़ा में लीन हो रहा और उन्हें मोती चुगाने लगा (७)। उधर सैनिक बाद्यों को सुनकर संयोगिता जब अपने आवास [की छत] के ऊपर चढ़ी, वह गंगा-तट पर इस नवागंतुक को देखकर विस्मय में पड़ गई कि यह कौन था (८–९)। तदनंतर उसने एक अनुचरी को थाल भर मोतियाँ देकर उस नवागंतुक के पास भेजा, और कहा कि यदि वह इन मोतियों के सम्बन्ध में कुछ न पूछे, तो वह दासी समझ ले कि वह नवागंतुक पृथ्वीराज था और तब वह (संयोगिता) उसे इस शरीर से ही वरण कर ले (१३)। दासी ने वैसा ही किया, और जब थाल के मोती समाप्त हो गए, उसे वह अपनी कण्ठ-माला तोड़ कर उसकी पोतें अर्पित करने लगी; पृथ्वीराज ने जब मोतियों के स्थान पर हाथ में पोतें देखीं, उसने दृष्टि फेरी और उस सुन्दरी दासी को देखा; प्रश्न करने पर उस दासी ने बताया कि वह जयचन्द के घर की दासी थी, और उसकी पुत्री (संयोगिता) के द्वारा भेजी हुई थी जो कि जीवन का मोह छोड़ कर उस पर अनुरक्त थी; यह सुनकर पृथ्वीराज ने घोड़ा मोड़ दिया और संयोगिता से जा मिला; दोनों का पाणिग्रहण हुआ, और तदनंतर संयोगिता को वहीं छोड़कर युद्ध के लिए पृथ्वीराज लौट पड़ा। रात्रि हो गई थी, उसके सामंत उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे (१९)। कन्ह नामक सामंत ने जब उसके हाथ में पाणिग्रहण का कंकण बँधा हुआ देखा, तो वह समझ गया कि पृथ्वीराज संयोगिता का परिणय करके आया है (२१)। उसके सामंतों ने उसकी धीरता की

प्रशंसा की (२२), किन्तु उन्होंने उससे कहा कि परिणय करके वह सुन्दरी को छोड़ कर आ सकता था, ऐसा वे नहीं समझते थे (२३)। तदनंतर वे सब उसके साथ संयोगिता के आवास पर पहुँचे (२४)। संयोगिता पृथ्वीराज के विरह में व्यथित हो रही थी (२५-२७), किन्तु जब उसने पृथ्वीराज को लौटते देखा तो [युद्ध छोड़ कर अपने पास आते हुए देख कर] वह [वीर क्षत्राणी] उस पर प्रसन्न नहीं हुई (२८) और सिर पीट कर सखियों से कहने लगी कि जिस प्रियजन की ओर लोगों की उँगलियाँ उठें, उस प्रियजन से क्या प्रयोजन (३०)? यह सुनकर सामंतों ने उसे समझाने का यत्न किया (३१)। किन्तु उस विनष्टा के नेत्र-प्रवाह उस दिवस की कथा कहते ही रहे (३२)। यह देख कर नरनाह कन्ह ने कहा कि यद्यपि कोटि कादर भृत्य अपने स्वामी जयचन्द के साथ चढ़ाई कर चुके हैं, वह अकेला अपनी भुजाओं के बल से कन्नौज को दिल्ली कर सकता था, और पृथ्वीराज को दिल्ली का सिंहासन दिला सकता था (३३)। [युद्ध के इस उन्माद को देखकर] संयोगिता हर्ष से पूरित हो गई; इसी समय पृथ्वीराज ने उसकी बाँह पकड़ कर उसे अपने साथ घोड़े की पीठ पर बिठा लिया (३४)।

७. पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध (पूर्वार्द्ध)

संयोगिता का परिणय करके पृथ्वीराज ने दिल्ली की ओर प्रस्थान करने की आज्ञा की; इसी समय चन्द ने जयचन्द को ललकार कर बताया कि उसका शत्रु पृथ्वीराज यश-ध्वंस करने आया था, और उसकी पुत्री का परिणय करके उसके आभूषणों के रूप में जयचन्द से युद्ध माँग रहा था (१-२)। यह सुन कर जयचन्द के धौंसों पर चोट पड़ी (३)। पृथ्वीराज के सौ राजपूतों के ऊपर जयचन्द के सौ हजार सैनिक टूट पड़े; उसकी इस सेना की अगणित पंक्तियों में सौ दस लाख सैनिक थे (५)। जयचंद की इस विशाल वाहिनी के विरुद्ध पृथ्वीराज के सौ योद्धाओं का चल पड़ना वैसा ही था जैसे रावण की विशाल सेना के विरुद्ध राम की वानरी सेना का प्रयाण करना (७)। किन्तु राम के दल में भी वानरों की एक विशाल संख्या थी, यहां तो अस्सी लाख सेना से केवल सौ योद्धा भिड़ रहे थे (८)।

जयचन्द ने मीर बंदन को पृथ्वीराज को पकड़ने का आदेश किया (१३)। पृथ्वीराज की ओर से कन्ह ने मोर्चा लिया और उसके प्रहार से मीर कट कर गिरने लगे (१७)। दो हजार घोड़े-हाथियों और सात हजार मीरों को मार कर चहुवान (कन्ह) ने रण-स्थल को ढक दिया (१९)। प्रथम दिन के इस युद्ध में गोविन्दराज गहलोत, नागोर निवासी नरसिंह दाहिमा, चन्द्र पुंडीर, सारंग सोलंकी तथा पाल्हन देव कूरंभ अपने दो बांधवों के साथ गिरे : इस प्रकार सौ में से सात योद्धा घट गए (२०)। भरणी के भोग में अष्टमी, शुक्रवार को यह युद्ध हुआ (२१)।

शनिवार के युद्ध में पृथ्वीराज के सामन्तों ने धावा किया (२५) और दोपहर तक में उनमें से पाँच खेत रहे (२५)। ये थे : गुर्जर धरा का माल चंदेल, थट्टा का भूपाल भान भट्टी, सामला शूर अच्छ पमार तथा धार का निरवान वीर (२७)। दोपहर से पृथ्वीराज-पक्ष में जंगलीराय ने युद्ध किया, किन्तु वह भी खेत रहा; इस प्रकार अब तक पृथ्वीराज के तेरह सामंत खेत रहे थे और पृथ्वीराज को भी पाँच बाण लग चुके थे (२८)। संध्या तक पृथ्वीराज के सोलह और सामंत खेत रहे (३०)। इनके नाम इस प्रकार थे : मंडलीराय मालन हंस, जावला, जाल्ह, बाघ बागरी, बलीराय यादव, सारंग, गाजी, पाधरी राय, परिहार राणा, साखुला, सिंह [राय], सिंहली राय, सातल्ल गोरी, भोज, मल्ल तथा भोआल राय (३१)।

८. पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध (उत्तरार्द्ध)

पृथ्वीराज के सामंतों ने अब उससे अनुरोध किया कि वह दिल्ली की ओर बढ़े और उसके मार्ग की रक्षा उनमें से एक-एक भट करे; इस प्रकार वे उसे युद्ध से बचाते हुए दिल्ली पहुँचा देते, अन्यथा अस्सी लाख शत्रु-सेना को कौन झेल सकता था (१)? पृथ्वीराज ने सामंतों के इस प्रस्ताव का

विरोध करते हुए कहा कि मरण से उसे भयभीत नहीं किया जा सकता था, क्योंकि बिना काल के किसी का मरण नहीं होता है; वे भीम [चौलुक्य] को नष्ट करने के गर्व से मदमत्त होकर ऐसा कह रहे थे, किन्तु उसने भी तो सरवर में शहाबुद्दीन गोरी को वश में किया था; जिसकी शरण में हिन्दू और तुर्क दोनों हो चुके थे, उसे वे शरणागत करना चाहते थे (२)। किन्तु सामंतों ने कहा कि राजा और रावत अन्योन्याश्रित हैं : वह उनकी रक्षा करता है, तो वे भी उसकी रक्षा करते हैं (३)। उन्होंने कहा, "तुमने शहाबुद्दीन गोरी को बन्दी कर हिन्दुओं की रक्षा की, विजयाकांक्षी [भीम] चौलुक्य का दमन कर जालोर की रक्षा की, भीम भट्टी को हार देकर पंगुर (?) की रक्षा की, यादवराज से रणथम्भ (रंथभौर) की रक्षा की, यह युद्ध जयचन्द की मरण-कीर्त्ति और तुम्हारी जीवन-कीर्ति का है, [हमारी कामना है कि] प्रभु संयोगिता का परिणय करके दिल्ली पहुँचें और घर-घर मंगल हो (४)।" पंचानवे कोस दूर दिल्ली तक स्वामी को पहुँचाने के लिए क्रमशः एक-एक वीर जयचन्द की सेना से मोर्चा लेकर कट मरे—यह कहते हुए चन्द ने भी इस योजना का समर्थन किया (६)। फलतः पृथ्वीराज ने इसे स्वीकार किया (७) और नवमी को उसने दिल्ली की दिशा में अपने घोड़े की बाग मोड़ी (१०)।

पृथ्वीराज-पक्ष का पहला योद्धा जो [इस योजना में] आगे आया हरसिंह चहुआन था; उसके जूझते-जूझते तक पृथ्वीराज चार कोस आगे निकल गया (११)। इसके अनन्तर कनक बड़गूजर आगे आया; उसके जूझते-जूझते तक पृथ्वीराज छः कोस और आगे निकल गया (१४)। इसके अनन्तर निडर राठौर आगे आया, जो वर सिंह का पुत्र था; उसके जूझते-जूझते तक पृथ्वीराज आठ कोस और आगे निकल गया (१६)। तदनन्तर कन्ह आगे आया (१८), और वह मारा गया (२२)। तदनन्तर अल्हन आगे बढ़ा (२३), और वह मारा गया (२४)। तदनन्तर अचलेस आगे आया (२५), जो बाहर [राय] का पुत्र था (२६), और वह मारा गया। तदनन्तर पट्टनपति और पट्ट प्रभु को छलने वाला बिंझ आगे आया (२७), और यह भगुल पति बिंझ चालुक्य भी मारा गया (२८-२९)। तदनन्तर आबूपति सलख पमार आगे बढ़ा (३०), और वह भी मारा गया; तदनन्तर लखन बघेल आगे बढ़ा (३१), और वह भी मारा गया (३२)। इस समय तक दिल्ली दस कोस रह गई थी जब पाहार तोमर आगे आया (३३) [और वह भी मारा गया]। इस प्रकार हरसिंह ने ४ कोस, कनक बड़गूजर ने ६ कोस, निडर ने ८ कोस, कन्ह ने १० कोस, अल्हन ने १२ कोस, अचलेस ने १४ कोस, बिंझ ने १६ कोस, सलख ने ५ (?) कोस, लखन ने १० (?) कोस, तथा पाहार ने १० कोस पृथ्वीराज को आगे बढ़ाया; और इतने शूरों के जूझते-जूझते पृथ्वीराज दिल्ली पहुँच गया (३५)।

९. पृथ्वीराज-संयोगिता का केलि-विलास

पृथ्वीराज दिल्ली पहुँचा, तो जयचन्द कन्नौज लौट गया (१)। इसके अनन्तर पृथ्वीराज विलास में पड़ गया और अपनी शक्ति को उसने नष्ट कर दिया : निरन्तर उसके मन में [एक मात्र] संयोगिता को सुख देने की कामना रहती थी और उसकी प्रौढ़ रति में पड़ कर उसे दिन-रात की सुधि नहीं रहती थी; परिणाम-स्वरूप उसके गुरु, बांधवों, भृत्यों और प्रजा में असन्तोष उत्पन्न हो गया था (८)। ऋतुएँ आती थीं और चली जाती थीं किंतु संयोगिता ने पृथ्वीराज को इस प्रकार अपने वश में कर लिया था कि उसको छोड़ कर कहीं जाना उसके लिए असम्भव हो गया था—[यहाँ छः छन्दों में कवि ने सुन्दर ढङ्ग से षड् ऋतु-वर्णन करते हुए नायिका के प्रेमानुरोधों का उल्लेख किया है (९-१४)]।

१०. पृथ्वीराज का उद्बोधन

सारी प्रजा राजगुरु से पूछती कि राजा छः महीने से नहीं दिखाई पड़ा था, इसका क्या कारण था; अतः गुरु इस प्रश्न को लेकर चन्द के पास आए (१) और उससे उन्होंने यही प्रश्न

किया (३)। चन्द ने बताया कि जिस कामिनी के लिए पृथ्वीराज ने कलह किया था, अब उसी कामिनी का वह भोग कर रहा था (४)। गुरु को इस पर विश्वास नहीं हो रहा था; उन्होंने कहा "जिसने [सदैव] धन, स्त्री और जीवन को तृण के समान गिना था, उसने काम की वश्यता किस प्रकार स्वीकार की ?" (५)। चन्द ने संयोगिता के नख-शिख का वर्णन कर उसकी इस शंका का समाधान किया (११)। गुरु ने समझ लिया कि जैसी मनुष्य की भावी होती है, वैसी ही विधाता उसे मति भी अर्पित करता है (१३)। इस वार्तालाप के अनन्तर गुरु और चन्द ने पृथ्वीराज के उद्बोधन का संकल्प किया—उन्होंने कहा या तो वह बांधवों से मनस्विन् (उनका ध्यान रखने वाला) होगा, और या तो अब वह उस संयोगिता को ही देखेगा (१४)।

गुरु और चन्द राजद्वार पर पहुँचे, जहाँ संयोगिता का आदेश चलता था (१५)। दासियों के द्वारा उन्होंने राजा को एक पत्रिका भेजी और उन्हें मौखिक रूप से यह कहने के लिए कहा, "गोरी तेरी धरा पर अनुरक्त है और तू गोरी (संयोगिता) पर अनुरक्त हो रहा है (२०)!" उस पत्र की पहली पंक्ति पढ़ते ही राजा लज्जित होकर भूमि पर जा पड़ा (२२)। पत्र में लिखा था, "शहाबुद्दीन की आज्ञा से उसकी अपूर्व सेना [पुनः] एकत्रित हुई है और वह उससे आदर प्राप्त कर दिल्ली की दिशा में बढ़ रही है; उसमें दस हजार हाथी तथा दस लाख घोड़े हैं, इसी प्रकार उसके अनेक सुभट तथा योद्धा अमीर भी हैं जो गम्भीर और अविचलित रहने वाले हैं; हे चहुवान, गुन; बाण तो अपने अधीन है, अतः उद्योग करके प्राणों की रक्षा कर और सामन्तों से वह मन्त्र कर कि तेरे कारण दिल्ली की धरा डूब न जावे (२३)।" इस पत्र को सुनते ही [वह विलास-निद्रा से जग गया और] उसने तरकस सँभाला (२४)।

यह देख कर संयोगिता ने जीवन में काम-सुख का महत्व प्रतिपादित करते हुए उसे उसके संकल्प से विरत करना चाहा (२५), किन्तु पृथ्वीराज ने प्रिया का मुख देखा और जी को निर्भय (कठोर) बना कर कहा, "तुमने हे श्रेष्ठ स्त्री, मेरे बाहुओं की पूजा की है, और वही तुम मुग्धा इस समय काम की बातें कर रही हो (२६)?" इसके अनन्तर पृथ्वीराज ने उसे अपने स्वप्न की कथा सुनाई (२७)। उसने कहा, स्वप्न में एक सुन्दरी उससे आरम्भ-परिरम्भ करने लगी; उस समय उसका पति भी उसके साथ था, जिसका तेज ग्रीष्म के रवि का था; उस पुरुष ने मुझसे झगड़ा किया और वह मेरा हाथ पकड़कर बड़बड़ाने लगा; इस प्रकार वहाँ पर एक संकट उपस्थित हो गया और मैं ने देखा कि वह पुरुष [रोष में] दाँतों को दाब रहा है। किन्तु तदनन्तर न मैं था, और न वह सुन्दरी थी; 'हर-हर' का स्वर उत्पन्न हुआ; पता नहीं देवगण का क्या अभिमत है, और वे किस उद्देश्य से क्या करना चाहते हैं (२८)।" संयोगिता ने यह सुन कर गुरु और कवि को बुलाया; उन्होंने स्वप्न के अनिष्टकारी प्रभाव के शमन के लिए उपचार किए; तदनन्तर उसी दिन संध्या समय पृथ्वीराज ने सुभटों की सभा की।

११. शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध

पृथ्वीराज की सब सेना सत्तर हजार थी, जिनमें से बत्तीस हजार आगे बढ़ रहे थे (१)। इनमें पाँच हजार ऐसे थे जो राजा के लिए समस्त संकट सहने को तैयार थे (२)। इनमें भी दो हजार स्वामी की आज्ञा से सब कुछ कर सकते थे, और इन दो हजार में भी पाँच सौ ऐसे थे जो वज्र सहन कर सकते थे (३)। इनमें भी सौ शील और सत्य में यम को जीतने वाले थे और इनमें भी दस हाथियों के दाँत उखाड़ने वाले थे (४)। इनमें भी पाँच ऐसे थे कि उनके कार्यों की गति अगम्य थी; पृथ्वीराज इन्हीं में (इन्हीं से परिवेष्टित) था (५)। पावस के आगमन पर जब धरा अगम्य हो रही थी, तुर्क और हिन्दू सेनाएँ सुसज्जित हुईं (६)।

सिन्धु पार कर शहाबुद्दीन ने खुरासान खाँ, तातार खाँ और रुस्तम खाँ से कहा कि वह उस पृथ्वीराज पर आक्रमण कर रहा था जिसने उसे बन्दी बना कर छोड़ दिया था, और जिसे उसे सात बार कर दिया था : उसने उनसे मार्ग में और भी भृत्यों का संग्रह करने के लिए कहा (७)। उन्होंने उसे पूर्ण आश्वासन दिया (८)।

दोनों दलों में युद्ध आरम्भ हुआ (११)। दोपहर तक में चामण्ड (?) वीर ढाई सौ खेत रहे, चालुक्य योद्धा एक सौ बीस गिरे, कूरंभ शूर छः हजार गिरे, खीची गिरे, आबूराज जैत पमार गिरा, पच्चीस सौ चहुवान गिरे और अन्त में केवल चौदह सौ योद्धा पृथ्वीराज के साथ शेष रहे; शहाबुद्दीन के सोलह हजार सैनिक गिरे; पृथ्वीराज की सेना रण-क्षेत्र से लौट पड़ी और शहाबुद्दीन विजयी हुआ (१२)। पृथ्वीराज को शत्रुओं ने घेर लिया (१३), उन्होंने उसे खुरासान खाँ की बाहों में सिंगिनी अर्पित करने को कहा (१४)। इस बात को पृथ्वीराज सहन न कर सका और उसने खुरासान खाँ को एक बाण से समाप्त कर दिया, किन्तु पृथ्वीराज के दिन अब दिन दूसरे आ गये थे (१५)। अन्त में एक म्लेच्छ सरदार के द्वारा वह बन्दी हुआ (१७)।

१२. *शहाबुद्दीन तथा पृथ्वीराज का अन्त*

पृथ्वीराज को बन्दी कर शहाबुद्दीन गजनी गया; उसने दिल्ली का राज्य उसके पुत्र को दिया और छः महीने बाद ही शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज को नेत्रहीन कर दिया, यह बात जब चन्द ने सुनी, उसने गजनी की राह पकड़ी (१)। उसने एक अवधूत की वेष-भूषा बनाई और इस प्रकार [चल कर] वह गजनी पहुँचा (३)। तीसरे पहर शहाबुद्दीन हदफ़ (लक्ष्य वेध) खेलने के लिए निकल रहा था (१२)। आगे आगे निसुरत खाँ चल रहा था; शहाबुद्दीन की कटि में तूणीर था और हाथ में सिंगिनी थी; कवि ने दौड़ कर उसका मार्ग रोका, और उसे बाएँ हाथ से आशीर्वाद दिया (१३)। चन्द को अवधूत के उस वेष में देख कर शाह ने उससे पूछा (१४) तो चन्द ने अपना परिचय दिया; उसने बताया कि उसने पृथ्वीराज के साथ अवतार (जन्म) लिया था; उसके बन्दी हो जाने से वह अनाथ हो गया था और जब उसने सुना कि वह बिना आँख का कर दिया गया था, उसने बदरिकाश्रम में जाकर तप करने का निश्चय किया था; शाह ने कहा कि पृथ्वीराज अंधा होने पर भी अपनी वक्र दृष्टि नहीं छोड़ रहा था, इसलिए उसे थाने में रख दिया गया था; इस समय वह (शहाबुद्दीन) हदफ़ (लक्ष्य वेध) खेलने जा रहा था, दूसरे दिन वह उससे बातें कर सकता था (१५)।

दूसरे दिन शाह ने चन्द को निसुरत खाँ के द्वारा बुलवाया (१९)। तातार खाँ ने कहा कि चन्द बड़ा चतुर व्यक्ति था, उसका विश्वास न करना चाहिए था (२०)। किन्तु शाह ने कहा कि वह (चन्द) तपस्या करने जा रहा था तो अतः यदि वह चाहता था तो उससे दो बातें कर सकता था या कुछ दान ले सकता था (२१)। तदनुसार चन्द शाह के समक्ष बुलाया गया (२२)। सुल्तान ने पूछा कि योगी-विरागी को उससे मिलने की क्या आवश्यकता हो सकती थी (२३)? चन्द ने कहा कि योग-भोग की बातें वह दूसरे दिन उसे बतावेगा (२५)। इस समय उसे एक अन्य बात कहनी थी—बचपन में पृथ्वीराज उसकी सब साधें पूरी करता था (२६) और उसी समय उसने कहा था कि बिना फल के बाण से ही वह सात घड़ियालों को सिंगिनी लेकर वेध सकता था (२७); उसी को देखने की इच्छा शेष थी, इसलिए उसके पास वह आया था; वह (शहाबुद्दीन) चाहता तो उसकी यह साध पूरी हो सकती थी (२८), और फिर इस साध के पूरी होते ही वह (चन्द) वन चला जाता (२९)। शाह को इस पर विश्वास नहीं हुआ कि इस अवस्था में भी पृथ्वीराज यह कर सकता था (३०), फिर भी उसने चन्द को इसकी स्वीकृत दे दी (३१)। चन्द अब पृथ्वीराज के पास गया और आशीर्वाद देते हुए उसने उससे कहा, "तुमने चौलुक्य राज (भीम) पर अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया, जयचन्द के यज्ञ का विध्वंस किया, ···तुम साँभर नरेश, और सोमेश्वर के

पुत्र हो; क्या तुम्हें स्मरण है कि तुमने सात घड़ियालों को [एक] वाण से बेधने का मुझे वचन दिया था ?" चन्द का यह कथन सुनकर एक बार उसका व्यग्र देह मानो नवीन हो गया, किन्तु फिर [निराशा से] उसका सिर झुक गया (३३)। चन्द ने पुनः उसे उत्तेजना दी, और कहा कि शाह निकट ही बाईं ओर पर सौ हाथ ऊपर सुन रहा था; इस समय मानो सौ अवसर एक साथ नाच उठे थे और उसे निर्भय होकर अर्थ-साधन करना चाहिए था (३५)। बड़ी कठिनाई से किसी प्रकार राजा को तैयार कर चन्द शाह के पास गया, और उसने कहा कि राजा को कठिनाई से उसने तैयार किया था किन्तु केवल शाह का फ़र्मान पाने पर वह वाण पकड़ने पर तैयार हुआ था (४०)। तातार खाँ ने कहा कि राजा से कुछ हो नहीं सकता था इसलिए यह उसका बहाना मात्र था, शाह तो तीन फ़र्मान देने को तैयार था (४१)। चन्द प्रसन्न होकर राजा के पास लौट गया (४२)। राजा ने कहा इस कार्य के लिए उसे दो वाण चाहिए थे (४४)। चन्द ने समझा-बुझा कर उसे एक वाण से ही यह कार्य करने को तैयार किया (४५)। उसने कहा कि जो कुछ उसने कैंवास के साथ किया था अब उसका फल उसे मिलने वाला था (४६)। राजा प्रस्तुत हुआ (४७)। शाह ने फ़र्मान दिए; तीसरा फ़र्मान होते ही शाह वाण से विद्ध हुआ भूमि पर पड़ा था; राजा का भी अन्त हुआ (४८)। देवताओं ने इस घटना पर आकाश से पुष्प-वर्षा की (४९)। इस प्रकार नव रस से सरस और अपूर्व इस 'रासो' की चन्द ने रचना की (४९)।

—:o:—

७. पृथ्वीराज रासो
की
ऐतिहासिकता

पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता पर विचार करने की दृष्टि से नीचे उसके प्रस्तुत संस्करण में आए हुए ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं से सम्बन्धित उल्लेखों का विवेचन किया जा रहा है।

(१) कर्ण : डाहल के कर्ण के विषय में कहा गया है कि जयचन्द ने उसे दो बार बन्दी किया था :

करण डाहलल दु बार बांध्यउ। (५.१३)

डाहल का सब से अधिक प्रतापी शासक लक्ष्मी कर्ण कर्ण नाम से प्रसिद्ध था। इसका समय सं० १०९७-११२७ के बीच पड़ता है।[१] सं० ११३० से इसके उत्तराधिकारी और पुत्र यशः कर्ण देव के अभिलेख मिलने लगते हैं।[२] प्रकट है कि लक्ष्मी कर्ण जयचन्द का समकालीन नहीं था। किन्तु उसके दो उत्तराधिकारियों—यशः कर्ण और गय कर्ण—के नामों में भी 'कर्ण' लगा रहा है, इसलिए असम्भव नहीं कि कवि का आशय यहाँ डाहल के जयचन्द के समकालीन कलचुरि शासक से हो; वैसे जयचन्द के समकालीन डाहल के कलचुरि शासक क्रमशः नरसिंह (सं० १२१२-१२२७), जयसिंह (सं० १२३२), तथा विजयसिंह (सं० १२३७-१२५२) थे।[३]

(२) कैंवास : प्रस्तुत संस्करण का एक पूरा सर्ग तृतीय कैंवास की कथा से सम्बंधित है। कहा गया है कि वह पृथ्वीराज का प्रधान अमात्य था, और और पृथ्वीराज की एक करनाटी दासी पर अनुरक्त था और पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में वह उस दासी के कक्ष में पहुँच गया था; पृथ्वीराज को ज्यों ही इस बात की सूचना मिली, उसने आकर कैंवास और दासी का वध किया। रचना के अन्त में भी एक प्रसंग में (१२.४६) इस वध के संबन्ध में संकेत हुआ है।

जयानक रचित 'पृथ्वीराज विजय' में मन्त्री कदम्ब वास का उल्लेख है, और कहा गया है कि उसी के संरक्षण में पृथ्वीराज बालक से युवा हुआ था।[४] 'विजय' की प्राप्त प्रति इसके कुछ ही आगे खण्डित है, इसलिए उससे इसके आगे का वृत्त नहीं प्राप्त होता है। जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२) द्वारा लिखित 'खरतर गच्छ पट्टावली' में मंडलेश्वर कैंवास का उल्लेख है, और कहा गया है कि जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ में पृथ्वीराज के विश्राम काल में इसने मध्यस्थता का कार्य

[१] हेमचन्द रे : डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् नॉर्दर्न इण्डिया, भाग २, पृ० ८१८।

[२] वही, पृ० ७८९।

[३] वही, पृ० ८१८।

[४] पृथ्वीराज विजय, संपा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, सर्ग ९, श्लो० ४४।

किया था।[1] कैंवास के पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य होने और पृथ्वीराज के द्वारा उसके निकाले जाने की एक कथा 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध में है, यद्यपि उसके निष्कासन का कारण भिन्न बताया गया है, और यह कहा गया है कि वह इसी कारण शहाबुद्दीन से मिल गया था, और पृथ्वीराज की पराजय का वह कारण बना।[2] इस प्रबन्ध के सम्बन्ध में अन्यत्र विस्तार से विचार किया गया है।[3] फलतः कैंवास का पृथ्वीराज का अमात्य होना ऐतिहासिक प्रतीत होता है। किन्तु 'रासो' में उसके वध की जो कथा आती है, वह भी ऐतिहासिक है या नहीं, यह कहना कठिन है।

(३) गोविंदराज : यह पृथ्वीराज के मुख्य सामंतों में से है और जयचन्द के राजसूय यज्ञ का निमन्त्रण लेकर जब उसके दूत पृथ्वीराज के पास आते हैं, यह उसके निमन्त्रण का उत्तर देता है : वहाँ यह अपने को [कुरु] जाङ्गल का निवासी बताता है (२.३)। यह पृथ्वीराज-जयचन्द के युद्ध में मारा जाता है (७.२०)। मिनहाजुस्सिराज की 'तबकात-ए-नासिरी' के अनुसार, जिसकी रचना सं० १३०६ में हुई थी, गोविंदराय—जो कि दिल्ली का था—शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में मारा गया था।[4] यदि 'रासो' का गोविंदराय वही हो जो 'तबकात-ए-नासिरी' का है, तो दोनों उल्लेखों में अन्तर स्पष्ट है, यद्यपि उसका पृथ्वीराज का सामंत होना ऐतिहासिक प्रमाणित होगा।

(४) जयचन्द : रचना के सर्ग २ और ४ से ८ पृथ्वीराज तथा जयचन्द के संघर्ष के हैं, जो कि जयचन्द के राजसूय यज्ञ तथा उसकी पुत्री संयोगिता के कारण हुआ है। एक छन्द (५.१२) में *जयचन्द के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसने सिंधु नद पार कर म्लेच्छों को भगा दिया था, हिमालय के राज्यों को तहस-नहस किया था और आठ सुल्तानों को वश में किया था, तिरहुत में थाना स्थापित किया था, दक्षिण में सेतुबन्ध तक गया था, डाहल के कर्ण को दो बार बन्दी किया था,* सोलंकी (चौलुक्य) सिद्धराज को कई बार खदेड़ा था, तिलिंग और गोवाल कुण्ड को तोड़ा था, गुण्डके जीरा को बाँध कर छोड़ा था, वैरागर के हीरे लिए थे, गज़नी के शहाब शाह के सेवक निसुरतखाँ को बन्दी किया था [लङ्का जाकर] विभीषण से भिड़ गया था, खुरासान के अमीर को बन्दी किया था, विजयपाल का पुत्र जयचन्द इस प्रकार का था। इतिहास जयचन्द्र को विजयपाल का नहीं, विजयचन्द्र का पुत्र बताता है।[5] इस प्रकार दोनों नामों में कुछ अन्तर है। जयचन्द्र पृथ्वीराज का समकालीन था, यह इतिहास से प्रमाणित है। अपने पिता विजयचन्द्र के साथ यह दिग्विजय में सम्मिलित था, यह सं० १२२४ के कमौली के दान-पत्र से प्रमाणित है जो वाराणसी से विजयचन्द्र तथा युवराज जयचन्द्र के द्वारा प्रदत्त है और जिसमें 'भुवन दलन हेला' शब्दावली आती है।[6] किंतु ऊपर उल्लिखित समस्त राजाओं को उसने परास्त किया था, इसके प्रमाण नहीं मिलते हैं; लगता है कि कुछ नाम केवल सूची-वृद्धि के लिए सम्मिलित किए गए हैं; लङ्का के विभीषण से जा भिड़ना तो एक अनर्गल

[1] अगर चन्द नाहटा : पृथ्वीराज की सभा में जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ, हिन्दुस्तानी, भाग १०, पृ० ७१।

[2] पुरातन प्रबन्ध संग्रह, संपा० मुनि जिनविजय, पृ०८६-८७।

[3] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

[4] इलियट और डाउसन, भाग २, पृ० २९६-२९७।

[5] भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स ऑव नॉर्दर्न इंडिया, अभिलेख सं० ३३३, ३३६, ३३७, ३४०, ३४५।

[6] इपिग्राफिया इंडिका, भाग ४, पृ० ११७।

कल्पना मात्र है। जिन राजाओं के सम्बन्ध के ऐतिहासिक उल्लेख प्राप्त हैं, उनके साथ हुए उसके संघर्ष पर उन राजाओं के नामों से अलग विचार किया गया है।

'रासो' में आए हुए पृथ्वीराज-जयचन्द संघर्ष तथा पृथ्वीराज-संयोगिता विवाह के सम्बन्ध में इतिहास मौन है। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का कथन है कि जयचन्द एक बहुत दानी राजा था, जो उसके दिए हुए अनेक दान-पत्रों से प्रकट है, किंतु किसी दान-पत्र में भी राजसूय यज्ञ का उल्लेख नहीं है; नयचन्द्र सूरि ने सं० १४६० के लगभग लिखते हुए 'हम्मीर महाकाव्य' तथा 'रंभा मंजरी नाटिका' में, पृथ्वीराज-जयचन्द के संघर्ष अथवा जयचन्द के राजसूय यज्ञ और संयोगिता-स्वयंवर का कोई उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि 'हम्मीर महाकाव्य' में उसने पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के संघर्ष की कथा विस्तार से दी है, और 'रंभा मंजरी' में, जिसका नायक जयचन्द है, जयचन्द की प्रशंसा में पन्ने रँगते हुए भी उसके द्वारा किए हुए किसी राजसूय यज्ञ अथवा संयोगिता-स्वयंवर का उल्लेख नहीं किया है, इसलिए 'रासो' के ये विवरण अनैतिहासिक हैं। किंतु जहाँ तक दानपत्रों की बात है, 'रासो' के अनुसार पृथ्वीराज ने आरम्भ में ही उक्त राजसूय यज्ञ का विध्वंस किया था, इसलिए तत्सम्बन्धी दानपत्रों का न मिलना आश्चर्यजनक नहीं है। 'हम्मीर महाकाव्य' और 'रंभा मंजरी' को, जो सं० १४६० के लगभग लिखे गए, और काव्य की दृष्टि से लिखे गए, ऐतिहासिक महत्त्व प्रदान करना उचित नहीं है। 'हम्मीर महाकाव्य' के पृथ्वीराज-चरित्र में पृथ्वीराज और परमर्दिदेव के भी युद्ध का भी उल्लेख नहीं है, जो उस युग की एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी, जिसके स्मारक में सं० १२३९ का मदनपुर का शिलालेख है।[२] 'रंभा मंजरी' में तो जयचन्द को मल्लदेव का पुत्र कहा गया है, और कहा गया है कि वह लाट के मदन वर्मा की पुत्री रंभा से विवाह करता है।[३] जयचन्द्र का पिता विजयचन्द्र था, न कि कोई मल्लदेव, यह इतिहास प्रसिद्ध है; मदनवर्मा एक ही ज्ञात है जो चेदि का चंदेल शासक था। लाट से, जो गूर्जर देश का एक प्रान्त रहा है, इसका कोई सम्बन्ध नहीं था। इस मदन वर्मा का अन्तिम अभिलेख सं० १२१९ का एक दानपत्र है,, और इसके उत्तराधिकारी परमर्दिदेव का प्रथम अभिलेख सं० १२२३ का प्राप्त है।[४] इसलिए यह जयचन्द का समकालीन अवश्य था। फलतः जयचन्द्र के उक्त दोनों काव्यों के आधार पर उपर्युक्त प्रकार का कोई परिणाम निकालना उचित नहीं माना जा सकता है।

दूसरी ओर, डॉ० दशरथ शर्मा का कथन है कि पृथ्वीराज से जयचन्द की कन्या के विवाह की की घटना इतिहास-सम्मत ज्ञात होती है, क्योंकि 'पृथ्वीराज विजय' में पृथ्वीराज के तिलोत्तमा के चित्र पर मुग्ध होने और उसके विरह में व्यथित होने की जो कथा है, वह बाद में किसी राजकुमारी से होने वाले उसके विवाह की भूमिका मात्र है, और यह राजकुमारी गङ्गा-तटवर्त्ती किसी स्थान की थी, यह उक्त काव्य के अंतिम प्राप्त सर्ग के ७८ वें त्रुटित श्लोक के 'नाक नदी तट स्थितः' शब्दावली से ज्ञात होता है, इसलिए यदि 'विजय' में इस कथा के अनन्तर 'रासो' में वर्णित पृथ्वीराज-संयोगिता अथवा 'सुर्जन चरित' में वर्णित पृथ्वीराज-कांतिमती के विवाह की बात आई हो तो आश्चर्य न होगा।[१] जैसा अन्यत्र दिखाया गया है, 'सुर्जन चरित महाकाव्य' में वर्णित पृथ्वीराज का समस्त चरित्र 'रासो' के प्रस्तुत संस्करण का अनुसरण करता है, इसलिए उसमें आई हुई कांतिमती

[१] पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० १९८६, पृ० ५८।

[२] भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स ऑव नॉर्दर्न इंडिया, पृ० ५८।

[३] ए० एन० उपाध्ये : नयचन्द्र ऐंड हिज रंभा मंजरी, जर्नल ऑव् यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी, भाग १९, पृ० ९०।

[४] भांडारकर : इंस्क्रिप्शंस ऑव् नॉर्दर्न इंडिया, पृ० ४७, ४९।

के साथ पृथ्वीराज के विवाह की कथा 'रासो' में वर्णित पृथ्वीराज-संयोगिता विवाह के सम्बन्ध में स्वतंत्र साक्ष्य के रूप में नहीं रक्खी जा सकती है। 'पृथ्वीराज विजय' में आई हुई 'नाक नदी तट स्थितः' शब्दावली ही उसके पक्ष में रक्खी जा सकती है, किंतु वह जयचन्द की कन्या के सम्बन्ध की ही रही होगी, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।

समसामयिक मुसलमान इतिहास-लेखकों मिनहाज उस्सिराज तथा हसन निज़ामी के अनुसार[1] शहाबुद्दीन के दोनों आक्रमणों के समय—मुसलमान इतिहास लेखक पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन में दो ही युद्ध हुए मानते हैं—पृथ्वीराज अजमेर का शासक था; दिल्ली का शासक गोविंदराय या खांडेराय था जो उसकी ओर से दोनों युद्धों में लड़ा था। जयचन्द और पृथ्वीराज के संघर्ष की कथा 'रासो' के अनुसार शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के इन दोनों संघर्षों के बीच में पड़ती है; जयचन्द के विरुद्ध अतः पृथ्वीराज ने दिल्ली से प्रस्थान किया था और जयचन्द-पुत्री संयोगिता को लेकर दिल्ली लौटा था, यह काल्पनिक लगता है।

(५) पृथ्वीराज : दिल्ली के शासक होने के पूर्व का पृथ्वीराज का चरित्र 'रासो' के प्रस्तुत संस्करण में अति संक्षेप में है। उसे एक ही छन्द में देते हुए कहा गया है कि उसका शैशव अजमेर में व्यतीत हुआ था, उसके जीवन के अनुरागपूर्ण वृत्त साँभर में हुए थे, वह बहिला वन का निवासी था, और वह सोमेश्वर का पुत्र दिल्ली में भासित होने के लिए विधाता द्वारा निर्मित हुआ था (१.६)। बहिला वन के सम्बन्ध में निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है, किन्तु शेष उल्लेख इतिहास-सम्मत ही हैं।

कहा गया है कि उसने बलख के शासक को हराया था और गजनी के शाह शहाबुद्दीन को हराया था (२.७)। बलख के शासक को हराने की बात इतिहास-सम्मत नहीं प्रतीत होती है। गोरी को पराजित करने के सम्बन्ध में अलग विचार किया गया है। कहा गया है कि मुर (मरु) धरा को उसने विजित किया था (२.९), मंडोवर को तहस-नहस किया था (२.१७), मरुमंड [मरु स्थल] के मोरी राजा को दंडित किया था (२.१७), रंथंभौर को आग की लपटों के समान जलाया था (२.१७) और कालिंजर को जलमग्न किया था (२.१७)। अन्यत्र कहा गया है कि उसने भीमभट्टी से पंगुर और यादवराज से रंथंभौर की रक्षा की (८.४) थी। पृथ्वीराज अपने युग का एक अति पराक्रमी शासक था, और उसने अनेक लड़ाइयाँ लड़ी थीं, कालिंजर के चन्देल शासक परमर्दि पर उसकी विजय-गाथा मदनपुर के सं० १२३९ के शिलालेख में अंकित है। असम्भव नहीं कि ये अन्य विजयें भी जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है, उसको प्राप्त हुई हों, किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि कुछ नाम कल्पना से रख दिए गए हों; इस प्रकार के काव्यों में सूची-वृद्धि एक सामान्य बात रही है।

(६) भीम चौलुक्य : 'रासो' में कहा गया है कि पृथ्वीराज ने युद्ध करके भीम की शक्ति को नष्ट किया (२.३;१२.३३); वह दूर के विश्वासर में था, जब उसने मन्त्री (कँवास) को भीम को बन्दी करने भेजा था (३.६); उसके सामन्तों ने ही भीमसेन को पराजित किया था (८.२) और भीमसेन से पृथ्वीराज ने जालौर की रक्षा की थी (८.४)।

गूर्जराधिपति भीम (सं० १२३५-१२९८)[2] पृथ्वीराज का समकालीन था, यह प्रमाणित है। 'पृथ्वीराज विजय' में शहाबुद्दीन के भीम पर किए गए आक्रमण की ओर संकेत करते हुए कदम्ब वास

[1] दे० इलियट और डाउसन : भाग २, पृ० २९५-२९७; तथा हेमचन्द रे : डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव नॉर्दर्न इंडिया, पृ० १०८७-१०९३।

[2] हेमचन्द रे : डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् नॉर्दर्न इंडिया', पृ० १०४८।

द्वारा कहलाया गया है कि "जैसे तिलोत्तमा के लिए सुंद और उपसुंद नष्ट हुये थे, वैसे ही मनोज्ञा लक्ष्मी के उद्देश्य से आपके शत्रु स्वयं नष्ट हो जायेंगे।[१]" प्राह्लादन के 'पार्थ पराक्रम व्यायोग' में भीम के सामन्त आबू के परमार धारावर्ष पर जांगल-नरेश पृथ्वीराज के किए हुए एक असफल सौप्तिक प्रस्ताव (रात्रि कालीन आक्रमण) का उल्लेख हुआ है।[२] जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२) द्वारा रचित 'खरतर गच्छ पट्टावली' में पृथ्वीराज और भीम चौलुक्य के सेनापति जगद्देव प्रतिहार के बीच कठिनाई से हो पाई एक संधि का उल्लेख हुआ है।[३] इस प्रकार भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज में पारस्परिक वैमनस्य और छेड़-छाड़ के प्रमाण मिलते हैं। जालोर की रक्षा के लिए भी दोनों में कोई युद्ध हुआ था यह ज्ञात नहीं है।

(७) शहाबुद्दीन गोरी : शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के बीच हुए केवल एक ही—अंतिम युद्ध—का वर्णन 'रासो' के प्रस्तुत संस्करण में मिलता है, इसके पूर्व के युद्धों के सम्बन्ध में कहा गया है कि पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को तीन बार बाँधा था (२.३), अन्यत्र यह कि उसने शहाबुद्दीन को सरवर में परास्त किया था (८.४)। एक स्थान पर आता है कि भीम को जब मन्त्री (कैंवास) ने बन्दी किया था, पृथ्वीराज दूर विश्वासर में था (३.६); असम्भव नहीं कि 'सरवर' से तात्पर्य इसी विश्वासर से हो अन्यत्र यह कि उसने गजनी को नष्ट किया (२.१७)। एक स्थान पर शहाबुद्दीन से कहलाया गया है :

जिहि हउं गहि छंडियउ वार सत हउं अप्पउ कर। (११.७)

जिसके कम से कम दो अर्थ सम्भव हैं : एक तो यह कि 'जिसने मुझे सात बार पकड़ा और छोड़ा और जिसे मैंने कर अर्पित किया', दूसरा यह कि 'जिसने मुझे पकड़ कर छोड़ा और जिसे मैंने सात बार कर अर्पित किया।' मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार शहाबुद्दीन के दो ही युद्ध पृथ्वीराज से हुए थे : एक जिसमें शहाबुद्दीन पराजित हुआ था, और दूसरा जिसमें पृथ्वीराज पराजित हुआ और और मारा गया था।[४] 'रासो' में सरवर और विश्वासर का उल्लेख हुआ है। मुसलमान इतिहासकारों ने स्थान का नाम 'तबर हिन्द' : या 'सर हिन्द' दिया है। सरवर (सर हिंद ?) के युद्ध के अतिरिक्त अन्तिम युद्ध से पूर्व के युद्धों का कोई विवरण 'रासो' में नहीं मिलता है, और न तत्कालीन इतिहास में मिलता है; वे काल्पनिक ही प्रतीत होते हैं।

'रासो' के प्रस्तुत संस्करण में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के बीच हुए केवल अन्तिम युद्ध का वर्णन हुआ है। कहा गया है कि शहाबुद्दीन ने पावस में आक्रमण किया था (११.६), युद्ध में पृथ्वीराज पराजित और बन्दी हुआ (११.१७), तदनंतर शहाबुद्दीन इसे गजनी ले गया (१२.१), दिल्ली का हय-गज-भांडार उसके पुत्र को सौंप दिया (१२.१) और कुछ समय बाद उसने पृथ्वीराज की आँखें निकलवा लीं (१२.१); यह सुनकर चन्द ने गजनी की राह पकड़ी (१२.१), उसने वहाँ जाकर शहाबुद्दीन से कहा कि पृथ्वीराज बिना फल के वाण से घड़ियालों को वेध सकता था, यह उसने उससे किसी समय कहा था, और अब चन्द तप के लिए जाना चाहता था, इसलिए इसके पूर्व उस साध को पूरी कर लेना चाहता था, जो कि केवल शाह की अनुमति से ही संभव था (१८.२७-२८); शाह को भी इस कौतुक को देखने की उत्सुकता हुई अतः उसने इसके आयोजन की अनुमति दे दी (१२.३१); चन्द ने पृथ्वीराज को भी इस योजना के लिए तैयार कर लिया, और शाह से उसने

[१] 'पृथ्वीराज विजय', सर्ग ११, प्रारम्भ।

[२] 'पार्थ पराक्रम व्यायोग', गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, प० ३।

[३] अगरचन्द नाहटा : जगद्देव और पृथ्वीराज की संधि, हिन्दुस्तानी, भाग १०, पृ० ९८।

[४] मिनहाजुस्सिराज : 'तबकात-ए-नासिरी', इलियट और डाउसन, भाग २, पृ० २९५-२९७ तथा हेमचन्द रे, डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव नॉर्दर्न इण्डिया, पृ० १०८८-१०९३।

कहा कि उसके तीन मौखिक फरमान प्राप्त करके ही पृथ्वीराज लक्ष्य वेध करने के लिए तैयार हुआ था (१२.४०), अतः शाह ने इसे भी स्वीकार कर लिया, और जब उसने तीसरा फरमान सुनाया, पृथ्वीराज का बाण उसको वेधता हुआ निकल गया (१२.४८); तदनन्तर राजा का भी मरण हुआ (१२.४८)। प्रायः समसामयिक मुसलमान इतिहासकारों मिनहाजुस्सिराज तथा हसन निजामी के अनुसार[1] पृथ्वीराज अजमेर में शासन करता था, दिल्ली का शासक गोविन्द राय या खांडे राय था जो पृथ्वीराज की ओर से शहाबुद्दीन से दोनों युद्धों में लड़ा था; हसन निजामी के अनुसार शहाबुद्दीन ने दूसरे आक्रमण के पूर्व अजमेर एक दूत भेजा था और कहलाया था कि वह इस्लाम और उसकी अधीनता स्वीकार करे। चौहान के रोषपूर्ण उत्तर के अनन्तर उसने उस पर आक्रमण किया था। हसन निजामी ने यह भी कहा है इस आक्रमण के समय पृथ्वीराज ने कहला भेजा था कि यदि सुलतान अपने राज्य की सीमाओं में चला जावे तो वह उसका पीछा नहीं करेगा; इस पर सुलतान ने उत्तर भेजा कि वह अपने बड़े भाई के आदेश से कठिनाइयाँ झेलता यहाँ आया था, और उससे आदेश लेकर ही लौट सकता था जिसके लिए समय अपेक्षित था; पृथ्वीराज ने यह मान लिया तो रात में सारी तैयारी करके दूसरे दिन प्रातःकाल ही जब राजपूत अपने नित्य कर्म में लगे हुए थे सुलतान ने आक्रमण कर दिया; पृथ्वीराज की सेना इसके लिए तैयार नहीं थी और शीघ्र ही वह पराजित हुआ इसके अनन्तर अजमेर का शासक पृथ्वीराज का पुत्र बनाया गया। दोनों के अनुसार पराजित होने पर पृथ्वीराज भागता हुआ सरस्वती के निकट पकड़ा गया और मार डाला गया। प्रकट है कि 'रासो' की उपर्युक्त कथा काल्पनिक ही है।

(८) सलष और जैत पमार: 'रासो' के अनुसार सलष आबू-नरेश था और जयचन्द से हुए पृथ्वीराज के युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़ता हुआ मारा गया (८.३०)। इसी प्रकार उसमें कहा गया है कि उसका पुत्र जैत [जो उसके अनन्तर आबू-नरेश था], शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से युद्ध करता हुआ मारा गया (११.१२)।

किन्तु पृथ्वीराज के समय में धारावर्ष परमार आबू-नरेश था[2], जो कि भीम का सामन्त था, जैसा उसके अभिलेख[3] तथा प्राह्लादन के 'पार्थ पराक्रम व्यायोग'[4] से प्रमाणित है। सलष और जैत के आबू-नरेश होने का उल्लेख इतिहास-विरुद्ध है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त 'रासो' के प्रस्तुत संस्करण में पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध के प्रसंगों में पृथ्वीराज पक्ष के अनेक योद्धाओं के नाम आते हैं; ये हैं: कन्ह (८.१८-२२), नागौर-निवासी नरसिंह दाहिमा (७.२०), चन्द्र पुण्डीर (७.२०), सारंग सोलंकी (७.२०, ७.३१), पाल्हनदेव कूरंभ (७.२०), गुर्जर का माल चन्देल (७.२७), यद्दा का भूपाल भान भट्टी (७.२७), सामला सूर (७.२७), अच्छ परमार (७.२७), धार का निरवान वीर (७.२७), जंगली राय (७.२८), मंडली-राय माल्हन हंस (७.३१), जावला (७.३१), जाल्ह (७.३१), बाघ बागरी (७.३१), बलीराम यादव (७.३१), गाजी (७.३१), पाघरी राय (७.३१), परिहार राणा (७.३१), साँखुला (७.३१), सींह (७.३१), सिंहली राय (७.३१), भोज (७.३१), मल्ल (७.३१), भोआल राय (७.३१), हरसिंह चहुआन (८.११), कनक बड़गूजर (८.१४), निढर राठौर (८.१६), अल्हन (८.२३-२४),

[1] इलियट और डाउसन, भाग २, पृ० २९५-२९७ तथा हेमचन्द रे: डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् इंडिया, भाग २, पृ० १०८८-१०९१।

[2] हेमचन्द रे: डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् इण्डिया, भाग २, पृ० ९१९।

[3] भांडारकर: इंस्क्रिप्शन्स ऑव नार्दर्न इंडिया, अभिलेख संख्या ४५४ तथा ४८८।

[4] 'पार्थ पराक्रम व्यायोग', गायकवाड़ ओरीएंटल सीरीज, पृ० १।

बाहर सुत अचलेस (८.२५), भग्गुल पति विंझ चालुक्क (८.२७-२९), लषन बघेल (८.३१) और पाहार तोमर (८.३३)।

इसी प्रकार शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के युद्ध में शहाबुद्दीन के तीन योद्धाओं के नाम आते हैं : खुरासानखाँ (११.७; ११.१४), तातारखाँ (११.७) तथा रुस्तमखाँ (११.७); शहाबुद्दीन-वध के प्रसंग में भी दो नाम आते हैं : तातारखाँ (१२.२०,१२.४१) तथा निसुरतखाँ (१२.१३, १२१९)।

इन नामों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक साक्ष्य अप्राप्य है। युद्ध-विषयक ऐतिहासिक काव्यों में इस प्रकार की नामावली प्रायः कल्पित होती और वैसी ही कदाचित् यह भी है।

परिणामतः हम देखते हैं कि 'रासो' संपूर्ण रूप से ऐतिहासिक रचना नहीं है, उसके अनेक उल्लेख या विस्तार अवश्य ही कल्पना-प्रसूत हैं, और इतिहास से समर्थित नहीं हैं। फिर भी अपने व्यापक रूप में वह एक ऐसे जिम्मेदार कवि की रचना प्रतीत है जिसने हिंदू सूत्रों से प्राप्त सामग्री का यथेष्ट सावधानी के साथ उपयोग किया, और कथा-नायक के समय के बाद की किसी घटना अथवा किसी व्यक्ति का घाल-मेल कथा में नहीं किया। 'रासो' के कवि की इन दोनों विशेषताओं पर विचार करने पर ज्ञात यह होता है कि निस्संदेह वह पृथ्वीराज का समकालीन तो नहीं था, किन्तु बहुत बाद का भी नहीं था, और उसने रचना यद्यपि काव्य की दृष्टि से अधिक और इतिहास की दृष्टि से कम की, फिर भी सुलभ सामग्री का उपयोग जिम्मेदारी और कुशलता के साथ किया है।

यह कहना अनावश्यक होगा कि हमें सम्पूर्ण रचना को प्रायः उसी दृष्टि से देखना चाहिए जिस दृष्टि से हम मध्य युग में लिखे गए एक अच्छे से अच्छे ऐतिहासिक कथा-काव्य को देख सकते हैं, और इस दृष्टि से देखने पर 'पृथ्वीराज रासो' प्रस्तुत रूप में, मेरी अपनी राय में, एक सफल रचना मानी जा सकती है।

—:*:—

८. 'पृथ्वीराज विजय'
और
'पृथ्वीराज रासो'

सन् १८७५ ई० में प्रसिद्ध विद्वान् डा० बूह्लर को संस्कृत ग्रन्थों की खोज में काश्मीर में 'पृथ्वीराज विजय' की एक अति खंडित प्रति प्राप्त हुई थी,[1] जिसने चन्द के 'पृथ्वीराज रासो' की ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को एकदम समाप्त कर दिया। तब से उसकी ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के प्रयास होते आ रहे हैं, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि वे असफल ही रहे हैं। और, 'रासो' के प्राप्त रूपों में से किसी के आधार पर भी उसकी ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करना कभी भी सम्भव होगा, यह आशा नहीं करनी चाहिए क्योंकि 'रासो' के प्राप्त सभी रूपों में चित्य अनैतिहासिक तत्व मिलते हैं। कुछ विद्वानों ने उसकी इस त्रुटि का समाधान यह बता कर करना चाहा है कि वह काव्य है, इतिहास नहीं है। किन्तु 'विजय' भी तो काव्य है, फिर भी उसमें 'रासो' जैसे अनैतिहासिक तत्व नहीं मिलते हैं। उदाहरण के लिए 'पृथ्वीराज विजय'[2] के प्रथम छः सर्गों में पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की कथा देते हुए उसके पूर्व-पुरुषों की जो वंशावली दी गई है वह इस प्रकार ठहरती है :—
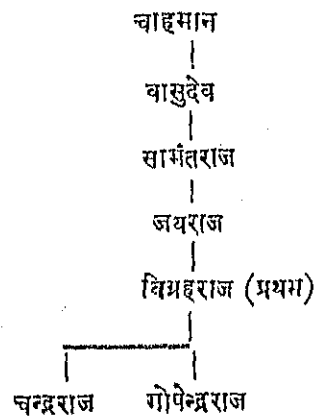
[1] 'डिटेल्ड रिपोर्ट आव् ए टूअर इन सर्च, आव् संस्कृत मैन्युस्क्रप्ट्स मेड इन काश्मीर, राजपूताना ऐंड सेन्ट्रल इंडिया'—लेखक डॉ० बूह्लर, पृ० ६३।

[2] 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य'—संपा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, सं० १९९७।
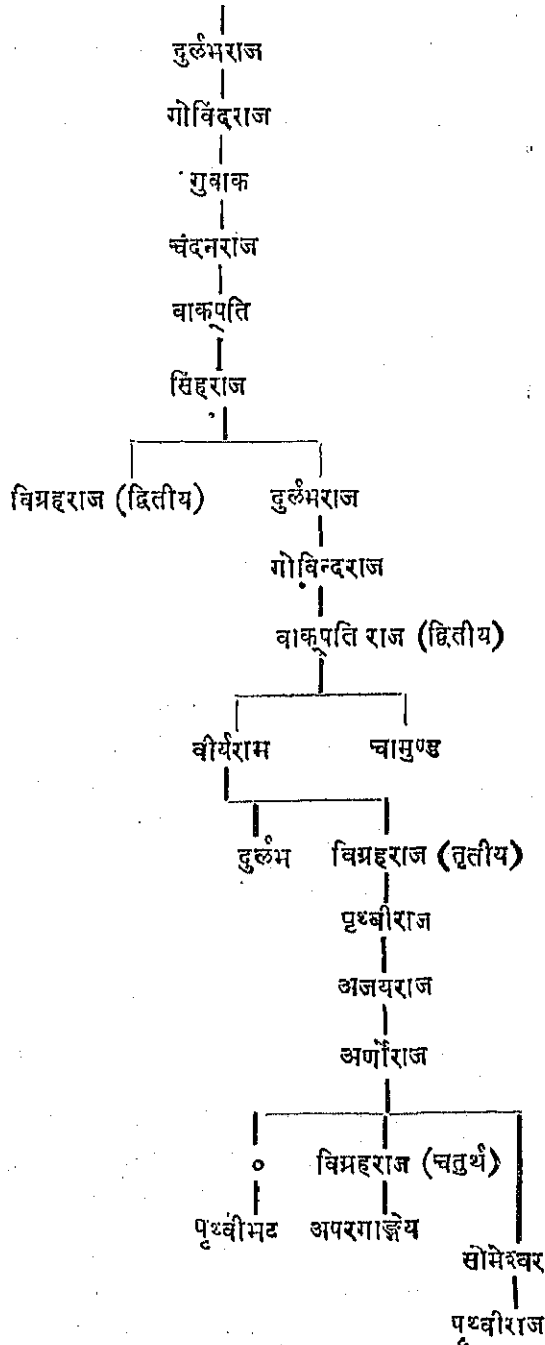
'रासो' के इतिहास-प्रेमी आलोचकों को दिखाई पड़ा कि 'रासो' (नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण) में प्राप्त पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की वंशावली इससे बहुत भिन्न और अनैतिहासिक है। अब 'पृथ्वीराज रासो' के बड़े-छोटे कई रूप मिलते हैं और उनमें तदनुसार वंशावली भी बड़ी-छोटी

मिलती है। कहा गया है कि 'रासो' के इन विभिन्न रूपों में से जो सबसे छोटा है, वही उसका मूल रूप होगा, और उत्तरोत्तर जो बड़े रूप हैं वे अधिकाधिक प्रक्षिप्त होंगे। इसलिए इस सबसे छोटे रूप को जिसे 'लघुतम रूपान्तर' कहा गया है सम्पादित करके प्रकाशित भी किया जा रहा है।[1] उसके अनुसार पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की वंशावली निम्नलिखित है :—

मानिक्कराय
|
वीसल
|
सारंग
|
आनल्ल
|
जयसिंहदेव
|
आनन्द
|
सोमेश्वर
|
पृथ्वीराज

चहुवान वंश की पृथ्वीराज तक की वंशावली के लिए सबसे प्रामाणिक साक्ष्य तीन शिला-लेखों से प्राप्त है : एक है सं० १०३० वि० का हरस का,[2] दूसरा है सं० १२२६ का बीजोल्याँ का[3] और तीसरा है सं० १२३९ का मदनपुर का[4]। 'पृथ्वीराज विजय' में जो वंशावली आती है, वह लगभग वही है जो इन शिलालेखों में आई है, किन्तु 'पृथ्वीराजरासो' में आई हुई वंशावली इस वंशावली से बहुत भिन्न है। 'रासो' के सबसे छोटे रूप की वंशावली के सात नामों में से तीन ही 'पृथ्वीराज विजय' और इन शिला-लेखों की वंशावली में आते हैं— वीसल, आनल्ल और सोमेश्वर; शेष उसमें नहीं मिलते हैं। कहना नहीं होगा कि 'रासो' के बड़े पाठों में जो अतिरिक्त नाम आते हैं, वे भी इसी प्रकार भिन्न ठहरते हैं।

यह सब होते हुए भी जो बात आश्चर्य में डालने वाली है—फिर भी जो अभी तक 'पृथ्वीराज रासो' के पारखियों की दृष्टि में नहीं आई है—वह यह है कि 'रासो' के लेखक को 'पृथ्वीराज विजय' का यथेष्ट ज्ञान था, और उसने 'विजय' की रचना का अपने काव्य में उल्लेख भी किया है। उसका यह उल्लेख कैंवास-वध-प्रकरण में हुआ है।[5] पूरा प्रसंग 'रासो' में इस प्रकार है।

कैंवास पृथ्वीराज का मन्त्री है-जैसा वह (कदंबवास) 'पृथ्वीराज विजय' में भी है। वह पृथ्वीराज की कर्नाट देश की एक दासी पर आसक्त हो जाता है, और एक दिन जब पृथ्वीराज आखेट के लिए बाहर जाता है, वह अवसर पा कर रात्रि के प्रारंभिक प्रहर में उस दासी के कक्ष में

[1] पृथ्वीराज रासो का लघुतम रूपान्तर'—संपा० नरोत्तमदास स्वामी, 'राजस्थान भारती' भाग ४, अंक १, पृ० १२-३५ तथा परवर्ती कुछ अंक।

[2] देखिए भांडारकर : 'इंस्क्रिप्शन्स ऑव् नार्दर्न इंडिया', अभिलेख संख्या ८२।

[3] वही ,, संख्या ३४४।

[4] वही ,, संख्या ३९८।

[5] दे० प्रस्तुत संस्करण का सर्ग ३।

घुस जाता है। पट्ट रानी को जब इस बात की सूचना मिलती है, वह पृथ्वीराज को बुलवा भेजती है। पृथ्वीराज रात्रि में ही आकर कैंवास का वध करता है, और उसको भूमि में गड़वा कर पुनः आखेट पर वह चला जाता है। सबेरा होने पर वह राजधानी लौटता है। यहीं पर 'विजय' के सम्बन्ध का निम्नलिखित कथन आता है[1] :—

मझ्झ पहर पुच्छइ तिहि पंडिय।
कहि कवि 'विजय' साह जिह दंडिय।
सकल सूर बोलवि सभ मंडिय।
आसिष जाय दीध तब चंडिय॥

अर्थात्—प्रहर के मध्य में पंडित से वह (पृथ्वीराज) पूछता (कहता) है, "हे कवि, तुम [मेरी] विजय (का काव्य) कहो, जिस प्रकार मैंने [युद्ध में] शाह (शहाबुद्दीन) को दण्डित किया है।" [तदनन्तर] समस्त शूरों को बुलवा कर उसने सभा माँडी (की) [जिसमें] जाकर तब चण्डी-भक्त [चन्द] ने आशीर्वाद दिया।

इस उल्लेख में 'विजय' के सम्बन्ध की कुछ बातें अत्यन्त प्रकट हैं :—

१. 'विजय' की रचना पृथ्वीराज के आदेश से हुई।

२. 'विजय' का कर्त्ता कोई 'पण्डित' कवि था।

३. 'विजय' में शाह (शहाबुद्दीन) पर प्राप्त पृथ्वीराज की विजय की कथा कही गई।

४. यह 'पण्डित' कवि चन्द नहीं था, चन्द तो इस प्रसंग के बाद आता है। और 'रासो' भर में चन्द 'भट्ट' है, 'पण्डित' नहीं है।

'पृथ्वीराज विजय' की जो प्रति प्राप्त हुई है, वह पृथ्वीराज के राज्य-ग्रहण-प्रकरण के कुछ ही पीछे खण्डित हो जाती है। उसके प्राप्त अन्तिम अंशों में पृथ्वीराज की सभा में काश्मीर के कवि पण्डित जयानक का आगमन होता है[2] और इसकी शैली काश्मीरी काव्यों की शैली का अनुसरण करती है, इसलिए विद्वानों ने अनुमान किया है कि 'विजय' का कवि यही पण्डित जयानक है।[3] इस काव्य के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि पृथ्वीराज ने ['विजय' के] कवि का आदर किया था, और उसी ने यह काव्य लिखने के लिए उसे प्रेरित किया था,[4] इसलिए और इसलिए भी कि इस ग्रन्थ से कुछ उदाहरण सं० १२०० ई० के लगभग होने वाले जयार्थ के द्वारा लिखित राजानक रुय्यक के 'अलंकार सर्वस्व' की 'अलंकार विमर्षिणी' नाम की टीका तथा उसी के द्वारा लिखित 'अलंकारोदाहरण' में दिए गए हैं अनुमान किया गया है कि इसकी रचना पृथ्वीराज के जीवन-काल में (सन् ११९३ में उसका देहान्त हुआ) हुई होगी।[5] इसमें ११९१ ई० में प्राप्त शहाबुद्दीन पर पृथ्वीराज के विजय की कथा कही गई थी, यह भी अनुमान किया गया है।[6] उपर्युक्त प्रथम तथा तृतीय अनुमानों की पुष्टि 'रासो' की ऊपर उद्धृत पंक्तियों से भली भाँति हो जाती है। द्वितीय अनुमान बहुत युक्त-संगत नहीं लगता है, और 'रासो' से उसकी पुष्टि भी पूर्ण रूप से नहीं होती है। 'रासो' के प्राप्त समस्त रूपों के अनुसार शहाबुद्दीन पर पृथ्वीराज के विजय की घटना कैंवास-वध के पूर्व

[1] प्रस्तुत संस्करण, सर्ग ३, छन्द १९।

[2] 'पृथ्वीराज विजय', सर्ग १२, छन्द ६३ तथा ६८।

[3] वही, प्रस्तावना, पृ० २।

[4] वही, सर्ग १, छन्द ३१-३५।

[5] 'पृथ्वीराज विजय', प्रस्तावना, पृ० २।

[6] वही, पृ० २।

आती है, तदनन्तर कैंवास-वध आता है, फिर संयोगिता के लिए पृथ्वीराज और जयचन्द का संघर्ष आता है, जिसमें सफलता पृथ्वीराज को प्राप्त होती है, और अन्त में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का वह युद्ध आता है जिसमें पृथ्वीराज पराजित और बन्दी होता है। 'रासो' के अनुसार 'विजय' 'पण्डित' को काव्य कहने का आदेश कैंवास-वध प्रकरण में होता है, और यह असम्भव नहीं है कि उसने 'विजय' काव्य पृथ्वीराज के जीवन-काल में अर्थात् पृथ्वीराज-शहाबुद्दीन के अन्तिम युद्ध के पूर्व समाप्त कर लिया हो। किन्तु 'रासो' में पुनः किसी प्रसंग में पण्डित से 'विजय' काव्य सुनने की या उसकी रचना के लिए उसे पुरस्कृत किए जाने का उल्लेख नहीं होता है, इसलिए 'रासो' के आधार पर यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि उसके कवि 'पण्डित' ने उसे उक्त अन्तिम युद्ध के पूर्व पूर्ण भी कर लिया था।

'पृथ्वीराज रासो' से 'पृथ्वीराज विजय' के सम्बन्ध में जो यह निश्चित प्रकाश पड़ता है, वह अत्यन्त महत्व का है, और इस प्रकाश के लिए हमें 'रासो' के कवि का अत्यन्त कृतज्ञ होना चाहिए। प्रकट है कि जब 'रासो' के कवि को 'विजय' का ऐसा निकट का परिचय था, तो 'रासो' के मूल रूप में हमें—अन्य अनैतिहासिक उल्लेखों को यदि छोड़ दिया जाय—ऐसे उल्लेख न मिलने चाहिए 'विजय' के विरुद्ध जाते हैं। और यह बतलाना अनावश्यक होगा कि 'रासो' के प्रस्तुत पाठ-निर्धारण के अनंतर इस परिणाम की पुष्टि पूर्ण रूप से हुई है।

'विजय' के उपर्युक्त उल्लेख से यह भी प्रमाणित होता है कि 'रासो' अपने मूल रूप में निरा 'भट्ट भणंत' नहीं था, जैसा प्राय: समझा जाता है; वह एक ऐसे जिम्मेदार कवि की कृति था, जो भले ही कथा-नायक का समसामयिक न रहा हो, पर जिसने उसकी जीवन-गाथा से परिचित होने का यत्न किया था, और जो उसकी सबसे अधिक पूर्ण और प्रामाणिक जीवन-कथा 'पृथ्वीराज-विजय' से भली भाँति परिचित था।

—:*:—

९. 'हम्मीर महाकाव्य' और 'पृथ्वीराज रासो'

हम्मीर महाकाव्य', जैसा रचना के अन्त में कहा गया है,[1] जयसिंह सूरि के शिष्य नयचन्द्र सूरि द्वारा तोमर नरेश वीरम के समय में रचा गया था । तोमर वीरम की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है, किन्तु सं० १६८८ का रोहतास (जिला–झेलम, पंजाब) का एक शिलालेख तोमर मित्रसेन के समय का है, जिसमें उसके पूर्व-पुरुषों की नवीं पीढ़ी में गोपाचल (ग्वालियर) नरेश तोमर वीरम आते हैं ।[2] यह वंशावली इस प्रकार है :—
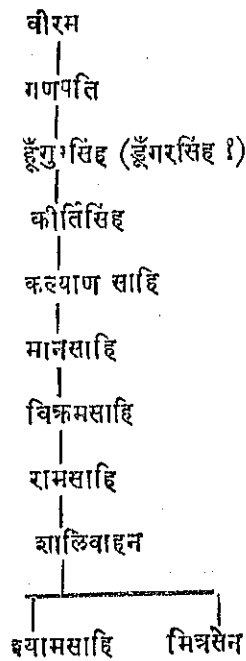
[1] 'हम्मीर महाकाव्य', संपा० नीलकंठ जनार्दन कीर्तने, मुद्रक एजुकेशन सोसाइटी प्रेस, बम्बई, पृ० १३३-१३५ ।

[2] देखिए भांडारकर : 'इंस्क्रिप्शन्स आव् नार्दर्न इंडिया', अभिलेख संख्या ९८८ तथा 'जर्नल ऑव् एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल' भाग ८, पृ० ६९५ ।

इन नौ पीढ़ियों के लिए, यदि प्रत्येक पीढ़ी के लिए २५ वर्ष के हिसाब से, २२५ वर्ष मान लिये जावें तो तोमर वीरम का समय सं० १४१३ के लगभग होना चाहिये। इसका समर्थन गोपाचल नरेश डूँगर सिंह के समय के एक अभिलेख से भी होता है जो सं० १५१० का है और अलवर (राजपूताना) की एक मूर्ति पर अङ्कित है।[1] अतः प्रकट है कि 'हम्मीर महाकाव्य' का रचना-काल सं० १४६० के आस-पास होना चाहिए।

इस रचना में हम्मीर के पूर्व पुरुष होने के नाते पृथ्वीराज तथा उनके भी पूर्व-पुरुषों का चरित अङ्कित हुआ है। पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की वंशावली इसमें इस प्रकार मिलती है[2] :—

चाहमान
|
वासुदेव
|
नरदेव
|
चंद्रराज
|
जयपाल चक्री
|
जयराज
|
सामन्त सिंह
|
गुयाक
|
नन्दन
|
वप्रराज
|
हरिराज
|
सिंहराज
|
भीम
|
विग्रहराज
|
गङ्गदेव
|
वल्लभराज
|
राम
|

१ भांडारकर : 'इंस्क्रिप्शन्स ऑव् नॉर्दर्न इंडिया', अभिलेख सं० ८१२।

२ 'हम्मीर महाकाव्य', उपर्युक्त, संपादकीय वक्तव्य, पृ० १४-१५।

पृथ्वीराज के इन पूर्व-पुरुषों के वृत्त अति संक्षेप में देकर कवि ने पृथ्वीराज का वृत्त कुछ विस्तार पूर्वक कि है, जो संक्षेप में इस प्रकार है :—

गङ्गदेव के देहान्त के अनन्तर सोमेश्वर राजा हुआ। उसका विवाह कर्पूर देवी से हुआ, जिसने एक पुत्र को जन्म दिया। इस पुत्र का नाम पृथ्वीराज रखा गया। दिन-दिन शिशु बढ़ता रहा और एक पुष्ट तथा स्वस्थ बालक हो गया। जब उसने पढ़ने और शस्त्रास्त्र के प्रयोग में क्षमता प्राप्त कर ली, सोमेश्वर ने उसे सिंहासिनासीन कर दिया और स्वयं वन में जाकर योग द्वारा शरीर त्याग कर दिया। जिस प्रकार पूर्वाचल दिनकर की किरणों से प्रकाश पा कर चमक उठता है, उसी प्रकार पृथ्वीराज अपने पिता से राज्य प्राप्त कर चमका।

इसी समय शहाबुद्दीन पृथ्वीराज को वश में करने का यत्न कर रहा था। पश्चिम के राजागण ने उसके द्वारा त्रस्त होकर गोविंदराज के पुत्र चन्द्रराज को अपना प्रमुख बनाया और मिलकर वे पृथ्वीराज के पास आए। पृथ्वीराज ने उनके मुखों पर विषाद की रेखायें देख कर उनके विषाद का कारण पूछा। चन्द्रराज ने कहा कि एक मुसलमान, जिसका नाम शहाबुद्दीन था, राजागण के विनाश के लिए उदित हो गया था, जिसने उनके अधिकतर नगरों को लूट लिया और जला दिया था, उनकी स्त्रियों को भ्रष्ट कर दिया था, और उन्हें सर्वथा एक दयनीय दशा को पहुँचा दिया था। उसने मुल्तान में अपनी राजधानी स्थापित कर ली थी। वे उसी नृशंस शत्रु और उसके अत्याचारों से पीड़ित होकर पृथ्वीराज की शरण में आए थे।

पृथ्वीराज ने जब शहाबुद्दीन के इन दुष्कृत्यों को सुना, वह रोष से भर गया; भावावेश के कारण उसका हाथ स्वतः उसकी मूछों पर पहुँच गया और उसने आगत राजागण से कहा कि वह इस शहाबुद्दीन को घुटने टेके, हाथ जोड़े और पैरों में बेड़ियाँ पहने हुए उनसे क्षमा-याचना के लिये विवश कर देगा, नहीं तो वह सच्चा चौहान नहीं।

कुछ दिनों बाद एक अच्छी सेना लेकर पृथ्वीराज मुल्तान पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ा और कई पड़ावों के बाद शत्रु के देश में प्रविष्ट हो गया। जब शहाबुद्दीन को राजा के पहुँचने का समाचार मिला, वह भी उसका सामना करने के लिए बढ़ा। उस युद्ध में जो इस समय हुआ, पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को बंदी किया, और इस प्रकार उसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की; उसने इस अभिमानी मुसलमान को विवश किया कि वह इन राजागण से, जिन्हें उसने बरबाद कर दिया था, घुटने टेककर क्षमा-याचना करे। प्रतिज्ञा पूरी हो जाने पर, पृथ्वीराज ने शरणागत राजाओं को बहु-मूल्य उपहार देकर विदा किया और शहाबुद्दीन को भी उसी प्रकार उपहार देकर उसने मुल्तान जाने की अनुमति दी।

शहाबुद्दीन इस प्रकार सद्व्यवहार प्राप्त करके भी प्राप्त पराजय के कारण अत्यधिक लज्जित हुआ। इसके बाद सात बार वह अपनी पराजय का प्रतिशोध लेने के लिए पृथ्वीराज पर चढ़ आया, और प्रत्येक बार पूर्ववर्ती बार की अपेक्षा अधिक तैयारी करके आया, किन्तु वह उस हिन्दू राजा के द्वारा हर बार पूर्ण रूप से पराजित हुआ।

जब शहाबुद्दीन ने देखा कि वह पृथ्वीराज को शस्त्रास्त्र के बल अथवा नीति-बल से परास्त नहीं कर सकता था, उसने घटैक देश के शासक को अपनी बार-बार की पराजय का विवरण लिख भेजा और उससे सहायता की याचना की। यह उसको उस राजा के घोड़ों तथा सैनिकों के रूप में प्राप्त हुई। इस प्रकार से शक्ति-संवर्द्धन करके शहाबुद्दीन ने द्रुत गति से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और उसे शीघ्र ही ले लिया। वहाँ के निवासी इससे भयभीत हो उठे और वे चारों दिशाओं में भागने लगे। पृथ्वीराज को यह देख कर बहुत आश्चर्य हुआ और उसने कहा कि यह शहाबुद्दीन एक नटखट बालक के समान आचरण कर रहा था, क्योंकि वैसे ही कई बार उसके द्वारा पराजित हो चुका था और हर बार अपनी राजधानी को जाने के लिए सर्वथा निरापद छोड़ दिया जाता था। पृथ्वीराज शत्रु पर प्राप्त अपनी पूर्ववर्ती विजयों के कारण भूला हुआ केवल उस छोटी-सी सेना को इकट्ठी कर जो उसके आस-पास थी आक्रमण-कर्त्ता का सामना करने के लिए आगे बढ़ा।

राजा की सेना यद्यपि छोटी ही थी, उसके आगमन का समाचार पाकर शहाबुद्दीन अत्यधिक भयग्रस्त हुआ, क्योंकि उसे अपनी पूर्ववर्ती पराजयों और दुर्गतियों का स्मरण अत्यन्त स्पष्ट था। रात में, इसलिए, उसने अपने कुछ विश्वस्त भृत्यों को राजा के शिविर में भेजा, और उनके द्वारा प्रचुर धन देने का प्रलोभन देकर उसने राजा के अश्वाधानिक और वादकों को मिला लिया। उसने तब बहुत से मुसलमानों को गुप्त रूप में शत्रु के शिविर में भेज दिया, जो इसमें बहुत तड़के, जबकि चन्द्रमा पश्चिम के क्षितिज पर पहुँच ही पाया था, और सूर्य ने पूर्व को ज्योतिर्मय करना प्रारम्भ ही किया था प्रविष्ट हो गए।

यह देखकर राजा के शिविर में बड़ा हल्ला हुआ और गड़बड़ी मच गई। जब कि राजा के भृत्य आक्रान्ताओं का सामना करने को सन्नद्ध हो रहे थे, राजा का विश्वासघाती अश्वाधानिक, जैसा कि उससे उसके मिलाने वालों ने कह रक्खा था, राजा के उस घोड़े को जीन कस कर लाया जो नाट्यारंभ कहलाता था; वादक भी जो अपना अवसर देख रहे थे, जब राजा घोड़े पर सवार हो गया, अपने वाद्यों पर वे वे राग बजाने लगे जो राजा को प्रिय थे। इस पर राजा का घोड़ा

वाद्यकों के संगीत पर ताल देता हुआ गर्वोन्मत्त होकर नाचने लगा। राजा का चित्त कुछ देर के लिए इस खेल में लगा रहा, और उस क्षण के सर्वाधिक महत्व के कार्य को वह भूल गया।

मुसलमानों ने राजा की असावधानी का लाभ उठाया और जोरों का आक्रमण किया। इस दशा में राजपूत कुछ न कर सके। पृथ्वीराज यह देखकर घोड़े से उतर पड़ा। हाथ में तलवार लेकर उसने अनेक मुसलमानों को काट डाला। इसी बीच एक मुसलमान ने धोखे से पीछे की ओर से उसके गले में धनुष डाल कर राजा को गिरा दिया, जब कि अन्य मुसलमानों ने उसे बन्दी कर लिया। इसी समय से बन्दी राजा ने भोजन और विश्राम छोड़ दिया।

शहाबुद्दीन का सामना करने के लिए निकलने के पूर्व पृथ्वीराज ने उदयराज को आदेश दे रक्खा था कि वह उसके पीछे आकर शत्रु पर आक्रमण करे। उदयराज रणक्षेत्र में लगभग उस समय पहुँचा जब मुसलमान राजा को बन्दी करने में सफल हो चुके थे। शहाबुद्दीन उस समय उदयराज से युद्ध करने में हार की आशंका करके बन्दी राजा को साथ लिए नगर के भीतर चला गया।

जब उदयराज ने पृथ्वीराज के बन्दी होने का समाचार सुना, उसका हृदय अत्यधिक पीड़ित हो उठा। राजा को अपने भाग्य के सहारे छोड़ कर वह लौटना नहीं चाहता था, क्योंकि यह करना उसके निर्मल यश के लिए उसके गौड़ देश में कलंक माना जाता। इसलिए उसने शत्रु के नगर (योगिनीपुर—दिल्ली) के चारों ओर घेरा डाल कर उसके फाटक पर युद्ध करता एक मास तक डटा रहा।

इस घेरे के बीच एक दिन शहाबुद्दीन का एक भृत्य उसके पास गया और उससे कहने लगा कि उसे एक बार उस पृथ्वीराज को मुक्त करना चाहिए था जिसने उसे अनेक बार बन्दी किया था और आदरपूर्वक मुक्त किया था। शहाबुद्दीन इस भले मानस की बात से प्रसन्न नहीं हुआ और उसके बोला कि उसके जैसे परामर्शदाता ही राज्यों के पतन के कारण होते हैं। तब क्रुद्ध शहाबुद्दीन ने आज्ञा दी कि पृथ्वीराज को दुर्ग के भीतर ले जाया जावे। जब यह आदेश दिया गया, वीरों ने लज्जा से अपनी गर्दनें नीची कर लीं, और धर्मनिष्ठों ने आँखों में आते हुए आँसुओं को रोकने में अपने को असमर्थ पाकर नेत्रों को आकाश को ऊपर उठा लिया। पृथ्वीराज इसके कुछ दिनों बाद देह त्याग कर स्वर्ग-वासी हुआ।

जब उदयराज ने अपने मित्र के देहान्त की बात सुनी, उसने सोचा कि अब उसके लिए सर्वश्रेष्ठ स्थान वही था जहाँ उसका मित्र जा चुका था। उसने इसलिए अपने समस्त अनुचरों को एकत्र किया और उनको लेकर घमासान युद्ध करते हुए अपनी समस्त सेना के साथ वहाँ गिरा और अपने तथा उनके लिए स्वर्ग का शाश्वत सुख प्राप्त किया।

'हम्मीर महाकाव्य' की इस समस्त कथा का आधार क्या है, यह उसके लेखक ने नहीं कहा है। यह तो प्रकट ही है कि 'पृथ्वीराज रासो' का कोई भी रूप इसका आधार नहीं है, क्योंकि न इसमें दी हुई उपर्युक्त वंशावली उसमें मिलती है और न इसमें दी हुई पृथ्वीराज की उपर्युक्त कथा ही। इसकी वंशावली प्रायः 'पृथ्वीराज विजय' तथा शिला-लेखों में आई हुई वंशावली का अनुसरण करती है, केवल कुछ नाम इसमें अधिक हैं।[१] इसकी कथा पूर्णतः किसी ज्ञात ग्रन्थ की कथा से नहीं मिलती है, केवल पृथ्वीराज के अन्त की जो कथा 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध[२] में दी हुई है वह इस ग्रन्थ की तत्संबंधी कथा से कुछ मिलती है। दोनों में शहाबुद्दीन पराजित होने के

[१] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र आया हुआ 'पृथ्वीराज विजय और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

[२] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र आया हुआ 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

अनन्तर बन्दी हुआ और पृथ्वीराज के द्वारा मुक्त किया गया है—मुसलमान इतिहास-लेखक मिन-हाजुस्सिराज के अनुसार उसकी सेना युद्ध-स्थल छोड़कर भाग गई थी और वह भी अपने एक गुलाम के द्वारा युद्ध-स्थल से दूर हटा लिया गया था, बन्दी नहीं हुआ था;[1] दोनों में शहाबुद्दीन के सात बार असफल आक्रमण करने की बात आती है—मिनहाजुस्सिराज के अनुसार शहाबुद्दीन ने केवल एक असफल आक्रमण किया था।[2] दोनों में नाट्यारंभाश्व पर सवार होने के कारण राजा का पराभव हुआ है, यद्यपि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध में उस पर सवार कराने का षड्यन्त्र कदम्बवास के द्वारा किया गया लगता है और इस ग्रन्थ में वह शहाबुद्दीन के भृत्यों द्वारा पृथ्वीराज के अश्वाधानिक और वाद्यकों को मिलाकर किया गया है। इसी प्रकार पृथ्वीराज को मुक्त किए जाने के विषय में शहाबुद्दीन से दोनों रचनाओं में कहा गया है, यद्यपि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज प्रबन्ध में यह स्वयं पृथ्वीराज से कहलाया गया है जब कि इस रचना में किसी अन्य के द्वारा। फलतः आंशिक रूप में दोनों रचनाओं में साम्य प्रकट है।

अन्यत्र हम देखते हैं कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' का पृथ्वीराज-प्रबन्ध निस्संदेह 'पृथ्वीराज रासो' के बाद की रचना है—उसमें 'रासो' के दो छन्द उद्धृत हैं जो कि किसी सुनियोजित प्रबन्ध-काव्य के अंश हैं और उसमें आई हुई कथा भी अंशतः इस ग्रन्थ की कथा का भी अनुसरण करती है।[3] *यहाँ हम देखते हैं कि वह अंशतः इस ग्रन्थ की कथा का भी अनुसरण करती है।* और 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध का इन दोनों की अपेक्षा निकटतर साम्य किसी प्राचीन रचना से ज्ञात नहीं है। इसलिए यह प्रतीत होता है कि उसकी रचना 'रासो' तथा 'हम्मीर महाकाव्य' अथवा उसके आधार-सूत्रों की सहायता से, जो अब उपलब्ध नहीं हैं, हुई। 'रासो' के विभिन्न पाठों में समान रूप से मिलने वाली कथा सादी है और लगभग उतनी ही सादी कथा 'हम्मीर महाकाव्य' की भी है जो हमें ऊपर मिली है, जब कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज प्रबन्ध की कथा काफी पेचीली बनावट-बिनावट की है।[4] इसलिए यह किसी प्रकार संभव नहीं लगता है कि 'हम्मीर महाकाव्य' की कथा 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध की कथा के आधार पर लिखी गई हो। उसको लेकर निर्मित किए जाने पर उसके कैंवास और चन्द का भी इसमें किसी न किसी मात्रा में आना प्रायः अवश्यंभावी होता।

—:*:—

[1] दे० इलियट और डाउसन, भाग २, पृ० २९५-९७।

[2] दे० वही।

[3] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र आया हुआ 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

[4] दे० वही।

अन्तिम आक्रमण और पृथ्वीराज के अन्त की है। अभी तक 'पृथ्वीराज रासो' के जितने पाठ प्राप्त हुए हैं उनमें भी ये तीन कथाएँ आती हैं—केवल एक पाठ में जो 'लघुतम' कहा जाता शहाबुद्दीन के उक्त असफल आक्रमण की कथा नहीं आती है, फिर भी उसमें शहाबुद्दीन के एक असफ आक्रमण का उल्लेख स्पष्ट रूप से होता है। किन्तु दोनों का मिलान करने पर ऐसा प्रतीत होता है ि उपर्युक्त 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'पृथ्वीराज रासो' में इन कथाओं की कल्पना, कुछ अति प्रचलित सामान्य तत्वों को छोड़कर, भिन्न भिन्न प्रकार से हुई है।

'पृथ्वीराज रासो' में उपर्युक्त तीनों कथाएँ इस प्रकार विवृत हैं:—

१—उसके तीन पाठों बृहत्, मध्यम तथा लघु में पहली कथा इस प्रकार कही गई है: गुर्जर का चौलुक्य नरेश भीम आबू के सलष पँवार की कन्या इच्छिनी से विवाह करना चाहता था। उसने सलष के पास इस आशय का संदेश भेजा। सलष के अस्वीकार करने पर उसने उक्त आबूपति पर आक्रमण कर दिया। सलष ने जो पृथ्वीराज का सामन्त था, जब इस आक्रमण की सूचना पृथ्वीराज को भेजी, पृथ्वीराज सेना लेकर भीम का सामना करने के लिए चल पड़ा। तब तक दूसरी ओर से शहाबुद्दीन ने भी आक्रमण कर दिया था, इसलिए उसने उक्त सेना के दो भाग कर एक को कँवास के नायकत्व में भीम का सामना करने के लिए भेज दिया और दूसरे को लेकर शहाबुद्दीन का सामना करने के लिये स्वयं बढ़ा। शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की सेनाओं की मुठभेड़ सरवर में हुई, और भीम से कँवास का युद्ध सोझत्ती में हुआ। दोनों युद्धों में पृथ्वीराज को एक साथ विजय प्राप्त हुई, इससे पृथ्वीराज की आन बहुत बढ़ गई। 'लघुतम पाठ' में इन दो युद्धों के विवरण नहीं आते हैं, किंतु उसमें भी ऐसे छन्द आते हैं जिनमें इन दोनों युद्धों में पृथ्वीराज को विजय प्राप्त होने का उल्लेख होता है।[1]

२—'पृथ्वीराज रासो' के समस्त पाठों में दूसरी कथा इस प्रकार कही गई है: पृथ्वीराज की ए दासी थी जो कर्नाट देश की थी। उस पर पृथ्वीराज का मन्त्री कँवास अनुरक्त हो गया था। अव पाकर एक दिन जब पृथ्वीराज आखेट के लिए गया हुआ था, रात्रि में कँवास उस दासी के कक्ष पटरानी को एक दासी ने यह सूचना दी, तो उसने पृथ्वीराज को अविलम्ब आने के लिए सन्दे संदेश पाकर पृथ्वीराज आ गया। उसने बाण का संधान किया। पहला बाण तो कँवास की काँख से होता हुआ निकल गया, किन्तु दूसरा बाण उसके प्राण लेकर निकला। पृथ्वीराज ने मृत के गड्ढा खुदवा कर गड़वा दिया। यह घटना रातोरात इस प्रकार घटित हुई कि किसी को नहीं लगा। पृथ्वीराज पुनः आखेट के लिए लौट गया। दूसरे दिन आखेट से आकर उसने किया। उसमें उसने कँवास के सम्बन्ध में प्रश्न किया कि वह कहाँ था किन्तु किसी को भी नहीं था कि कँवास कहाँ था। पृथ्वीराज ने चन्द से भी यही प्रश्न किया। रात्रि में चन्द सारी घटना सरस्वती ने बता दी थी, इसलिये चन्द ने कँवास के वध की समस्त घटना विवृ कर दी। दरबार समाप्त हुआ। इधर कँवास की स्त्री को जब यह ज्ञात हुआ, उसने चन्द से कँवास का शव दिलाने के लिये अनुरोध किया। चन्द ने पृथ्वीराज से कँवास का शव उसकी स्त्री को प्रदान किए जाने के लिये प्रार्थना की, तो पृथ्वीराज ने उसकी प्रार्थना इस शर्त पर स्वीकार की कि वह उसे अपने साथ ले जाकर कन्नौज दिखावेगा। चन्द के इसे स्वीकार करने पर कँवास का शव उसकी विधवा को दिया गया, जिसको लेकर वह सती हुई।

३—तीसरी कथा पृथ्वीराज के तीन पाठों बृहत्, मध्यम तथा लघु में इस प्रकार कही गई है: कन्नौज से संयोगिता को लाने के अनन्तर पृथ्वीराज विलास में लिप्त हो गया। वह महल के

[1] दे० प्रस्तुत संस्करण के २.३, ३.६; ८.२ तथा ८.४।

भीतर ही पड़ा रहता था, और इस विलासाधिक्य के कारण उसका पौरुष भी घट गया था। उसके सामंत उसके इस आचरण से बहुत असन्तुष्ट हो गए थे। उधर शहाबुद्दीन पृथ्वीराज पर आक्रमण करने की घात में निरन्तर रहता था। अतः उपयुक्त अवसर समझकर उसने पृथ्वीराज पर आक्रमण कर दिया। राजगुरु तथा चन्द के प्रयत्नों से पृथ्वीराज की विलास-निद्रा भंग हुई। किन्तु विलम्ब हो चुका था। संयोगिता के लिए किए हुए कन्नौज के युद्ध में उसके अधिकतर वीर सामन्त कट चुके थे, रहे सहे जो थे, वे भी रूठ गए थे, और एक प्रमुख सामन्त हाहुलीराय जो जम्बू (जम्मू) का अधिपति था शहाबुद्दीन से मिल भी गया था। इसलिए पृथ्वीराज इस बार शहाबुद्दीन का सामना सफलता पूर्वक नहीं कर सका। युद्ध में सम्मिलित सामन्तों में से अधिकतर के कट जाने के बाद वह स्वयं युद्ध करने लगा। इसी समय एक तुर्क सरदार के द्वारा वह बन्दी हुआ। तदनन्तर शहाबुद्दीन उसे गजनी ले गया जहाँ उसने कुछ समय पीछे उसकी आँखें निकलवा लीं। इस बीच चन्द जम्बूपति हाहुलीराय को मनाकर पृथ्वीराज के पक्ष में करने के लिए उसके पास गया हुआ था, तो हाहुलीराय ने उसे जालन्धर की देवी के मंदिर में देवी का आदेश प्राप्त करने के बहाने ले जाकर बन्द कर दिया था। किसी प्रकार वहाँ से मुक्त होकर जब चन्द दिल्ली लौटा, तो उसने पृथ्वीराज के बन्दी बनाए जाने और नेत्रविहीन किए जाने की सारी घटना सुनी। उसने अविलम्ब गजनी की राह ली और अपने स्वामी पृथ्वीराज का शहाबुद्दीन से उद्धार कराने का संकल्प किया। गजनी पहुँचकर शहाबुद्दीन को उसने पृथ्वीराज का शर-सन्धान कौशल देखने के लिये राजी कर लिया। पृथ्वीराज शब्दवेध में अत्यन्त कुशल था। कौशल-प्रदर्शन का आयोजन हुआ। चन्द ने शहाबुद्दीन से कहा कि जब तक शहाबुद्दीन स्वयं तीन बार पृथ्वीराज को वाण चलाने का आदेश न देगा, वह वाण न चलाएगा। अतः शहाबुद्दीन ने उसे तीन बार आदेश देना भी स्वीकार कर लिया। शहाबुद्दीन का तीसरा आदेश होते ही पृथ्वीराज ने जो वाण छोड़ा, उसने शहाबुद्दीन का प्राणांत कर दिया। इसके अनन्तर पृथ्वीराज का भी प्राणांत हो गया। 'पृथ्वीराज रासो' के लघुतम पाठ में भी यह समस्त ... केवल हाहुलीराय के सम्बन्ध के विस्तार उसमें नहीं हैं।

ऊपर दी हुई 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'पृथ्वीराज रासो' की इन कथाओं में जो साम्य तथा ... है वह इस प्रकार है :—

पहली कथा में साम्य इतना ही है कि पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन में एक युद्ध हुआ जिसमें ...दीन को पराजय मिली। अन्तर दोनों में यह है कि उसी समय 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार ...ज ने भीम चौलुक्य जैसे एक अन्य प्रबल शत्रु का भी सफलता पूर्वक सामना किया, जिससे उसकी शक्ति की आन बहुत बढ़ गई।

दूसरी तथा तीसरी कथाओं के सम्बन्ध में दोनों में जहाँ पर साम्य इस बात में है कि पृथ्वीराज ने कैंवास और शहाबुद्दीन पर बाण छोड़े, अन्तर यह है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में दोनों अवसरों पर वह अकृतकार्य हुआ है, जब कि 'पृथ्वीराज रासो' में वह दोनों अवसरों पर पूर्ण रूप से कृतकार्य हुआ है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में कैंवास पर वाण-प्रहार पृथ्वीराज यह समझकर करता है कि वही शहाबुद्दीन को बार बार बुलाता है, जब कि 'पृथ्वीराज रासो' में उसकी लंपटता के कारण वह उसे मारता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में पृथ्वीराज कैंवास पर एक ही बाण छोड़ता है, जब कि 'पृथ्वीराज रासो' में उसके चूक जाने पर वह दूसरा वाण भी छोड़ता है, जो कैंवास का प्राणांत कर देता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में कैंवास और चन्द दोनों को पृथ्वीराज उनके पदों से अलग कर देता है, किन्तु 'पृथ्वीराज रासो' में वह कैंवास का प्राणांत कर देता है और चन्द को पूर्ववत् अपना कृपापात्र और सहचर बनाए रखता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में अलग किए जाने पर कैंवास अपने स्वामी के शत्रु से मिलकर स्वामी का पराभव और अन्त कराता है, और चन्द भी अपने स्वामी के एक शत्रु के पास जाता है,

१०. 'पुरातन प्रबंधसंग्रह' और 'पृथ्वीराज रासो'

इक्कीस वर्ष हुए प्रसिद्ध जैन विद्वान् श्री मुनि जिनविजय ने 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' नाम से कुछ जैन लेखकों द्वारा लिखे हुए कथा-प्रबन्धों का एक संग्रह प्रकाशित किया था,[1] जिन में अन्य प्रबन्धों के साथ 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'जयचन्द प्रबन्ध' भी थे। इन प्रबन्धों के अन्तर्गत क्रमशः पृथ्वीराज तथा जयचन्द की कथाएँ दी हुई हैं, और साथ ही दो-दो छप्पय भी उद्धृत किए गए हैं जो चन्द बलिद्दिक (बरदाई) के रचे हुए कहे गए हैं। इन प्रबन्धों से चन्द बरदाई और एक अन्य कवि जल्ह के समय पर नया प्रकाश पड़ा है।[3] यहाँ हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि उसमें दिए हुए पृथ्वीराज-प्रबन्ध से चन्द की पृथ्वीराज सम्बन्धिनी रचना के स्वरूप पर क्या प्रकाश पड़ता है। यह प्रबन्ध-संग्रह संस्कृत में है, इसलिए नीचे इसके पृथ्वीराज-प्रबन्ध का एक हिन्दी भाषांतर दिया जा रहा है और साथ ही इसमें उद्धृत चन्द के छप्पयों का अर्थ भी पाद-टिप्पणी में यथास्थान प्रस्तुत किया जा रहा है। कोष्ठकों में आई हुई शब्दावली आशय के स्पष्टीकरण के लिये प्रस्तुत लेखक द्वारा दी जा रही है।

"शाकंभरी नगरी में चाहमान वंश में श्री सोमेश्वर नामक राजा था। उसका पुत्र पृथ्वीराज था और उस (पृथ्वीराज) का भाई यशोराज था। उस (पृथ्वीराज) का शल्यहस्त श्रीमाल जाति का प्रताप सिंह था और मन्त्री कैंवास था। इन दोनों में परस्पर विरोध था। वह राजा पृथ्वीराज योगिनीपुर (दिल्ली) में राज्य करता था। उसके धवलगृह के द्वार पर न्याय का घंटा था। वह महा बलवान और धनुर्धरों का धुरीण राजा था। यशोराज आशी (हाँसी) नगर में कुमारभुक्त (गुजारेदार) था। उस (पृथ्वीराज) का वाराणसी-अधिपति जयचन्द से वैर था।

एक बार गर्जनक (गजनी) के तुर्काधिपति (शहाबुद्दीन) ने पृथ्वीराज से वैर रखते हुए योगिनीपुर (दिल्ली) पर चढ़ाई की। पृथ्वीराज का अमात्य दाहिमा जाति का कैंवास नाम का मन्त्रीश्वर था। उसकी अनुमति (मन्त्रणा) से राजा (पृथ्वीराज) दो लाख घोड़े तथा पाँच सौ हाथी लेकर (तुर्क सेना के) सामने चल पड़ा। तुर्क सेना से युद्ध हुआ। शक (तुर्क) सेना छिन्न-भिन्न हो गई। सुल्तान (शहाबुद्दीन) जीवित पकड़ा गया। सोने की बेड़ियों में डाला जाकर वह योगिनीपुर (दिल्ली) लाया गया और [पृथ्वीराज की ?] माता के कहने पर छोड़ दिया गया। इसी प्रकार वह सात बार बँध-बँध कर मुक्त हुआ और करद बना लिया गया।

[1] पुरातन प्रबंध संग्रह, प्रकाशक सिंघी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, १९३६ ई०।

[2] वही; पृ० ८६–८७ तथा ८८–९०।

[3] देखिए अन्यत्र 'पृथ्वीराज रासो का रचना काल' शीर्षक।

[शल्यहस्त] प्रतापसिंह कर वसूल करने गर्जनक (गजनी) जाया करता था। एक बार वह एक मसजिद देखने गया और वहाँ दरवेश आदि को उसने एक लक्ष स्वर्ण टंकक (सिक्के) दिए। [इस पर] मन्त्री (कैंवास) ने राजा से कहा, 'देव, गर्जनक (गजनी) के [कर के] धन से [राजकार्य का] निर्वाह होता है [और उसे] वह (प्रतापसिंह) इस प्रकार बर्बाद कर रहा है।' राजा ने [प्रतापसिंह से] पूछा, तो उसने कहा 'देव की ग्रहविषमता जान कर ही उस समय मैंने [यह धन] धर्म में व्यय किया था। ज्योतिषियों से मैंने पूछा था, उन्होंने आप को कष्ट बताया था।'

इधर शल्यहस्त (प्रताप सिंह) ने राजा के कानों में लगकर कहा, 'मन्त्री कैंवास ही बार बार तुर्कों को लाता (बुलाता) है।' राजा [यह सुनकर] रुष्ट हुआ, और इसलिए उसने मन्त्री (कैंवास) को मारने की ठानी। इसके बाद रात्रि में सर्व अवसर (दरबार-ए-आम) के उठने पर मन्त्रीव(कैंवास) जब प्रतोली (मुख्यद्वार) से निकल रहा था, राजा ने दीपक के अभिज्ञान से बाण छोड़ा। वह (बाण) मन्त्री (कैंवास) की कक्ष (काँख) के नीचे से होता हुआ दीपधर के हाथ में जा लगा और [उसके] हाथ से दीपक गिर गया। कोलाहल होने पर राजा ने पूछा, 'अरे, यह (कोलाहल) क्या (क्यों) है?' [लोगों ने कहा,] 'देव, घातक के द्वारा मन्त्री (कैंवास) पर बाण छोड़ा गया था।' [पृथ्वीराज ने पूछा,] 'अरे! क्या मन्त्री [कैंवास] जीवित है?' [लोगों ने कहा,] 'देव, वे कुशल पूर्वक हैं।' इसके बाद रात्रि के पिछले भाग में द्वारभट्ट चन्द बलिद्दिक (बरदाई) ने राजा [पृथ्वीराज] से कहा—

(१)
इक्कु बाण पहुवीसु जु पइं कैंवासह मुक्कओ।
उर भिंतरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ।
बीअं करि संधीउं भंमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दइ सइंभरि वणु।
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।
नं जाणउं चंद बलद्दिउ किं न वि छुट्टइ इह फलह॥[1]

(२)
अगहु म गहि दाहिमओ [राय ?] रिपु राय खयंकरु।
कूडु मंत्र मम ठवओ एहु जंबूय मिलि जग्गरु।
सह नामा सिक्खवउं जइ सिक्खियउं बुज्झई।
जंपइ चंद बलिद्द मज्झ परमक्खर सुज्झइ।
पहु पहुविराय सइंभरि धणी सयंभरि सउणइ संभरिसि।
कइंबास बिआस विसट्ठ विणु मच्छि बंधि बद्धओ मरिसि॥[2]

[1]. अर्थात् 'हे पृथ्वीश (पृथ्वीराज), तुमने जो एक (पहला) बाण कइंबास को [लक्ष्य करके] छोड़ा, उस बाण ने [उसके] हृदय के भीतर खलबली कर दी और धीर (कइंबास) की काँख के नीचे से वह चूक [कर निकल] गया। हे सोमेश्वरनन्दन, तुमने दूसरा बाण हाथ में साँधा तो [उसके लगने से] वह भ्रमित हो गया। इस प्रकार वह दाहिमा (कइंबास) [पृथ्वी में] गड़कर साँभर के वन को खन खोद रहा है। इस लोभी और पलक्क (लंपट) से इस बार (समय) [पृथ्वी का] यह खल गुड (कवच) स्फुट रूप में नहीं छोड़ा जा रहा है। बलिद्दिक चन्द कहता है, न जाने क्यों यह (कइंबास) [अपने कर्मों के] इस फल से नहीं छूट पा रहा है।'

[2] अर्थात् '[हे राजा,] रिपुराज (शहाबुद्दीन) को क्षय (नष्ट) करने [की सामर्थ्य रखने] वाला दाहिमा (कइंबास) अगह (अग्राह्य, अथवा अगाध) मार्ग में [जा चुका] है [जिससे वह वापस नहीं बुलाया जा सकता है]। [तुम] कूट मन्त्र मत स्थित करो [क्योंकि] इस प्रकार [तुम्हारा शत्रु] जम्बू [-पति] से

राजा (पृथ्वीराज) ने भेद के भय से अन्धकार करा दिया। पहले प्रहरिक काल में सर्व अवसर (दरबार-ए-आम) में [जब] मंत्री (कैंवास) आया, तो वह विसूत्रित (अलग) कर दिया गया। भट्ट (चंद बलिद्दिक) निष्कासित कर दिया गया। उस (चंद) ने कहा, 'पुनः तुम्हारे कल्याणमत के परे मैं [कुछ] नहीं कर रहा हूँ। मैं सिद्ध सारस्वत (सरस्वती-पुत्र) हूँ। तुम म्लेच्छ के द्वारा बँधकर शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होगे।' [ऐसा कहता हुआ] वह निकल कर वाराणसी चला गया। [वहाँ पर] राजा जयचन्द ने [उससे] कहा, 'मैंने तुम्हें बुलाया, किंतु तुम नहीं आए।' [चंद ने उत्तर दिया,] 'देव, तुम भी मृत्यु के निकट हो, इसलिए मैं यहाँ भी नहीं ठहरूँगा।'

इधर कैंवास के हटने पर नया मन्त्री हुआ। राजा ने [शहयहस्त] प्रताप सिंह के भतीजे को अत्यधिक शक्तिसंपन्न समझकर कारागार में डाल दिया। मन्त्री (कैंवास) अलग होने पर भी [राजा को] छोड़ नहीं (चैन लेने नहीं दे) रहा था। वह सुल्तान (शहाबुद्दीन) से मिला। उसने शकों (तुर्कों) का कटक बुलाया। [तुर्कों को] आया सुनकर पृथ्वीराज सामने निकल आया। तीन लाख घोड़े, दस सहस्र हाथी, पंद्रह लाख मनुष्य, इस प्रकार······। आशी (हाँसी) का अतिक्रमण करके [तुर्क] कटक आगे चला गया। इसके अनन्तर सुल्तान (शहाबुद्दीन) की मन्त्री (कैंवास) से बातें हुईं। उसने कहा, 'समय आने पर बुलाऊँगा।'

अब पृथ्वीराज दस दिन तक सोया रहा, परन्तु कोई उसे जगाता नहीं था, [क्योंकि] जो उसे जगाता था, उसी को वह मार डालता था। इसी समय प्रधान (कैंवास) के द्वारा सुल्तान बुलाया गया। राजा जागता नहीं था। धीरे धीरे कितने ही सामंत युद्ध करके मारे गए। कुछ भाग भी गए। सहस्र अश्वों······के शेष रहने पर बहिन ने कहा, 'तुम अपने ही लोगों को मारते हो। तुम्हारे सोते सोते [तुम्हारा] सारा कटक मारा गया।' राजा [पृथ्वीराज] ने कहा, 'मैं मंत्री (कैंवास)···।' उसके विनष्ट होने पर राजा (पृथ्वीराज) शाकंभरी [देवी] को स्मरण करके नाटारंभाश्व पर चढ़कर भागा। भाई (यशोराज) सहित वह पीछा करने वाले तुर्कों के हाथ में नहीं आया।

इधर आशी (हाँसी)······देश में दो पर्वतिकाओं के बीच में भट्ट [चन्द] था। [वहाँ] राजा (पृथ्वीराज) को भेजकर जसराज (यशोराज) खड़ा हो गया। वह [सुल्तान के] कुछ कटक को [काट कर] खलिहान कर चुका था [जब] वह वहाँ मारा गया। सुल्तान साहबदीन (शहाबुद्दीन) ने उस मन्त्री (कैंवास) को······। '[राजा] पूँछ रहित सर्प के समान कर दिया गया है, [अपने] स्थान पर पहुँच जाने पर यह किस प्रकार पकड़ा जा सकेगा?' उस [मन्त्री] ने कहा, 'छल से।' जैसे ही घोड़ा [नाटारंभाश्व] नाचने लगा, बाजा बजाया जाने लगा, ऐसा करने से घोड़ा [नाटारंभाश्व] नाचता ही रह गया, चला नहीं [और] राजा के गले में सिंगिनी डाल दी गई। सुल्तान ने राजा को पकड़ लिया। स्वर्ण की बेड़ियों में [उसे] डाल कर और योगिनीपुर (दिल्ली) लाकर [सुल्तान ने उससे] कहा, 'राजा, यदि तुम्हें जीवित छोड़ दूँ तो तुम क्या करोगे?' राजा (पृथ्वीराज) ने कहा, 'मैंने तुम्हें सात बार मुक्त किया है; क्या तुम मुझे एक बार भी नहीं छोड़ रहे हो?'

मिलकर झगड़ रहा है। मैं तुम्हें सब परिणाम सिखा रहा हूँ कि तुम सीख कर भी जान सको। बलिद्द चन्द कहता है, मुझे परम अक्षर (ज्ञान) सूझ रहा है। हे प्रभु पृथ्वीराज, साँभरपति, साँभर के शकुन को सँभालो (स्मरण करो)। व्यास (बुद्धिमान) और वशिष्ठ (श्रेष्ठ) कइंवास के बिना तुम [शत्रु द्वारा] मत्स्यबंध (मछली की भाँति जाल) में बँधकर मृत्यु को प्राप्त होगे।'

अब जिसकी [आँखों की] पुतलियाँ निकाल ली गई थीं, ऐसे राजा (पृथ्वीराज) के सम्मुख सुल्तान (शहाबुद्दीन) सभा में बैठा। राजा (पृथ्वीराज) खेद कर रहा था। उससे प्रधान (कैंवास) ने कहा, 'देव, क्या किया जाए ? दैव से ही यह [संकट] उत्पन्न हुआ है।' राजा ने कहा, 'यदि मुझे सिंगिनी और बाण दे दो, तो इस (सुल्तान) को मार डालूँ।' उसने कहा, 'ऐसा ही करिए।' फिर उसने जाकर सुल्तान (शहाबुद्दीन) से, निवेदन किया, 'यहाँ पर तुमको नहीं बैठना चाहिए।' [अतः] वहाँ अपने स्थान पर सुल्तान (शहाबुद्दीन) ने लोहे का एक पुतला बिठा दिया। राजा (पृथ्वीराज) को सिंगिनी दी गई। राजा (पृथ्वीराज) ने बाण छोड़ा [और] लोहे के पुतले के दो टुकड़े कर दिए। राजा (पृथ्वीराज) ने [तदनंतर] सिंगिनी त्याग दी। [उसने अपने मन में कहा,] मेरा काम तो हो नहीं पाया, [इसलिए अब] कोई और [मुझे ही] मारेगा।' इसके बाद वह सुल्तान (शहाबुद्दीन) के द्वारा गढ़े में डाला जाकर ढेलों से मारा गया। सुल्तान (शहाबुद्दीन) ने कहा, 'इसके रुधिर का भूमि पर गिरना ही शुभ है।' तदनुसार वह मारा गया। सम्वत् १२४६ में वह स्वर्ग सिधारा। योगिनीपुर (दिल्ली) लौट कर सुल्तान वहीं रह गया।"

'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में उपर्युक्त प्रबन्ध के अतिरिक्त नीचे लिखा हुआ वृत्त भी दिया हुआ है—

"योगिनीपुर (दिल्ली) में श्री प्रथिमराज (पृथ्वीराज) के ऊपर अठारह लाख घोड़ों (घुड़सवार सेना) के साथ बादशाह (शहाबुद्दीन) चढ़ आया। तब एकादशी का पारण करके राजा निद्राभिभूत हो सो गया था। तब महायुद्ध के [उपस्थित] होने पर (गढ़ का) प्राकार टूटकर गिर पड़ा। डर के मारे राजा को कोई जगाता नहीं था। कुब्जिका ने (उसका) अँगूठा दबाकर जगाया। तब उसको मारकर वह फिर सो गया। दूसरे दिन चार वीरों के द्वारा वह जगाया गया। स्वरूप (परिस्थिति) को जानने पर वह प्राकार के वातायन में बैठा। शत्रुओं ने खूब युद्ध किया। [वह पकड़ा गया] तब अत्यधिक व्याकुलता के साथ राजा (पृथ्वीराज) ने तारा देवी का स्मरण किया। वह प्रकट हुई। उसी के द्वारा बादशाह के समीप वह रात्रि में मुक्त किया गया। जब उसे मारने के लिए प्रहार किया गया, विष्णु के दर्शन हुए और वह छोड़ दिया गया, दूसरी बार [इसी प्रकार] जटाधारी (शिव) दिखाई पड़े वह छोड़ दिया गया, तीसरी बार ब्रह्मा दिखाई पड़े और [तारा] देवी ने कहा भी, इसलिए [वह] मारा नहीं गया। [अपने] वस्त्र, हथियार आदि लेकर वह चला आया। सबेरे बादशाह ने वह सब देखा और कहा, '[तुम] जैसे वस्त्र लाये हो, वैसे मारे [भी] जाओगे।' बादशाह ने सारे वस्त्र माँगे। राजा ने कहा, 'जाने पर इसका सतगुना भेजूँगा।' ऐसा होने पर सेना वापस चली गई। तदनन्तर राजा जीवग्राह के द्वारा पकड़ा गया। [उसके] बन्दी हो जाने पर उसको दिया गया भोजन कुत्ता खा गया, यह देखकर वह विषण्ण हुआ। [उसने मनमें कहा] 'अरे, यह क्या ? मेरी रसोई सात सौ सांड़नियों के द्वारा लाई जाती थी [और अब यह अवस्था हो गई।] तब तो हम लोग युद्ध के द्वारा मारे गए।'

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह अन्तिम वृत्त कथा-प्रबन्ध की दृष्टि से नहीं, तारा देवी और देवताओं के स्मरण का महत्व प्रतिपादित करने के लिए लिखा गया है। कथा-प्रबन्ध की दृष्टि से केवल पृथ्वीराज-प्रबन्ध ही विचारणीय है।

पृथ्वीराज-प्रबन्ध के लेखक ने यह नहीं बताया है कि उसकी कथा उसे किस रचना से प्राप्त हुई है। अतः इस प्रसंग में पहला विचारणीय प्रश्न यह है कि उपर्युक्त पृथ्वीराज-प्रबन्ध की कथा का आधार क्या है। ऊपर दिए हुए 'पृथ्वीराज-प्रबन्ध' में तीन कथायें आती हैं—एक तो पृथ्वीराज पर किए हुए शहाबुद्दीन के असफल आक्रमण की है, दूसरी कैंवास के मन्त्रिपद से हटाए जाने और द्वारभट्ट चन्द के निष्कासित किये जाने की है, और तीसरी पृथ्वीराज पर किए हुए शहाबुद्दीन के

यद्यपि वह वहाँ रुकता नहीं है, किन्तु 'पृथ्वीराज रासो' में दो में से एक बात भी नहीं घटती है; 'पृथ्वीराज रासो' में शहाबुद्दीन पृथ्वीराज पर स्वयं यह जानकर आक्रमण करता है कि उसकी शक्ति कन्नौज के युद्ध में क्षीण हो चुकी है, और उसके सामन्त उससे रूठे हुए हैं। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में पृथ्वीराज इस युद्ध में नाटारंभाश्व पर चढ़ कर भाग निकलता है, यद्यपि मन्त्री कैंवास के छल से पकड़ा जाता है; 'पृथ्वीराज रासो' में वह उठ कर युद्ध करता है और युद्ध करते हुए छल से पकड़ा जाता है। दूसरी ओर, 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में उस जम्बूपति हाहुली राय का कोई उल्लेख नहीं होता है जिसने 'पृथ्वीराज रासो' में शत्रु पक्ष से मिल कर अपने राजा पृथ्वीराज का पराभव कराया है। अतः यह नितान्त प्रकट है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' की कथा सर्वथा 'पृथ्वीराज रासो' के किसी भी ज्ञात रूप का अनुसरण नहीं करती है। अन्यत्र हम देखते हैं कि वह सर्वथा 'हम्मीर महाकाव्य' की कथा का भी अनुसरण नहीं करती है। फिर भी वह अंशतः इसका और अंशतः उसका अनुसरण करती है,[1] इसलिए ऐसा लगता है कि वह 'रासो' तथा 'हम्मीर महाकाव्य'—दोनों की कथाओं को सामने रखते हुए कुछ नई कल्पना का भी पुट देते हुए बिनी-बनाई गई है।

कहा जा सकता है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के लेखक के सम्मुख 'पृथ्वीराज रासो' का कोई अन्य पाठ रहा होगा जो अभी तक हमें प्राप्त नहीं हुआ है, और बहुत सम्भव है कि 'रासो' का वही मूल अथवा कम से कम प्राचीनतर पाठ रहा हो। किन्तु यदि उद्धृत छन्दों को ध्यान पूर्वक देखा जाए तो यह कल्पना निराधार प्रमाणित होती है।

उद्धृत प्रथम छन्द में कहा गया है कि प्रथम वाण-प्रहार से अकृतकार्य होने पर कैंवास पर 'पृथ्वीराज ने दूसरा वाण छोड़ा : 'बीअं कर संधीउ भंभइ सूमेसरनंदण।' यह विवरण स्पष्ट ही 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के विवरण के विरुद्ध है। फिर छन्द में कहा गया है कि 'इस प्रकार दाहिमा (कैंवास) [पृथ्वी में] गड़ कर साँभर के वन को खन-खोद रहा है': 'एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दइ सइंभरि वणु' और 'स्फुट रूप से इस लोभी और लंपट (कंवास) से [पृथ्वी का] वह खल (कठिन) गुड (कवच) नहीं छोड़ा जा रहा है' : 'फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह', जिससे यह प्रमाणित है कि कैंवास मारा जाकर भूमि में गाड़ दिया गया था। यह विवरण तो 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के कैंवास सम्बन्धी समस्त विवरणों के विरुद्ध जाता है। इतना ही नहीं, छन्द में जो 'पलकहु' (पलक्क=लंपट) शब्द आता है, वह भी कैंवास-वध की उस कथा को प्रमाणित करता है जो 'रासो' के समस्त पाठों में आती है।

दूसरे छन्द में भी इसी प्रकार कहा गया है कि 'वह (शत्रु) [इस बार] जम्बू [पति] से मिल कर तुम से झगड़ रहा (युद्ध कर रहा) है' : 'कूड मंत्र मम ठवओ एहु जंबूय मिलि जग्गर', और जम्बू पति (हाहुलीराय) से मिल कर शहाबुद्दीन के पृथ्वीराज से युद्ध करने की कथा 'रासो' के ही पाठों में आती है, 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में नहीं।

साथ ही ऊपर उद्धृत दोनों छन्द 'पृथ्वीराज रासो' में मिल जाते हैं। पहला तो सभी प्राप्त पाठों में मिलता है, दूसरा उसके मध्यम तथा बृहत् पाठों में मिलता है। इसलिए यह प्रकट है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में उद्धरण के लिए छन्दों को 'रासो' से लेते हुए भी कथा-योजना में पूरी स्वतंत्रता बरती गई है और इसलिए 'पृथ्वीराज प्रबंध' के आधार पर हम यह नहीं मान सकते हैं कि 'रासो' का कोई ऐसा रूप भी था जिसमें कथा लगभग वह आती थी जो 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में आती है।

अन्यत्र हम देखते है कि 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' के 'जयचन्द-प्रबन्ध' में जो छन्द चन्द के कहे गए बताए गए हैं, वे चन्द के नहीं हैं जल्ह कवि के हैं—'जल्ह कवि' की छाप स्पष्ट रूप से उक्त

[1], दे० इसी भूमिका में आया हुआ 'हम्मीर महाकाव्य और पृथ्वीराजरासो' शीर्षक।

दोनों छन्दों में आई हुई है।[1] अतः इन जैन प्रबन्धों की कथा के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' या चंद्र-द्वारा रचित पृथ्वीराज विषयक काव्य की कथा की कल्पना करना उचित न होगा।

किंतु क्या, इसी प्रकार, हम यह भी कह सकते हैं कि 'पृथ्वीराज प्रबंध' में उद्धृत चन्द के छन्दों से 'पृथ्वीराज रासो' के स्वरूप के सम्बन्ध में भी हम कोई कल्पना नहीं कर सकते हैं? कुछ विद्वानों का यही मत है। एक विद्वान ने लिखा है, "मुनि जिन विजय जी को मिले चार फुटकर छप्पयों से 'पृथ्वीराज रासो' का रचा जाना सिद्ध नहीं होता है। हो सकता है कि चन्द नामक किसी कवि ने 'पृथ्वीराज' की जीवन-घटनाओं पर कुछ फुटकर छन्द ही लिखे हों, इस चन्द का अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो से सम्बन्ध जोड़ना अनुचित है।"[2] किंतु इन छन्दों से यह स्वतः प्रकट है, जैसा हमने ऊपर देखा है, कि ये स्वतन्त्र या फुटकर ढंग पर लिखे हुए छन्द नहीं हैं: ये तो कुछ विस्तृत प्रकरणों के छन्द हैं, और उनके अभाव में इनकी रचना की कल्पना नहीं की जा सकती है। अतः यह मानना पड़ेगा कि ये छन्द चन्द की किसी प्रबंध कृति से लिए गए हैं, भले ही उसका नाम 'पृथ्वीराज रासो' रहा हो या कुछ और। और हम ऊपर यह भी देख चुके हैं कि 'पृथ्वीराज प्रबंध' में उद्धृत उपर्युक्त छन्द 'अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो' के कथाप्रबंध में पूर्ण रूप से ठीक बैठते हैं, उसमें वे मिलते तो हैं ही। अतः 'अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो' से इन छन्दों के रचयिता चंद का सम्बन्ध जोड़ना किसी प्रकार भी अनुचित नहीं माना जा सकता है। यह प्रश्न भिन्न है कि 'अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो' में इन छन्दों के रचयिता चन्द की रचना कितनी है, और कितनी दूसरों की है।

अब दूसरा विचारणीय प्रश्न यह है कि उपर्युक्त 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के लेखक के सामने 'रासो' का कौन सा पाठ था। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के ऊपर उद्धृत दो छन्दों में से द्वितीय इस सम्बन्ध में एक निश्चयात्मक प्रकाश डालता है। नीचे बहिरंग तथा अन्तरंग संभावनाओं की दृष्टि से इस पर विचार किया जा रहा है।

'रासो' के विभिन्न पाठों में से यह केवल मध्यम तथा बृहत् पाठों की प्रतियों में मिलता है, शेष में नहीं मिलता है; और मध्यम तथा बृहत् की प्रतियों में भी एक स्थान पर नहीं मिलता है, भिन्न-भिन्न स्थानों पर और भिन्न-भिन्न प्रसंगों में मिलता है; मध्यम की ना० प्रति में यह छन्द धीर पुंडीर के द्वारा शहाबुद्दीन के पराजित और बन्दी होने के अनन्तर पृथ्वीराज के द्वारा उसके मुक्त किए जाने के प्रसंग में आता है (खंड ३९, छन्द १४९); टॉड संग्रह की प्रति सं० ६० में यह छन्द बाण-वेध-प्रकरण में आता है, जिसमें शब्द-वेध कौशल से पृथ्वीराज शहाबुद्दीन का प्राणांत करता है (बानवेधखंड, छन्द २१६); शा० उ० तथा स० में यह छन्द शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध के पूर्व हुई पृथ्वीराज के सामन्तों की विचार-गोष्ठी के प्रसंग में आता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में हम ऊपर देख ही चुके हैं कि यह छन्द कैंवास वध-प्रकरण में आता है। अतः जब हम यह देखते हैं कि यह छन्द रचना के लघुतम तथा लघु पाठों की किसी भी प्रति में नहीं आता है और उसके मध्यम तथा बृहत् पाठों में और 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में भिन्न-भिन्न स्थानों और प्रसंगों में मिलता है, इसकी प्रामाणिकता नितान्त संदिग्ध लगने लगती है।

यदि हम प्रसंग की दृष्टि से देखें तो प्रकट है कि यह छन्द कैंवास-वध प्रकरण का नहीं हो सकता है, क्योंकि उस समय तक जम्बूपति और शहाबुद्दीन की कूट संधि का प्रसंग 'रासो' के किसी भी पाठ में नहीं आता है और इस छन्द में जम्बूपति और शहाबुद्दीन की कूट संधि का स्पष्ट उल्लेख होता है;

[1] दे० दे० 'हिन्दी रासो परंपरा का एक विस्मृत कवि जल्ह', हिन्दी अनुशीलन, भाग १०, अंक १, पृ० १।

[2] श्री मोतीलाल मेनारिया 'राजस्थान का पिंगल साहित्य', क्रमशः पृ० ४९ तथा ३८।

धीर पुंडीर द्वारा शहाबुद्दीन के पराजित और बन्दी होने तथा पृथ्वीराज के द्वारा उसके मुक्त किए जाने के प्रसंग का भी यह नहीं हो सकता, क्योंकि उस समय तो शहाबुद्दीन पृथ्वीराज के एक सामन्त द्वारा पराजित और बन्दी था ही; बाण-वेध प्रसंग का भी यह नहीं हो सकता, क्योंकि उस समय तो सारा युद्ध समाप्त था, पृथ्वीराज स्वयं शहाबुद्दीन का बन्दी था : ऐसे समय में जब कि चन्द पृथ्वीराज को शहाबुद्दीन के वध के लिए तैयार करने गया था वह और भी पृथ्वीराज को निरुत्साह करने वाले ऐसे वाक्य नहीं कह सकता था कि वह शत्रु द्वारा मत्स्य-बंध में बँधकर मृत्यु को प्राप्त होगा। यदि यह छन्द किसी हद तक प्रसंग-सम्मत कहा जा सकता था तो केवल शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध के पूर्व हुई पृथ्वीराज के सामन्तों की विचार-गोष्ठी के प्रसंग में, जिसमें यह 'रासो' के बृहत् पाठ की प्रतियों में आता है। उक्त अन्तिम युद्ध में लघु, मध्यम तथा बृहत् पाठों की समस्त प्रतियों के अनुसार जम्बूपति हाहुलीराय शहाबुद्दीन से मिल गया था। किन्तु यहाँ पर भी प्रश्न यह उठता है कि चन्द को अपने स्वामी पृथ्वीराज को इस प्रकार उसके मरण की विभीषिका दिखाकर निरुत्साह करने की कौन सी आवश्यकता थी जब कि उसके सभी सामन्त उक्त विचार-गोष्ठी में शहाबुद्दीन का वीरतापूर्वक सामना करने के लिए उसे परामर्श दे रहे थे। चन्द के इस कथन पर पृथ्वीराज की प्रतिक्रिया क्या हुई, यह भी इस प्रसंग में 'रासो' के उपर्युक्त किसी पाठ में नहीं बताया गया है। इसलिए यह प्रकट है कि 'रासो' के जिन दो पाठों की प्रतियों में यह छन्द आता है, उनमें भी यह छन्द पहले से नहीं था, बाद में मिलाया गया और असंगत है।

इस प्रसंग में एक और बात भी विचारणीय है : 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में उद्धृत प्रथम छन्द में चन्द ने ही कैंवास को लोभी और पलक (लंपट) कहा है :—

फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भउ बारइ पलकउ खल गुलह।

जबकि इस दूसरे छन्द में उसे चन्द ही ने व्यास (बुद्धिमान) और वसिष्ठ (श्रेष्ठ) कहा है :—

कैंवास विआस विसट्ठ विनु मच्छि बन्धि बद्धओ मरिसि।

चन्द के ही कहे जाने वाले इन दोनों कथनों में विरोध प्रत्यक्ष है। और कैंवास को लोभी-लंपट कहने वाला चन्द का उक्त छन्द रचना की समस्त प्रतियों में उसी स्थान पर पाया जाता है जिस पर वह 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में पाया जाता है, इसलिए यह प्रकट है कि 'पृथ्वीराज-प्रबन्ध' का उपर्युक्त दूसरा छन्द मूल रचना का नहीं है, प्रक्षिप्त है, और 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के लेखक के सामने 'रासो' का प्रामाणिक रूप नहीं, कोई प्रक्षिप्त रूप ही था।

—:*:—

११. 'सुर्जन चरित महाकाव्य'
और
'पृथ्वीराज रासो'

चंद्रशेखर कृत 'सुर्जनचरित महाकाव्य'[१] की रचना अकबर के समकालीन और उसके अधीनस्थ हाड़ा राय सुर्जन की प्रेरणा से प्रारम्भ हुई थी,[२] किंतु उसकी समाप्ति उसके उत्तराधिकारी राय भोज के समय में हुई थी।[३] कवि ने ग्रन्थ का रचना-काल नहीं दिया है, किन्तु इसमें उसने राय सुर्जन के देहान्तोपरान्त राय भोज के राज्यारोहण का वर्णन मात्र किया है, उसके शासन-काल की घटनाओं का कोई विवरण नहीं दिया गया है, इसलिए समझना चाहिए कि ग्रन्थ उसके राज्यारोहण के कुछ ही बाद समाप्त हुआ था। 'आईन-ए-अकबरी' में अकबर के शासन से सम्बन्धित व्यक्तियों की नामावली देते हुए राय सुर्जन (संख्या ९६) तथा राजा भोज (संख्या १७५) दोनों के नाम दिए गए हैं, और राय सुर्जन के सम्बन्ध में 'आईन-ए अकबरी' के योग्य संपादक ने टिप्पणी देते हुए लिखा है कि 'तबकात-ए-अकबरी' (रचना-काल १००१ हि० = १६४९ वि०) से स्पष्ट है कि राय सुर्जन सं० १६४९ वि० के कुछ पूर्व ही दिवंगत हो चुका था।[४]

राय सुर्जन के एक पूर्वज होने के नाते इसमें चौहान पृथ्वीराज का भी वृत्त आया है। यह रचना के दसवें सर्ग में है। नीचे इस सर्ग के श्लोकों का उल्लेख करते हुए उस वृत्त का सार दिया जा रहा है :—

श्लोक १-१० : गंगदेव का पुत्र सोमेश्वर हुआ, जिसने कुलपरम्परागत राज्य का शासन किया। सोमेश्वर ने कुन्तलेश्वर की पुत्री कर्पूर देवी से विवाह किया और कर्पूर देवी से उसके दो पुत्र पृथ्वीराज तथा माणिक्यराज हुए। पिता के दिए हुए राज्य को आपस में बाँट कर श्रेष्ठ बाहुबल से दोनों भाइयों ने शासन किया। पृथ्वीराज ने अपने पराक्रम से राज्य का विस्तार किया।

११-५२ : एक दिन जब पृथ्वीराज नगर के बाहर एक उद्यान में था, कान्यकुब्ज से कोई महिला आकर पृथ्वीराज से मिली और कान्यकुब्जेश्वर की पुत्री कांतिमती के सौन्दर्य की प्रशंसा करने के अनन्तर उससे कहने लगी की कांतिमती पिता के चारणों से उसका हाल सुन कर उस पर अनुरक्त हो चुकी थी और उसने एक रात स्वप्न में एक सुन्दर पुरुष को देखा था, तब से वह सर्वथा

[१] 'सुर्जनचरित महाकाव्य', हिन्दी अनुवाद सहित : सम्पादक और प्रकाशक डॉ० चन्द्रधर शर्मा, प्राध्यापक, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९५२।

[२] वही १.७, तथा २०.६४।

[३] वही, २०.६३।

[४] 'आइने-ए-अकबरी', सम्पादक एच० ब्लॉचमैन, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण, पृ० ४५०।

काम के वश में हो रही थी; उन्हीं दिनों उसने यह भी सुना था कि कान्यकुब्जेश्वर उसे और किसी से ब्याहना चाहते थे, इससे वह बहुत व्यथित थी और इसी लिए उसने पृथ्वीराज के पास सन्देश लेकर उसे भेजा था। यह सुन कर पृथ्वीराज ने कहा कि वह उसके गुणों को बार-बार सुन चुका था, और उसके इस सन्ताप को दूर करने का उपाय अवश्य करेगा। दूती यह आश्वासन लेकर चली गई।

५३-११२ : इसके अनन्तर अपने वन्दी को आगे कर पृथ्वीराज कान्यकुब्ज गया। वेश बदल कर और १५० सामन्तों को साथ लेकर उसने उस वैतालिक का अनुसरण किया। जयचन्द की सभा में वह उस वैतालिक का पार्श्वचर बन कर रहता। वह प्रति दिन घोड़े पर चढ़ कर गंगा तट पर चक्कर लगाता। एक दिन चाँदनी रात में वह घोड़े को नदी में पानी पिला रहा था। घोड़े के मुख से निकलते हुए फेन की गन्ध से मछलियाँ जब ऊपर आईं, वह उन्हें अपने कंठहार के मोती निकाल-निकाल कर चुगाने लगा। कान्यकुब्जेश्वर की कन्या ने उसका यह कृत्य देखा, तो उसे उसके सम्बन्ध में जानने की उत्सुकता हुई। उस दासी ने, जिसने उसका सन्देश पृथ्वीराज को पहुँचाया था, उसे पहचान कर बताया कि यह तो पृथ्वीराज ही था और यदि उसे इस विषय में सन्देह था तो वह उसकी परीक्षा कर सकती थी। यह सुनकर राजकुमारी ने मुक्तामाल देते हुए एक दासी को वहाँ भेजा। वह जाकर पृथ्वीराज के पीछे खड़ी हो गई। कंठहार के मोतियों के समाप्त होते ही राजा ने पीछे हाथ बढ़ाया तो दासी ने वह मुक्तामाल उसके हाथों पर रख दिया। जब वे बिना गूँथे हुए मोती भी समाप्त हो गए, तब उस दासी ने अपना कंठहार उतार कर राजा के हाथों पर रक्खा। स्त्रियों के उस कंठभूषण को देखकर राजा विस्मित हुआ और पीछे मुड़कर देखा तो वह दासी वहाँ मिली। पूछने पर उसने बताया कि कान्यकुब्जेश्वर की कन्या की वह परिचारिका थी। राजा ने उससे कहा कि वह अपनी स्वामिनी से कुछ प्रहर और धैर्य रखने के लिए कहे, दूसरे दिन रात्रि में उसके हृदय को निश्चय हो जावेगा। दूसरे दिन रात्रि में वह राजकुमारी से मिला और उसने कहा कि वह अपने सामंतों को बिना बताए यहाँ आया था, इसलिए उसे लौटना ही था, और उनसे मिलकर वह पुनः आ सकता था। किन्तु राजकुमारी को भावी विरह से व्यथित देखकर उसने उसे साथ ले लिया, और घोड़े पर उसके साथ सवार होकर अपने शिविर को चला गया।

११३-१२८ : इस समय एक सामंत आकर कहने लगा कि पृथ्वीराज को नव वधू के साथ दिल्ली के लिए प्रस्थान कर देना चाहिए; जब तक वह चार योजन आगे जावेगा, वह शत्रु सेना को रोकेगा। एक दूसरे सामंत ने उसे छः गव्यूति (तीन योजन) आगे बढ़ाने की प्रतिज्ञा की। इसी प्रकार इन्द्रप्रस्थ तक का सारा मार्ग सामंतों ने परस्पर बाँट लिया। तब तक शत्रु-सेना आ पहुँची थी। उसने पीछा किया, किंतु संघर्ष होते-होते पृथ्वीराज इन्द्रप्रस्थ पहुँच गया। जब पृथ्वीराज इन्द्रप्रस्थ पहुँचा, उसके पराक्रमी वीरगण इने-गिने ही बच रहे थे। पृथ्वीराज से हार कर कान्यकुब्जेश्वर यमुना के जल में डूब मरा।

१२९-१३२ : दिग्विजय करके पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को बाँधा। इक्कीस बार उसे बन्दी करके छोड़ा। किंतु उसने उपकार नहीं माना और छल-बल से एक युद्ध में पृथ्वीराज को बन्दी करके उसे अपने देश ले गया और वहाँ उसे नेत्र-हीन कर दिया।

१३३-१६८ : घूमता-फिरता पृथ्वीराज का मित्र चन्द नामक वन्दी भी वहाँ पहुँच गया और उसने पृथ्वीराज को प्रतिशोध के लिए प्रोत्साहित किया। राजा ने कहा उसके पास न सेना थी, और न नेत्र थे; प्रतिशोध लेना किस प्रकार सम्भव था? किंतु बन्दी ने जब उसे उसके शब्द-वेध कौशल का स्मरण कराया, पृथ्वीराज ने उसका आग्रह स्वीकार कर लिया। तदनंतर वह वन्दी यवनराज की सभा में गया और कुछ ही दिनों में उसके मंत्रियों का तथा उसका विश्वास उसने अपने विद्या-कौशल

से प्राप्त कर लिया। किसी प्रसंग में एक दिन उसने कहा कि नेत्रहीन होते हुए भी पृथ्वीराज वाण-द्वारा लोहे के कड़ाहों को वेध सकता था, और उसका यह कौशल दर्शनीय था। यवनराज उसकी बातों में आ गया। एक स्वर्ण-स्तंभ पर लोहे के कड़ाह रखे गए और पृथ्वीराज को वाण चलाने की आज्ञा हुई। तब वन्दी ने कहा कि यवनराज के तीन बार स्वयं कहने पर वह लक्ष्यवेध करेगा। इस पर शहाबुद्दीन के मुख से वाण चलाने की आज्ञा के निकलते ही पृथ्वीराज का वाण छूटकर उसके तालुमूल से जा लगा और यवनराज का प्राणांत हुआ। वहाँ हलचल देखकर वन्दी ने राजा को घोड़े पर बिठाया और कुरु जांगल देश ले गया, जहाँ पृथ्वी को यशःपूर्ण करके राजा परलोक सिधारा।

'महाकाव्य' के लेखक ने यह नहीं बताया है कि पृथ्वीराज की उपर्युक्त कथा उसे कहाँ से प्राप्त हुई, अतः इस प्रसंग में पहली विचारणीय बात यह है कि इस कथा का आधार क्या हो सकता है? इस कथा में प्रतिशोध-प्रकरण में वन्दी चन्द का नाम आता है, जिसके बारे में यह भी कहा गया है कि वह उसका मित्र था। चन्द के 'पृथ्वीराज रासो' में जो कथा आती है, उससे उपर्युक्त कथा का पर्याप्त साम्य भी है यह सुगमता से देखा जा सकता है, और 'पृथ्वीराज रासो' 'सुर्जनचरित महाकाव्य' से काफी पहले की रचना है, यह इस बात से प्रमाणित हो चुका है कि उसके छन्द पुराने जैन प्रबंधों में मिलते हैं, जिनमें से एक की प्रति सं० १५२८ की है।[1] अतः प्रश्न वास्तव में इतना ही रह जाता है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में यह कथा सीधे 'पृथ्वीराज रासो' से ली गई है, अथवा 'रासो' पर आधारित किसी रचना से।

नीचे उदाहरण के लिए 'पृथ्वीराजरासो' से कुछ ऐसे छन्द दिए जा रहे हैं जिनमें वे ही कथा-विस्तार मिलते हैं जो 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा में आए हैं[2] :—

(१) तिहि पुच्छिय सुनि गुन हुतउ तात वचन सजि काज।
कइ बहि गंगहि संचरउं कइ पानि गहउं प्रथीराज॥

(प्रस्तुत संस्करण, २.११)

(२) सुनत राइ अचरिज भयउ हियइ गम्यउ अनुराउ।
नृप घर अनि उर अंगमइ देवहि अवर स भाउ॥

(वही, २.१२)

(३) चलउं भट्ट सेवग होइ सथ्थह।
जउ बोलउं त हत्थु तुह मथ्थह।
जबइ राइ जानइ संग्रह हुअ।
सव अंगमउं समर दुहुनि भुअ॥

(वही, ३.३९)

(४) कमधज्जिय जयचन्द चलउ ढिल्लियपुर पेषन।
चन्द विरद्दिआ साथि बहुत सामन्त सूर घन।
चहुआन राठवर जाति पुंडीर गुहिल्ला।
बडगूजर राठवर कुरंभ जांगरा रोहिल्ला।

[1] दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा लिखित : (१) 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह, चंद बरदाई और जयद का समय' नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सं० २०१२, अंक ३-४, पृ० २३४ तथा (२) 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह और पृथ्वीराजरासो', शीर्षक इसी भूमिका में अन्यत्र।

[2] स्थल-निर्देश की प्रथम संख्या सर्ग तथा द्वितीय संख्या छन्द की है।

इत्ते सहित्त गुअपति चलउ उडी रेन किमउ सुभउ।
एकु एकु लष्ष वर लष्षइ चले सथ्थ रजपुत्त सउ ॥

(वही, ४.१)

(५) करिग देश दुक्खिन नयर गंग तरंगह कुल्ल।
जल छंडइ अछूछइ करह मीन चरित्तु भुल्ल ॥

(वही, ६.६)

(६) भूलउ नृप तिहि रंग तहि जुध्ध विरुद्द सद्दु।
मृगति मीननु मुत्ति लहंति जु लष्ष दह।
होइ तुछ्छं तु तंमोर सरंत जु कंठ लहु।
चंक प्रवेस हसंत तु झरंत जु गंग मह ॥

(वही, ६.७)

(७) पंगुराइ सा पुत्तिय मुत्तिय थार भरि।
थो त्रिय जउ प्रथीराज न पुछ्छइ तोहि फिरि।
जउ इन लष्षन सब सहित विचार न सोइ करि।
हइ ब्रत मोहि नृ जीव सु लेउं सजीव वरि ॥

(वही, ६.१३)

(८) सुन्दरि आइ स धाइ विचार न बोलइय।
जउ जल गंगह लोल गतीत प्रसंगु लिय।
कमल ति कोमल पानि कलिकुल अंगुलिय।
मनहु अछ्व दुजदान सु अप्पति अंजुलिय ॥

(वही, ६.१४)

(९) अपंति अंजुलीय दान जान सोभ लग्गए।
मनउ अनंग रंग वस्य रंभ इंद पुज्जए।
जु पानि बाहु वार थक्कि थार मुत्ति विसए।
पुनेपि हथ्थ कंठ तोरि पोति पुंज अप्पए।
निरष्षि नयन हेरि वयन ता त्रिपत्ति चाहियं।
तरष्पि दासि पासि पंक (पक्क) संकियं न वाहियं।
अनेक (अनिक्क ?) संग रंग रूप जूप जानि सुंदरी।
उछंग गंग मझ्झि धुक्कि सर्गपत्ति अछ्छरी।
हउं अछ्छरी नरिंदु नाहि दासि गेह राय पंगुरे।
तास पुत्ति जंम छाडि ढिल्लि नाथ आदरे।
सा जंग सूर चाहुवान मान इंम जानए।
करेन केहरीन पीन इंदु मीन थानए।
प्रतष्षि हीर जुध्ध धीर थो सु वीर संचही।
परन्तु प्रान मानिनी चलंति देव गंठही।
सुनंत सूर अस्व फेरि तेजि ताम हंकियं।
मनउ दलिद्द रिध्धि पाय जाय कंठ लग्गियं।
कनक्क कोटि अंग घात रास वास माल ची।
रहंत भउंर झौंर झौंर साह छत्र काम ची।

सुधा सरोज मोज मंग अलक्क रंग हल्लए।
मनउ मयन्न फंद पासि काम केलि घल्लए।
करिस्य कांम कंकनं सुपानि बंध बंधए।
सु भावरी सषी सलज्ज रंभ तुरंयं चउजए।
आचारु चारु देव सब्ब द्वोइ पब्ब जंपही।
गंठि दिढ्ढ इक्क चित्त लोक लोक चंपही।
अनेक सुष्प मुष्प सीस सुध्ध साध लग्गियं।
सु कंत कंत भ'त ता तमोरि गोरि अप्पियं॥

(वही, ६.१५)

(१०) मिले सब्ब सामंत बोल मग्गहि त नरेसर।
छप्प मग्ग लग्गिअइ मग्ग रष्षिइ ति इक्क भर।
एक एक झुझंति दुंति दंती ढंढोरइ।
जिके पंग राय भिच्च मारि मारिकइ मोरइ।
इम बोल रहइ कलि अंतरि देहि स्वामि पारिथ्थिअइ।
अरि असीइ लष्ष को अंगमइ परणि राय सारथ्थिअइ॥

(वही, ८.१)

(११) वेद कोस हरसिध उभय त्रियत घड गुज्जर।
काम वान हर नयन निडर नीडर सोइ सुझ्झर।
छगन पवन पल्लानि कन्ह पंची दिग्गपालह।
अल्हन द्वादस सकल अचल विद्या गनि कालह।
सिंगार सिक्ष सलपह सुकथ लपन पाहार आहार सुउ।
इत्तनइ सूर झुझंति ही डिल्लियपति प्रथीराज भउ॥

(वही, ८.३५)

(१२) गहि चहुआन नरिंद गयउ गज्जने साहि घरि।
सा डिल्ली हय गय भंडार लेहि सनय अप्पि घर।
वरस एक तिहि अंध मुध्ध किन्हउ नयन्न विनु।
जंम जंम जुग अत्तरुध्ध जाइ प्रथिराज इक्क पिनु।
सुनत श्रवन्नतु धरि परउ हरि हरि हरि हरि देव सु कह।
तजि पुत्त मित्त माया सकल गहिग चंद गजनेव रह॥

(वही, १२.१)

(१३) अंधहीन दोउ भयउं तुं चहु अंषिन चूक।
असुर वध्धु किम विन सुरइ मइ सुर बंधउ अलूक॥

(वही, १२.३७)

(१४) भयउ एक फुरमान एक वानह गुन संधउ।
सोइ सबद्द अरु वांन अग्ग अग्गइ पल बंधउ।
भयउ कीय फुरमान पंचि रष्षिअउ श्रवन पर।
सीअउ सबद सुनंत सुनउ सुरतान परउ धर।
लगि दसन रसन दस रुंधिअउ विहु कपाट बंधे सघन।
धरि परउ साहि पाँ पुक्करउ भयउ चंद राजहि मरन॥

(वही, १२.४८)

यदि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के विवरण और 'रासो' से ऊपर उद्धृत पंक्तियों को मिलावें तो देखेंगे कि साम्य प्रायः छोटे से छोटे विस्तारों तक में है। यथा :—

(१) दोनों में पृथ्वीराज को यह समाचार मिलता है कि जयचन्द की पुत्री उस पर अनुरक्त है और जयचन्द उसे किसी अन्य से ब्याहना चाहता है, इसलिए वह बहुत व्यथित है।

(२) दोनों में पृथ्वीराज अपने वन्दी के साथ उसके अनुचर के वेश में कन्नौज जाता है और उसके साथ १०० या कुछ अधिक शूर-सामन्त हैं।

(३) दोनों में ठीक एक ही प्रकार से जयचन्द-पुत्री उसे गंगातट पर रात्रि में मछलियों को मोती चुगाते हुए देखती है और एक ही उपाय से इस बात का निश्चय करती है कि वह व्यक्ति पृथ्वीराज ही है।

(४) जयचन्द-पुत्री का अपहरण वह दोनों में एक ही प्रकार से करता है।

(५) दोनों में एक ही समान यह योजना स्थिर होती है कि वह जयचन्द-पुत्री को लेकर दिल्ली की ओर बढ़े और उसके सामन्तगण एक-एक करके जयचन्द की पीछा करने वाली सेना को रोकें; इस योजना का निर्वाह भी दोनों में एक ही सा होता है।

(६) दोनों में वह शहाबुद्दीन के साथ के अंतिम युद्ध में बन्दी होता है और गजनी ले जाया जाकर नेत्रविहीन किया जाता है।

(७) दोनों में एक ही प्रकार से चन्द की युक्ति से पृथ्वीराज शहाबुद्दीन से प्रतिशोध लेने में कृतकार्य होता है।

अन्तर दोनों में बहुत साधारण है और मुख्यतः इतना ही है कि :—

(१) 'रासो' में पृथ्वीराज के जयचन्द-पुत्री के अनुरक्त होने का समाचार मात्र मिलता है, 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में उसकी एक दूती पृथ्वीराज से उसका संदेश लेकर मिलती है।

(२) 'रासो' में उस जयचन्द-पुत्री का नाम संयोगिता है, और 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में कान्तिमती।

(३) 'रासो' में पृथ्वीराज जयचन्द-पुत्री से पहचाने जाने पर ही जा मिलता है, यद्यपि उसे लिवा जाता है बाद में; 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में वह उसे मिलता है दूसरे दिन और उसी समय उसे लिवा जाता है।

(४) 'रासो' में पीछा करता हुआ जयचन्द पृथ्वीराज के दिल्ली पहुँच जाने पर कन्नौज लौट जाता है, 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में वह यमुना में डूब मरता है।

(५) 'रासो' में पृथ्वीराज गजनी में ही शाह-वध के अनन्तर मृत्यु को प्राप्त होता है, 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में उसे चन्द कुरु जांगल प्रदेश भगा ले आता है, जहाँ वह पीछे मृत्यु को प्राप्त होता है।

उपर्युक्त सन्निकट साम्य की पृष्ठभूमि में जब हम इस अन्तर पर विचार करते हैं तो लगता है कि ये अन्तर 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के रचयिता की कल्पना अथवा किन्हीं जनश्रुतियों के परिणाम हैं— जयचन्द का यमुना में डूब मरना अथवा पृथ्वीराज का गजनी से सकुशल कुरु जांगल लौट आना 'रासो' की पूर्वकल्पित दिशा में एक कदम आगे बढ़े हुए विस्तार मात्र प्रतीत होते हैं; यह किसी भी अन्य प्राप्त प्राचीन रचना में नहीं मिलते हैं, यह भी इस अनुमान की पुष्टि करता है। फलतः यह प्रकट है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा का आधार सीधा 'पृथ्वीराज रासो' है।

अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा का आधार 'रासो' का कौन-सा पाठ है : 'रासो' के जो चार मुख्य पाठ प्राप्त हैं, उनमें से कौन सा 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा का आधार हो सकता है?

इस प्रसंग में द्रष्टव्य यह है कि—

(१) 'रासो' के जो छन्द ऊपर उद्धृत हुए हैं, वे लघुतम से लेकर बृहत् तक 'रासो' के

समस्त प्राप्त पाठों में समान रूप से पाए जाते हैं।

(२) 'सुर्जनचरित महाकाव्य' का एक भी मुख्य विस्तार उपर्युक्त को छोड़कर ऐसा नहीं है जो 'रासो' के समस्त पाठों में न पाया जाता हो, और अन्तर वाले उपर्युक्त विस्तार 'रासो' के किसी भी पाठ में नहीं मिलते हैं।

(३) ऐसे कोई भी प्रसंग या विस्तार 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं हैं जो 'रासो' के लघुतम पाठ में न मिलते हों और उसके अन्य किसी पाठ में मिलते हों।

अंतिम विशेषता के उदाहरण में निम्नलिखित प्रसंगों और विस्तारों को लिया जा सकता है, जो कि लघुतम पाठ को छोड़कर 'रासो' के समस्त पाठों में पाए जाते हैं—

(१) गुर्जराधिपति भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज का युद्ध।

(२) उसी के साथ-साथ हुआ पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का युद्ध।

(३) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज के एक सामंत धीर पुंडीर और शहाबुद्दीन का युद्ध।

(४) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से चित्तौड़ के रावल समरसी का सम्मिलित होना।

(५) उसी युद्ध में पृथ्वीराज के एक सामंत जंबूपति हाहुलीराय हम्मीर का शहाबुद्दीन से जा मिलना।

(६) हाहुलीराय हम्मीर के पास जाकर उसे पृथ्वीराज के पक्ष में लाने के लिए चन्द का प्रयत्न करना।

और ये प्रायः ऐसे प्रसंग या विस्तार हैं जो यदि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के लेखक के सामने होते तो उसके द्वारा सबके सब कदाचित् छोड़े न गए होते। अतः यह स्पष्ट है कि उसकी उपर्युक्त कथा का आधार 'रासो' का लघुतम या उससे मिलता जुलता ही कोई पाठ हो सकता है।

अब विचारणीय यह है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के उपर्युक्त विवरण का आधारभूत 'रासो' का पाठ उसके प्राप्त लघुतम पाठ से भी किन्हीं बातों में तो लघुतर नहीं था।

'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा की 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ से तुलना करने पर निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य ज्ञात होती हैं :—

(१) 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में कथा जयचन्द-पुत्री कांतिमती के प्रेम-प्रसंग से प्रारम्भ होती है, पृथ्वीराज का उसमें कोई वृत्त इसके पूर्व नहीं आता है, जैसा कि 'रासो' के लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में आता है।

(२) उसमें पृथ्वीराज के पूर्व पुरुषों की जो नामावली आती है वह उस नामावली से बहुत भिन्न है जो 'रासो' के लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में मिलती है।

(३) अनंगपाल तोंवर द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की जो बात 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में आती है, वह भी 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं आती है।

(४) पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य कैंवास अथवा उसके वध का कोई उल्लेख 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं है, जो कि 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में पाया जाता है।

(५) 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में वे तिथियाँ भी नहीं आती हैं जो 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में पाई जाती हैं।

असम्भव नहीं है कि इनमें से कुछ प्रसंग या विस्तार संक्षेप-क्रिया के कारण 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में छोड़ दिए गए हों, किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि उसकी कथा के आधारभूत

'रासो' के पाठ में उपर्युक्त में से कुछ न भी रहे हों। यह बात ठीक इसी प्रकार 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की समकालीन रचना 'आईन-ए-अकबरी' में भी दिखाई पड़ती है।[1]

इस सम्बन्ध में यह जान लेना कदाचित् उपयोगी होगा कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की रचना सं० १६४९ के लगभग हुई थी, और 'रासो' के प्राप्त सभी पाठों की प्रतियाँ उसके बाद की हैं: लघुतम की प्राचीनतम प्राप्त प्रति जो धारणोज (गुजरात) की है, सं० १६६४ की है; लघु की प्राचीनतम प्राप्त प्रति जो बीकानेर की है, जहाँगीर के समकालीन किसी भागचन्द के लिए लिखी गई थी; मध्यम की प्राचीनतम प्राप्त प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन की है और सं० १६९२ की लिखी है; वृहत् की प्राचीनतम प्राप्त प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की है और सं० १७४७ की है।

प्राप्त लघुतम पाठ की तुलना में 'पृथ्वीराज रासो' का प्रस्तुत संस्करण तो निश्चित रूप से उसके उस पाठ के निकटतर होना चाहिए जिसका आधार 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में ग्रहण किया गया होगा, यह निम्नलिखित बातों से प्रकट है :—

(१) प्रस्तुत संस्करण में भी कथा 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की भाँति संयोगिता के प्रेम-प्रसंग से प्रारम्भ होती है, केवल जयचन्द के राजसूय का प्रसंग और प्रस्तुत संस्करण में साथ-साथ चलता है।

(२) प्रस्तुत संस्करण में पृथ्वीराज के पूर्वपुरुषों की नामावली आती ही नहीं है, केवल उसे सोमेश्वर का पुत्र कहा गया है, इसलिए इस बात में दोनों में कोई विरोध नहीं है।

(३) प्रस्तुत संस्करण में अनंगपाल तोंवर द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की बात भी नहीं आती है, जिस प्रकार वह 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं आती है।

(४) प्रस्तुत संस्करण में भी कोई तिथियाँ नहीं आती हैं, जिस प्रकार 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में वे नहीं आती हैं।

प्रस्तुत संस्करण में कैंवास-वध की कथा अवश्य आती है जो 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं है, किन्तु मुख्य कथा से उसका कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है, इसीलिए यदि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में उसे न दिया गया हो तो आश्चर्य नहीं।

—:※:—

[1] दे० 'आईन-ए-अकबरी और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक अन्यत्र इसी भूमिका में।

१२. 'आईन-ए-अकबरी'
और
'पृथ्वीराज रासो'

'आईन-ए-अकबरी' में दिल्ली के शासन का इतिहास देते हुए पृथ्वीराथ के विषय में निम्नलिखित प्रकार से कहा गया है :—

"विक्रमीय वर्ष सं० ४२९ (३७२ ई०) में तोंवर कुल का अनंगपाल न्यायपूर्वक राज करता था और उसने दिल्ली की स्थापना की। उसी चांद्रसौर वर्ष के सं० ८४८ (७९१ ई०) में उस प्रसिद्ध नगर के निकट पृथ्वीराज तोंवर और और बीलदेव (बीसलदेव) चौहान में घमासान युद्ध हुआ और शासन बाद वाले कुल के हाथों में चला गया। राजा पिथौरा (पृथ्वीराज) के राज्य-काल में सुल्तान मुईजुद्दीन साम ने हिन्दुस्तान पर अनेक आक्रमण किए, जिनमें उसे कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। हिन्दू इतिहासों का कथन है कि राजा (पृथ्वीराज) ने सुल्तान से सात बार युद्ध किए और उसे पराजित किया। ५८८ हि० (११९२ ई०) में थानेसर के पास आठवाँ युद्ध हुआ और राजा बन्दी हुआ। एक सौ प्रसिद्ध योद्धा (कहा जाता है) उसके विशिष्ट अनुयायी थे। वे अलग-अलग 'सामंत' कहलाते थे और उनके असाधारण शौर्य का न वर्णन हो सकता है और न अनुभव या तर्क से उसका समाधान किया जा सकता है कि इस युद्ध में इनमें से कोई नहीं था; राजा भोग-विलास में अपने महल में ही पड़ा काम-केलि में समय नष्ट करता रहा और उसने न राज्य के शासन पर ध्यान दिया और न अपनी सेना के कुशल पर।

कथा इस प्रकार कही जाती है कि राजा जयचन्द राठौर, जो हिन्दुस्तान का सर्वोच्च शासक था, कन्नौज में राज्य कर रहा था। दूसरे राजा किसी न किसी मात्रा में उसकी वश्यता मानते थे, और वह स्वयं इतना उदार था कि ईरान और तूरान के अनेक निवासी उसके भृत्य थे। उसने राजसूय यज्ञ करने की घोषणा की और उसकी तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। इस यज्ञ का एक नियम यह है कि निम्न कोटि की सेवाएँ भी राजागण के द्वारा ही प्रतिपादित होती हैं, यहाँ तक कि राजकीय भोजनालय के बर्तन माँजने-धोने और आग सुलगाने तक के जैसे कार्य भी उनके कर्त्तव्यों के अंग होते हैं। इसी प्रकार उसने वचन दिया कि वह आगत राजाओं में सर्वोच्च शूर राजा को अपनी सुन्दरी कन्या भी देगा।

राजा पिथौरा ने यज्ञ में उपस्थित होने का निश्चय किया था, किन्तु उसकी सभा के किसी सभ्य के इस आकस्मिक कथन ने कि जब तक चौहान कुल का साम्राज्य था, राजसूय किसी राठौर राजा के द्वारा किया जाना विहित नहीं था, पृथ्वीराज के वंशाभिमान को जाग्रत कर दिया और वह रुक गया। राजा जयचन्द ने उसके विरुद्ध सेना भेजने की सोची, किन्तु उसके मन्त्रियों ने युद्ध में समय अधिक लगने की संभावना और (राजसूय) सभा की तिथि की सन्निकटता के ध्यान से उसे इस विचार

से विरत कर दिया। यज्ञ को विधि-पूर्वक संपन्न करने के उद्देश्य से राजा पिथौरा की एक स्वर्ण-प्रतिमा बनाई गई और वह दरबान के रूप में राजद्वार पर रख दी गई।

इस समाचार से क्रुद्ध होकर राजा पिथौरा छद्मवेष में ५०० चुने हुए योद्धाओं के साथ (कन्नौज के लिए) निकल पड़ा और (राजसूय) सभा में अकस्मात पहुँच कर अनेक को अपनी तलवार से मारते हुए वह उस प्रतिमा को शीघ्रता के साथ उठा ले गया। जयचन्द की कन्या जिसका वाग्दान एक अन्य राजा से हो चुका था, पृथ्वीराज के इस शौर्य-प्रदर्शन का समाचार सुन कर उस पर अनुरक्त हो गई और उसने वाग्दत्त राजा से विवाह करना अस्वीकार कर दिया। उसके पिता ने इस आचरण पर क्रुद्ध होकर उसे राज भवन से निकाल दिया और एक अन्य भवन में भेज दिया।

इस समाचार से व्यग्र होकर पिथौरा उस (राज-कन्या) से विवाह करने का निश्चय करके लौट पड़ा और योजना यह बनाई गई कि चाँदा, एक भाट जो कि चारण कला में पटु था, जयचन्द की सभा में उसके गुण-गान के बहाने पहुँचे और राजा (पृथ्वीराज) स्वयं अपने कुछ चुने हुए अनुयायिओं के साथ उसके अनुचर के वेष में उसके साथ जावे। प्रेम ने उसकी आकांक्षा को क्रियात्मिक रूप प्रदान किया और इस कौशलपूर्ण उपाय तथा वीरता के द्वारा उसने अपने हृदय की उस कामना (राजकन्या) का अपहरण किया और बल-वीर्य तथा शौर्य के अद्भुत प्रदर्शन के अनन्तर अपने राज्य में वापस पहुँच गया।

[इस प्रत्यावर्तन में] उसके (उपर्युक्त) सौ सामन्त विभिन्न छद्म वेषों में उसके साथ थे। एक के बाद दूसरे ने उसके भागने में उसकी रक्षा की और पीछा करने वालों से वीरता पूर्वक युद्ध करते हुए उन्होंने प्राण दिए। गोविन्दराय गहलोत ने सर्वप्रथम [शत्रुका] सामना किया और वीरता पूर्वक युद्ध करते हुए प्राणोत्सर्ग किया। शत्रु के सात हजार सैनिक उसके समक्ष धराशायी हुए। तदनंतर नरसिंह देव, चाँदा, पुंडीर, सार्दूल सोलंकी तथा अपने दो भाइयों के साथ पाल्हनदेव कछवाहा ने प्रथम दिन के युद्ध में अद्भुत शौर्य-प्रदर्शन करते हुए महँगे मूल्यों में प्राण दिए, और ये सभी योद्धा उस प्रत्यावर्तन में समाप्त हुए। चाँदा तथा अपने दो भाइयों के साथ राजा अपनी नव-वधू को लेकर जगत् को आश्चर्य-मग्न करता हुआ दिल्ली पहुँच गया।

दुर्भाग्य से राजा अपनी इस सुन्दरी स्त्री के प्रेम में ऐसा लिप्त हो गया कि और सब काम-) छोड़ बैठा। इस प्रकार एक वर्ष बीत जाने पर, ऊपर वर्णित घटनाओं के कारण सु शहाबुद्दीन ने राजा जयचन्द से मैत्री स्थापित करली, और एक सेना इकट्ठी कर इस दे: आक्रमण कर दिया और बहुत से स्थानों को हस्तगत कर लिया। किन्तु किसी को कुछ बोलने त साहस न हुआ, उसका प्रतिकार करना तो दूर की बात थी। अन्त में मुख्य सामन्तों ने सभा राजभवन के सप्त द्वार से चाँदा को भेजा, जिसने रनिवास में पहुँच कर अपने कथनों से रा:) मन में कुछ क्षोभ उत्पन्न किया। किन्तु राजा अपनी पूर्ववर्ती विजयों के अभिमान में युद्ध मे छोटी ही सेना लेकर गया। उसके वीर योद्धा अब नहीं थे, [जिसके कारण] उसके राज पुरानी धाक जाती रही थी, और जयचन्द जो उसका पहले का सहयोगी था अपनी पुरानी बदल कर शत्रु के पक्ष में था, फलतः राजा उस युद्ध में बन्दी हुआ और सुल्तान के द्वारा गज जाया गया।

चाँदा अपनी स्वामिभक्ति के कारण तुरन्त गजनी गया, सुल्तान की सेवा में नियुक्त ह और उसका विश्वास-भाजन बन गया। प्रयत्नों से उसने राजा का पता लगा लिया और (१) में पहुँच कर उसे सान्त्वना प्रदान की। उसने सुझाया कि वह सुल्तान से उसके धनुर्विद्या के प्रशंसा करेगा और जब वह उसके इस कौशल को देखने के लिए तैयार होगा, राजा को उ लाभ उठाने का सुयोग प्राप्त हो जावेगा। यह प्रस्ताव मान लिया गया और राजा ने७. १९)

एक वाण से विद्ध कर दिया। सुल्तान के भृत्य राजा और चाँदा पर टूट पड़े और उन्होंने उन्हें टुकड़े-टुकड़े काट डाला।

फारसी इतिहासकार एक भिन्न विवरण देते हैं और कहते हैं कि राजा युद्ध में मारा गया।[1]

'आईन-ए-अकबरी' के लेखक ने यह नहीं बताया है कि उपर्युक्त कथा उसे किस 'हिन्दू इतिहास' से प्राप्त हुई, अतः इस प्रसंग में पहला विचारणीय प्रश्न यह है कि 'आईन-ए-अकबरी' में दी हुई उपर्युक्त कथा का आधार क्या हो सकता है। इस विवरण में 'चाँदा' नामक एक भाट का उल्लेख हुआ है। प्रकट है कि यह 'चन्द' है। चन्द के 'पृथ्वीराज रासो' में जो कथा आती है उससे उपर्युक्त विवरण में पर्याप्त साम्य भी है, यह सुगमता से देखा जा सकता है; और 'पृथ्वीराज रासो' 'आईन-ए-अकबरी' से काफी पहले की रचना है यह इस बात से प्रमाणित हो चुकी है कि उसके कुछ छन्द पुराने जैन प्रबन्ध-संग्रहों में मिले हैं जिनमें से एक की प्रति सं० १५२८ की है।[2] अतः प्रश्न वास्तव में इतना ही रह जाता है कि 'आईन-ए-अकबरी' में यह कथा सीधे 'पृथ्वीराज रासो' से ली गई है, अथवा 'रासो' पर आधारित किसी रचना से ली गई है।

नीचे उदाहरण के लिए 'रासो' से कुछ ऐसी पंक्तियाँ दी जा रही हैं जिनमें वे ही कथा-विस्तार मिलते हैं जो 'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरण में आए हैं[3]—

(१)

पहु पंग राउ राजसू जग्गु।
आरंभ रंभ कीनउ सुरंग।
जित्तिआ राउ सब सिन्धु आर।
मेलिया कंठ जिम मुत्तिहार।
जोगिनी पुरेस सुनि भयउ पेद।
आवइ न गाल मत्त इह अभेद।
गोकले दूत तब ही रिसाइ।
असमत्थ सेव किम भूमि खाइ।
बंधू समेत सामंत सत्थ।
उत्तरे आनि दरबार तत्थ।
बोलउ न बयण प्रथिराज ताहि।
संकरिउ सिंघ गुरजनन चाहि।
उच्चरउ गुरुअ गोयंद राज।
कलि मज्झि जग्गु को करइ आज।...
कलि मज्झि जग्गु को करण जोग।
बिग्गरइ तु बहु बिधि हसइ लोग।
दल दुब्ब अब्ब तुम अप्रमान।

[1] 'आईन-ए-अकबरी' (एच० एस० जैरेट द्वारा अनूदित) संशोधित संस्करण, द्वितीय भाग, पृ० २०५-३०७ का यह हिन्दी रूपान्तर है।

[2] दे० प्रस्तुत लेखक का 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह, चन्द बरदाई और जयचन्द का समय', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २०१२ अंक ३-४, पृ० २३४।

[3] छन्दों का यह 'पृथ्वीराज रासो' के प्रस्तुत संस्करण का है, स्थल-निर्देश की प्रथम संख्या उसके सर्ग की तथा दूसरी संख्या उसके छन्द की है।

बोलहु त बोल देवन समान ।
तुम जानउ बिन्नी हइ न कोइ ।
निव्वीर पुहवि कबहूं न होइ ॥...
सइंभरि सकोप सोमेस पुत्त ।
दानव ति रूप अवतार धुत्त ।
तिहि कंधि सीस किम जग्य होइ ।
जु प्रिथिमी नहीं चहुआन कोइ ।...
बोल्यउ सु मंत परधान तब्ब ।
कनवज नाथ करि जग्गु अब्ब ।
जब लगि गहिहि चहुआन वाहि ।
तब लगि ताहि टलि काल जाहि ।
ये आसमुद्द नृप करहिं सेव ।
सधरहु कासु सो करहु देव ।
सोवन्न प्रतिमा प्रथीराज कीन ।
थापउ जु पोलि जिम दरबान ।
सइंवरह संग अरु जग्गु काज ।
विप्र जन बोलि दिन धरहु आज ।...

(प्रस्तुत संस्करण, सर्ग २. छन्द ३)

(२) संवादेव विनोदेव देव देवेन रक्ष्यते ।
अन्य प्राणेथवा प्राणे प्राणेश दिल्लीश्वरः ॥

(वही, २. २५)

(३) तब छुकित राइ गंगह तट त रचिपचि उच्च अवास ।
चाहि गहउं चहुआन तक्क जु मिट्टइ बाला आस ॥

(वही, २. २७)

(४) चलउं भट्ट सेवग होइ सत्थहं ।
जउ बोलउं त हत्थु तुह मत्थहं ।
जवइ राइ जानइ संमुह हुअ ।
तव अंगमउं समर तुह भुअ ॥

(वही, ३. ३९)

(५) कनवजिय जयचन्द चलउ ढिल्लियसुर पेषन ।
चन्द विरदिआ साथि बहुत सामंत सूर घन ।
चहुआन राठवर जांति पुंडीर गुहिल्ला ।
बडगूजर राठवर कुरंभ जांगरा रोहिल्ला ।
इत्ते सहित्त भुअपति चलउ उडी रेन किन्नउ सुभउ ।
एकु एकु लष्ष वर लष्षवइ चले सत्थ रजपुत्त सउ ॥

(वही, ४. १)

(६) उभय सहस हय गय परित निसि निग्रह गत भांन ।
सात सहस असि मीर हणि थक्क विटउ चहुआंन ॥

(वही, ७. १९)

(७) परउ गंजि गहिलुत्त नाम गोविंदराज वर ।
दाहिम्मउ नरसिंघ परउ नागवर जास घर ।
परउ चंद पुंडीर चंद पेषन्तो मारंतउ ।
सोलंकी सारंग परउ असिवर झारंतउ ।
कूरंभराय पाल्हनदेउ बंधव तीन निघट्टिया ।
कनवज्ज राडि पहिलइ दिवसि सउ सइ सत्त निवट्टिया ॥

(वही, ७. २०)

(८) मिले सव्व सामंत बोलु मग्गहि त नरेसर ।
अप्प मग्ग लग्गिअइ सग्ग रष्षिअइ ति इक्क भर ।
एक एक झूझंति दंति दंती ढंढोरइ ।
जिके पंग राय मिच्च मारि मरिक्कइ मोरइ ।
इम बोल रहइ कलि अंतरि देहि स्वामि पारथ्थिअइ ।
अरि असीइ लष्ष को अंगमइ परणि राय सारथ्थिअइ ॥

(वही, ८. १)

(९) इह विधि विलसि विलास असार सुसार किअ ।
दइ सुष जोगि संजोगि सोइ प्रथिराज जिय ।
अह निसि सुध्धि न जानहि माननि प्रौढ रति ।
गुरु बंधव भृत्त छोइ भई विपरीत गति ॥

(वही, ९. ८)

(१०) कग्गरु अप्पिअ राजकर सुष जंपइ आ वत्त ।
गोरी रत्तउ तुव धरा तुं गोरी अनुरत्त ॥

(वही, १०. २०)

(११) इह कहि दासी अप्पि कर लिपि जु दिअउ कवि चंदु ।
पहली आवलि वंचि करि हिरि घर जाय नरिंदु ॥

(वही, १०. २२)

(१२) भयउ एक फुरमान एक बानह गुन संधउ ।
सोइ सबद अरु बान अग्ग अग्गइ पल बंधउ ।
भयउ बीअ फुरमान पंचि रष्पिअउ श्रवन पर ।
तीअउ सबद सुनंत सुनउ सुरतान परउ धर ।
लगि दसन रसन दस रुंधिअउ बिहु कपाट बंधे सघन ।
धरि परउ साहि पा पुक्करउ भयउ चंद राजहि मरन ॥

(वही, १२. ४८)

यदि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरण और 'रासो' की उपर्युक्त पंक्तियों को मिलावें तो देखेंगे कि साम्य प्रायः छोटे-से-छोटे विस्तारों तक में है :—

(१) जयचन्द के राजसूय के साथ ही उसकी कन्या के स्वयंवर का आयोजन जिस प्रकार 'आईन-ए-अकबरी' में हुआ है उसी प्रकार वह 'रासो' में भी हुआ है ।

(२) 'आईन-ए-अकबरी' में कहा गया है कि एक सभ्य के आकस्मिक कथन के कारण पृथ्वीराज उस राजसूय में सहयोग देने से रुक जाता है । 'रासो' में इस सभ्य का नाम भी दिया हुआ है—गोविंदराज ।

(३) 'आईन-ए-अकबरी' में कहा गया है कि जयचन्द पृथ्वीराज के विरुद्ध सेना भेजने की बात सोच रहा था, किन्तु उसके मंत्रियों ने पृथ्वीराज के साथ युद्ध में समय अधिक लगने की संभावना तथा [राजसूय] सभा की तिथि की सन्निकटता के ध्यान के उसे इस विचार से विरत किया; ठीक यही बात 'रासो' में कही भी गई है।

(४) दरबान के रूप में पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा की स्थापना की बात दोनों में कही गई है।

(५) जयचन्द की कन्या ने पृथ्वीराज पर अनुरक्त होकर दोनों में किसी अन्य से विवाह करना अस्वीकार किया है और इसलिए दोनों में उसे राजभवन से निकाल कर एक अन्य भवन में रख दिया गया है।

(६) चन्द के साथ पृथ्वीराज के उसके अनुचर के वेष में कन्नौज जाने की योजना दोनों में हुई है।

(७) कन्नौज से पृथ्वीराज के प्रत्यावर्त्तन की योजना दोनों में एक ही है।

(८) प्रथम दिन के युद्ध में गिरे हुए सामंतों की सूची दोनों में सर्वथा एक है, और समस्त नाम एक ही क्रम से भी दोनों में आते हैं ['आईन अकबरी' के अनुवाद में 'चाँदा' और 'पुंडीर' दो नाम भ्रम से कर दिए गए हैं, वास्तव में दोनों मिला कर एक नाम है] 'सारंग' का 'सार्दुल' अरबी-फ़ारसी लिपि के 'गाफ़' और 'लाम' के साम्य के कारण हुआ प्रतीत होता है।

(९) पृथ्वीराज का जयचन्द-पुत्री (संयोगिता) के प्रेम में लिप्त होकर राजकीय कार्यों की उपेक्षा करना और चन्द का उसको उद्बुद्ध करना भी दोनों में लगभग समान हैं।

(१०) चन्द का गजनी जाना और युक्ति से पृथ्वीराज के द्वारा शहाबुद्दीन का वध कराना भी दोनों में एक ही सा है।

(११) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार शहाबुद्दीन के वध के अनंतर राजा तथा चन्द दोनों को मार डाला गया है; 'रासो' में शब्दावली है :—

भयउ चंद राजहि मरन।

जिसका अर्थ यह है कि 'चन्द कहता है कि राजा का मरण हुआ,' जो अधिक समीचीन है, किंतु कदाचित् दूसरा अर्थ यह भी लिया जा सकता है कि 'चन्द और राजा का मरण हुआ', जैसा कि 'आईन-ए-अकबरी' में लिया गया है।

अन्तर दोनों में बहुत साधारण है और मुख्यतः इतना ही है कि :—

(१) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार जयचन्द की कन्या पृथ्वीराज पर अनुरक्ता होने के पूर्व किसी अन्य को वाग्दत्ता होती है, जो 'रासो' में नहीं है।

(२) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार पृथ्वीराज कन्नौज दो बार जाता है : एक बार तो वह अपने ५०० चुने योद्धाओं के साथ जाकर अपनी स्वर्ण-प्रतिमा उठा लाता है, और दूसरी बार जाकर जयचन्द की कन्या का अपहरण करता है, 'रासो' में वह एक ही बार कन्नौज जाता है और केवल जयचन्द पुत्री का अपहरण करता है।

(३) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार शहाबुद्दीन पृथ्वीराज पर किए गए अन्तिम आक्रमण के पूर्व जयचन्द से मैत्री स्थापित करता है। 'रासो' में यह नहीं है।

उपर्युक्त सन्निकट साम्य की पृष्ठभूमि में जब इस अन्तर पर हम विचार करते हैं तो लगता है कि ये अतिरिक्त विस्तार या तो कल्पित हैं अथवा जनश्रुति के आधार पर 'आईन-ए-अकबरी' में रख लिए गए हैं। किसी प्राप्त प्राचीन रचना में इनमें से कोई भी नहीं मिलता है, यह भी इस अनुमान की पुष्टि करता है।

फलतः यह प्रकट है कि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरण का आधार 'पृथ्वीराज रासो' है।

अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि 'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरणों का आधार 'रासो' का कौन-सा पाठ है। 'रासो' के जो चार मुख्य पाठ प्राप्त हैं, उनमें से कौन-सा पाठ 'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरण का आधार हो सकता है?

इस प्रसंग में द्रष्टव्य यह है कि—

(१) ऊपर 'रासो' के जो छन्द उद्धृत किए गए हैं, वे 'रासो' के लघुतम से लेकर के बृहत् पाठ तक समस्त पाठों में समान रूप से पाए जाते हैं।

(२) 'आईन-ए-अकबरी' का एक भी विस्तार उपर्युक्त तीन को छोड़ कर ऐसा नहीं है जो 'रासो' के समस्त पाठों में न पाया जाता हो, और ये तीन विस्तार 'रासो' के किसी भी पाठ में नहीं मिलते हैं।

(३) ऐसे कोई भी प्रसंग या विस्तार जो लघुतम के अतिरिक्त रचना के शेष किसी भी पाठ में मिलते हैं 'आईन-ए-अकबरी' में नहीं हैं।

अन्तिम विशेषता के उदाहरण में निम्नलिखित प्रसंगों और विस्तारों को लिया जा सकता है जो कि लघुतम को छोड़ कर 'रासो' के शेष समस्त पाठों में पाए जाते हैं:—

(१) गुर्जराधिपति भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज का युद्ध;

(२) जयचन्द के युद्ध से पूर्व हुआ पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का एक युद्ध;

(३) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध के पूर्व पृथ्वीराज के एक सामन्त धीर पुंडीर और शहाबुद्दीन के बीच हुआ युद्ध;

(४) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से चित्तौड़ के रावल समरसी का भाग लेना;

(५) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज के एक सामन्त जम्बूपति हाहुलीराय हम्मीर का शहाबुद्दीन पक्ष में जा मिलना; और

(६) चंद का उस हाहुलीराय हम्मीर के पास जाकर उसे पृथ्वीराज के पक्ष में लाने का प्रयत्न करना।

ये प्रायः ऐसे प्रसंग या विस्तार हैं जो यदि 'आईन-ए-अकबरी' के लेखक के सामने होते तो उसके द्वारा कदाचित् छोड़े न गए होते। अतः यह स्पष्ट है कि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरणों का आधारभूत 'रासो' का पाठ उसका लघुतम या उससे मिलता-जुलता ही कोई पाठ था।

अब विचारणीय यह है कि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरण का आधारभूत यह पाठ 'रासो' के वर्त्तमान लघुतम पाठ से भी किन्हीं बातों में तो लघुतर नहीं था।

'आईन-ए-अकबरी' के विवरणों से 'रासो' के लघुतम पाठ की विवरणों की तुलना करने पर निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य ज्ञात होती हैं:—

(१) 'आईन-ए-अकबरी' में कथा जयचन्द के राजसूय से प्रारम्भ होती है, पृथ्वीराज का कोई वृत्त इसके पूर्व नहीं आता है। उसमें पृथ्वीराज के पूर्वपुरुषों के विषय में कोई उल्लेख तक नहीं होता है, और उसमें अन्यत्र चहुवान कुल के शासकों की जो नामावली आती है, वह उस नामावली से बहुत भिन्न है जो 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक में मिलती है।[१]

(२) अनंगपाल से पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की जो बात 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक में आती है, वह भी 'आईन-ए-अकबरी' में नहीं आती है।

[१] 'आईन-ए-अकबरी', उपर्युक्त, पृ० ३०२।

(३) पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य कैंवास अथवा उसके वध का कोई उल्लेख 'आईन-ए-अकबरी' में नहीं होता है, जो कि 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक में पाया जाता है।

(४) 'आईन-ए-अकबरी' में वे तिथियाँ भी नहीं आती हैं जो 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक में पाई जाती हैं।

असम्भव नहीं है कि इनमें से कुछ प्रसंग या विस्तार संक्षेप की दृष्टि से 'आईन-ए-अकबरी' में छोड़ दिए गए हों, किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि उसके विवरण के आधारभूत 'रासो' के पाठ में उपर्युक्त में से कुछ न भी रहे हों। इस लिए यह विषय गम्भीरता पूर्वक विचारणीय है। इस सम्बन्ध में यह जान लेना उपयोगी होगा कि 'आईन-ए-अकबरी' की रचना अकबर के राज्य के बयालीसवें वर्ष (सं० १६५४-५५) में समाप्त हुई थी और 'रासो' के विभिन्न पाठों की प्राप्त प्रतियाँ सभी उसके बाद की हैं: लघुतम की सबसे प्राचीन प्रति धारणोज (गुजरात) की है जो सं० १६६४ की है; लघु की सब से प्राचीन प्रति बीकानेर की है, जो जहाँगीर के समकालीन किन्हीं भागचन्द के लिए लिखी गई थी; मध्यम की सब से प्राचीन प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन की है, जो सं० १६९२ की है; और बृहत् की सब से प्राचीन प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की है जो सं० १७४७ की है।

प्रस्तुत संस्करण 'आईन-ए-अकबरी' के आधारभूत 'रासो' के पाठ के सर्वथा निकट पहुँचतता है, क्योंकि 'आईन' में 'रासो' के विशिष्ट प्रसंगों और विवरणों की जो स्थिति ऊपर बताई गई है उनकी लगभग वही स्थिति प्रस्तुत संस्करण में भी मिलती है:—

(१) प्रस्तुत संस्करण में भी कथा जयचन्द के राजसूय यज्ञ से प्रारम्भ होती है और इसके पूर्व पृथ्वीराज का कोई वृत्त नहीं आता है, इसके अतिरिक्त इसमें भी पृथ्वीराज के पूर्वपुरुषों के विषय में कोई उल्लेख नहीं होता है।

(२) प्रस्तुत संस्करण में भी अनंगपाल से पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की बात नहीं आती है।

(३) प्रस्तुत संस्करण में भी कोई तिथियाँ नहीं आती हैं।

कैंवास-वध की कथा अवश्य प्रस्तुत संस्करण में ऐसी है जो 'आईन-ए-अकबरी' में नहीं आती है, किन्तु इस कथा का मुख्य कथा से कोई अनिवार्य संबंध न होने के कारण ही यदि इसे 'आईन' में छोड़ दिया गया हो तो आश्चर्य न होगा।

—:*:—

[१] 'आईन-ए-अकबरी', उपर्युक्त, तृतीय भाग, पृ० ५१६।

१३. 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा

डॉ॰ नामवर सिंह ने 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' नामक अपने डॉक्टरेट के निबन्ध में धा॰ पाठ के कन्नौज प्रकरण—प्रस्तुत संस्करण के सर्ग ४-८ तथा ९ के पूर्वार्ध—के छन्दों को लेकर रचना की भाषा पर विस्तृत विचार किया है और उसकी भूमिका में तत्संबंधी परिणामों का सारांश दिया है।[1] भाषाशास्त्रीय विश्लेषण के अनंतर निकाले गए ये परिणाम महत्व के हैं, इसलिए नीचे इन्हें उन्हीं के शब्दों में दिया जा रहा है।

अ. ध्वनि-विचार

(१) छन्द के अनुरोध से प्रायः लघु अक्षर को गुरु और गुरु अक्षर को लघु बना दिया गया है। लघु को गुरु बनाने के लिए शब्दान्तर्गत (क) ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण, (ख) व्यंजन-द्वित्व, (ग) स्वर का अनुस्वार-रंजन, तथा (घ) समास में द्वितीय शब्द के प्रथम व्यंजन का द्वित्व करने की प्रवृत्ति है। इसके विपरीत गुरु को लघु बनाने के लिए (क) दीर्घ का ह्रस्वीकरण, (ख) व्यंजन-द्वित्व का क्षतिपूर्ति-रहित सरलीकरण, तथा (ग) अनुस्वार के अनुनासिकीकरण की विधि प्रयोग में लाई गई है।

(२) छन्दोनुरोध के अतिरिक्त भी स्वर-व्यंजन में परिवर्तन हुए हैं। उत्तराधिकार में प्राप्त प्राकृत के अर्ध-तत्सम शब्दों का प्रयोग करने के साथ ही आधुनिक आर्य भाषाओं की प्रवृत्ति के अनुसार नये तद्भव रूपों की ओर भी झुकाव लक्षित होता है। अन्य स्वर के ह्रस्वीकरण की जो प्रवृत्ति प्राकृत-अपभ्रंश काल से ही शुरू हो गई थी, वह 'रासो' में पर्याप्त प्रबल दिखाई पड़ती है; जैसे जोध (=योद्धा), सेन (=सेना) इत्यादि।

(३) शब्द के अन्तर्गत आद्य अक्षर में प्रायः स्वर की मात्रा में परिवर्तन हो गया है और मात्रा-संबंधी यह परिवर्तन प्रायः दीर्घ से ह्रस्व की ओर दिखाई पड़ता है; जैसे अनंद (=आनंद) अहार (=आहार), जियण (=जीवन) इत्यादि।

(४) शब्द के अन्तर्गत अनादि अक्षर में स्वर के गुण-संबंधी परिवर्तन की प्रवृत्ति है, जैसे—अ > इ : तुरङ्ग > तुरिय; अ > उ : अञ्जलि > अंजुलिय; ई > अ : निरीक्ष्य > निरख; उ > अ : मुकुट > मुकट; उ > इ : कौतुक > कोतिग; ऊ > ओ : ताम्बूल > तंबोल; ए > इ : नरेन्द्र > नरिन्द, इत्यादि।

[1] 'पृथ्वीराज रासो की भाषा', सरस्वती प्रेस, बनारस, पृ० ३३-४१।

(५) प्राकृत-अपभ्रंश में जहा स्वरान्तर्गत अथवा मध्यग क, ग, च, ज, त, द, प, य, व के लोप से उद्वृत्त स्वर अवशिष्ट रह जाता था, उसके स्थान पर धीरे-धीरे य, व श्रुति के आगम अथवा पूर्ववर्ती स्वर के साथ उन्हें संयुक्त करने की प्रवृत्ति अवहट्ट अवस्था मे प्रारम्भ हो गई थी, जिसकी प्रबलता 'रासो' में भी दिखाई पड़ती है। 'रासो' में उद्वृत्त स्वर की (क) स्वतन्त्र रूप से सुरक्षित, (ख) य, व श्रुति के रूप में उच्चरित और (ग) पूर्ववर्ती स्वरों के साथ संयुक्त, तीनों स्थितियाँ मिलती हैं, किन्तु प्रधानता द्वितीय स्थिति की है और तृतीय स्थिति विकास की अवस्था में दिखाई पड़ती है। तीनों स्थितियों के उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

(क) चउसट्ठि < चतुष्षष्ठि; (ख) नयर < नगर; (ग) रावत < राउत < रावउत < *राअउत < राजपुत < राजपुत्र।

(६) उद्वृत्त स्वर को पूर्ववर्ती स्वर के साथ संयुक्त करने की प्रवृत्ति पदान्त में विशेष दिखाई पड़ती है, जिसका व्याकरण की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है। इस प्रवृत्ति के कारण 'रासो' के क्रियापद अपभ्रंश से विशिष्ट हो गए हैं और संज्ञा तथा सर्वनाम पदों में विकारी रूपों के निर्माण की अवस्था दिखाई पड़ती है। है, कहै, जानिहै, आयो, सो आदि क्रियापद तथा हत्थैं, तैं आदि संज्ञा-सर्वनाम के विकारी रूप इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं।

(७) उद्वृत्त स्वर के अतिरिक्त मूल स्वरों में भी स्वर-संकोचन की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। मोर (=मयूर), समै (=समय), स्रोन (=श्रवण) इत्यादि शब्द इसी प्रकार के स्वर-संकोचन के परिणाम कहे जा सकते हैं।

(८) प्राचीन व्यंजन ध्वनियों में से य और व 'रासो' में अधिकांशतः केवल श्रुति के रूप में सुरक्षित प्रतीत होते हैं। इनके अतिरिक्त य ज में तथा व ब में परिवर्तित हो गया था। प्रतिलिपिकार ने यद्यपि ब के लिए भी व का ही प्रयोग किया है, तथापि उच्चारण में वह ब ही प्रतीत होता है।

(९) श, ष, स तीन ऊष्म ध्वनियों में से केवल स का अस्तित्व प्रमाणित होता है। श और ष भी प्रायः स में परिवर्तित हो गए थे। ष के अन्य परिवर्तित रूप ख और ह मिलते हैं। ख के लिए ष का प्रयोग मध्य युगीन नागरी लिपि शैली की सामान्य विशेषता है, जिससे सभी लोग परिचित हैं।

(१०) वर्गीय अनुनासिक व्यंजनों में से केवल न, म का अस्तित्व प्रमाणित होता है। क्वचित्-कदाचित् ण भी दिखाई पड़ जाता है किन्तु इसका प्रयोग या तो तत्सम शब्दों में परंपरा-निर्वाह के लिए दिखाई पड़ता है या राजस्थानी प्रभाव के अन्तर्गत हुआ है।

(११) लिपि-शैली से ड़, ढ़, न्ह, ल्ह, म्ह पाँच नवीन व्यंजन ध्वनियों के प्रचलन का प्रमाण मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन ड, ढ क्रमशः ड़, ढ़ में परिवर्तित हो गए थे।

(१२) असंयुक्त व्यंजनों में क > ह, ज > ग, ट > र, र > ल परिवर्तन महत्वपूर्ण हैं, जिनके उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

क > ह : चिकुर > चिहुर; ज > ग : कनवज > कनवग ; ट > र : भट > भर; र > ल : सरिता > सलिता।

(१३) असंयुक्त महाप्राण घोष और अघोष व्यंजनों का केवल महाप्राणत्व ही अवशिष्ट रह गया था। यह परिवर्तन प्रायः स्वरान्तर्गत अथवा मध्यग स्थिति में हुआ है। कुछ उदाहरण निम्न-लिखित हैं :—

ख : दुह, सुह; घ : सुहर; थ : पहिल, पुहली; ध : कोह, विहि; भ : लहै, हुअ।

(१४) असंयुक्त अल्पप्राण व्यंजनों को आदि और अनादि दोनों ही स्थितियों में कहीं-कहीं महाप्राण कर देने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है, जैसे : कंधार > खंधार; अंकुर > अंखुली।

(१५) अघोष व्यंजनों का घोषीकरण : जैसे अनेक>अनेग; कौतुक>कौतिग; चातक>चातग।

(१६) मूर्धन्यीकरण : जैसे ग्रन्थि>गंठि, गर्त>गड्ढा; दिल्ली>ढिल्ली।

(१७) संयुक्त व्यंजनों के परिवर्तन में सबसे महत्वपूर्ण अन्य व्यंजन+र तथा र+अन्य व्यंजन हैं। ऐसे स्थलों पर 'रासो' में या तो सम्प्रसारण अथवा स्वरभक्ति की प्रवृत्ति है या फिर परवर्ती-व्यंजन-द्वित्व की। कहीं-कहीं व्यंजन-द्वित्व के साथ ही रेफ-विपर्यय भी हो गया है। फलतः 'रासो' में धर्म के धरम, धरम्म, ध्रम्म तीन प्रकार के रूप मिलते हैं। इसी प्रकार गर्व>गरव, गव्व, ग्रव्व रूप भी।

(१८) अन्य संयुक्त व्यंजनों में प्राकृत-अपभ्रंश की भाँति यथास्थान पूर्वसावर्ण्य तथा पर-सावर्ण्य की प्रवृत्ति प्रचलित दिखाई पड़ती है। फलस्वरूप इस रचना में भी प्राकृत-अपभ्रंश की तरह व्यंजन-द्वित्व की बहुलता मिलती है। 'रासो' के मुक्क, अग्ग, बच्च, वज्ज, तुट्ट, निस्त, सद्द, अप्प, सब्ब, जम्म जैसे शब्द इसी प्रवृति के परिणाम हैं।

(१९) परन्तु आधुनिक भारतीय आर्यभाषा की व्यंजनद्वित्व को सरलीकृत करने की मुख्य प्रवृत्ति 'रासो' में भी मिलती है। व्यंजन-द्वित्व का सरलीकरण दो प्रकार से किया गया है—(क) क्षतिपूरक दीर्घीकरण-सहित और (ख) क्षतिपूरक दीर्घीकरण-रहित। दोनों के उदाहरण निम्न-लिखित हैं :—

(क) अट्ठ > आट; किज्जइ > कीजइ; लक्ख > लाख।

(ख) अलक्ख > अलख; उच्छंग > उछंग; चड्ढिउ > चढिउ।

दीर्घाक्षरिक शब्द में भी क्षतिपूरक दीर्घीकरण के बिना ही व्यंजन-द्वित्व का सरलीकरण हो जाता है; जैसे : चैत्र > चैत्त > चैत।

(२०) संयुक्त व्यंजन तथा व्यंजन-द्वित्व का सरलीकरण क्षतिपूरक अनुस्वार के साथ भी होता है; जैसे : दर्शन > दंशन; प्रजल्प्य > पयंपि; पक्षी > पंखी।

आ. रूप-विचार

(१) रूप-रचना की दृष्टि से 'रासो' की भाषा अपभ्रंशोत्तर और उदयकालीन नव्य भारतीय आर्य भाषा की विशेषताओं से युक्त दिखाई पड़ती है। इनमें से पहली विशेषता है निर्विभक्तिक संज्ञा शब्दों का सभी कारकों में प्रयोग। अपभ्रंश में इस प्रवृत्ति का प्रारम्भ ही हुआ था और नव्य भारतीय आर्यभाषा में प्रत्येक कारक के लिए परसर्ग का विकास होने से पूर्व बहुत दिनों तक ऐसे निर्विभक्तिक संज्ञा शब्दों के प्रयोग की बहुलता थी।

(२) उकार बहुला अपभ्रंश में कर्त्ता-कर्म एक वचन में जिस -उ विभक्ति का प्रचलन था, वह 'रासो' की प्राचीन प्रतियों में प्रचुर मात्रा में मिलती है। सभा के मुद्रित संस्करण में इसका अभाव दिखाई पड़ता है।

(३) अपभ्रंश की–ह परक विभक्तियों के अवशेष 'रासो' में काफी मिलते हैं। कनवज्जह, कनवजहे, कनवज्जहि जैसे रूप विरल नहीं हैं। परवर्ती हिंदी में धीरे-धीरे यह विभक्ति घिस कर विकारी रूप बन गई।

(४) करण-कारण एकवचन की–इ,–ए,–एं अपभ्रंश विभक्तियाँ भी 'रासो' में प्रचुर मात्रा में मिलती हैं; जैसे कारणइ, कवज्जइ, हत्थे, हत्थें इत्यादि।

(५) कर्त्ता-करण तथा कर्म-सम्प्रदान के बहुवचन में -न, -नि, –नु विभक्ति का प्रयोग 'रासो' की ऐसी विशेषता है जो अपभ्रंश में नहीं मिलती लेकिन 'वर्ण रत्नाकर', 'कीर्तिलता' इत्यादि अवहट्ट रचनाओं से –ह से युक्त अर्थात् –न्ह, –न्हि रूप मिलने लगते हैं। यही –न आगे चलकर विकारी रूप ओं तथा आँ में विकसित हुआ। रासो में-ओं, –आँ वाले विकारी रूप नहीं मिलते।

(६) परसर्गों की दृष्टि से 'रासो' अपभ्रंश तथा अवहट्ट दोनों की अपेक्षा समृद्ध है। कर्तृ-करण परसर्ग नैं अथवा ने को छोड़कर प्रायः शेष सभी परसर्ग किसी न किसी रूप में यहाँ मिलते हैं। कर्म-परसर्ग कहुँ, कहुँ, कूं रूप में; करण-अपादान-परसर्ग तैं, ते तथा सहुं, सों, सूँ; अपादान-परसर्ग हुंति, सम्बन्ध-परसर्ग को, का, की, के तथा कउ, कै; अधिकरण-परसर्ग मज्झहि, मज्झे, मज्झि, मंझ, मधि, महि, मह आदि विविध रूपों में प्राप्त होता है, किंतु लघुतम रूपान्तर के कनवज्ज समय में अधिकरण-परसर्ग मैं अथवा में कहीं नहीं मिलता।

(७) सर्वनामों के विषय में 'रासो' की भाषा अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक है। उत्तम पुरुष सर्वनाम के मैं, हूँ, हम तथा विकारी रूप मो, मोहि मिलते हैं। मध्यम पुरुष के तुम, तुम्ह, तुम्मइ, तथा तैं, तुज्झ, तोहि रूप; अन्य पुरुष के सो तथा तासु जैसे प्राचीन रूपों के अतिरिक्त वह, उह, तथा उस रूपों का भी प्रयोग मिलता है।

(८) प्रश्नवाचक सर्वनाम के को, कौन, तथा किस, किन रूप; निज वाचक अप्पु, अप्प, अपन, सर्वनाम-मूलक विशेषण अस, इसो, तस, तेसे आदि प्रकार-वाचक और इत्तनहि, इत्तनउ, इत्तने तथा कितकु आदि परिमाणवाचक रूप 'रासो' को अपभ्रंश अवस्था से बाद की रचना प्रमाणित करते हैं।

(९) संख्यावाचक विशेषण— १ से १० की संख्याएँ एक, दुइ, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस नाम से मिलती हैं। १०० के लिए सै, सौ दोनों रूप आते हैं। १००० के लिए सहस के अतिरिक्त हज्जार (फारसी) का भी प्रयोग है। क्रमवाचक पहिलइ, बीय, तिअ, अपूर्ण संख्यावाचक अड्ढ; आवृत्तिवाचक दुहु इत्यादि।

(१०) क्रियापदों में यदि √भू के सभी काल के रूपों पर दृष्टिपात किया जाय तो अपभ्रंश से विकसित अवस्था के स्पष्ट लक्षण मिलते हैं। वर्तमान काल में है, भविष्यत् में होइहै तथा भूतकाल में कृदन्त रूप भो, भयो, भयी, भये तथा हुअ, हुवो इत्यादि।

(११) कहीं-कहीं पूर्वी हिंदी का आहि वाला क्रिया रूप भी 'रासो' में मिलता है, परन्तु इसका प्रयोग अधिक नहीं है।

(१२) भविष्यत् काल में अपभ्रंश का-स्स मूलक रूप, जो पीछे राजस्थानी में विशेष प्रचलित हुआ तथा पश्चिमी और पूर्वी हिंदी में नहीं आया, 'रासो' में कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता है।

(१३) सामान्य वर्त्तमान काल के लिए 'रासो' में अपभ्रंश के तिङन्त-तद्भव—अइ वाले रूप के साथ ही स्वरसंकोच युक्त –ऐ वाले रूप भी मिलते हैं और गणना करने पर पता चलता है कि अनुपात की दृष्टि से दोनों का प्रयोग लगभग समान है।

(१४) -इग अन्तवाला भूतकालिक क्रियापद जैसे चलिग, कहिग, करिग इत्यादि 'रासो' की अपनी विशेषता है। इस प्रकार के क्रियापद अपभ्रंश में नहीं थे और पश्चिमी हिंदी में भी इस प्रकार के जो क्रियारूप मिलते हैं, उनका प्रयोग भूतकाल में न होकर केवल भविष्यत् काल तक ही सीमित है।

(१५) -अत कृदन्तयुक्त क्रियापदों से वर्तमान काल-रचना का सूत्रपात 'रासो' में हो चुका था किंतु इसके साथ अस्तिवाचक सहायक क्रिया के रूप जोड़कर आधुनिक हिन्दी की भाँति संयुक्त काल-रचना की प्रवृत्ति उसमें नहीं मिलती। यह अवस्था स्पष्टतः अपभ्रंश के पश्चात् और ब्रजभाषा के उदय के आस-पास की है।

(१६) संयुक्त क्रियाएँ 'रासो' में अपभ्रंश से अधिक किंतु ब्रजभाषा से बहुत कम मिलती हैं: साथ ही अर्थ की दृष्टि से भी वे काफी सरल हैं। धरि राखो, लेहि बइठो, उड़ चलहि, हुइ जाइ जैसी सरल संयुक्त क्रियाएँ ही 'रासो' में प्रयुक्त हुई हैं।

इ. शब्द-समूह

(१) कनवज्ज समय (लघुतम रूपान्तर) में कुल मिलाकर लगभग साढ़े तीन हजार शब्द हैं और यदि रूप-विविधता को ध्यान में रखते हुए किसी शब्द के विविध रूपों में से केवल एक रूप की गणना की जाय तो शब्द-संख्या लगभग ३००० होती है। इनमें से लगभग ५०० शब्द संस्कृत तत्सम हैं और २० शब्द फारसी के हैं, शेष शब्द मुख्यतः तद्भव हैं। केवल थोड़े से शब्द अर्धतत्सम अर्थात् प्राकृत अपभ्रंश के अवशेष हैं और उनसे भी कम देशी अथवा स्थानीय हैं। इस प्रकार 'रासो' में तत्सम शब्दों का अनुपात १६ प्रतिशत से अधिक नहीं है। अपभ्रंश को देखते हुए तत्सम शब्दों का यह अनुपात बहुत अधिक कहा जायगा, किन्तु नव्य आर्य भाषा की प्राचीन रचनाओं को देखते हुये 'रासो' में तत्सम शब्दों का यह अनुपात कम कहा जायगा। इससे साबित होता है कि भक्ति कालीन रचनाओं की अपेक्षा 'पृथ्वीराज रासो' कुछ प्राचीन रचना है और सोलहवीं शताब्दी के व्यापक सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रभाव उस पर कम पड़ा है। इसी तरह मुसलमान बादशाहों के प्रभाव से इस रचना में जिन फारसी शब्दों की बहुलता की बात कही जाती है, वह केवल बृहत् रूपान्तर के लिए सही हो सकती है। लघुतम रूपान्तर में फारसी शब्द बहुत कम हैं।

यह कहना अनावश्यक होगा कि धा० पाठ के आधार पर ऊपर 'रासो' की भाषा के सम्बन्ध में जो परिणाम डॉ० सिंह ने निकाले हैं वे सर्वथा तथ्यपूर्ण हैं। किन्तु प्रस्तुत संस्करण में निर्धारित पाठ अनेक विषयों में धा० पाठ की तुलना में प्राचीनतर—अर्थात् अपेक्षा कृत अपभ्रंश के निकटतर प्रमाणित होता है। नीचे इस विशेषता के कुछ प्रमाण दिए जा रहे हैं।

अ. ध्वनि-विचार

डॉ० सिंह ने ध्वनि-विचार की प्रथम प्रवृत्ति जो बताई है, उसका सम्बन्ध मूलतः रचना के कवि की शैली से है, उसकी भाषा से नहीं; छठीं प्रवृत्ति के रूप में उद्वृत्त स्वर को पूर्ववर्ती स्वर के साथ संयुक्त करने की जो प्रवृत्ति उन्होंने बताई है, वह प्रस्तुत संस्करण में अपवाद स्वरूप ही कहीं-कहीं मिलेगी, सामान्य प्रवृत्ति उद्वृत्त स्वरों को स्वतन्त्र रूप से सुरक्षित रखने की है, यथा धा० के 'है' 'कहै', 'जानिहै' के स्थान पर प्रस्तुत संस्करण में प्रायः 'हइ', 'कहइ', 'जानिहइ' रूप मिलेंगे और इसी प्रकार 'आयो' तथा 'भो' के स्थान पर प्रायः 'आयउ' तथा 'भउ' मिलेंगे।

ध्वनि-विचार की आठवीं प्रवृत्ति के रूप में 'य' के 'ज' तथा 'व' के 'ब' में परिवर्तित होने की जो बात उन्होंने कही है, वह भी अंशतः ही प्रस्तुत संस्करण में मिलेगी : 'य' अवश्य ही अधिकतर 'ज' हो गया है किन्तु वह अपने 'य' रूप में भी अनेक स्थलों पर सुरक्षित है, और सामान्य रूप से 'व' के 'ब' हुए होने के कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं; केवल 'व' और 'ब' के एक-से लिखे जाने के कारण यह अनुमान करना बहुत उचित न होगा; प्रस्तुत संस्करण में 'व' अधिकतर सुरक्षित मिलेगा, केवल कहीं-कहीं पर 'व' का 'ब' हुआ दिखाई पड़ेगा।

ध्वनि-विचार की ग्यारहवीं प्रवृत्ति के रूप में 'ड़', 'ढ़', 'न्ह', 'ल्ह', 'म्ह' की पाँच नवीन व्यंजन-ध्वनियों के प्रचलन की बात कही गई है। प्रस्तुत संस्करण में 'ड़' 'ढ़' एक स्थान पर भी नहीं आते हैं—वे धा० की मूल प्रति में भी होंगे इस विषय में मुझे पूरा संदेह है और असंभव नहीं कि वे उसमें आधुनिक प्रतिलिपि-क्रिया द्वारा आए हों; 'न्ह', 'ल्ह' और 'म्ह' भी प्रस्तुत संस्करण में नवीन व्यंजन-ध्वनियों के रूप में नहीं मिलते हैं, वे अपनी संयुक्त व्यंजन-ध्वनियों के रूप में ही इसमें मिलते हैं।

ध्वनि-विचार की चौदहवीं प्रवृत्ति के रूप में अल्पप्राण व्यंजनों को महाप्राण करने की जो बात कही गई है, वह भी प्रस्तुत संस्करण में प्रायः नहीं मिलती है : दिए हुए उदाहरणों में से 'खंधार' 'कंधार' से कदाचित् नहीं व्युत्पन्न होता है, वह 'स्कंधार' से व्युत्पन्न है और इसलिए 'खंधार' के 'ख'

का महाप्राणत्व 'स्कंधार' के स् > ह् के क के साथ मिल जाने के कारण हुआ लगता है : 'अंखुली' भी 'अंकुर' से व्युत्पन्न नहीं है, वह कदाचित् 'उक्खलिय' है जो 'उत्खण्डित' से व्युत्पन्न है।

ध्वनि-विचार की सत्रहवीं प्रवृत्ति के अन्तर्गत व्यंजन-द्वित्व के साथ रेफ-विपर्यय की जो बात कही गई है, वह भी प्रस्तुत संस्करण में न मिलेगी : 'ध्रम्म' और 'ग्रव्व' के स्थान पर 'धर्म' और 'गर्व' के दिए हुए अन्य रूप तथा 'धम्म', 'गव्व' ही मिलेंगे।

आ. रूप-विचार

रूप-विचार के अन्तर्गत सातवीं प्रवृत्ति के रूप में सर्वनामों के जिन रूपों का उल्लेख किया गया है, उनमें से अनेक नहीं हैं; 'उस' के प्रयोग की जो बात कही गई है, वह तो धा० पाठ के संबंध में भी ठीक नहीं है। डॉ० सिंह द्वारा दी हुई शब्दानुक्रमणिका में—जो उनके ग्रन्थ के अन्त में दी हुई है—'उस' उनके संस्करण के छन्द ५४ मात्र में आया हुआ बताया गया है, किन्तु यह 'उस' नहीं है 'उसनेह' का एक खंड मात्र है, पूरी पंक्ति है :—

सीत उसनेह रितु दोख रंभं।

'उसनेह' < 'उष्ण' से व्युत्पन्न है, अर्थ से यह भली भाँति प्रमाणित है।

रूप-विचार के अन्तर्गत नवीं प्रवृत्ति के रूप में चार, पाँच, छह, सात तथा आठ के मिलने का जो उल्लेख किया गया है, वह भी अंशतः ही ठीक है : चार, पाँच, छः, सात, तथा आठ प्रस्तुत संस्करण में 'च्यारि', 'पंच', 'सत्त' तथा 'अठ' के रूप में ही सामान्यतः मिलते हैं, अन्य रूपों में अपवाद स्वरूप ही में मिलेंगे।

रूप-विचार के अन्तर्गत तेरहवीं प्रवृत्ति के रूप में '—अइ' के साथ '-ए' वाले रूपों का लगभग बराबर-बराबर पाया जाना बताया गया है। प्रस्तुत संस्करण में '-ए' वाले रूप बहुत ही कम हैं, अधिकता '-अइ' वाले रूपों की ही मिलेगी।

इ. शब्द-समूह

तत्सम और अर्धतत्सम शब्दों की जो संख्या डॉ० सिंह द्वारा ऊपर शब्द-समूह के अन्तर्गत बताई गई है, प्रस्तुत संस्करण में उसमें कदाचित् कमी दिखाई पड़ेगी, और तद्भव शब्दों की संख्या में कदाचित् कुछ आधिक्य दिखाई पड़ेगा। फ़ारसी शब्दों का अनुपात लगभग वही होगा जो डॉ० सिंह के परिणामों में दिया हुआ है।

डॉ० सिंह ने कहा है कि 'रासो' की भाषा पर सोलहवीं शताब्दी के व्यापक पुनर्जागरण का प्रभाव कम पड़ा है, किंतु प्रस्तुत संस्करण के पाठ में वह कदाचित् बिलकुल नहीं पड़ा दिखाई देगा। फारसी शब्दों की बहुत-कुछ बहुलता मुसलमानी शासन के प्रभाव के कारण अवश्य है, किन्तु कुछ न कुछ शहाबुद्दीन के प्रसंगों के वर्णन की अनिवार्य आवश्यकता के कारण भी है, जैसा हम अन्यत्र[1] देखेंगे। इस प्रकार प्रस्तुत संस्करण में रचना की भाषा का स्वरूप धा० पाठ के भाषा-रूप की तुलना में प्राचीनतर प्रमाणित होगा।

दोनों में कितना और किस प्रकार का अंतर है, यह स्पष्ट करने के लिए एक छोटे प्रसंग की पंक्तियाँ नीचे पहले धा० तथा फिर संपादित पाठ से दी जा रही हैं।[2]

धा० पाठः दूहा—उदय अगस्त ... उज्जल जल ससि कास।
मोहि चंद इह विजय मनु कहहु कहाँ कइमास॥
नागपुर नरपुर सयल कथिसु देवपुर साज।
दाहिमो तुलइ भयो कहि न जाय प्रिथिराज॥

[1] दे० इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त विदेशी शब्द' शीर्षक।
[2] धा० छंद ८४-९०; संपादित पाठ ३.२१—२७।

का भुजंग का देवनर निकमु कव्व कवि खंडि।
कै वलाउ कैवास मोहि हर लिद्धि वर छंडि॥
जो छंडइ … … … …।
…… तप ताप करि घस छंडै कवि चन्द॥
हठ लग्गयो चहुवान नृप अंगुली मुखहि फनिंद।
जिह पुरि तुअ मति संचरइ सु कहि विनइ कवि चन्द॥
सेस सिरप्परि सूरतर जइ पुच्छइ नृप ऐसु।
दहुं बोलां संडन मरणु कहहु त कव्व कहेसु॥

कवितु—इक्कु बान पुहमी नरेस कैवासह मुक्क्यो।
उर उप्परि खरहरयउ वीर कक्खंतरु चुक्क्यो।
बीअ बान संधानि हन्यो सोमेसुर नंदन।
गाढ़ो कै निग्गहयौ खन्यौ गड्ढौ संभरि धन।
थर छंडि न जाइ न भग्गलो गारै गड्यो गुन खले।
इम जंपइ चन्द वरद्दिया तह न घटे इह प्रज्जले॥

संपादित पाठ : दोहरा—उदय अगस्त नयंन दिठि उज्जल जल ससि कास।
मोहि चंद इह विजय मन कहहुं कहां कयमास॥ (३.२१)
नागप्पुर सुरपुर सयल कथित कहउं सब साज।
दाहिम्मउ दुल्लह भयउ कहउ न जाइ प्रथीराज॥ (३.२२)
कहा भुजंग कहा उदे सुर निकसु कव्व कवि पंडि।
कइ कयमास घलाहि मो कइ हर लिद्धी वर छंडि॥ (३.२३)
जउ छंडइ सेसह धरणि हर छंडइ विष कंदु।
रवि छंडइ तप ताप कर तउ वर छंडइ कवि चंदु॥ (३.२४)
हठि लग्गउ चहुआन नृप अंगुलि मुणह फणिंदु।
तिहु पुरि तुव मति संचरइ सु कहे बगइ कवि चंदु। (३.२५)
सेस सिरप्परि सूरतर जइ पुच्छइ नृप एस।
दोहुं बोलि संडन मरणु कहइ तउ कव्वु कहेस॥ (३.२६)

कवित—एकु बान पुहवी नरेस कयमासह मुक्कउ।
उर उप्परि खरहरिउ वीर कष्षह तर चुक्कउ।
बीउ बान संधानि हनउ सोमेसुर नंदन।
गाडउ करि निग्गहउ षनिव षोदउ संभरिधनि।
थर छंडि न जाइ अभागरउ गारइ गहउ जु गुन परउ।
इम जंपइ चंद विरद्दिया सु कहा निमिद्धिहि इह प्रलउ॥ (३.२७)

इसी प्रसंग में 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में आए हुए 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में उद्धृत निम्नलिखित छंद[1] को भी लिया जा सकता है, जो कि ऊपर धा० तथा संपादित पाठों का उद्धृत अंतिम छंद है :—

इक्कु बाणु पहुवीसु जु पइं कइंबासह मुक्कओ।
उर भिंतरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ।

[1] 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह', संपा० मुनि जिन विजय, पृ० ८६।

वीअं करि संधीउं भमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुदइ सइंभरिवणु।
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खलगुलह।
नं जाणउं चंद बलद्दिउ किं न वि छुट्टइ इह फलह॥

'पृथ्वीराज-प्रबंध' का यह पाठ जिन दो प्रतियों पर आधारित है, उनमें से एक सं० १५२८ की है;[1] और संग्रह के योग्य संपादक ने कोई पाठभेद इस छंद के नहीं दिए है, इसलिए समझना चाहिए कि दोनों प्रतियों में छंद का पाठ एक ही या प्रायः एक ही है। 'रासो' की भाषा के प्राचीन रूप के परिज्ञान के लिए सं० १५२८ के इस पाठ का महत्व प्रकट है, और यह दिखाने की आवश्यकता नहीं है कि पाठ-विषयक अन्य प्रकार का अंतर होते हुए भी प्रस्तुत संस्करण के संपादित पाठ और सं० १५२८ के 'पृथ्वीराज-प्रबंध' के उपर्युक्त पाठ में भाषा-विषयक कोई अंतर नहीं है, जब कि धा० के पाठ तथा पृथ्वीराज-प्रबंध के इस पाठ में भाषा-विषयक अन्तर है। यह अंतर किस प्रकार का है, यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है: धा० का पाठ सं० १५२८ के उपर्युक्त पाठ तथा प्रस्तुत संस्करण के संपादित पाठ के कुछ बाद की भाषा-स्थिति को हमारे सामने रखता है। फलतः डॉ० नामवर सिंह ने रचना की भाषा के विषय में जो परिणाम निकाले हैं, वे अधिकांश में ग्राह्य होते हुए भी प्रायः उपर्युक्त प्रकार से संशोधन की अपेक्षा रखते हैं।

अब रही रचना की भाषा के देश-काल की बात। डॉ० नामवरसिंह ने अपने उपर्युक्त शोध-निबन्ध में 'रासो' की भाषा के इस पहलू पर भी विस्तार से विचार किया है, और युक्तिपूर्वक यह दिखाया है कि न वह अपभ्रंश है, न डिंगल या पुरानी पश्चिमी राजस्थानी, और वह पुरानी ब्रज-भाषा भी नहीं है, वह पुरानी पूर्वीय राजस्थानी है जिसे पिंगल कहा जाता रहा है, और इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि ग्रन्थ की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति पर 'तारीख़ प्रिथूराज बज़बान पिंगल तसनीफ़ कर्दा कवि चन्द बरद्दाई' लेख मिलता है।[2] इसके अनन्तर उन्होंने दिखाया है कि 'रासो' की यह भाषा परम्परा के अनुसार पिंगल होते हुए भी 'प्राकृत पैंगल' (रचना १४वीं शती ईस्वी) से अधिक विकसित है; इसमें प्राकृत-अपभ्रंश के रूढ़ रूपों के अवशेष अपेक्षाकृत कम हैं और नव्य भारतीय आर्यभाषा के रूप अधिक हैं।[3]

जहाँ तक रचना की भाषा के देश-पक्ष की बात है, मैं डॉ० सिंह से प्रायः सहमत हूँ, यद्यपि हो सकता है कि पिंगल किसी क्षेत्र-विशेष की बोल-चाल की भाषा के सामान्य रूप का नहीं वरन् उसके साहित्यिक रूप का नाम रहा हो और वहाँ की बोल-चाल की सामान्य भाषा और पिंगल में लगभग उतना ही अन्तर रहा हो जितना आज की मेरठ की खड़ी बोली और साहित्यिक हिन्दी में है। वह शौरसेनी अपभ्रंश से निकली हुई उस युग की काव्य-भाषा थी जिस युग में 'रासो' की रचना हुई।[4] किन्तु जहाँ तक रचना की भाषा के काल-पक्ष की बात है, मैं डॉ० सिंह से आंशिक रूप में ही सहमत हूँ। उसमें प्राकृत-अपभ्रंश के रूढ़ रूपों के अवशेष अधिक हैं और नव्य भारतीय आर्य-भाषा के रूप कम हैं, और यह बात ऊपर दी हुई मेरी युक्तियों तथा रचना के उदाहरणों से भली भाँति देखी जा सकती है। प्रस्तुत लेखक का अपना विचार है कि 'रासो' में पिंगल भाषा का वह

[1] 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह', उपर्युक्त, प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ३।

[2] 'पृथ्वीराजरासो की भाषा', सरस्वती प्रेस, बनारस, पृ० ४१—४६।

[3] वही, पृ० ४३—५३।

[4] पिंगल भाषा के सम्बन्ध में प्रस्तुत लेखक के विचारों के लिए दे० 'हिंदी साहित्य कोश' (ज्ञान मंडल, वाराणसी) में 'पिंगल काव्य' शीर्षक।

रूप हमें मिलता है जो 'प्राकृत पैंगल' के कुछ ही पीछे विकसित हुआ था, और उसकी भाषा और 'प्राकृत पैंगल' के सबसे पीछे रचे हुए छंदों की भाषा में अन्तर बहुत कम है। नीचे इस बात को दिखलाने के लिए 'प्राकृत पैंगल' से वे छन्द दिए जा रहे हैं जो हम्मीर (सं० १२९५–१३५८) के विषय के हैं[१] :—

गाहिणी—मुंचहि सुन्दरि पाअं अप्पहि हसिऊण सुमुहि खग्गं मे।
कप्पिअ मेच्छ सरीरं पेच्छइ बअणाइ तुमह धुअ हम्मीरो॥ (पृ० १२७)

रोला— पअभरु दरमरु धरणि तरणि रह धुल्लिअ झंपिअ।
कमठ पिट्ठ टरपरिअ मेरु मंदर सिर कंपिअ।
कोह चलिअ हमीर बीर गअजूह संजुत्ते।
किअउ कट्ठ हाकंद मुच्छि मेच्छह के पुत्ते॥ (पृ० १५७)

छप्पअ— पिंधउ दिढ सण्णाह बाह उप्पर पक्खर दइ।
बन्धु समदि रण धसउ समि हम्मीर बअण लइ।
उड्डुल णहपह भमउ खग्ग रिउ सीसह डारउ।
पक्खर पक्खर ठेल्लि पेल्लि पव्वअ अप्फालउ।
हम्मीर कज्जु जज्जल भणइ कोहाणल मुहमह जलउ।
सुलताण सीस करवाल दइ तेज्जि कलेवर दिअ चलउ॥ (पृ० १८०)

कुंडलिआ— ढोल्ला मारिअ ढिल्लि मह मुच्छिअ मेच्छ सरीर।
पुर जज्जल्ला मंतिवर चलिअ बीर हम्मीर।
चलिअ बीर हम्मीर पाअ भर मेइणि कंपइ।
दिगमग णह अंधार धूलि सूरह रह झंपइ।
दिगमग णह अंधार आणु खुरसाणक ओल्ला।
दरमरि दमसि विपक्ख मारु ढिल्लि मह ढोल्ला॥ (पृ० २४९)

गगणांग— भंजिअ मलअ चोलवइ णिवलिअ गंजिअ गुज्जरा।
मालव राअ मलअगिरि लुक्किअ परिहरि कुंजरा।
खुरासाण खुहिअ रण मह मुहिअ लंघिअ साअरा।
हम्मीर चलिअ हा रव पलिअ रिउ गणह काअरा॥ (पृ० २५५)

लीलावती— घर लगाइ अग्गि जलइ धह धह
कइ दिग मग णह पह अणल भरे।
सब दीस पसरि पाइक्क लुलइ
धणि थण हर जहण दिआव करे।
भअ लुक्किअ थक्किअ बइरि तरुणि जण
भइरव भेरिअ सद्द पले।
महि लोट्टइ पिट्टइ रिउ सिर तुट्टइ
जक्खण बीर हमीर चले॥ (पृ० ३०४)

जलहरण— खुरि खुरि खुदि खुदि महि घघर रव कलइ
णणणण गिदि करि तुरअ चले।
टटट गिदि पलइ टपु धसइ धरणि धर

१ 'प्राकृत पैंगलम्', संपा० चन्द्रमोहन घोष, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, १९०२।

चकमक करि बहु दिसि चमले ।
चलु दमकि दमकि बलु चलइ पइक बलु
घुलकि घुलकि करि करि चलिआ।
बर मणु सअल कमल विपल हिअअ सल
हमिर बीर जब रण चलिआ ॥ (पृ० ३२७)

क्रीडाचक्र—जहा भूत बेताल णच्चंत गावंत खाए कबंधा।
सिआ फार फेक्कार हक्का रबंता फुले कण्ण रंधा।
कआ टुट्ट फुट्टेइ मंथा कबंधा णचंता हसंता।
तहा बीर हम्मीर संगाम मज्झे तुलंता जुअंता ॥ (पृ० ५२०)

इन छन्दों को भाषा पर विचार करते समय गाहिणी के—जो कि गाथा का एक प्रकार है—उदाहरण को छोड़ देना चाहिए, क्योंकि गाथाओं को प्राकृत या प्राकृताभास में ही लिखने की उस युग में परम्परा रही है, और 'पृथ्वीराज रासो' में भी इस परम्परा का सम्यक् निर्वाह हुआ है। शेष छन्दों की भाषा और 'पृथ्वीराज रासो' के छन्दों की भाषा में अन्तर साधारण है।

उल्लेखनीय अन्तर एक तो यह है कि हम्मीर-विषयक इन छन्दों में ड तथा र के स्थान पर कहीं-कहीं ल का प्रयोग हुआ है :—

ड > ल : पडिअ > पलिअ (पृ० २५५), पडे > पले (पृ० ३०४), पडइ > पलइ (पृ० ३२७), फुडे ? > फुले (पृ० ५२०)।

र > ल : छुरइ > छुलइ (पृ० ३०४), करइ > कलइ (पृ० ३२७), चमरे > चमले (पृ० ३२७), तुरंता > तुलंता (पृ० ५२०)।

'पृथ्वीराजरासो' में भी इस वृत्ति के उदाहरण मिलते हैं, यथा : सरिता > सलिता (७.४.१) (९.११.३); आरुद्ध > आलुद्दस (४.२०.२२), (१२.३६.२), (८.१४.५); प्रसरण > प्रसलन्न (७.१२.२०); रट > रल (८.२२.२); रुरिग > रुलिग (८.३२.३); मुकुर > मुकल (९.४.२); आर्द्र > आल (९.११.१); दर्दुर > दादुल्ल (९.११.२); सारिका > सालि (१०.११.२६); मुहडा > मुहुल्ल (१२.१३.११)। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि 'रासो' में यह प्रवृत्ति कम है।

उल्लेखनीय दूसरा अन्तर यह है कि हम्मीर-विषयक छन्दों में सर्वत्र 'व' के स्थान पर 'ब' मिलता है। डॉ० सिंह ने 'रासो' के ध्वनि-विचार के सम्बन्ध की आठवीं प्रवृत्ति में, जो ऊपर दी जा चुकी है, लिखा है कि श्रुति रूप में प्रयोग के अतिरिक्त 'व' 'रासो' 'ब' में परिवर्तित हो गया था। किंतु हम्मीर-विषयक इन छन्दों में तो 'व' रह ही नहीं गया है; जिन शब्दों में हिन्दी में 'ब' कभी सुना भी न गया होगा, उनमें भी 'व' के स्थान पर 'ब' कर दिया गया है, यथा : करबाल (पृ० १८०), कलेबर (पृ० १८०), चोलबइ (पृ० २५५), मालब (पृ० २५५), रब (पृ० २५५), भइरब (पृ० ३०४), रब (पृ० ३२७), गावंत (पृ० ५२०), रबंता (पृ० ५२०)। हिन्दी की किसी बोली में इन शब्दों में 'ब' नहीं आता है, 'व' ही आता है, ऐसी दशा में इस 'ब' का क्या कारण है ? स्पष्ट ही कारण यह है कि 'प्राकृत पैंगल' के सम्पादक को जहाँ भी 'व' मिला, उसने कदाचित् अपनी भाषा की प्रवृत्ति से प्रभावित होकर सर्वत्र उसे 'ब' कर दिया, यहाँ तक कि 'व' इन छन्दों में देखने को भी नहीं रह गया ! असम्भव नहीं कि इसी प्रकार के प्रयासों के फलस्वरूप यह धारणा बन गई हो कि हमारी बोलियों में श्रुति के रूप में प्रयोग के अतिरिक्त 'व' का अस्तित्व ही किसी समय समाप्त हो गया था, और 'रासो' में भाषा की यह बाद में आई हुई स्थिति व्यापक रूप से पाई जाती है। 'व' और 'ब' अधिकतर एक प्रकार से लिखे जाने लगे थे, यह अवश्य हुआ था।

किंतु समस्त 'व' 'ब' में बदल गए, अथवा यह भी कि श्रुति के रूप में उसके प्रयोग के अतिरिक्त 'व' रह ही नहीं गया था, मेरी समझ में ठीक मत नहीं है। उदाहरण के लिए 'रासो' के लघुतम पाठ की शेष अन्य प्रति मो० (सं० १६९७) में ही अनेक स्थलों पर 'ब' स्पष्ट बना हुआ है और 'व' भी।

इन दोनों के बाद हम्मीर-सम्बन्धी छन्दावली तथा 'पृथ्वीराज रासो' के छन्दों में भाषा-विषयक उल्लेखनीय अन्तर उद्वृत्त स्वर तथा श्रुति-प्रयोग मात्र का रह जाता है। यद्यपि उद्वृत्त स्वर का सर्वथा अभाव 'रासो' में नहीं है, यह सुगमता से देखा जा सकता है, शेष प्रवृत्तियाँ दोनों में लगभग समान हैं। इसलिए मेरी राय में 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा हम्मीर विषयक ऊपर उद्धृत छन्दों की भाषा से थोड़े ही बाद की है, यही मानना अधिक युक्ति-संगत होगा।

इस प्रसंग में जिस प्रकार हमने ऊपर हम्मीर-विषयक छन्दों को देखा है, जिनकी रचना संभवतः हम्मीर के जीवन-काल में सं० १२९५ तथा १३५८ के बीच हुई होगी, उसी प्रकार श्रीधर कृत 'रण मल्ल छन्द'[1] के छन्दों को भी देख सकते हैं, जिनकी रचना सं० १४५४ में मानी गई है[2] :—

चुप्पई—'हल ऐयार हकारवि झुल्लइ।
भुजबलि सबल मुट्ठि दल घल्लइ।
गयु खान खुद नगतलि चल्लिअ।
काकदल दहु दिसि दिक्ख डहल्लिअ॥ २६॥
मलिक मंत्र मज्झिम निशि किद्धउ।
तब हेजब फुरमाण स दिद्धउ।
ईडर गढि अस्सइय जडि चल्लिउ।
जइ रणमल्ल पासि इम बुल्लिउ॥ २७॥
सिरि फुरमाण धरवि सुरताणी।
धर द्रय हाल माल दीवाणी।
अगर गरास दास सवि छोडिअ।
करि चाकरी खान कर जोडिअ॥ २८॥
रा असि सरिसु बाहु उठभारिअ।
झुल्लइ हठि हेजब हक्कारिअ।
मुझ सिर कमल मेच्छ पय लग्गइ।
तु गयणङ्गणि भाण न उग्गइ॥ २९॥
सिंह विलोकित—जां अम्बर पुडतलि तरणि रमइ।
तां कमधज कंध न धगड नमइ।
वरि वडवानल तण झाळ शमइ।
पुण मेच्छ न आपूं चाच किमइ॥ ३०॥
पुण रण रस जाण जरद्द जडी।
गुण सींगणि खञ्ची खग्गि चडी।
छत्तीस कुलह बल करिसु घणूं।
पय मग्गिसु रा हम्मीर तणूं॥ ३१॥

[1] 'प्राचीन गुर्जर काव्य', संपा० केशवलाल हर्षद राय ध्रुव, गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी, अहमदाबाद, सं० १९८३, पृ० ५-७।

[2] वही, प्रस्तावना, पृ० ११

दल दारुण दप्फरखान जयी।
भिड़ भग्गउ अगाह खग्गरयि।
हिव पट्टण पक्खरि धरिसु पयं।
नइ थिनडिसु सत्तिरि सहस सयं॥ ३२ ॥
भिड़ं पक्खरि समसुद्दीन नदी।
पडि भग्गउ अग्गो अग्गि भिडी।
जव भण्डिसि सुभ रणमल्ल समं।
तव देखिसि कलकरि सरिसु जमं॥ ३३ ॥
मग मोडि म खण्ड मलिक्क चणूं।
हूं समरि विडारण मेच्छ तणु।
जव कठिसि हठि हंक्कन्त रणि।
तव न गणूं ब्रण सुरताण तणि॥ ३४ ॥
वल खुल्लि म वल्लि मलिक्क कहि।
म म थरणि सिमुणसिम वूत सुहि।
जव चम्पिसि ईडर सिहर तलं।
तव पेक्खिसि सुह रणमल्ल बलं॥ ३५ ॥

इन पंक्तियों में यह सुगमता से देखा जा सकता है कि:—

(१) उद्वृत्त स्वर के स्थान पर सर्वत्र य, व, श्रुति आ गई है।

(२) व्यंजन-द्वित्वों की बहुलता है, जिनमें से कुछ तो प्राकृत-अपभ्रंश की परंपरा में हैं, और कुछ छंदोनुरोध-अथवा ओजपूर्ण शैली की आवश्यकताओं के कारण आए हुए हैं। किंतु कहीं-कहीं पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ करके व्यंजन द्वित्व को सरलीकृत करने की भी प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।

(३) प्रायः सभी कारकों में निर्विभक्तक संज्ञा शब्द प्रयुक्त हुए हैं, और परसर्गों का विकास पूर्ण रूप से नहीं हुआ है।

(४) शब्द-समूह की दृष्टि से यह रचना काफी विकसित है; फारसी के शब्द बहुतायत से आ गए हैं।

फलतः 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा 'प्राकृत पैंगल' के हम्मीर-संबन्धी छंदों तथा 'रणमल्ल छंद' की भाषाओं के बीच की लगती है।

—:*:—

१४. 'पृथ्वीराज रासो' में प्रयुक्त विदेशी शब्द

नीचे 'रासो' के प्रस्तुत पाठ में व्यवहृत विदेशी शब्दों की सूची दी जा रही है। इस सूची में व्यक्तिगत नाम नहीं रक्खे गए हैं, फिर भी देखा जा सकता है कि विदेशी शब्दों की यह सूची छोटी नहीं है। पुनः ये विदेशी शब्द शहाबुद्दीन के प्रसंगों में ही नहीं, प्रायः सभी प्रसंगों में आते है, यद्यपि शहाबुद्दीन के प्रसंगों में इनका व्यवहार अन्यत्र हुए इनके व्यवहार की तुलना में लगभग ६-७ गुना अधिक हुआ है, जो कि कदाचित् स्वाभाविक भी है। एक बात और इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य है : शहाबुद्दीन के प्रसंगों के बाहर प्रयुक्त विदेशी शब्द अधिकतर ऐसे हैं जिनके भारतीय पर्याय प्रचलित रहे हैं और इस ग्रथ में भी प्रयुक्त हैं। अतः ऐसा लगता है कि जिस समय इस ग्रन्थ की रचना हुई, शहाबुद्दीन के प्रसंगों के बाहर प्रयुक्त विदेशी शब्द उत्तर भारत की बोलचाल की भाषा में आ चुके थे, और वे उसके अंग बन गए थे।

शहाबुद्दीन के प्रसंगों के बाहर प्रयुक्त शब्द इस प्रकार हैं:—

रिंद (१.३.२०), दरब्बान (२. ३.५२), बग्ग (< बाग २. ५.२५), दरबार(४.२५.३६), दरबार (.५.१.१), दरबार (५.३.७), सुरतान (५.१३.८), दरिआइ (५.१३.२२), बंदा (५.१३.२३), मीर (५.१३.२३), दरबार (५.४२.२), जोर (५.४८.२), तेग (६.२३.१०), तष्त (६.२३,१२), रुष (७.१.१), निसान (७.३.१), दरिआइ (७.४.८), सहनाइ (७.४.९), नफेरिय (७.४.९), समसेर (७.४.१५), फव्ज (७.४.२३), फौज (७.६.१६), फौज (७.६.१७), जिरह (७.६.३१), जंगी (७.६.३१), तबल (७.६.४१), तंदूर (७.६.४१), जंगी (७.६.४१), सहनाइ (७.६.४७), नफेरी (७.६.४९), नवरंग (७.६.४९), मंगूल (= मंगोल ७.१०.९), बाजू (७.१०.१०), सोर (७.१०.१७), निसान (७.१२.३), दुम्मी (= दुमवाले ७.१४.२), फौज (७.१४.४), हजार (७.१५.१७), हजार (७.१६.३), मनार (< मीनार ७.१६.४), जंग (७.१७.१२), मीर (७.१७.२१), कम्मान (७.१७.२३), मीर (७.१९.२), गाजी (७.३१.११), हींदू (८.२.५), तुरक (८.२.५), कमान (८.९.२१), कसीस (< कशिश ८.९.२२), मीर (८.१०.१), महिल (९.२.२), महिल (९.३.१), हरम्म (९.४.१), सोर (९.६.१), सोर (९.११.२), दर (१०.१५.१), गूदरना (= गुजारना १०.१६.२), कग्गर (< कागज १०.२०.१), महिल (१०.२१.१), रुष (१०.२१.२), कग्गर (<कागज १०.२४.१)।

शहाबुद्दीन के प्रसंगों में प्रयुक्त शब्द इस प्रकार हैं:—

हजार (११.१.२), हजार (११.२.२), हजार (११.३.१), देवान (<दीवान ११.५.२), दीन (११.६.१), सुलतान (११.७.६), आलम आलम (११.७.३), मरदान (११.८.२),

हमीर (< अमीर ११.८.३), हिन्दू (११.८.३), दीन (११.८.३), रमजान (११.८.३), निवाज (< नमाज ११.८.४), बिकाज (< बेकाज ११.८.४), गुम्मान (११.८.४), दुरोग (११.८.६), दोजक (११.८.६), मसूरति (<मशवरत ११.९.१), कुरान (११.९.१), साहि आलम (११ १०.१), तेग (११.१०.६), कमांन (११.१०.६), पातिसाह (११.११.२), निसान (११.११.१), सुरताण (११.१२.१), जंग (११.१२.७), तेग (११.१२.७), बाज (११.१२.१०), हमीर (< अमीर ११.१२.१७), कुफार (< कुफ्फार ११.१४.१), फरजंद (११.१४.१), साहि (१२.१.१) रह (<राह १२.१.६), रह (राह १२.२.१), पीर (१२.४.२), दरबार (१२.६.२), दरबान (१२.७.१), परदार (पहरादार १२.८.१), दर (१२.९.२), दर (१२.१०.२), लगभग ढाई दर्जन विदेशी मुसलमान जातियों के नाम (१२ : ११.१-८), सेषजादा (१२.११.९), पठाण (१२.११.९), साहि (१२.११.१०), हदफ (१२.१२.२), खलाम (१२.१३.१), मीर (१२.१३.१), फोज (१२.१३.८), मसंद (१२.१३.३), नजरिबंद (नजरमंदी ? १२.१३.४), जीन (१२.१३.१०) ,अदब्ब (१२.१३.११), ताज (१२.१३.१३), साहि (१२.१३.१३), फरमान (१२.१४.१), सुरतान (१२.१४.२), बे (१२.१४.२), साहि (१२.१५.५), सूरतान (१२.१५.८), अदब्ब (१२.१५.११), हदप्प (१२.१५.१३), फुरमान (१२.१५.१५), महिमान (१२.१५.१६), महिमान (१२.१६.१), हदफ (१२.१७.१), सुरतांन (१२.१७.१), सुरतांन (१२.१८.१), दर (१२.१८.१), निसांन (१२.१८.१), दुनिआं (१२.१९.४), अरदास (< अर्जदाश्त १२.२०.१), आदमी (१२.२०.१), सुरतांन (१२.२०.२), फकीर (१२.२१.१), करामाति (१२.२१.१), मियाँ (१२.२२.१) मलिक्क (१२.२२.१), षांन (१२.२२.१), हज्जूर (१२.२३.१), पातसाहि (१२.२३.२), दुरोग (१२.२८.२), पतिसाहि (१२.२९.१), सुरतान (१२.२९.४), मुहाल (१२.३४.२), बकस (< बख्श १२.३९.४), साहि (१२.४०.२), फुरमान (१२.४०.६), पातसाहि (१२.४१.२), मरद (१२.४१.४), फुरमान (१२.४१.५), पातिसाहि (१२.४२.२), फुरमांन (१२.४२.६), फुरमान (१२.४३.२), साहि (१२.४४.२), कमान (१२.४६.१), फुरमान (१२.४८.१), फुरमान (१२.४८.१), फुरमान (१२.४८.३), साहि (१२.४८.६), षां (१२.४८.६), साह (१२.४९.१), असमान (<आसमान १२.४९.२) ।

यहाँ पर यह जान लेना उपयोगी होगा मुसलमान शासकों से हुए युद्ध-विषयक प्राचीन हिंदी ग्रंथों में विदेशी शब्दों के प्रयोग की स्थिति पूर्ण रूप से वही है जो 'रासो' के उन अंशों में है जो शहाबुद्दीन से संबंधित हैं। श्रीधर रचित 'रणमल्ल छन्द', जिसकी रचना सं० १४५४ में मानी गई है[1], तथा पद्मनाभ रचित 'कान्हड दे प्रबन्ध' में, जिसकी रचना सं० १५१२ में हुई थी[2], 'रासो' के प्रायः उपर्युक्त सभी शब्द और लगभग इसी अनुपात में आते हैं।

—:*:—

[1] दे० 'प्राचीन गुर्जर काव्य,' संपा० केशवलाल हर्षदराय ध्रुव, गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी, अहमदाबाद, प्रस्तावना, पृ० ११। रचना का पाठ भी इस काव्य संग्रह में पृ० १ से १४ तक दिया हुआ है।

[2] 'कान्हड दे प्रबन्ध', संपा० कान्तिलाल बलदेवराम व्यास, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर, खंड ४, छन्द ३४३।

१५. 'पृथ्वीराज रासो' का रचना-काल

मुनि जिनविजय द्वारा संपादित 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में दो प्रबन्ध ऐसे हैं जो पृथ्वीराज तथा जयचन्द से सम्बन्धित हैं। इन दो प्रबन्धों में चार ऐसे छन्द उद्धृत हुए हैं जिनमें से तीन नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में भी पाए जाते हैं। इसलिए इन प्रबन्धों से चन्द तथा 'पृथ्वीराज रासो' के समय पर एक नया और महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ा है।

मुनि जी ने 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के प्रास्ताविक वक्तव्य में 'संग्रह के कुछ महत्व के प्रबन्ध' शीर्षक देते हुए इन दो प्रबन्धों के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से विचार भी किया है। उनका कथन है कि "इस संग्रह के उक्त प्रकरणों में जो ३-४ प्राकृतभाषा-पद्य उद्धृत किए हुए मिलते हैं, उनका पता हमने उक्त 'रासो' में लगाया है, और इन चार पद्यों में तीन पद्य, यद्यपि विकृत रूप में लेकिन शब्दशः, उसमें हमें मिल गए हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि चन्द कवि निश्चिततया एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था। उसीने पृथ्वीराज के कीर्तिकलाप का वर्णन करने के लिये देश्य प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी जो 'पृथ्वीराज रासो' के नाम से प्रसिद्ध हुई।"[1] मुनि जी के इस निष्कर्ष के आधार क्या हैं, यह उन्होंने स्पष्ट रूप से नहीं कहा है, किंतु इतना कहने के बाद ही उन्होंने उक्त तीन छन्दों के पाठ प्राप्त संग्रहों तथा नागरीप्रचारिणी सभा के 'पृथ्वीराज रासो' के संस्करण से तुलना के लिए देते हुए प्रबन्धों के पाठ की भाषा-विषयक प्राचीनता पर जो बल दिया है[2], उससे अनुमान यही होता है कि उनके कथन का मुख्य आधार कदाचित् वही है।

यहाँ पर प्रश्न यह हो सकता है कि भाषा के स्वरूप का साक्ष्य क्या इतना निश्चयात्मक है? भाषा का जो स्वरूप प्रबन्धों के इस पाठ में मिलता है, वह विद्यापति की 'कीर्तिलता' तक अनेकानेक अन्य रचनाओं में भी मिलता है, इसलिए यदि उसी के आधार पर निष्कर्ष निकालना हो तो कदाचित् हम इतना ही कह सकते हैं कि भाषा की दृष्टि से इन छन्दों की रचना १४०० ई० के पूर्व की होनी चाहिए। केवल इतने साक्ष्य के आधार पर यह परिणाम निकालना कि चन्द "दिल्लीश्वर हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था" तर्क-सम्मत नहीं लगता है। इन प्रबन्धों में यदि रचना का कम से कम इतना अंश उद्धरण के रूप में उपलब्ध होता कि हम ऐतिहासिक दृष्टि से भी उसकी परीक्षा कर सकते, तो हम भाषा की सहायता लेते हुए

[1] पुरातन प्रबंध- इ सिंघी जैन ग्रंथमाला, भारतीय विद्याभवन, बंबई, प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ८, ९।

[2] वही।

इस सम्बन्ध में किसी अंश तक निश्चयात्मक रूप से कुछ कह सकते थे। केवल उद्धृत तीन-चार छन्दों के बल पर इस प्रकार का परिणाम हम नहीं निकाल सकते।

यदि ध्यान से देखा जावे तो ज्ञात होगा कि जो चार छन्द उक्त प्रबन्धों में चन्द के कहकर उद्धृत किए गए हैं, उनमें से दो, जो जयचन्द प्रबन्ध में आते हैं, चन्द के नहीं जल्ह के हैं। ये दो छन्द निम्नांकित हैं:—

(१) त्रिण्हि लक्ख तुषार सबउ पाखरीअइँ जसुहय।
चऊदसइँ मयमत दंति गज्जंति महामय॥
वीस लक्ख पायक्क सफर फारक्क धणुद्धर।
ल्हूसडु अरु बलुयान संख कु जाणइ तांहं पर॥
छत्तीस लक्ष नराहिवइ विहि विनडिओ हो किम भयउ।
जइचंद न जाणउ जल्हु कह गयउ कि मुउ कि घरि गयउ॥

(२) जइतचंदु चक्कवइ देव तुह दुसह पयाणउ।
धरणि धसवि उद्धसइ पडइ रायह भंगाणओ॥
सेसु मणिहिं संकियउ मुक्कु हयखरि सिरि खंडियो ँ।
तुट्टओ सो हरधवलु धूलि जसु चिय तणि मंडिओं॥
उच्छलीउ रेणु जसगिग गय सुकवि ब (ज) ल्ह सच्चउं चवइ।
वग्ग इंदु बिंदु भुय जुअलि सहस नयण किण परि मिलइ॥

इनमें से ऊपर उद्धृत प्रथम छन्द नागरीप्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में अवश्य मिलता है,[1] किंतु यह दर्शनीय है कि इस छन्द को 'रासो' में स्थान देने के लिए प्रक्षेपकर्ता को छन्द की अन्तिम पंक्ति से 'जल्हु' का नाम निकाल कर उसमें 'चन्द' का नाम रखना पड़ा और तभी यह सम्भव हो सका। वहाँ 'रासो' में उसका पाठ है:—

जैचंद राइ कवि चंद कहि उदधि बुडि कै घर लियौ।

इस प्रसंग में इतना और जान लेने योग्य है कि सभाद्वारा प्रकाशित रचना के वृहत् पाठ के अतिरिक्त उसके अन्य किसी पाठ की प्रतियों में ऊपर उद्धृत प्रथम छन्द नहीं मिलता है, और ऊपर उद्धृत द्वितीय छन्द तो उसके किसी भी पाठ की प्रतियों में नहीं मिलता है। फलतः ये दो छन्द निश्चित रूप से जल्ह के हैं, चन्द के नहीं हैं, और चन्द की रचना का स्वरूप अथवा उसका समय निर्धारित करते समय इनका आधार नहीं ग्रहण करना चाहिए।

किंतु प्रबन्ध-लेखक इन दो छन्दों को 'जयचन्द प्रबन्ध' में उद्धृत करके ही संतोष नहीं करता है। वह ऊपर उद्धृत प्रथम छन्द के पूर्व कहता है, 'तदनु चन्द बलिद्द भट्टेन श्री जैत्रचन्द्र प्रत्युक्तम्'; और इसी प्रकार वह ऊपर उद्धृत द्वितीय छन्द के पूर्व करता है, 'पतनागतं वर्षद्वयेनोक्तम्। तेनैव पूर्वमुक्तम्।' इससे यह ज्ञात होगा कि प्रबन्ध-लेखक विश्वसनीय नहीं है, और ऐसे प्रबन्धों के अंतर्साक्ष्य के आधार पर पृथ्वीराज और चन्द के सम्बन्ध में उपर्युक्त प्रकार के परिणाम निकालना किसी प्रकार भी युक्ति-संगत न होगा।

फिर भी इन प्रबन्धों का बहिर्साक्ष्य महत्वपूर्ण है, और उसके आधार पर चन्द तथा जल्ह के समय पर कुछ विचार किया जा सकता है। नीचे हम उसी के आधार पर चन्द तथा जल्ह के समय के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'जयचन्द प्रबन्ध' नाम के ऐसे दो प्रबन्ध हैं जिनमें उल्लिखित छन्द मिलते हैं। इनमें से 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तो दो प्रबन्ध-संग्रहों में

[1] 'पृथ्वी राज रासो', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० २५०२।

मिलता है, जिन्हें मुनि जी ने 'पी' तथा 'बी' कहा है, और 'जयचन्द प्रबन्ध' केवल 'पी' में मिलता है। और इन दोनों प्रबन्ध-संग्रहों की एक-एक प्रतियाँ ही मिली हैं, अतः उन्हीं को लेकर हमें आगे बढ़ना होगा। नीचे दी हुई सूचनाएँ 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के प्रास्ताविक वक्तव्य से हैं।

'पी' संग्रह में ४० प्रबंध हैं और 'बी' संग्रह में ७१। किंतु 'बी' प्रारम्भ में तथा बीच-बीच में भी खण्डित है, इसलिए उसके १७ प्रबन्ध अनुपलब्ध हैं, केवल ५४ प्रबन्ध प्राप्त हैं। 'पी' इस प्रकार खण्डित नहीं है, इसलिए उसके समस्त प्रबन्ध प्राप्त हैं। 'पी' के उपर्युक्त ४० तथा 'बी' के उपर्युक्त ५४ प्राप्त प्रबन्धों में से, जिनकी सूची विद्वान् संपादक ने ग्रंथ के प्रास्ताविक वक्तव्य में दी है, अनेक प्रबन्धों के शीर्षक ऐसे हैं जो समान हैं। उन समस्त प्रबन्धों का पाठ भी दोनों में समान है, यह कहना उपर्युक्त प्रतियों को देखे बिना सम्भव नहीं है। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में केवल निम्न-लिखित आठ प्रबन्ध ऐसे हैं जो दोनों से समान रूप से संकलित किए गए हैं, कारण यह है कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में केवल वे ही प्रबन्ध संकलित हुए हैं जिनका सम्बन्ध मेरुतुङ्ग के 'प्रबन्ध चिंतामणि' के प्रबन्धों से है:—

१. विक्रम सम्बन्धे रामराज्य कथा प्रबन्ध
२. वसाह आभड प्रबन्ध
३. कुमारपाल कारिताभारि प्रबन्ध
४. वस्तुपाल तेजःपाल प्रबन्ध
५. पृथ्वीराज प्रबन्ध
६. लाखण राउल प्रबन्ध
७. न्याये यशोवर्म्म प्रबन्ध
८. अम्बुचीच नृप प्रबन्ध

और यह संख्या 'पी' और 'बी' के पाठों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए पर्याप्त है।

इन आठ प्रबन्धों का जो पाठ 'पी' तथा 'बी' में मिलता है, उससे निम्नलिखित बातें नितांत स्पष्ट रूप से ज्ञात होती हैं:—

१. दोनों संग्रहों में इन आठ प्रबन्धों का जो पाठ मिलता है, उसका पूर्वज एक ही है, कारण यह है कि दोनों संग्रहों में इनका पाठ समान है।

२. दोनों संग्रहों में इन आठ प्रबन्धों के पाठ उस सामान्य पूर्वज की दो स्वतन्त्र शाखाओं की प्रतियों से लिए गए हैं, अर्थात् दोनों संग्रहों के आदर्श भिन्न-भिन्न और स्वतन्त्र शाखाओं के हैं; क्योंकि दोनों में समान पाठ-प्रमाद, समान-पाठभ्रंश अथवा समान-प्रतिलिपि-प्रमाद एक भी स्थल पर नहीं पाए जाते हैं।

३. 'बी' में पाठ-वृद्धि के रूप में प्रक्षेप-क्रिया दर्शित होती है। कुछ स्थानों पर उसमें अतिरिक्त छन्द और अतिरिक्त वाक्य मिलते हैं (यथा: वसाह आभड प्रबन्ध, कुमारपाल कारिताभारि प्रबन्ध, वस्तुपाल तेजःपाल प्रबंध, तथा न्याये यशोवर्म्म नृप प्रबंध में); कहीं-कहीं पर पूरा अनुच्छेद या प्रसंग ही बढ़ा हुआ है (यथा: वस्तुपाल तेजःपाल प्रबंध में); और कहीं-कहीं पर जो बात 'पी' में संक्षेप में कही गई है, 'बी' में कुछ बढ़ाकर कही गई है (यथा: वसाह आभड प्रबंध तथा वस्तुपाल तेजःपाल प्रबंध में)। 'पी' में भी उपर्युक्त तीनों प्रकार की प्रक्षेप-क्रिया दिखाई पड़ती है, यद्यपि मात्रा में 'बी' से कुछ कम (यथा: वस्तुपाल तेजःपाल प्रबंध में)। हो सकता है कि इनमें से दो-एक उदाहरण प्रक्षेप के न हों, सामान्य लेखन-प्रमाद के कारण उत्पन्न हों, किंतु इससे निष्कर्ष में कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

४. यह पाठ वृद्धि वर्त्तमान 'पी' तथा 'बी' की किसी पूर्ववर्ती पीढ़ी में हुई, क्योंकि वर्तमान 'पी' तथा 'बी' की प्रतियों में पाठ-वृद्धि के रूप में लिखे हुए कोई वाक्य या छन्द नहीं मिलते हैं।

इन तथ्यों को हम निम्नलिखित रूप में व्यक्त कर सकते हैं—

आधार कृति
(यथा चंद की कृति)
जिस रूप में वह प्रबंध-लेखक को मिली
|
'पी' तथा 'बी' का सामान्य पूर्वज
प्रबंध-संग्रह
|

'पी' संकलन	'बी' संकलन
वर्त्तमान 'पी' प्रति (सं० १५२८)	वर्त्तमान 'बी' प्रति (तिथि अज्ञात)

यहाँ हम देखते हैं कि आधार कृति (यथा चंद की कृति) और 'पी' अथवा 'बी' के बीच चार पीढ़ियों का अन्तर है।

यहाँ तक तो आधार कृति के उस रूप की बात रही जो प्रबंध-लेखक को प्राप्त था। किंतु अन्यत्र हम देखते हैं कि वह रूप प्रक्षिप्त था और हमें ऐसे रूप प्राप्त हैं जिनमें वह प्रक्षेप नहीं आता है: 'रासो' के लघुतम पाठ की दो प्रतियाँ, जैसा हम देख चुके हैं, प्राप्त हैं किंतु दोनों में से किसी में भी 'पृथ्वीराज प्रबंध' का 'अगह मगह दाहिमउ' वाला छन्द नहीं मिलता है; 'रासो' लघुपाठ की भी किसी प्रति में वह छन्द नहीं मिलता है; केवल उसके मध्यम तथा वृहत् पाठों की प्रतियों में वह छन्द मिलता है और वह भी एक-दूसरे से बहुत भिन्न-भिन्न स्थानों पर।[1] और प्रस्तुत संस्करण 'रासो' के लघुतम पाठ से भी लघुतर है—जिसमें लघुतम पाठ के भी कुछ अंश प्रक्षिप्त प्रमाणित होने के कारण नहीं रक्खे गए हैं।[2] इसलिए अप्रक्षिप्त 'रासो' का पाठ प्रबंध-लेखक की उपर्युक्त आधार-कृति के पाठ से कम से कम एक पीढ़ी ऊपर अवश्य पड़ता है और इस प्रकार मूल 'रासो' के पाठ और वर्त्तमान 'पी' प्रति में कम से कम चार पीढ़ियों का अन्तर होता है। यदि 'रासो' के मूल पाठ और प्रबन्ध-लेखक के आधारभूत पाठ के बीच ५० वर्षों का समय तथा शेष प्रत्येक पीढ़ी के लिए पच्चीस वर्षों का[3] समय रक्खें तो प्रस्तुत संस्करण का पाठ सं० १४०० के लगभग जा पहुँचता है।

रचना कथा-नायक की समकालीन नहीं हो सकती है, क्योंकि जैसा हमने अन्यत्र देखा है उसके प्रस्तुत संस्करण के पाठ में भी कुछ न कुछ इतिहास-असम्मत विवरण है,[4] उस में भी अनेक ऐसे शब्द

[1] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पुरातन प्रबंध संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

[2] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'रचना का मूल रूप' शीर्षक।

[3] पहले (नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६०, अंक ३-४, पृष्ठ २३९) मैंने प्रत्येक पीढ़ी के लिए पचास वर्षों का समय मानकर रचना-काल का अनुमान किया था, किन्तु जैन महात्माओं में ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ करना एक पवित्र कार्य माना जाता रहा है, इसलिए प्रति पीढ़ी के लिए पचीस वर्षों का समय पर्याप्त होना चाहिए।

[4] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पृथ्वीराजरासो की ऐतिहासिकता' शीर्षक।

आते हैं जो लगता है कि उत्तरी भारत की बोलचाल की भाषा में सम्मिलित हो गए थे[१] और उसकी भाषा भी 'प्राकृत पगल' में संकलित हम्मीर के सम्बन्ध के छन्दों (रचना-काल सं० १३५८—अर्थात् हम्मीर की देहांततिथि) और 'रणमल्ल छन्द' (रचना-काल सं० १४५४) के बीच की प्रतीत होती है।[२] इसलिए सभी दृष्टियों से 'पृथ्वीराज रासो' की रचना सं० १४०० के लगभग हुई ही मानी जा सकती है, इससे पूर्व नहीं।

—।*।—

[१] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पृथ्वीराजरासो में प्रयुक्त विदेशी शब्द' शीर्षक।

[२] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पृथ्वीराजरासो की भाषा' शीर्षक।

१६. 'पृथ्वीराज रासो' का रचयिता

कवि चंद रचना में दो रूपों में आता है, एक तो कथा-नायक के कवि-मित्र के रूप में और दूसरे रचना के कवि रूप में। केवल रचना के कवि के रूप में वह प्रस्तुत संस्करण में इने-गिने स्थलों पर ही दिखाई पड़ता है, और इन स्थलों पर 'चंद' या 'चंद विरद्दिआ' नाम से वह आता है :—

चंद या कवि चंद : १.४.१६, ७.५.५, ८.३४.५, ९.१.४, १२.४८.१ तथा १२.४९.६।

चंद विरद्दिया : ८.११.६ तथा ८.१४.६।

कथा-नायक के कवि-मित्र के रूप में ही वह रचना में प्रायः दिखाई पड़ता है, और इन स्थलों पर वह प्रस्तुत संस्करण में निम्नलिखित भिन्न भिन्न नामों से आता है :—

चंद या कविचंद : २.१३.२, २.१४.२, २.१६.४, २.२१.१, २.२४.२, २.२५.२, २.३५.२, २.४२.१, ४.४.१, ४.१४.१२, ४.१६.१, ४.२५.३३, ५.१.१, ५.२.१, ५.३.७, ५.१५.१, ५.१६.२, ५.३१.१, ५.४८.१, ६.५.२७, ७.१.२, ७.५.५, ७.२०.३, ७.३१.२१, ८.७.१, १०.१.४, १०.२.१, १०.४.१, १०.५.१, १०.१४.१, १०.१५.१, १०.१९.२, १०.२२.१, ११.१३.२२, १२.१.६, १२.२.१, १२.६.१, १२.११.९, १२.१५.१३, १२.१५.१६, १२.१६.१, १२.१७.२, १२.११.३, १२.२२.२, १२.२३.१, १२.२३.३, १२.२४.१, १२.२५.१, १२.३२.३, १२.३३.१, १२.३३.१९, १२.३४.२, १२.४२.१, १२.४४.१, १२.४७.२।

केवल 'कवि' या 'राजकवि' शब्द का भी प्रयोग स्थान-स्थान पर हुआ है, जिसका स्थल-निर्देश करना अनावश्यक होगा।

चंद विरद्दिआ : ३.२७.६, ३.२९.३, ४.१.२, ५.१९.६, ५.४५.१, १२.४०.१, १२.४९.१।

चंद वरदाइ या वरदाइ : ३.३०.४, ५.९.१, १०.३.२, १२.४२.३।

भट्ट चंद या भट्ट : २.२८.१, २.३९, ४.८.२, ५.२१.२, १०.२४.१, १२.७.७, १२.१४.२, १२.१५.२, १२.१९.२, १२.३०.१, १२.४१.१।

चंडिय : २.१९.४।

चंड चंद : ५.१३.१९।

कवियन : ४.१३.१, १२.१०.१।

उपर्युक्त प्रयोगों से निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं :—

(१) 'रासो' का कवि तथा कथा-नायक का कवि-मित्र रचना में एक ही व्यक्ति के रूप में आते हैं।

(२) 'रासो' के कवि के लिए 'चंद', 'कवि चंद' या 'चंद विरद्दिया' नाम आते हैं और कथा-नायक के कवि-मित्र के लिए भी उसी प्रकार 'चंद', 'कवि चंद' या 'चंद विरद्दिआ' नाम आते हैं।

(३) कथा-नायक के कवि-मित्र के कुछ और नाम भी आते हैं जो 'रासो' के कवि के नामों में नहीं मिलते हैं; ये हैं 'चंद वरदाइ' या 'वरदाइ' मात्र, 'भट्ट चंद' या 'भट्ट' मात्र, 'चंडिय', 'चंड चंद' और 'कवियन'।

अतः 'विरद्दिआ', 'वरदाइ', 'भट्ट', 'चंडिय', 'चंड', तथा 'कवियन' उपाधियाँ विचारणीय हो जाती हैं।

'विरदिआ', या 'विरुदिया', जैसा वह प्रायः ना० प्रति में पाया जाता है, विरुद (प्रशस्ति) गान करने वाले के अर्थ में आता है।

'वरदाइ' या 'वरदाई' शब्द का अर्थ भाषा के सामान्य नियमों के अनुसार 'वर देने वाला' होना चाहिए किन्तु चंद के सम्बन्ध में इस उपाधि का प्रयोग 'वर प्राप्त' के अर्थ में हुआ लगता है। एक स्थान पर कथा-नायक और उसके कवि-मित्र की कहा-सुनी में कवि का 'हर' से 'सिद्धि' का 'वर' प्राप्त हुए होने का उल्लेख भी आता है :—

कहा भुजंग कहा उदे सुर निकमु कव्व कवि पंडि।
कइ कपमास बलाहि मो कइ हर सिद्धीवर छंडि॥ (३.२३)
जउ छंडइ सेसह धरणि हर छंडइ विप कंदु।
रवि छंडइ तप ताप कर तउ वर छंडइ कवि चंदु॥ (३.२४)

किन्तु निम्नलिखित कथन से ध्वनित होता है उसे सरस्वती का वर प्राप्त था :—

अहो चंद वरदाइ कहावहु।
कनवज्जह दिष्षन नृप आवहु।
जउ सरसइ वरु जानहु रंचउ।
तउ अदिट्ठ वरनउ नृप संचउ॥ (५.९.१)

यह असम्भव नहीं है कि अन्तिम उद्धरण के तृतीय चरण का 'वरु' 'बल' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो, इसलिए उपर्युक्त अन्तर अथवा वैषम्य निश्चित अन्तर या वैषम्य नहीं कहा जा सकता है।

'भट्ट' शब्द का प्रयोग प्रसिद्ध स्तुति-पाठक जाति 'भाट' के अर्थ में हुआ है।

'चंडिअ' नाम का प्रयोग केवल एक स्थल पर निम्नलिखित प्रकार से हुआ है :—

सकल सूर बोलिय सभ मंडिय।
आसिष जाइ दीध कवि चंडिय। (३.१९.३-४)

'चंडिअ' का अर्थ 'कृत्त', 'छिन्न' अथवा 'काटा हुआ' होता है, जो यहाँ असंगत लगता है। प्रसंग के अनुसार यहाँ पर 'चंडिय' से आशय 'चंद' का होना चाहिए क्योंकि आगे ही चंद से पृथ्वीराज ने प्रश्न किया है (३.२१) और 'चंड' 'चन्द्र' से भी व्युत्पन्न माना गया है[1], अतः असम्भव नहीं है कि इससे चंद्र<चंद का आशय सिद्ध होता हो।

इसी प्रकार 'चंड' उपाधि का प्रयोग भी केवल एक स्थल पर निम्नलिखित प्रकार से हुआ है :—

जंपिअं सच्च सो चंद चंडं।
थप्पियं जाइ तिरहुति पिंडं। (५.१३.८-९)

'चंड' का अर्थ 'उग्र' होता है, और वही कदाचित् यहाँ भी अभिप्रेत है। 'कवियन'=

[1] दे० 'पाइअ सद्द महण्णवो' पृ० ३९२।

'कविजन', सत्कवि के लिए प्रयुक्त होता रहा है—यथा नारायणदास रचित छिताई वार्ता[२] में—और उसी अर्थ में यहाँ भी प्रयुक्त लगता है :—

रतनरंग कवियन बुधिलई।
समौ विचारि कथा वर्नई ||५०४||
कवियन कहै नरायनदास ||१२८, १४३, ५४२, ६६०, ७४६||
कविअण तुच्छ कहइ समझाइ ||७३२||

फलतः कथा-नायक का कवि-मित्र चन्द 'विरुदिआ' या 'भाट' था, और उसे हर से सिद्धि का वर प्राप्त हुए होने के कारण 'वरदाई' भी कहा जाता था; स्वभाव से वह कदाचित् किंचित् उग्र था, इसी कारण 'चंड चंद' भी वह कहा गया है।

यह हम अन्यत्र देख चुके हैं कि 'रासो' पृथ्वीराज के समकालीन किसी कवि की रचना नहीं हो सकती है।[३] इसलिए यह प्रकट है कि यह रचना चन्द के नाम पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की हुई है। वह अन्य व्यक्ति कौन था, यह जानने के लिए हमारे पास कोई साधन इस समय नहीं है।

—:*:—

[२] 'छिताई वार्ता' संपादक प्रस्तुत लेखक, नागरीप्रचारिणी सभा, बनारस, सं० २०१५।
[३] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पृथ्वीराजरासो का रचना-काल' शीर्षक।

१७. रासो काव्य-परंपरा
और
'पृथ्वीराज रासो'

'रास' और 'रासो' नाम किस वस्तु के परिचायक हैं, ये एक ही काव्यरूप का निर्देश करते हैं अथवा दो काव्यरूपों का, इनके आकार विषय, रस, शैली छन्द आदि क्या होने चाहिए और इनका सूत्रपात किस प्रकार हुआ—आदि बातों के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियों का सर्व-प्रमुख कारण यह है कि प्रायः आलोचक-गण रास और रासो नामों से अभिहित काव्य-समूह पर बिना किसी पूर्वग्रह के दृष्टि नहीं डाल पाते हैं। प्रस्तुत लेखक के विचार से नाम-साम्य होते हुए भी दो भिन्न-भिन्न काव्यरूप इन नामों से अभिहित हुए हैं जिनमें से एक गीत-नृत्य-परक है और दूसरा छन्द-वैविध्य-परक।

ये दोनों काव्यरूप अपभ्रंश-काल से इसी प्रकार अलग-अलग मिलने लगते हैं। इन दोनों का साहित्य भी अलग-अलग अत्यन्त समृद्ध रहा है। सामान्यतः यह कहा जाता है कि गीत-नृत्य-परकरूप ही रास-रासो का प्रारम्भ में एक मात्र या कम से कम प्रमुख रूप रहा है, किन्तु यह एक भ्रामक कथन है। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि इसका सूत्रपात जैन महात्माओं और कवियों द्वारा हुआ; यह कथन भी उतना ही भ्रामक है, जितना प्रथम। पुनः इसी प्रकार, यह कहा जाता है कि इस काव्य-रूप का प्रारम्भ पश्चिमी राजस्थान और गुजरात में हुआ और इसका विकास भी बहुत समय तक उसी भूभाग तक सीमित रहा; किन्तु यह कथन भी उसी प्रकार भ्रामक है जिस प्रकार प्रथम तथा द्वितीय हैं। आगे आने वाले परिचयात्मक विवेचन से इन कथनों का निराकरण हो जावेगा।

प्रथम अर्थात् गीत-नृत्य-परक रास परंपरा में सेकड़ों रचनायें बताई जाती हैं। अभी तक उनके जो नाम मिले हैं, उनकी संख्या भी सौ से ऊपर ही होगी। और ये समस्त रचनाएँ प्रायः एक ही ढंग की हैं। ऐसी दशा में संक्षेप में और परंपरा की आरम्भिक दो शतियों—सं० १२०० से १४०० वि० तक—की ही प्रमुख रचनाओं का उल्लेख करना यथेष्ट होगा; उसी से उसका पर्याप्त परिचय मिल जावेगा। शुद्ध साहित्यिक परंपरा वास्तव में दूसरी है। उसका विवरण अपेक्षाकृत अधिक पूर्णता के साथ दिया जावेगा और सं० ११०० से १९०० वि० तक की उसकी प्रायः सभी महत्वपूर्ण कृतियों को उस विवरण में सम्मिलित किया जावेगा।

गीत-नृत्य-परक रास-परम्परा

(१) **उपदेश रसायन**—इस परंपरा की सबसे प्राचीन प्राप्त रचना 'उपदेश रसायन' है, जिसके रचयिता श्री जिनदत्त सूरि हैं। इसमें रचना-काल नहीं दिया हुआ है। किन्तु ग्रन्थकार की एक अन्य रचना 'कालस्वरूप कुलक' है, जिसकी रचना-तिथि सं० १२०० वि० के कुछ ही बाद

होगी, जैसा कि उसके एक छन्द से प्रकट है[1], इसलिए इस रचना का भी समय सं० १२०० के लगभग माना जा सकता है। यह रचना अपभ्रंश में है। इसका विषय धर्मोपदेश है। प्रयुक्त छन्द चउपई है। रचना ३२ छन्दों में समाप्त हुई है। यद्यपि इसमें रास या रासो नाम नहीं आया है, किन्तु इसके टीकाकार जिनपाल उपाध्याय ने टीका के प्रारम्भ में ही इसे रासक माना है और लिखा है कि यह पद्धटिका-बंध काव्य सभी रागों में गाया जाता है।[2] रचना में इसे रसायन कहा गया है। संभवतः इसे प्रस्तुत करने के लिए ही इसके अन्त में ताला और लउड़ा (लकुटा) रासों का उल्लेख हुआ है, ताला रास से रात्रि में और लउड़ा रास से दिन में।[3]

(२) भरतेश्वर बाहुबलीरास—इसके रचयिता शालिभद्र सूरि हैं, जिन्होंने इसकी रचना सं० १२४१ में की।[4] इसमें भगवान ऋषभदेव के दो पुत्रों भरतेश्वर और बाहुबली के बीच राज्य के लिए हुए संघर्ष की कथा है। यह रचना २०३ छन्दों में समाप्त हुई है। इसमें कुछ छन्द-वैविध्य है किन्तु फिर भी यह रचना गेय परंपरा की प्रतीत होती है[1]। वीर रस का परिपाक इसमें अच्छा हुआ है।

(३) बुद्धिरास—यह रचना भी उन्हीं शालिभद्र सूरि की है जिनकी उपर्युक्त भरतेश्वर बाहुबली रास है। इसमें रचना-सम्वत नहीं दिया हुआ है। किन्तु यह अनुमान सुगमता से किया जा सकता है कि रचना 'भरतेश्वर बाहुबली रास' के रचना-काल सं० १२४१ के लगभग होगी। इसका विषय 'उपदेश रसायन' की भांति धर्मोपदेश है। यह रचना ६३ छन्दों में समाप्त हुई है। यह रचना भी 'उपदेश रसायन' की भाँति गाई जाती रही होगी, ऐसा प्रतीत होता है।

(४) जीवदया रास—इसकी रचना आसगु ने सं० १२५७ में की थी[5]। इसका विषय नाम से ही स्पष्ट है: वह है दया-धर्मोपदेश। इसकी भाषा-शैली में काव्यात्मक दृष्टिकोण का अभाव प्रतीत होता है।

(५) चंदन बाला रास—इसके रचयिता भी वही आसगु है।[6] रचना-काल इस कृति में नहीं दिया हुआ है, किंतु यह सुगमता से अनुमान किया जा सकता है कि यह रचना भी ग्रंथकार की उक्त अन्य रचना 'जीवदया रास' के आसपास अर्थात् सं० १२५० के लगभग रची गई होगी। यह जालौर में रची गई थी। इसमें लेखक उद्देश्य चंदनबाला की धार्मिक कथा कहना है[7] इसमें प्रयुक्त छंद चउपई तथा दोहा हैं। यह रचना ३५ छंदों में समाप्त हुई है।

(६) जंबूस्वामी रासा—यह रचना श्री धर्म सूरि ने सं० १२६६ में की थी।[8] इसका विषय है जंबू स्वामी का चरित्र तथा गुण-वर्णन।[9]

(७) रेवंत गिरि रासु—यह कृति श्री विजय सेन सूरि की है। रचना-काल सं० १२८८

[1] छन्द ३, अपभ्रंश काव्य त्रयी संस्करण, गायकवाड, ओरिएंटल सीरीज, बड़ौदा।
[2] वही, टीका, छन्द २–४।
[3] वही, छन्द १६।
[4] भरतेश्वर बाहुबली रास, छन्द २०३, अपभ्रंश काव्यत्रयी, गायकवाड ओरिएंटल सीरीज, बड़ौदा।
[5] 'गुजराती साहित्यना स्वरूपो': प्रो० मं लाल मजमुदार लिखित, पृ० ८१९।
[6] 'राजस्थान भारती' भाग ३, अंक ३-४, पृ० १०६-११२, श्री अगरचंद नाहटा द्वारा संपादित पाठ।
[7] 'सम्मेलन-पत्रिका', भाग ३५, संख्या ७-९, पृ० २३१।
[8] देखिए 'हिन्दी जैन साहित्य-नाथूराम प्रेमी, पृ० २५।
[9] वही।

के लगभग माना गया है।[1] इसकी रचना सौराष्ट्र में हुई।[2] इसमें गिरनार के जैन मन्दिरों के जीर्णोद्धार की कथा है। यह रचना ७२ छंदों में समाप्त हुई है।

(८) नेमि जिणंद रासो (आबू रास)—यह पाल्हण द्वारा सं० १२८९ में रची गई थी।[3] इसका उद्देश्य भी धार्मिक है। यह ५४ छंदों में समाप्त हुई है।

(९) गय सुकुमाल रास—यह कृति देल्हण की है। इसका रचना-काल सं० १३०० के लगभग अनुमान किया गया है।[4] इसका उद्देश्य गयसुकुमाल का धार्मिक चरित्र-वर्णन है। यह कुल ३४ छंदों की है।

(१०) सप्त क्षेत्रिरासु—इसके लेखक का नाम अज्ञात है। यह रचना सं० १३२७ वि० में हुई थी।[5] इसमें सप्त क्षेत्रों—जिन मंदिर, जिन प्रतिमा, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका की उपासना का वर्णन है। यह रचना ११९ छंदों में समाप्त हुई है।

(११) पेथड रास—इसके लेखक मंडलिक हैं। इसका रचना-काल सं० १३६० के लगभग माना गया है।[6] इसमें संघपति पेथड़ का चरित्र वर्णित हुआ है। नृत्य के साथ गाए जाने के लिए इसकी रचना की गई है :—

रास रमेउजिण भुवणि ताल मेलि ठवि पाउ ॥१॥[7]

यह रचना ६५ छंदों में समाप्त हुई है।

(१२) कच्छूलि रास—लेखक का नाम अज्ञात है। इसका समय सं० १३६३ वि० है।[8] इसका उद्देश्य भी धार्मिक है। इसमें एक जैन तीर्थ कच्छूल ग्राम का वर्णन है। इस रचना में कुल ३५ छंद हैं।

(१३) समरा रासु—इसके रचयिता श्री अंबदेव सूरि हैं, जिन्होंने इसकी रचना सं० १३७१ के बाद की होगी, क्योंकि इसमें वर्णित घटना की तिथि इस प्रकार दी हुई है :

संवच्छरि इक्कहत्तरए थापिउ रिसह जिणिंदो ॥[9]

इसमें संघपति समरा का धार्मिक चरित्र वर्णित हुआ है। यह रचना कुल ११० छंदों में समाप्त हुई है।

(१४) बीसलदेव रास—इसकी रचना नरपति नाल्ह ने की थी। इसका रचना-काल विवाद का विषय रहा है। राजस्थान के कुछ विद्वानों का मत है कि 'बीसलदेव रास' की भाषा सोलहवीं शताब्दी की है, और उन्होंने यह भी सुझाव दिया है कि इसका रचयिता नरपति नाम का गुजरात

---

[1] 'जैन साहित्य का इतिहास'—नाथूराम प्रेमी, पृ० २६।

[2] 'रेवंत गिरि रासु' प्राचीन गुर्जर-काव्य संग्रह भाग १ (गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज) में संपादित संस्करण, पृ० १।

[3] राजस्थानी, भाग ३, अंक १ पृ० ८३-८८।

[4] श्री अगर चंद नाहटा, राजस्थान भारती, भाग ३, अंक २, पृ० ८७।

[5] 'सप्त क्षेत्रि रासु', छंद ११८, प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, भाग १, गायकवाड़ ओरएंटल सीरीज।

[6] 'इतिहास नी केडी', श्री भोगीलाल सांडेसरा, पृ० १९९।

[7] 'पेथडरास', छंद ३, प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह भाग१, गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज, बड़ौदा।

[8] वही, पृ० ६२।

[9] 'समरासु', प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, भाग १, उपर्युक्त, पृ० ३७।

का एक कवि है, जिसने सं० १५४५ तथा १५६० में दो अन्य ग्रंथों की रचना की है।[1] इस प्रसंग में श्री मोतीलाल मनोरिया ने नरपति की एक रचना से सात स्थलों पर की कुछ पंक्तियाँ देते हुए उनकी समानांतर पंक्तियाँ 'बीसलदेव रास' से उद्धृत की हैं।[2]

जहाँ तक भाषा के स्वरूप का प्रश्न है, इन विद्वानों ने रचना के नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के संस्करण वाले पाठ को लेकर ऐसा कहा है। सभा का पाठ सबसे अधिक प्रक्षिप्त है—उसमें मूल के निर्धारित १२८ छन्दों के स्थान पर ३१४ छन्द हैं, और मूल के १२८ छन्दों का पाठ भी उसमें बहुत बदला हुआ है। उसका जो पाठ अब निर्धारित हुआ है[3], उसको ध्यान में रखते हुए यदि देखा जावे, तो भाषा इतनी आधुनिक नहीं लगती है। सं० १४०० के लगभग की प्रमाणित राजस्थानी की अन्य रचनाओं से यदि इस संस्करण की भाषा का मिलान किया जावे[4], तो यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि 'बीसलदेव रास' की भाषा सं० १४०० के आस-पास की ही है।

जहाँ तक गुजरात के नरपति और 'बीसलदेव रास' के रचयिता नरपति नाल्ह के एक होने का प्रश्न है, यह नहीं कहा गया है कि गुजरात के नरपति ने भी अपने को कहीं नाल्ह कहा है, 'बीसलदेव रास' के रचयिता ने तो अपने को अनेक स्थलों पर नाल्ह कहा है। जो पंक्तियाँ तुलना के लिए दोनों कवियों से दी गई हैं, उनमें से चार तो निश्चित रूप से 'बीसलदेव रास' के प्रक्षिप्त छन्दों की हैं।[5] शेष तीन में जो साम्य है वह साधारण है, उस प्रकार और उतना साम्य देखा जावे तो मध्य युग के किन्हीं भी दो कवियों में मिल सकता है। इसके अतिरिक्त रचना काल के ७५ या १०० वर्षों के भीतर ही किसी भी रचना की इतनी विभिन्न पाठों की प्रतियाँ नहीं मिलतीं जितनी कि सं० १६३३ और सं० १६६९ को रचना की दो तिथियुक्त प्रतियाँ तथा प्रायः उसी समय की अन्य तिथि-हीन प्रतियाँ हैं।[6] अतः सं० १६०० के लगभग की रचना-तिथि 'बीसलदेव रास' के लिए मान्य नहीं हो सकती है।

इस रचना का विषय बीसलदेव की प्रवास-कथा है। अजमेर के चहुवान बीसलदेव का विवाह भोज परमार की कन्या राजमती से होता है। इस विवाह में उसे अनेक प्रान्त दायज में तथा अतुल संपत्ति विदाई में मिलती है। इस नव प्राप्त वैभव के पृष्ठभूमि में जब वह अपनी संपदा पर विचार करता है, तो उसे अभिमान होता है, और वह गर्वपूर्वक अपनी नवविवाहिता राजमती से कहता है कि उसके समान दूसरा राजा नहीं है। राजमती कहती है कि उसे गर्व नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसके समान अनेक राजा हैं: एक तो उड़ीसा का ही राजा है, जिसके राज्य में खानों से उसी प्रकार हीरा निकलता है जिस प्रकार बीसलदेव के राज्य में साँभर की झील में से नमक निकलता है। यह बात बीसलदेव को लग जाती है, और बीसलदेव उड़ीसा चला जाता है और वहाँ के राजा की सेवा में लग जाता है। बारह वर्ष व्यतीत हो जाते हैं, राजमती अपने पुरोहित को उसे लौटा लाने के लिए उड़ीसा भेजती है। उड़ीसा पहुँच कर पुरोहित बीसलदेव से मिलता है, और

[1] श्री अगरचन्द नाहटा, राजस्थानी, जनवरी १९४०, पृ० २१ तथा श्री मोतीलाल मेनारिया 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पृ० ८७-८८।

[2] श्री मोतीलाल मेनारिया, 'राजस्थानी भाषा और साहित्य,' पृ० ८८-८९।

[3] दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा संपादित और हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पाठ।

[4] दे० 'पुरानी राजस्थानी' एल० पी० टेसिटरी द्वारा लिखित और श्री नामवरसिंह द्वारा अनूदित ना० प्र० सभा, काशी द्वारा प्रकाशित।

[5] दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा संपादित और हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पाठ।

[6] दे० वही, भूमिका।

उसे राजमती का संदेश देता है। उड़ीसा के राजा को जब यह ज्ञात होता है कि वह अजमेर का चौहान शासक है, उसको प्रचुर रत्न-राशि देकर विदा करता है। बीसलदेव अजमेर लौट कर राजमती से मिलता है। इस रचना में शृंगार के अतिरिक्त कोई अन्य रस नहीं है। इसमें विप्रलंभ और संयोग दोनों प्रकारों के शृंगार का अच्छा परिपाक हुआ है। नायिका ने अनेक स्थलों पर पति को 'मूरख नाह' और 'निगुणा नाह' कहा है। इसे देखकर कुछ लोगों को इस रचना में अशिष्टता का आभास मिला है। किन्तु इन सम्बोधनों के पीछे जो आत्मीयता की प्रेरणा है, जो सहज प्रेम का आग्रह है, वह तो इस काव्य की विशेषता है। ठीक इसी प्रकार के सम्बोधन 'संदेश रासक' में उसकी प्रोषित पतिका ने भी किए हैं।

इस रचना में आदि से अन्त तक एक ही छन्द का निर्वाह हुआ है। सम्पूर्ण रचना गेय है, यह स्वतः प्रकट है। रचना के प्रारम्भ में ही केदारा राग के अन्तर्गत इसके गीतिबद्ध होने का निर्देश किया गया है। यह रचना नृत्य-गीत के साथ प्रस्तुत भी की जाती रही है, इसका प्रमाण हमें इसके एक प्रक्षिप्त छन्द में मिलता है।[1]

यद्यपि इसमें एक राजा की कथा है, यह रचना किसी राजा के आश्रय में रची गई नहीं हो सकती है। राजाओं के आश्रय में रची गई रचनाओं में उनकी तथा उनके पूर्व-पुरुषों की विजय-गाथायें अनिवार्य रूप से होती हैं, जो इसमें एकदम नहीं हैं।

यह कहना अनावश्यक होगा कि गीत-नृत्य-परक रासो-परंपरा का यह जैनेतर अपवाद अत्यन्त मूल्यवान है, इसीलिए इसका परिचय कुछ विस्तार से दिया गया है। इस परंपरा में हमें अभी अन्य जैनेतर रचनाएँ नहीं मिली हैं, किन्तु यह रचना उनके निश्चित अस्तित्व की सूचना देती है। ऐसा लगता है कि जैन कृतियों की भाँति वे सुरक्षित नहीं रह पाईं, इसलिए वे धीरे-धीरे काल-कवलित हो गईं।

छन्द-वैविध्य-परक रासो-परम्परा

(१) मुंज रास—आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण 'सिद्ध हैम' (रचना सं० ११९० वि०) में मुंज-विषयक दो दोहे उदाहरण में उद्धृत किए हैं। मेरुतुंग ने अपने 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' (रचना सं० १३६१ वि०) में 'मुंजराजप्रबन्ध' शीर्षक देते हुए मुंज की कथा दी है, और उसके विभिन्न प्रसंगों में दोहे, सोरठे, गाथाएँ, तथा अन्य प्रकार के अनेक छन्द उद्धृत किए हैं[2]। 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में एक प्राचीन जैन-प्रबन्ध-संग्रह में संकलित 'मुंजराज-प्रबन्ध' दिया गया है जिसका वृत्त प्रायः 'प्रबन्ध-चिंतामणि' वाले वृत्त जैसा ही है। इसके उद्धृत छन्द भी दो एक को छोड़कर उन्हीं में से हैं जो 'प्रबन्ध-चिंतामणि' में उद्धृत हैं।[3] इससे यह प्रमाणित होता है कि सं० ११९७—'सिद्धहैम' के रचना-काल—के पूर्व ही मुंजराज के चरित्र को लेकर अपभ्रंश में लिखा गया कोई काव्य था। असम्भव नहीं कि यह छन्द-वैविध्य-परक रासक-परम्परा की रचना रही हो और इसका नाम 'मुंजरास' या 'मुंजरासक' रहा हो। इसके रचयिता के सम्बन्ध में हमें कोई ज्ञान नहीं है; न इसका निश्चित रचना-काल ही हमें ज्ञात है। वाक्पति मुंजराज का समय सं० १०३१–१०५२ वि० माना गया है।[4] और 'सिद्धहैम' की तिथि सं० ११९७ वि० है। 'मुंजरास' का समय दोनों के बीच में कहीं होना चाहिए।

मंजुराज विषयक उपर्युक्त जैन प्रबंधों में आई हुई कथा संक्षेप में इस प्रकार है। मुंज का कर्ना-

[1] नागरी प्रचारिणी सभा, काशी संस्करण, छन्द ११।

[2] देखिए 'प्रबन्ध चिंतामणि', सिंघी जैन ग्रन्थ माला, पृ० ११-२५।

[3] देखिए 'पुरातत्व प्रबन्ध संग्रह', सिंघी जैन ग्रन्थमाला, पृ० १३-१५।

[4] हेमचन्द्रे : 'डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् इंडिया,' पृ० ९२७।

टक के राजा तैलप से घोर वैमनस्य था। यद्यपि मुंज का महामात्य रुद्रादित्य उसे रोकता रहा, फिर भी मुंज ने तैलप के बल की पूरी जानकारी किए बिना ही उस पर आक्रमण कर दिया। मुंज हार गया और बंदी हुआ। बंदीगृह में तैलप की विधवा बहिन मृणालवती से उसका प्रेम हो गया। मुंज के शुभेच्छुओं ने उसे बंदीगृह से निकाल भगाने की एक योजना बनाई। मुंज ने उस योजना की बात बताते हुए मृणालवती से भी भाग निकलने के लिए कहा। मृणालवती उसके साथ नहीं जाना चाहती थी, और यह भी नहीं चाहती थी कि मुंज से उसको अलग होना पड़े। इसलिए उसने इस षड्यन्त्र की सूचना अपने भाई तैलप को दे दी। तैलप ने षड्यन्त्र समाप्त कर मुंज का बड़ा अपमान किया—उससे घर घर भीख मँगवाई—और तदनंतर उसे हाथी से कुचलवा कर मरवा डाला।

यह स्पष्ट है कि यह रचना मुंज ही नहीं मुंज के किसी वंशज की प्रेरणा से भी न की गई होगी, क्योंकि अपने एक अत्यन्त सम्माननीय पूर्वज का इस प्रकार पराजय और अपमान पूर्वक विनाश कोई भी वंशज प्रबन्धबद्ध नहीं करा सकता था। यह सम्पूर्ण रचना लोकरंजन तथा लोकशिक्षण के लिए निर्मित की गई प्रतीत होती है।

(२) *संदेश रासक*—इसका रचयिता अब्दुल रहमान है, जिसने अपना परिचय ग्रन्थ के प्रारंभ में ही देते हुए बताया है कि पश्चिम के पूर्व-प्रसिद्ध म्लेच्छ देश में तंतवायु मीरसेन हुआ; यह उसी का तनय था जो प्राकृत काव्य तथा गीत विषय में प्रसिद्ध था।[1] 'संदेश रासक' ऐसे ही सुकवि की रचना है।

इसकी रचना तिथि-ज्ञात नहीं है। किन्तु इसके सम्पादक मुनि जिनविजय जी के अनुसार इसका रचना काल शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी के आक्रमण के कुछ ही पूर्व होना चाहिए, कारण यह है कि मूलस्थान-मुलतान का इस रचना में एक समृद्ध हिन्दू तीर्थ रूप में उल्लेख हुआ है। शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण के अनंतर मुल्तान की वह समृद्धि सदैव के लिए मिट गई होगी। भाषा की दृष्टि से भी वह उनके अनुसार उसी समय की प्रतीत होती है।[2]

इसका विषय विप्रलम्भ शृंगार है जिसका अन्त मिलन में होता है। विजय नगर (जैसलमेर) की एक विरहिणी अपने पति के पास सन्देश भेजना चाहती है। उसे एक पथिक आता हुआ दिखाई पड़ता है। उस पथिक को रोककर वह अपने पति के लिए सन्देश देती है। ज्योंही पथिक चलने को होता है वह कुछ और भी कहने लगती है। इसी प्रकार कई बार होता है, यहाँ तक कि अन्त में जब पथिक चलने को उद्यत होता है, और पूछता है कि उसे और तो कुछ नहीं कहना है, वह रो पड़ती है। पथिक सान्त्वना देते हुए उसे पूछता है कि उसका पति किस ऋतु में प्रवास के लिए गया था; वह कहती है, ग्रीष्म ऋतु में, और तदनंतर वह छः ऋतुओं के अपने विरह-जनित कष्टों का वर्णन करती है। यह सब समाप्त होने पर जब पथिक चल पड़ता है, विरहिणी का पति लौटता हुआ दिखाई पड़ता है, और दोनों मिल जाते हैं।

रचना केवल २२३ छन्दों में समाप्त हुई है, किन्तु इतने में ही २२ प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसी बहुरूप-निबद्ध रासकत्व के बारे में कवि ने रचना में एक स्थान पर संकेत किया है :—

कहव ठाइ चउवेइहिं वेउ पयासियइ।
कह बहुरूवि णिबद्धउ रासउ भासियइ ॥ ४३ ॥

[1] 'सन्देश रासक', सम्पादक मुनि जिनविजय, भारतीय विद्या भवन, बंबई, छंद ३-४।
[2] 'सन्देश रासक', उपर्युक्त, प्रस्तावना, पृष्ठ ११-१५।

(३) हम्मीर रासो—इस नाम की कोई रचना अभी तक नहीं मिली है, किन्तु 'प्राकृत पैंगल' के आठ छन्दों में हम्मीर का स्पष्ट नामोल्लेख होता है।[1] असम्भव नहीं कि उसमें और भी कुछ छन्द ऐसे हों जो हम्मीर के चरित्र से सम्बन्धित हों यद्यपि उनमें हम्मीर का नाम न आया हो। ये छन्द भी कम से कम आठ विभिन्न वृत्तों (छन्दों) के उदाहरण में आते हैं। अतः यह प्रकट है कि विविध छन्दों से विभूषित हम्मीर के जीवन से सम्बन्धित कोई समादृत कृति उस समय थी जब 'प्राकृत पैंगल' की रचना हुई, और असम्भव नहीं कि यह कृति छन्द-वैविध्य-परक रासो-परंपरा की ही रही हो।

इस कृति का रचना-काल क्या होगा, यह विचारणीय है। हम्मीर का समय सं०१२९५ से सं० १३५८ है, और 'प्राकृत पैंगल' के ये छन्द प्रायः हम्मीर की प्रशस्तियुक्त हैं, इसलिए ये उसके जीवन-काल में ही रचे गए होंगे ऐसा सामान्यतः समझा जाता है, किंतु यह असंभव नहीं है कि इनकी रचना हम्मीर के कुछ बाद हुई हो।

इन छन्दों का अथवा इनके स्रोत 'हम्मीर रासो' का रचयिता कौन रहा होगा, यह छन्दों से ज्ञात नहीं होता है। हमारे साहित्य के इतिहासों में शार्ङ्गधर द्वारा रचित एक 'हम्मीर रासो' माना जाता रहा है। शार्ङ्गधर के पितामह राघव, जो पीछे 'छिताई वार्ता' तथा 'पद्मावत' आदि अनेक अलाउद्दीन से संबन्धित काव्यों में विविध प्रकार से आए हैं, हम्मीर देव के आश्रय में रहते थे, और उनका एकाध पद्य 'शार्ङ्गधर पद्धति' में संकलित है इसलिए यद्यपि यह असंभव नहीं कि शार्ङ्गधर ने 'हम्मीर रासो' नामक किसी कृति की रचना की हो किन्तु इसके कोई निश्चित प्रमाण नहीं हैं।

इसके दो छन्दों में एक जज्जल आता है।[2] उसी के आधार पर श्री राहुल सांकृत्यायन ने जज्जल को इन छन्दों का रचयिता माना है।[3] किन्तु इन छन्दों के अर्थ पर विचार किया जावे तो यह स्पष्ट हो जावेगा कि जज्जल इनमें हम्मीर-पक्ष के वीर योद्धा के रूप में आया है, कवि के रूप में नहीं। अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों से भी जज्जल के हम्मीर के एक सामंत होने का समर्थन होता है।[4] अतः जज्जल इन छन्दों का रचयिता नहीं है।

हम्मीर सम्बन्धी ये समस्त छन्द वीर रस के हैं, और काव्य की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट हैं।

(४) बुद्धि रासो—इसका रचयिता जल्ह नामक कवि है। रचना अप्रकाशित है। श्री मोतीलाल मेनारिया ने लिखा है कि रचना-शैली से कवि जैन प्रतीत होता है, और उन्होंने रचना से कुछ पंक्तियाँ भी उद्धृत की हैं। किन्तु इन पंक्तियों में कोई बात भाषा-शैली की दृष्टि से ऐसी नहीं मिलती जिससे रचयिता को जैन कवि माना जा सके। एक जल्ह के दो छन्द 'पुरातन प्रबंध-संग्रह' में 'जयचन्द-प्रबन्ध' में उद्धृत हुए हैं। इस 'प्रबंध-संग्रह' के प्रबन्धों का समय १५ वीं शती वि० माना जाता है, इसलिए यदि दोनों जल्ह एक ही हों तो असम्भव नहीं कि यह जल्ह १५ वीं शती वि० के प्रारम्भ में हुआ हो। मेनारिया जी ने अपने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' में लिखा है कि जल्ह का आविर्भाव-काल सं० १६२५ है।[5] पता नहीं किस आधार पर उन्होंने ऐसा लिखा है।

इसका विषय एक प्रेम-कथा है, जो इस प्रकार है :—चंपावती नगरी का राजकुमार अपनी

[1] श्री चन्द्रमोहन घोष द्वारा संपादित तथा एशियाटिक सोसायटी बंगाल द्वारा १९०२ ई० में प्रकाशित संस्करण, मात्रा वृत्त के छन्द ७१, ९२, १०६, १४७, १५१, १९०, २०४, तथा वर्ण वृत्त का छन्द १८१।

[2] वही, मात्रा वृत्त, छन्द १०६, १४७।

[3] दे० 'हिन्दी काव्य धारा', पृ० ४५२।

[4] डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल : जाज या जज्जल, हिन्दी अनुशीलन, पौष-चैत्र, सं० २०११, पृ० १।

[5] 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृ० १२१।

राजधानी से आकर कुछ दिनों के लिए जलधितरंगिनी के साथ समुद्र के किसी स्थान में रहता है और तदनंतर एक मास में लौटने का वचन देकर कहीं चला जाता है। अवधि के बाद भी कई मास बीत जाते हैं, किन्तु वह लौटता नहीं, तब विरहिणी जलधितरंगिनी जीवन से विरक्त हो जाती है, और अपने आभूषणादि उतार फेंकती है। इस पर उसकी माँ उसके समक्ष संसार के विलास-वैभव तथा शारीरिक सुखों की महत्ता प्रतिपादन करने लगती है। इतने ही में राजकुमार वापस आ पहुँचता है, और दोनों का पुनर्मिलन हो जाता है, जिसके अनंतर दोनों आनन्द और उत्साह के साथ जीवन व्यतीत करने लगते हैं।

इस कथा को पढ़कर एक ओर 'सन्देश रासक' तथा दूसरी ओर हिंदी की प्रेम-कथाओं का स्मरण आप से आप हो जाता है। यदि यह रचना १५वीं शती वि० के प्रारम्भ की प्रमाणित हो, तो निस्संदेह इसका स्थान हमारे साहित्य के इतिहास में अत्यन्त महत्व का होगा।

इसमें दोहा, छप्पय, गाहा, पाधड़ी, मोतीदाम, मुडिल्ल आदि छन्द हैं, और रचना कुल १४० छन्दों में समाप्त हुई है।[1]

(५) परमाल रासो—सं० १९७६ में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से यह रचना प्रकाशित हुई है। इसके संपादक डॉ० श्याम सुन्दरदास ने भूमिका में लिखा है कि "जिन प्रतियों के आधार पर यह संस्करण संपादित हुआ है, उनमें यह नाम नहीं है; उनमें इसको चंद कृत 'पृथ्वीराज रासो' का महोबा खण्ड लिखा हुआ है; किंतु वास्तव में यह 'पृथ्वीराज रासो' का महोबा खण्ड नहीं है, वरन् उसमें वर्णित घटनाओं को लेकर मुख्यतः 'पृथ्वीराज रासो' में दिए हुए एक वर्णन के आधार पर लिखा हुआ एक स्वतन्त्र ग्रंथ है। यद्यपि इस ग्रंथ का नाम मूल प्रतियों में 'पृथ्वीराज रासो' दिया हुआ है, पर इस नाम से इसे प्रकाशित करना लोगों को भ्रम में डालना होता, अतएव मैंने इसे 'परमाल रासो' यह नाम देने का साहस किया है।"[2]

किन्तु वास्तविकता यह है कि 'पृथ्वीराज रासो' के नागरी प्रचारिणी सभा के संस्करण में दिए हुए महोबा खण्ड का यह एक परिवर्धित रूपान्तर मात्र है, स्वतन्त्र रचना नहीं। 'पृथ्वीराज रासो' में सम्मिलित महोबा खण्ड भी प्रामाणिक रचना नहीं है, क्योंकि वह अलग से ही मिलता है, और 'पृथ्वीराज रासो' को किसी पूर्ण प्रति में नहीं मिलता है। यह सिद्ध करने के लिए कि 'रासो' के अन्त में प्रकाशित महोबा खण्ड का यह परिवर्धित रूपान्तर मात्र है, यही देखना पर्याप्त है होगा कि पूर्ववर्ती की लगभग समस्त पंक्तियाँ कुछ मिलाई हुई पंक्तियों के बीच इसमें भी मिल जाती हैं। इसका रचना-काल क्या होगा, यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इसकी जो प्रतियाँ मिली हैं, वे १९वीं शताब्दी वि० की हैं। आश्चर्य नहीं कि महोबा खण्ड का प्रस्तुत रूप १६वीं १७वीं शताब्दी विक्रमीय का हो। इससे अधिक इस प्रक्षेप के प्रक्षेप पर विचार करना अनावश्यक होगा।

(६) राउ जैतसी रो रासो—यह रचना कुछ ही दिन हुए प्रकाशित हुई है। इसका रचयिता अज्ञात है।[3] रचना में रचना-काल भी नहीं दिया हुआ है। वर्णित घटना सं० १६०० के लगभग की है, और वर्णन सजीव है, इसलिए अनुमान किया जाता है कि रचना बहुत कुछ समसामयिक होगी। इसमें बीकानेर के महाराजा राव जैतसी (सं० १५८३-१५९८ वि०) तथा हुमायूँ के भाई कामराँ के उस युद्ध का वर्णन हुआ है जिसमें कामराँ को पराजित होकर लौटना पड़ा था।

[1] 'राजस्थान में हिंदी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज', भाग १, पृ० ७६।

[2] 'परमाल रासो', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, भूमिका, पृ० ३-४।

[3] 'राजस्थान भारती', सं० नरोत्तमदास स्वामी, भाग २, अंक २, पृ० ७०।

संपूर्ण रचना में वीर रस का परिपाक हुआ है। छन्द दोहा, मोतीदाम तथा छप्पय हैं। कुल ९० छन्दों में ही रचना समाप्त हुई है। भाषा डिंगल है।

(७) विजय पाल रासो—इसका रचयिता नल्हसिंह भाट है। लेखक का प्रामाणिक इतिवृत्त प्राप्त नहीं है। रचना में कहा गया है कि लेखक विजयगढ़ (करौली राज्य) के यदुवंशी शासक विजयपाल का आश्रित था,[1] इसलिए वह सं० ११०० के आसपास को होनी चाहिए। किन्तु यह रचना सं० १६०० के बाद की ही हो सकती है क्योंकि इसमें तोपों तक का उल्लेख हुआ है। इसका विषय विजयपाल की दिग्विजय की कथा है। इसका मुख्य रस वीर है। रचना पूरी प्राप्त नहीं हुई है। इसके केवल ४२ छन्द प्राप्त हुए हैं।[2]

(८) राम रासो—इसके रचयिता माधवदास चारण हैं। इसका रचना-काल सं० १६७५ है।[3] इसका विषय राम का चरित्र तथा गुण वर्णन है। इसमें विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। बीच-बीच में गीत भी हैं। ग्रन्थ में कुल लगभग १६००,छन्द हैं।

(९) राणा रासो—यह दयाल कवि की रचना है, जिनका पूरा नाम दयाराम कहा जाता है। रचना में समय नहीं दिया हुआ है। किन्तु उसकी एक प्रति सं० १९४४ की मिली है, जो कवि की सं० १६७५ की हस्तलिखित प्रति की प्रतिलिपि बताई गई है।[4] इसलिए इस ग्रंथ की रचना सं० १६७५ में या उसके कुछ ही पूर्व हुई होगी। सं० १९४४ की प्रति में महाराजा जयसिंह (सं० १७३७-१७५५) तक का वर्णन है। संभव है कि ये वर्णन बाद में सं० १६७५ की प्रति में हाशिए में लिखकर किसी के द्वारा बढ़ाए गए हों और प्रतिलिपि में उतार लिए गए हों। इसमें अन्त में एक छन्द है जो इस प्रकार है :—

सेवे सबे करन को रान मान के पाइ।
चिंता उर उपजे नहीं दरसन ही दुख जाय ॥[5]

जिससे यह प्रमाणित है कि कवि कर्णसिंह का आश्रित था।

इस रासो में सीसौदिया वंश का इतिहास दिया गया है और उस वंश के मुख्य राजाओं तथा कुंभा, उदय सिंह, प्रतापसिंह तथा अमर सिंह के युद्धादि का वर्णन विस्तार से किया गया है। इसमें रसावला, विराज, साटक–शार्दूल विक्रीड़ित–आदि विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसकी कुल छन्द-संख्या ८७५ है।

(१०) रतन रासो—इसके रचयिता कुंभकर्ण हैं। इसका रचना-काल सं० १६७५ तथा १६८१ के बीच अनुमान किया जाता है।[6] इसमें रतलाम के महाराजा रतनसिंह का चरित्र वर्णित है। रचना साधारण प्रतीत होती है। इसमें विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है।

(११) कायम रासो—इसके रचयिता न्यामत खाँ जान कवि हैं[7], जो स्वरचित कथा साहित्य के लिए हमारे साहित्य के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। यह रचना उन्होंने सं० १६९१ में की थी :—

[1] 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', मोती लाल मेनारिया', पृ० ८१।

[2] दे० मुंशी देवीप्रसाद द्वारा मुंसिफ संपादित। 'कविरत्न माला' भाग १।

[3] 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का खोज विवरण', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९०१, संख्या ८०

[4] 'राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज', भाग १, पृ० ११९।

[5] वही, पृ० ११९।

[6] दे० 'राजस्थान भारती', भाग ३, अङ्क ३-४, पृ० ८३ तथा 'राजस्थान में हिंदी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज', भाग ४, पृ० २२३।

[7] 'कायम रासो', राजस्थान पुरातत्व मंदिर, जयपुर।

सोरह से पुवयानवे ग्रंथ कियो इहु जान।

किन्तु इस तिथि के बाद की सं० १७१० तक की कुछ घटनाओं का उल्लेख इसमें हुआ है। इसके बाद भी वे बहुत दिनों तक जीवित रहे थे। ऐसा लगता है कि अपने जीवन-काल में ही बाद की घटनाओं का भी उन्होंने इसमें समावेश कर दिया।

इसका विषय कायम खानी वंश का इतिहास है, जिसमें अलफ खाँ का चरित्र विस्तृत रूप से दिया हुआ है। कायम खाँ उनके वह पूर्वपुरुष जिनके नाम पर उनका वंश कायम खानी कहाने लगा। ऐतिहासिक दृष्टि से यह रचना महत्व की है। इसमें इतिवृत्त की प्रधानता है।

(१२) शत्रुसाल रासो—इसके रचयिता बूँदी के राव डूँगरसी हैं, जिन्होंने इसे सं० १७१० के लगभग रचा होगा, ऐसा अनुमान किया जाता है। इसमें बूँदी के राव शत्रुसाल का इतिवृत्त है जो वीर रस प्रधान है। इसकी कुल छन्द-संख्या ५०० के लगभग है। कहा गया है कि इसकी भाषा-शैली 'पृथ्वीराज रासो' का अनुकरण करती है।[1]

(१३) मांकण रासो—यह रचना कान्ह कीर्तिसुन्दर की है और सं० १७५७ की रची हुई है।[2] यह विनोदात्मक है, और अपने विषय-वैशिष्ट्य के कारण उल्लेखनीय है। कुल केवल ३९ छंद इस रचना में हैं, किन्तु यह पाँच विविध छन्दों में रची गई है।

(१४) सगत सिंह रासो—इसके रचयिता गिरधर चारण हैं। इसका रचना-काल अज्ञात है। श्री मोतीलाल मेनारिया के अनुसार इसका रचना-काल सं० १७२० के लगभग है।[3] किन्तु श्री अगर चन्द नाहटा के अनुसार यह सं० १७५५ के बाद की रचना है।[4] इसमें राणा प्रताप सिंह के भाई शक्तसिंह तथा उनके वंशजों का चरित्र है। इसका मुख्य रस वीर है। यह रचना भी विविध छन्दों में की गई है। इसकी कुल छंद-संख्या ९४३ है।

(१५) हम्मीर रासो—यह रचना जोधराज की है, और सं० १७९५ की है।[5] इसमें हम्मीर का वीर चरित्र विशदता के साथ वर्णित हुआ है। हम्मीर पर एक संस्कृत रचना सं० १४६० के लगभग रचित नयचन्द्र सूरि कृत 'हम्मीर महाकाव्य' है, जो प्रायः ऐतिहासिक मानी गई है। प्रस्तुत रचना में अधिकतर उसका आधार ग्रहण किया गया है, किन्तु अनैतिहासिक बातें भी मिला दी गई हैं। इसमें हम्मीर का जन्म सं० ११४१ में होना बताया है, और हम्मीर के आत्मघात करने के अनन्तर अल्लाउद्दीन के द्वारा समुद्र में कूद कर प्राण देने का उल्लेख है, जो इतिहास-सम्मत नहीं है। इसका मुख्य रस वीर है, और यह विविध छन्दों में प्रस्तुत किया गया है। इसकी छन्द-संख्या लगभग १००० है।

(१६) खुमाण रासो—इसके रचयिता दलपत विजय हैं, जो दौलत विजय भी कहे जाते हैं। यह एक प्राचीन रचना मानी जाती रही है। अनुमान किया जाता रहा है कि यह खुमाण (सं० ८००-८९० वि०) के समकालीन उनके किसी आश्रित कवि की रचना रही होगी।[6] किंतु इधर इसकी जो प्रतियाँ मिली हैं, उनमें राणा संग्रामसिंह द्वितीय (सं० १७६७-९०) तक का उल्लेख है, इसलिए यह

[1] श्री मोतीलाल मेनारिया: 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृ० १५८।

[2] 'राजस्थान भारती', भाग ३, अंक ३-४, पृ० १००।

[3] श्री मोतीलाल मेनारिया : 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृ० १६०।

[4] 'राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज', भाग ३, पृ० १०७।

[5] 'हम्मीर रासो', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, छन्द ९६८।

[6] डॉ० श्याम सुन्दर दास : 'हिन्दी भाषा का इतिहास', पृष्ठ २२१।

रचना अपने इस समय के रूप में अठारहवीं शताब्दी वि० के अन्त की प्रतीत होती है।[1] अन्य साक्ष्यों की सहायता से भी दलपति विजय का समय अठारहवीं शताब्दी निश्चित किया गया है।[2]

इसका विषय मेवाड़ के सूर्य वंश का इतिवृत है :—

कवि दीजे कमला कला जो उण कवित जुगत्ति।
सूरजि वंस तणो सुजस वरणन करूं विगत्ति[3] ॥४॥

इस प्रकार वंश के नाम से लिखे गए रासों के उदाहरण हमें ऊपर भी मिल चुके हैं—यथाः 'कायम रासा', इसलिए कुछ आश्चर्य नहीं कि 'खुमाण रासो' केवल खुमाण के चरित को लेकर नहीं, वरन् उनके वंश के इतिहास को लेकर लिखा गया हो।

यह ग्रन्थ विविध छन्दों में प्रस्तुत किया गया है, और कविता की दृष्टि से भी सरस है।

(१७) रासा भगवंत सिंह का—इसके लेखक सदानन्द हैं।[4] कृति में रचना-काल नहीं दिया हुआ है, किंतु इसमें सं० १७९७ के एक युद्ध का वर्णन है :—

संवत सत्रह सतानवें कार्तिक मंगलवारा।
सित नौमी संग्राम भी विदित सकल संसारा॥

इसलिए इसकी रचना इस तिथि के कुछ बाद की होनी चाहिए। इसमें भगवंत सिंह खीची का चरित्र वर्णित हुआ है। इसका मुख्य रस वीर है। यद्यपि रचना केवल १०४ छन्दों की है, किंतु इसमें छन्द-वैविध्य है।

(१८) करहिया को रायसो—इसके रचयिता गुलाब कवि हैं, जिन्होंने इसकी रचना सं० १८३४ वि० में की थी।[5] इसमें करहिया के परमारों तथा भरतपुर के जवाहरसिंह के बीच सं० १८३४ में हुए युद्ध का वर्णन है। इसका रस वीर है। यह रचना भी विविध छन्दों में प्रस्तुत की गई है।

(१९) रासा भैया बहादुर सिंह का—इसके रचयिता शिवनाथ हैं। इसका रचना-काल सं० १८५३ के कुछ ही बाद ज्ञात होता है, क्यों कि इसमें सं० १८५३ की एक घटना का उल्लेख है।[6] इसमें बलरामपुर के शासक भैया बहादुर सिंह का चरित्र वर्णित हुआ है। मुख्य रस वीर है। इसमें भी विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है।

(२०) रायसो—यह उपर्युक्त शिवनाथ की एक अन्य रचना है।[7] इसमें रचना-काल नहीं दिया हुआ है। किन्तु उपर्युक्त रचना सं० १८५३ कुछ ही बाद की है, इसलिए यह भी उसी समय के लगभग की होगी। इसमें धारा के महाराजा जसवंत सिंह तथा रीवां के महाराजा अजीतसिंह का युद्ध वर्णित है। इसका मुख्य रस वीर है। इसमें भी विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है।

(२१) हम्मीर रासो—इसके रचयिता महेश कवि हैं।[8] रचना-काल अज्ञात है। इसकी प्राप्त प्रतिलिपि सं० १८६१ की है। इसका विषय भी वही है जो जोधराज की इसी नाम की रचना का है। प्रधान रस वीर है। यह रचना विविध प्रकार के लगभग ९०० छन्दों में समाप्त हुई है।

[1] श्री मोतीलाल मेनारिया : 'खुमाण रासो', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २००९, पृ० ३५४।
[2] वही।
[3] 'राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज', भाग १, पृ० ८१।
[4] दे० नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ५, पृ० ११४-१३१।
[5] दे० वही, भाग, १०, पृ० २०८।
[6] 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का खोज विवरण', काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १९२०-२२, संख्या १८१।
[7] वही।
[8] वही, १९०१, संख्या ६१।

(२२) कलियुग रासो—यह रचना अलि रसिक गोविन्द की है।[१] इसका रचना-काल सं० १८६५ है। इसमें कलियुग का प्रभाव वर्णित है। यह रचना लगभग ७० छन्दों में समाप्त हुई है। उद्धृत अंशों में केवल मनहरण कवित्त छन्द मिलता है। असम्भव नहीं कि पूरी रचना मनहरण कवित्त छन्द में हो। यदि ऐसा ही हो तो यह रासो की छन्द-वविध्य-परक परम्परा की एक अन्तिम रचना प्रतीत होती है, क्योंकि इसमें छन्द-वैविध्य का आग्रह नहीं है। हो सकता है कि इस समय रासो-परम्परा की छन्द-ववध्य सम्बन्धी आवश्यकता विस्मृत हो चुकी हो, और 'रासो' शब्द एक उत्कृष्ट काव्य मात्र का पर्याय समझा जाने लगा हो।

परिणाम

अब हम रासो काव्यधारा के विषय में कुछ परिणाम सुगमता से निकाल सकते हैं:—

(१) रास तथा रासो नामों में प्रायः कोई भेद नहीं है, दोनों नाम एक ही अर्थ में और कभी-कभी साथ-साथ एक ही रचना में प्रयुक्त हुए हैं। यह धारणा निराधार है कि रास कोमल भावनाओं का परिचायक रहा है और रासो युद्धादि सम्बन्धी कठोर भावों का। यदि देखा जाय तो अनेक प्रकार के विषय रास और रासो द्वारा अभिहित काव्यों के वर्ण्य बने हैं।

(२) रासो के अन्तर्गत प्रबन्ध की दो विभिन्न परंपराएँ आती हैं: एक तो गीत-नृत्य-परक है और दूसरी छन्द-वैविध्य-परक। दोनों परंपराओं को मिलाया नहीं जा सकता है।

(३) गीत-नृत्य-परक परंपरा की रचनाएँ प्रायः आकार में छोटी हैं, क्योंकि उन्हें गाकर सुनाने के लिए स्मरण रखना पड़ता था, जबकि छन्द-वैविध्य-परक परंपरा में रचनाएँ छोटे-बड़े सभी आकारों की हैं।

(४) गीत-नृत्य-परक परंपरा का प्रचार जैन धर्मावलंबियों में अधिक रहा है। उनके रचे हुए प्रायः समस्त रासो इसी परंपरा में हैं। दूसरी परंपरा का प्रचार जैनेतर समाज में अधिक रहा है।

(५) गीत-नृत्य-परक रासो रचनाएँ प्रायः पश्चिमी राजस्थान और गुजरात में लिखी गईं, जबकि छन्द-वैविध्य-परक रासों की रचना प्रायः पूर्वीय राजस्थान तथा शेष हिंदी प्रदेश में हुई।

(६) काव्य का दृष्टिकोण दूसरी ही परंपरा में प्रधान रहा, प्रथम में नहीं और इसीलिए शुद्ध साहित्य की दृष्टि से दूसरी परंपरा प्रथम की अपेक्षा अधिक महत्व की है।

उद्भव

इन दोनों परंपराओं का उद्भव किस प्रकार हुआ होगा, इस पर भी हमें संक्षेप में विचार कर लेना चाहिए।

रासक एक अति प्राचीन भारतीय नृत्य रहा है। इसको लास्य का एक भेद मानते रहे हैं। शारदातनय (सं० १२२५-१३०० वि० के लगभग) ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भाव प्रकाशन' में लिखा है कि लास्य के चार भेद होते हैं: (१) शृंखला, (२) लता, (३) पिंडी तथा (४) भेद्यक, और इनमें से लता के पुनः तीन भेद होते हैं: (१) दण्ड रासक, (२) मण्डल रासक तथा (३) नाट्य रासक।[२] संभवतः इसी 'नाट्य रासक' से उस नाम के उप रूपक की उत्पत्ति हुई होगी, क्योंकि शारदातनय ने 'नाट्य रासक' उप रूपक में रागों के साथ उपर्युक्त शृंखला, लता, पिंडी तथा भेद्यक नृत्यों का प्रयोग भी बतलाया है।[३]

[१] 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का खोज विवरण', १९०९-११, संख्या २६३।

[२] भावप्रकाशन, गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, बड़ौदा, पृ० २९०।

[३] वही।

ऐसा प्रतीत होता है कि यही नाट्य-रासक उप रूपक नाटकीय संकेतों और उसके कुछ अन्य तत्वों से विरहित होकर गीत-नृत्य-परक रास काव्यरूप में ढल गया। इस परंपरा की रचनाओं में उनके गाए जाने और कभी कभी नृत्य-समन्वित होने का जो उल्लेख मिलता है, यथा 'उपदेश रसायन' में ऊपर हमने देखा है, वह इस उद्‌भव की ओर स्पष्ट संकेत करता है।

दूसरी परंपरा का उद्‌भव किंचित् भिन्न है। उसकी कल्पना छन्द-मूलक प्रतीत होती है। अपभ्रंश के प्रायः सभी छन्द-निरूपकों ने रासा नाम के छन्द के लक्षण बताए हैं और दो ने रासक तथा रासाबन्ध नाम से एक काव्यरूप का भी लक्षण बताया है। ये दो छन्द-निरूपक हैं विरहांक तथा स्वयंभू।

विरहांक ने लिखा है[1] :—

अडिलाहिं दुवहएहिं व मत्तारड्डाहि तहअ ढोसाहिं।
बहुएहिं जो रइज्जइ सो भण्णइ रासओ णाम॥

अर्थात् जिसमें बहुत से अडिल्ला, दोहा, मात्रारड्डा और ढोसा छन्द पाये जाते हैं, ऐसी रचना रासक कहलाती है।

स्वयंभू ने लिखा है[2] :—

घत्ता छड्डणिआहिं पद्धडिआ सु अण्ण रूएहिं।
रासा बंधो कव्वे जणमण अहिरामो होइ॥

अर्थात् काव्य में रासाबन्ध अपने घत्ता, छप्पय, पद्धडी तथा अन्य रूपकों के कारण जनमन-अभिराम होता है।

छन्द-वैविध्य-परक रास-परंपरा अन्य काव्योचित गुणों के साथ अपने इसी छन्द-वैविध्य को लेकर आई और उपर्युक्त गीत-नृत्य-परक परंपरा से अलग विकसित हुई। अपनी इसी रासकता का उल्लेख 'संदेश रासक' करता है जब वह कहता है[3] :—

कइ बहु रुवि णिबद्धउ रासउ भासियउ।

और 'पृथ्वीराज रासो' इसी छन्द-वैविध्य वाली परंपरा का काव्य है।

—:*:—

[1] 'वृत्त जाति समुच्चय', ४.३८।

[2] 'स्वयंभूच्छंदस्', ८.४९।

[3] 'संदेश रासक', छन्द ४३, भारतीय विद्या भवन, बम्बई।

१८. 'पृथ्वीराज रासो' की वस्तु-कल्पना

'रासो' का कवि पृथ्वीराज के संपूर्ण जीवन की कथा को नहीं कहना चाहता है, वह एक प्रकार से कथा-नायक के जीवन के अन्तिम वर्षों की कथा को ही अपनी रचना का विषय बनाना चाहता है। उसके शेष जीवन का परिचय वह रचना के प्रारम्भ में केवल एक छन्द में देता है, जिसका आशय है कि पृथ्वीराज की कपिल (धूल-धूसरित) केलि अजमेर में हुई थी, उसके रत्त (अनुरागपूर्ण) जीवन के वृत्त साँभर में हुए थे, वह सोमेश्वर का पुत्र बहिलावन (?) का निवासी था और दिल्लीपुर में भासित होने के लिए ही मानो विधाता द्वारा निर्मित हुआ था (१.६)। प्रश्न होता है कि ऐसा उसने क्यों किया। क्या कथा-नायक के पूर्ववर्ती जीवन में कवि को ऐसी कोई घटनाएँ नहीं मिलीं जो महाकाव्य के उपयुक्त होतीं, या कथा-नायक के चरित्र में ऐसे कोई विशेष तत्व नहीं विकसित हुए थे जो महाकाव्य के नायक के लिए आवश्यक होते अथवा नायक के जीवन के उस अंश में रस के वे विशेष तत्व कवि को नहीं मिले जो एक महाकाव्य के लिए आवश्यक होते ?

वस्तुतः ऐसी कोई बात नहीं दिखाई पड़ती है। नायक के पूर्ववर्ती जीवन का चित्रण न करते हुए भी कवि ने उसके सम्बन्ध में स्थान-स्थान पर संकेत किए हैं। एक स्थान पर कथा-नायक के द्वारा कवि ने कालिंजर के जलमग्न किए जाने की बात कही है (२.१७)। कालिंजर के पराक्रमी चंदेल शासक परमर्दि पर उसकी विजय उस युग की एक असाधारण घटना थी—सं० १२३९ के मदनपुर के शिलालेख में उसकी वह विजय-गाथा अंकित हुई है[1], और जगनिक के नाम से प्रसिद्ध आल्ह खण्ड उसी घटना को अपना वर्ण्य बनाता है। उस युग के अति पराक्रमी शासक गुर्जर-नरेश भीम चौलुक्य पर भी उसने विजय प्राप्त की थी, 'रासो' में यह बार-बार कहा गया है (२.३, ८.४, १२.३३)। इतना ही नहीं, यहाँ तक कहा गया है कि उसने स्वयं भीम के साथ युद्ध करना आवश्यक नहीं समझा था, उस समय वह दूर विश्वासर में था जब उसके मंत्री (कैंवास) ने भीमसेन को परास्त करके बन्दी बनाया था (३.६)। इतिहास से यह घटना कहाँ तक अनुमोदित है, यह एक भिन्न प्रश्न है।[2] किंतु यह तो निश्चित ही है कि कवि के मानस पर पृथ्वीराज की ये असाधारण विजयें भी अंकित थीं। शहाबुद्दीन पर भी उसे जीवन के उस अंश में एक महान् विजय प्राप्त हुई थी, यह कवि ने बार-बार कहा है, और इतिहास से भी यह भली भाँति अनुमोदित है। और ये घटनाएँ ऐसी हैं जो अलग-अलग महाकाव्यों का विषय बन सकती थीं—कदाचित् इसी बात

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता' शीर्षक।

[2] दे० वही।

को देखकर पीछे महोबा खंड, भीम-युद्ध खंड तथा शहाबुद्दीन खंड की कल्पना की गई, जो रचना के कुछ पाठों में पाए भी जाते हैं। किंतु पाठ-निर्धारण के प्रसंग में ऊपर हम देख चुके हैं रचना के मूल रूप में ये खंड नहीं हो सकते हैं। इसलिए ऊपर जो प्रश्न उठाया गया है वह बना रहता है।

प्रस्तुत लेखक के विचार से इस प्रश्न का समाधान इस तथ्य में निहित है कि कवि उन घटनाओं को अपने काव्य का वर्ण्य नहीं बनाना चाहता था जो जयानक (?) के 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य में वर्णित हो चुकी थीं। परमर्दि पर पृथ्वीराज के विजय की कथा उसमें आती थी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है; भीम के साथ पृथ्वीराज के संघर्ष की कथा उसमें आती थी यह निश्चित तो नहीं है किन्तु दोनों में वैमनस्य था, इस विषय के संकेत उसमें मिलते हैं।[1] शहाबुद्दीन पर पृथ्वीराज को जो विजय प्राप्त हुई थी, वह तो उस काव्य का लक्षित विषय ही था, यह 'रासो' के कवि के तत्सम्बन्धी कथन से प्रमाणित है। उसने कहा है कि पण्डित [जयानक] को पृथ्वीराज का यह आदेश हुआ कि वह शाह शहाबुद्दीन पर उसको प्राप्त हुई विजय का काव्य लिखे।[2] और यह उल्लेख उसने रचना के एक प्रारम्भिक प्रसंग में किया है, जिसके पूर्व काव्य की कोई प्रमुख घटना नहीं आती है। इससे यह प्रकट है कि 'रासो' का कवि उन घटनाओं को अपने काव्य का विषय नहीं बनाना चाहता था जो 'पृथ्वीराज विजय' का विषय बन चुकी थीं; और परिणामतः यह भी प्रकट है कि वह एक सर्वथा मौलिक काव्य की रचना करना चाहता था। वह अपनी प्रतिभा का चमत्कार कथा-नायक के जीवन की उन्हीं घटनाओं को अपने महाकाव्य का विषय बनाकर प्रदर्शित करना चाहता था जो पृथ्वीराज के जीवन में शहाबुद्दीन पर प्राप्त विजय के अनन्तर घटित हुई थीं, और यही कारण है कि पूर्ववर्ती घटनाओं का उल्लेख करते हुए भी उसने अपने काव्य को कथा-नायक के जीवन के अन्तिम वर्षों की घटनाओं तक सीमित रक्खा।

इस रचना में चार ही घटनाएँ आती हैं: (१) कैंवास-वध, (२) पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध, (३) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध तथा (४) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज अंत। तीसरी और चौथी घटनाएँ सन्निकट रूप से परस्पर सम्बद्ध हैं। कवि कथा-नायक को पराजित नहीं छोड़ना चाहता था, इसलिए उसने अन्तिम घटना की कल्पना की, यह बहुत सम्भव है; उक्त घटना इतिहास अनुमोदित नहीं है, यह तथ्य इसी ओर संकेत करता है। शेष तीन घटनाओं में ऊपर से देखने पर परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता है। एक सामान्य धारणा प्रचलित रही है कि जयचन्द ने पृथ्वीराज के वैर के कारण शहाबुद्दीन को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया था, या कम से कम उस युद्ध में जिसमें पृथ्वीराज पराजित हुआ था उसने शहाबुद्दीन की सहायता की थी, किंतु 'रासो' में इस प्रकार का एक भी उल्लेख नहीं हुआ है। ऐसा उसका कवि बड़ी सुगमता से कर सकता था, किंतु फिर भी उसने नहीं किया है और कदाचित् इसलिए नहीं किया है कि वह प्राप्त इतिहास की उपेक्षा नहीं करना चाहता था। कैवास-वध की घटना को भी किसी प्रकार उसने पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध अथवा शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध से सम्बन्धित नहीं किया है, यद्यपि यह भी असम्भव नहीं था: 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में संकलित पृथ्वीराज-प्रबन्ध में दिखाया गया है कि कैंवास के वध का जो प्रयत्न पृथ्वीराज ने किया था उसमें वह अकृतकार्य रहा: तदनन्तर वध के इसी प्रयत्न से रुष्ट होकर कैंवास ने शहाबुद्दीन से यह आक्रमण कराया, और प्रच्छन्न रूप से उस युद्ध में उसकी सहायता की जिसमें पृथ्वीराज का पराभव हुआ, और अन्त तक उसने विश्वासघात करके

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता' शीर्षक।

[2] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज विजय और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

पृथ्वीराज का वध भी कराया।[1] किंतु 'रासो' के कवि ने इस प्रकार की कोई कल्पना नहीं की है। कदाचित् प्राप्त इतिहास में इस प्रकार की कोई बात न पाकर ही उसने उपर्युक्त प्रकार की कोई कल्पना नहीं की। फिर भी यह न समझना चाहिए कि 'रासो' के कवि का ध्यान इस विषय पर नहीं था, अथवा वह केवल एक चरित लिख रहा था, जिसमें एक दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र घटनाओं को भी स्थान मिल सकता था। उसने इन तीनों घटनाओं को अपनी सरस कल्पना से जिस प्रकार सूत्रित करने का प्रयत्न किया है, वह दर्शनीय है।

कैंवास-वध और पृथ्वीराज जयचन्द युद्ध में जो सम्बन्ध-हीनता रहती है, वह उसका परिहार एक कथा-सूत्र का विकास कर करता है। कवि कहता है कि कैंवास-वध की घटना का समाचार जब उसकी विधवा स्त्री को मिलता है, वह चन्द से मृत पति का शव दिलाने का अनुरोध करती है, और चन्द जब पृथ्वीराज से इस विषय का अनुरोध करता है, वह बड़े आग्रह के अनंतर इस शर्त पर शव के दिए जाने की स्वीकृति देता है कि चन्द उसे छद्म वेश में कन्नौज ले जावेगा (३.३७-३९)। इस प्रकार कवि कैंवास-वध को प्रासंगिक कथा को भी मुख्य या आधिकारिक कथा का एक उपयोगी अंग बना देता है।

पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध और शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध में जो सम्बन्ध-हीनता रहती है, उसका परिहार भी वह एक कथा-सूत्र का विकास कर करता है। किन्तु यह विस्तार अत्यन्त स्वाभाविक और सरस है। प्रस्तुत संस्करण के सर्ग ९ में कवि कहता है कि जयचन्द से युद्ध के अनंतर पृथ्वीराज संयोगिता को दिल्ली लाकर केलि-विलास में पड़ गया और अपनी शक्ति को उसने नष्ट कर दिया; उसे इस प्रौढ़ रति के समक्ष दिन और रात की सुधि नहीं रहती थी; परिणाम स्वरूप उसके गुरुजन, बांधव, भृत्य और प्रजा में असन्तोष फैल गया। संयोगिता ने पृथ्वीराज को इस प्रकार वश में कर रक्खा था कि उसके लिए संयोगिता को छोड़ कर कहीं भी जाना असम्भव हो गया था: ऋतुएँ आती थीं और चली जाती थीं और संयोगिता के प्रणयानुरोधों के कारण पृथ्वीराज उसे छोड़ कर राजभवन से निकल तक नहीं पाता था। प्रस्तुत संस्करण के सर्ग १० में वह इस अवस्था से चन्द तथा गुरुराज के उद्बोधनों से मुक्त होता है; किन्तु उसकी मोह-निद्रा जब खुलती है, शहाबुद्दीन उसके सिर पर पहुँचा हुआ होता है (१०.२०—२४)। संयोगिता अंतिम बार विलास-मय जीवन की रमणीयता की ओर उसका ध्यान आकृष्ट कर उसे रोकना चाहती है, किन्तु पृथ्वीराज फिर नहीं रुकता है (१०.२५-२६)। फिर भी, इस मोह-निद्रा का जो अनिष्टकारी परिणाम हो सकता था, वह हुए बिना नहीं रहता है, और शहाबुद्दीन के साथ अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज पराजित होता है (सर्ग ११)।

उपर्युक्त के अतिरिक्त भी कथा के अन्त में कथा-नायक के अन्त के साथ कवि कैंवास-वध तथा संयोगिता के केलि-विलास का एक ऐसा सामंजस्य प्रस्तुत करता है जो अत्यन्त सार-गर्भित है। यह चन्द के मुख से कहलाए गए एक कथन के रूप में है:—

प्रथमि राज कंमान बांन द्रिढ मुट्ठि गहहि कर।
जिन बिसमउ मन करहि करहि भुअपत्ति अप्पु वर ॥
जि कछु किअउ कयमास किअउ अप्पनउ सु पायउ।
सोइ संभरी नरेसु तुहि ज अम्मर पुर आयउ।
विधिनां विधान मेटइ कवन दीन मान दिन पाइयइ।
सर एक कोरि संभरि धनी सत्तहि सद्धुदं गमाइयइ ॥ (१२.४६)

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

चंद यहाँ यह कहना चाहता है "जिस विलासिता के गर्त में गिरने के कारण कैंवास की दुर्गति हुई—और तुम्हारे द्वारा हुई—उसी विलासता-गर्त में तुम स्वयं जानते-बूझते गिरे, तो अब उसके परिणाम से कैसे बच सकते हो ? वह गति तो तुम्हारी होनी ही है जो कैंवास की हुई; इस अवस्था में तुम शत्रु के भी प्राण ले सको यही बहुत है।" जैसा हम आगे देखेंगे यह चंद ही जैसा पात्र था जिसके द्वारा इस प्रकार की उक्ति कवि प्रस्तुत करा सकता था। सम्पूर्ण कथा चन्द की उपर्युक्त उक्ति की पृष्ठभूमि में कितनी संगतिपूर्ण और सुसंबद्ध लगने लगती है, यहाँ दर्शनीय इतना ही है। एक अकुशल कवि जिस प्रभाव को प्रचुर प्रयासों के बाद भी कदाचित् ही संपादित कर सकता था, 'रासो' का कुशल कवि एक सहज उक्ति मात्र से संपादित कर देता है, यह उसके सच्चे कलाकार होने का एक ज्वलंत प्रमाण है।

विभिन्न कथाओं के विकास में भी उसकी यह प्रबन्ध-कुशलता देखी जा सकती है। समस्त रचना में एक भी प्रसंग ऐसा नहीं मिलता है जो विषयान्तर उपस्थित करता हो, न कोई अनावश्यक वर्णन-विस्तार मिलता है, यहाँ तक कि एक-एक छंद और एक-एक उक्ति अपने-अपने स्थान पर अनिवार्य लगते हैं। ऐसा लगता है जैसे सम्पूर्ण रचना एक सुनिश्चित योजना के सहारे खड़ी की गई हो, जिसमें उसके हर एक अंग और हर एक अंश का स्थान और कार्य निर्धारित हो। इतना सुगठित प्रबन्ध, कहना नहीं होगा, समूचे प्राचीन और मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में दुर्लभ है।

'रासो' की सम्पूर्ण कथा इस प्रकार सम्यक् रूप से सर्गों में विभाजित है कि वह भी उसके कवि का प्रबन्ध-कौशल सूचित करती है, लघुतम पाठ में सर्ग-विभाजन नहीं है; किन्तु उसमें छंदों की क्रम-संख्या तक नहीं है, इसलिए 'रासो' के मूल रूप में भी स्थिति यही रही होगी यह कल्पना करना उचित न होगा। प्रस्तुत संस्करण का सर्ग-विभाजन 'रासो' के समस्त शेष पाठों के अनुसार किया गया है—केवल कथा की भूमिका का छंद मंगलाचरण के साथ रक्खा गया है, जो शेष पाठों में किसी स्वतन्त्र सर्ग में है, और पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध उसकी प्रबन्ध-कल्पना के अनुसार पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में विभक्त किया जाकर दो सर्गों में रक्खा गया है, जो लघु में तीन सर्गों में तथा शेष पाठों में प्रायः एक ही सर्ग में आता है। इन सर्गों की कथाएँ परस्पर इतनी अलग-अलग हो जाती हैं, कि यह मानना असम्भव हो जाता है कि 'रासो' के कवि के मन में कोई सर्ग-कल्पना नहीं थी। सर्गों के नामों के सम्बन्ध में अवश्य लघु, मध्यम तथा बृहत् पाठों में प्रायः कोई साम्य नहीं है, और सर्गों के बीच-बीच में प्रक्षिप्त कथाओं के आने के कारण नाम-परिवर्तन होता रहा होगा, यह आसानी से समझा जा सकता है। अतः प्रस्तुत संस्करण के लिए सर्गों के नामों या शीर्षकों की कल्पना वर्णित कथा को ध्यान में रखते हुए एक प्रकार से नए सिरे से करनी पड़ी है।

—:*:—

१९. 'पृथ्वीराज रासो' की चरित्र कल्पना

'रासो' की चरित्र-कल्पना ही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है—जैसा कि वह प्रत्येक महाकाव्य की हुआ करती है। एक प्रकार से उसके सभी पात्र असामान्य वीर हैं, किन्तु प्रायः उनके अपने-अपने व्यक्तित्व हैं, जिन्हें नीचे स्पष्ट करने का यत्न किया जा रहा है।

पृथ्वीराज

पृथ्वीराज इस महाकाव्य का नायक है। उसके समस्त कार्य धर्म-बुद्धि से होते हैं। कथा के आरम्भ में ही हम देखते हैं कि वह धीर और विनयशील है और गुरुजनों के समक्ष संकोच करता है। जब जयचन्द के दूत उसकी सभा में राजसूय में सम्मिलित होने का जयचन्द का निमन्त्रण लेकर आते हैं, गुरुजनों को देख कर वह वीर सकुच जाता है और उत्तर नहीं देता है; उत्तर उसका एक गुरुजन गोविंद राज देता है:—

बोलउ न वयण प्रथिराज तांहि।
संकरिउ सिंघ गुरजनन चाहि॥ (२. ३. ११. २२)

इसी प्रकार कन्ह जब उसे 'अयान' कहते हुए एक स्थान पर संबोधित करता है, वह इससे तनिक भी बुरा नहीं मानता है:—

बोलउ कन्ह अयान न्रिप मति मंडन समरथ्थ।
जउ मुक्कहु सथ सथ्थिअनु तउ कत लिन्ने सथ्थ॥ (६.२)

चन्द को तो जैसे उसने पूरी स्वतन्त्रता दे रक्खी है कि वह जब चाहे जो कुछ कहे, यह हम चंद के चरित्र का निरीक्षण करते हुए देखेंगे।

जयचन्द से उसका संघर्ष उसकी सौन्दर्य-लिप्सा के कारण नहीं हुआ है, जैसा सामान्यतः समझा जाता है। ऐसा नहीं है कि उसने संयोगिता के रूप-लावण्य की प्रशंसा सुनी हो और वह कन्नौज पर चढ़ दौड़ा हो; एक दीर्घ मानसिक संघर्ष के बाद अपना कर्त्तव्य समझकर ही उसने यह किया है। और यह समझ लेना उसके संपूर्ण चरित्र को समझने के लिए नितान्त आवश्यक है: कर्त्तव्य के सामने प्राणों की चिन्ता उसने कभी नहीं की है।

'रासो' का कवि कहता है कि जयचन्द की पुत्री संयोगिता ने पृथ्वीराज को वरण करने के लिए व्रत लिया था, यह उससे किसी ने, संभवतः उसके चर ने, कन्नौज के समाचार देते हुए कहा:—

संयोगि जोग वर तुम्ह आज।
व्रत लिअउ वरण प्रथीराज राज॥ (२.१०)

तिहि पुत्तिय सुनि मन हुसउ ताल चवन तजि काज।
कहू बहि गंगहि संचरउ कहू थानि गहउं प्रथीराज ॥ (२.११)

चर की बातें सुनकर उसे आश्चर्य होता है, किन्तु उसे विश्वास हो जाता है कि संयोगिता हृदय से उसपर अनुरक्त है और राजा (जयचन्द) उसे अन्य से ब्याहना चाहता है, यद्यपि दैव को कुछ और ही मंजूर है :—

सुनत राइ अचरिज भयउ हियइ मन्यउ अनुराउ।
नृप घर आनि उर अंगमइ दैवहि अवर स भाउ ॥ (२.१२)

जब से उसने यह सुना है, और फिर यह सुना है कि उसकी स्वर्ण-प्रतिमा दरबान के स्थान पर जयचन्द ने स्थापित की है, उसका चित्त अशान्त रहने लगता है। कैंवास-कर्नाटी प्रणय और उनके वध की घटना उसकी इसी मानसिक अशांति के बीच पड़ती है। कवि ने कहा है कि इस मानसिक ताप से जी को बहलाने के लिए वह आखेट में रहने लगा था, राज-काज उसने अपने प्रधान 'अमात्य' कैंवास को सौंप रक्खा था :—

तिहि तप आखेटक भमइ थिर न रहइ चहुवान।
वर प्रधान जुग्गिनिपुरह धर रष्षइ परधान ॥ (३.१)

जब कैंवास उसकी इस मानसिक स्थिति में राजभवन के नियमों का उल्लंघन कर उसकी दासी के कक्ष में प्रवेश करता है, तो उसका प्राण गँवाना अवश्यंभावी हो जाता है। असंभव नहीं कि भिन्न मानसिक स्थिति में वह अपने प्रधान 'अमात्य' को, जिसने किसी समय भीम चौलुक्य जैसे उसके प्रचंड शत्रु को पराजित किया था (३.६), इतना कठोर दण्ड न देता।

किन्तु तब तक उसके मानसिक संघर्ष की स्थिति समाप्त हो जाती है; कैंवास-वध के अनन्तर अपने बाल-सहचर चन्द से गले मिलकर वह रोता है, क्योंकि अपने उपहासपूर्ण जीवन का अन्त करने के लिए उसने प्राणोत्सर्ग का संकल्प कर लिया है :—

दोइ कंठ लग्गिय गहन नयनह जल गल म्हांसु।
अब जीवन वंछिहि अधिक कहि कवि कोन सयासु ॥ (३.४०)

इस संकल्प पर उसके वीर सहचर चन्द का आनन्दित होना स्वाभाविक ही है, जब वह जान लेता है कि पृथ्वीराज का संकल्प उसके सिर से गुरुतर तथा उसका जीवन हल्का और सिर [कंधों पर] भारी हो रहा है :—

आनन्दउ कवि चन्दु जिय त्रिय किय सच विचार।
मन गरुअर सिर हरुअ हइ जीवन हरउ सिर भार ॥

और इस संकल्प का समर्थन करते हुए वह कहता है :—

धरि वरु पंगु प्रगट्ट अरु थट्ट विहंडिहई।
इत उपहास विलास न आन पसूकिहई ॥ (३.४३.३-४)

उसकी वीरता के सम्बन्ध में तो अधिक कुछ कहना ही व्यर्थ होगा। उसकी सारी जीवन-गाथा वीरता की अनुपम कथा है। संयोगिता का वरण करके वह चुपचाप कन्नौज से चल नहीं देता है, अपने सहचर चन्द के द्वारा वह घोषित करा देता है कि जयचन्द-पुत्री का परिणय करके जयचन्द से दायज के रूप में वह उससे युद्ध चाहता है :—

सज रिपु ढिल्लियनाथ सो ध्वंसनं जग्गिथं आये।
परणेवं तव पुत्ती युध्धं मंगति भूपनं सोइ ॥ (७.२)

उसके सामंत जब देखते हैं कि युद्ध विषम है और यह सम्भव नहीं है कि कन्नौज में रुक कर युद्ध किया जावे, वे पृथ्वीराज से अनुरोध करते हैं कि वह दिल्ली की दिशा में प्रस्थान करे और

वे सब एक-एक करके जयचन्द की विशाल वाहिनी को रोकें और जिस प्रकार भी सम्भव हो उसे दिल्ली तक सुरक्षित पहुँचा दें। किन्तु पृथ्वीराज इस प्रस्ताव से सहमत नहीं होता है, और कहता है :—

मति घटी सामंत मरण हउ मोहि दिषावहु।
जम चीठी विणु कदन होइ जउ तुमउ बतावहु।
तुम गंजउ भर भीम सास गव्वइ मयमत्ता।
मइ गोरी साहब्बदीन सरवर साहंता।
सुह सरणहि हींदू तुरक तिह सरणागत तुम करहु।
बूझिअइ न सूर सामंत हो इतउ बोझ अप्पन धरहु॥ (८.२)

उनके अनेक प्रकार से समझाने पर भी वह उनके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता है, जब तक कि उसका बाल-सहचर चन्द इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं करता है (८.५-६)। चन्द के कथन को सुनकर पृथ्वीराज कहता है कि उसका कथन उसके लिए अमिट है :—

मिट्यउ ण जाइ कहणो वय कवि चंद सार सा मंत।

और तब वह इस प्रस्ताव को स्वीकार करता है।

उसके इस वीर और कर्त्तव्य-सजग जीवन में केवल एक बार शिथिलता आती है—और यह शिथिलता उसकी समस्त जीवन-साधना पर पानी फेर देती है। 'रासो' की यह शृंगार-कथा वास्तव में उसकी सबसे करुण गाथा है। सकुशल दिल्ली पहुँचकर पृथ्वीराज संयोगिता के साथ केलि-विलास में इस प्रकार लिप्त हो जाता है कि अपनी शक्ति को वह नष्ट कर देता है, और उसके मन में केवल एक बात रहती है—वह किस प्रकार संयोगिता को सुख प्रदान करे। परिणाम यह होता है कि उस मानिनी की प्रौढ़ रति में उसे दिनों और रातों का होना-जाना नहीं ज्ञात होता है, और उसके गुरुजन, बांधव, भृत्य तथा प्रजागण उससे खिन्न हो जाते हैं :—

इह विधि बिलसि विलास असार सुसार किअ।
दइ सुष जोग संजोगि सोइ पृथ्वीराज जिय।
अहनिसि सुध्धि न जानहि मानिनि पौढ रति।
गुरु बंधव भ्रत लोइ भई विपरीत गति॥ (९.८)

उसकी यह मोह-निद्रा तब भंग होती है जब उसका बाल-सहचर चन्द राजगुरु के साथ उसे शहाबुद्दीन के होने वाले आक्रमण की सूचना देता है (१०.२२)। और फिर कर्त्तव्य की पुकार के सामने उसे सुन्दरी का मोह रोक नहीं सकता। वह उसी प्रकार अपने कर्त्तव्य में पुनः स्थित हो जाता है जिस प्रकार कोई नट वेष बदल कर आ जाता हो:—

सुणि कग्गद पिट्ठउ सुकर धर रष्पइ गुरु भट्ट।
तरकि तोन सजियउ ततिष्वि जिम वेष छंडि सू नट्ट॥ (१०.२४)

इसके बाद संयोगिता काम-सुख में उसे पुनः प्रवृत्त होने को आमन्त्रित करती है, किन्तु पृथ्वीराज उसके सम्मोहन में नहीं पड़ता और कहता है कि जिस वीर-पत्नी ने उसके बाहुओं की पूजा की थी वह मुग्धा काम की बातें किस प्रकार कर रही है?

सुनि प्रिय प्रिय दिष्षौ वदन किय जिय निर्भय पाथ।
बाहू पुज्जउ वरह तुह कहि स मुग्ध रतिनाथ॥ (१०.२६)

यह संयोगिता से उसकी अन्तिम भेंट है।

शहाबुद्दीन की सेना उसकी सेना से कई गुना बड़ी है, उसके सामंत जयचन्द से हुए उसके

युद्ध में प्रायः कट चुके हैं—इसलिए पराजय तो निश्चित है, फिर भी वह वश्यता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता, और अन्त तक लड़ता है, जब तक कि वह बन्दी नहीं कर लिया जाता है।

बन्दी ही नहीं, अन्धा किए जाने के बाद भी उसकी वीर वृत्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ता है; चन्द जब शहाबुद्दीन से मिलता है, तो शहाबुद्दीन कहता है कि अन्धा होने पर भी अपनी वक्रदृष्टि नहीं छोड़ रहा था, इसलिए उसे थाने में रख दिया गया था:—

वै चंद अन्ध मइ रिस ज कीन।
पर बंक दीठ छंडइ न भीन॥
विहान थान रप्पि ज अद्दब्बु।
किरतारि हथ्थ करिअ न गब्बु॥ (१२.१५.९-१२)

किन्तु जीवन के अन्त में वह निराश हो चलता है। चन्द के संजीवन-मंत्र को सुनकर एक बार उसकी नसों में नवजीवन का संचार अवश्य होता है, किन्तु फिर वह निराशा से सिर झुका लेता है:—

विप्र देह नव तनह सुभग्ग।
अंपि पानि मनु चितह लग्ग।
पहिचानि चन्दु वर धुनिग सीस।
सिर नयो नही मन भई रीस॥ (१२. ३३. १७-२०)

यह चन्द ही है कि उसने उसको शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए तैयार कर लिया है।

पृथ्वीराज की अंतिम झाँकी बाण-सन्धान के पूर्व मिलती है; 'रासो' का कवि कहता है कि इस समय चन्द का मुख चन्द्र का सा हो रहा था और राजा के मन की संधि (शंका) मलिन हो चुकी थी:—

इलि धसि पानि पविस्ट किय सिंगिनि सर गुन संधि।
परचि चंद मुष चंद भयु मलिय राज मन संधि॥ (१२. ४७)

इसके बाद तो 'रासो' का कवि इतना ही कहता है शहाबुद्दीन के धरती पर गिरते ही राजा का भी मरण हुआ। किन्तु यहीं पर 'रासो' का अन्त करते हुए वह कहता है कि "देवताओं ने उसके सिर पर पुष्पांजलि छोड़ी, जो धरणी म्लेच्छों से आबद्ध हो गई थी वह अब नव स्त्री के समान हँस पड़ी, तृण (शरीर के भौतिक तत्व) तृणों (भौतिक तत्वों) को तथा ज्योति (जीव) ज्योति (परमात्मा) को संप्राप्त हुए":—

मरन चन्द वरद्दिआ राज पुनि साह हन्यउ सुनि।
पुहु पंजलि असमान सीस छोडी त देवतनि।
मेछ अवध्धित धरणि धरणि नवत्रीय सुहस्सिग।
तिनहि तिनहि सं जोति जोति जोतिहि संपत्तिग।

कहना नहीं होगा कि पृथ्वीराज के इस अमर-चरित्र की कल्पना समूचे हिन्दी साहित्य में अनुपम है, और इसके लिए हमें 'रासो' के कवि का चिरकृतज्ञ होना चाहिए।

संयोगिता

संयोगिता की पहली झाँकी काव्य में एक मनोरम रूप में प्राप्त होती है: वह यवाङ्कुरों को हाथ में लिए मृग-बच्चों को चरा रही है, और ऐसी लग रही है मानो उस मानिनी के मिस इंदु ही [मृग-शावकों को] नेत्रों से देख कर आनंदित हो रहा हो; उसकी सखियाँ और सहचरियाँ परस्पर बातें कर रही हैं कि शुभा संयोगिता के संयोग (विवाह) के लिए विधाता ने मानो मन्मथ को ही निर्मित किया होगा:—

जब अंकुर करि पानि धरावति अच्छ सृगु।
मनु मानिनि सित इंदु आनंदह देवि दृगु।
सहि सहचरि ति चरन परसपर धरु किअ।
सुभ संजोगि संजाग जागुहु मनमथ किअ॥ (२.४)

संयोगिता के इस प्रथम दर्शन में कवि उसे जो 'मानिनी' कहता है, वह प्रसंग-सापेक्ष्य नहीं है, बल्कि चरित्र-सापेक्ष्य है—प्रारम्भ में कवि ने संयोगिता का चरित्र ही एक मानिनी के रूप में चित्रित किया है। उसने एक बार पृथ्वीराज को वरण करने का निश्चय कर लिया है (२-१०) तो फिर उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता है। जयचन्द उसको इस निश्चय से विरत करने के लिए दासियाँ नियुक्त करता है (२-१३)। अनेक प्रकार के तर्कों से दासियाँ उसे इस निश्चय से डिगाना चाहती हैं, किन्तु संयोगिता स्पष्ट कहती है कि वह उनकी बातों में नहीं आ सकती है, और उसने संकल्प कर लिया है कि चाहे उसे सौ जन्म ग्रहण करने पड़ें, वह पृथ्वीराज को ही वरण करेगी :—

न मो राजन संवादे न मो गुरुजनागरे।
वरमेकं शर्थ देह अन्यथा पृथिराजए॥ (२.१९)

जयचन्द ने उसके इस हठ पर रुष्ट होकर उसे गंगा तट के एक अन्य आवास में भेज दिया है। वह इसी आवास में रहती है। जब कन्नोज की प्रदक्षिणा के प्रसङ्ग में गंगा-तट पर मछलियों को मोती चुगाते हुए पृथ्वीराज का दूर से उसे प्रथम दर्शन प्राप्त होता है, तत्काल उसे इस नवागतुक के सम्बन्ध में निश्चित रूप से ज्ञात नहीं होता है; किन्तु किसी के मुख से पृथ्वीराज का इस समय नाम सुनते ही उसके शरीर में प्रेम के सात्विक अनुभाव प्रकट हो जाते हैं :—

सुनि रव सुंदरि उभभ तन स्वेद कंप सुर भंग।
मनु कमलिनि कल संभरी अभ्रित किरन तर रंग॥ (६.११)

यह उसका प्रेमिका का रूप है। उसको इस प्रकार प्रेम-कातर देख कर उसकी एक सखी जब उसे सतर्क करती है कि वह इस सम्बन्ध में आगे कदम तभी बढ़ाए जब उसे निश्चय हो जावे कि यह पृथ्वीराज है (६.१२), तब वह रुकती है। पृथ्वीराज का निश्चय कर इसके अनंतर संयोगिता की भेजी हुई एक सखी उसे संयोगिता से मिलाती है, और दोनों का पाणिग्रहण होता है। उसका वरण कर पृथ्वीराज जब जाने लगता है, उसको विदाई का पान देते हुए वह कह उठती है, "संयोगिता की रक्षा करो! हे यागिनीपुरेश, तुम्हारी जय हो, जय हो! सभी प्रकार से [तुम्हारे जाने के] निषेध का जो तांबूल है, उसे ग्रहण करो।"

पायातु पंग पुत्रीय जयति जयति योगिनि पुरेसं।
सब विधि निषेधस्य यः तंबोलस्य ममादार्य॥ (६.१७)

किन्तु वही प्रेमिका, जिसकी कामाग्नि प्रेमी के पाणि-स्पर्श तथा दर्शन से संदीप्त हो चुकी थी, जिसने प्रेमी के चले जाने पर मन छोटा कर लिया था, जिस प्रकार जल के न रहने पर मछली का हो जाता है (६.२५), बार-बार जिसकी आँखें जाते हुए प्रेमी को देखने के लिए गवाक्षों में जा लगती थीं, जो सखियों के समझाने पर भी चुपचाप उसी प्रकार व्यथित हो रही थी जैसे चातकी पावस को बिताती है, (६.२६) जो अपने विरह-दाह को शीतल करने के लिए शरीर में चन्दन का लेप कर रही थी, जो लज्जापूर्वक अपने नेत्रों को बार-बार अंचल से ढँक रही थी, कि उसकी प्रेमातुरता प्रकट न हो (६.२७), जिसके विरह ताप का निवारण करने में सोम, अमृत और कमल भी व्यर्थ हो रहे थे (६.२८), जब पृथ्वीराज को पुनः आते देखकर यह समझती है कि वह युद्ध से

१३

विमुख होकर अपनी प्रेमिका के पास आ रहा है, सिर पीट लेती है और कह उठती है, "जिस प्रिय जन की ओर लोक की उँगलियाँ उठें, उस प्रियजन से क्या काम !"

जिहि प्रिय तन अंगलि फिरइ तिहि प्रियजन कहा कज्ज । (६.३०)

यह संयोगिता का वीराङ्गना का रूप है। सामन्तगण उसे बहुतेरा समझा रहे हैं, और उस मदन-शर से विनष्टा के प्राण एक क्षण के लिए दयित (प्रिय पति) के प्राणों से अभिन्न भी हो रहे हैं, फिन्तु उस के नेत्र-प्रवाह उस दिवस की कथा कहते ही रहते हैं :—

मदन सरालति विनष्टा निमिषि इक्क प्रान प्रांनेन ।
नयन प्रवाहसि विनष्टा दिवा कथय कथा ।। (६.३२)

और जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि पृथ्वीराज युद्ध में जा रहा है, केवल उसे लेने के लिए आया हुआ है, हर्ष से पूरित होने के कारण उसका गला भर जाता है और वह पृथ्वीराज के साथ घोड़े की पीठ पर जा बैठती है :—

सुन्दरि सोचि समझ्झिम गह गह कंठ भरि ।
लयहि प्रान प्रथिराज स पंचिय बाहु करि ।
दिय हय पुट्ठिय भार सुसव्व सुलष्षिनउ ।
करति तुरंग सुरंग स पुछ्छित बछ्छनउ ॥ (६.३४)

युद्ध के अन्तर्गत हमें उसका पत्नी का स्निग्ध मधुर रूप दिखाई पड़ता है जब प्रथम दिन के युद्ध के अनन्तर रात्रि के आगमन पर तारिकाओं के [हर्ष के] लिए इन्दु का उदय होता है, और नील कमल खिलता है, और नव विरही मिलकर नव स्नेह के नव जल (अश्रु) का रुदन करते दिखाई पड़ते हैं। वे आभूषणों को समीप ही पड़ा रहने देते हैं, उन्हें धारण नहीं करते हैं; फिर भी वे परस्पर मिलकर मृदु मंगल मनाते हुए मन में सभी प्रकार के मनोरथ करते हैं :—

पेजनह कउ उयउ इंदु इंदीवर कह्यउ ।
नव विरही नव नेह नव जल नय रुद्रयउ ।
भूषन सोभ समीपनि मंडित मंडि तन ।
मिलि मृदु मंगल कीन मनोरथ सब्ब मन ।। (६.३३)

किन्तु दिल्ली पहुँच कर यही संयोगिता एकदम परिवर्तित हो जाती है और उसका विलासिनी का यह रूप हमारे सामने आता है (९.१-८), जो पृथ्वीराज के सर्वनाश का कारण होता है : वह संयोगिता जो किसी समय पृथ्वीराज का वरण करने के लिए सौ जन्म ग्रहण करने को उद्यत थी (२.१९), जीवन की सार्थकता काम-केलि में मानने लगती है; और उस मानिनी की प्रौढ़ रति में पृथ्वीराज भी इस प्रकार दीन और दुनिया को भुला देता है कि उसे दिन-रात की सुधि नहीं रहती है, जिसके परिणाम-स्वरूप उसके गुरु, बांधव, भृत्यादि की गति विपरीत हो जाती है :—

इह विधि विलसि विलास असार सुसार किअ ।
बहु सुष जोग संजोगि सोइ प्रथिराज जिअ ।
अह निसि सुधिब न जानहि मानिनि प्रौढ़ रति ।
गुरु बंधव भृत्त कोइ भई विपरीत गति ॥ (९.८)

ऋतुएँ आती हैं और चली जाती हैं, संयोगिता उनमें पृथ्वीराज द्वारा भोगाश्रित होती रहती है (९.९), उसका प्रिय (पति) कहीं जाने को होता है तो वह ऋतु की रमणीयता का प्रतिपादन करते हुए उसे रोक लेती है (९.१३), वह कह उठती है कि जो तरुणी बाला है, वह निष्पत्रपत्र नलिनी के सदृश ऐसी दीन हो रही है कि क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकती है; कान्त के जाते ही वह विरह-वारण से अपनी शरीर-वाटिका को ध्वस्त होने देना नहीं गवारा कर सकती है :—

रोमाली घन नीर निध्ध वरये गिरि ढंग नारायते ।
पब्वय पीन कुचानि जानि सयला फुंकार झुंकारये ।
शिशिरे सर्वरि वारुणे च विरहा मम हृदय विदारये ।
माकांत मृगबध्ध सिघ गमने किं देव उच्चारये ॥ (९.१४)

इसी समय पृथ्वीराज पर शहाबुद्दीन आक्रमण कर देता है। चन्द तथा गुरुराज पृथ्वीराज को उस विलास-निद्रा से जगाते हैं, तब इस संयोगिता का कामिनी रूप प्रकट होता है। जो संयोगिता पृथ्वीराज को कन्नौज के युद्ध में अपनी ओर वापस आता देखकर क्षुब्ध हुई थी, और जिसने कहा था:—

जिहि प्रिय तन अंगलि फिरइ तिहिं प्रियजन कहा कज्ज । (६.३०)

वही इस भयानक स्थिति में जीवन की सार्थकता काम को तुष्ट करने में बताती है। पृथ्वीराज से वह कहती है कि वही धन धन है जिसका भोग किया जा सके, वही सुख सुख है जिसमें काम का आरोह हो, काम-विहीन जीवन में संसार मरण-तुल्य है; प्रतिदिन दिनकर आता है, चन्द्र आता है, दिन होता है, रात होती है, किन्तु मनुष्य का जीवन तो एक दिन समाप्त हो जाता है; धरा यदि पृथ्वीराज की अर्द्धाङ्गिनी है, तो संयोगिता भी तो है, उसका अर्द्धाङ्ग होना भी उसे सार्थक करना चाहिए; हंस और हंसिनी अन्त तक साथ रहते हैं, इतना ही नहीं, सर और पंकज जैसे जड़ पदार्थ भी अन्त तक साथ निभाते हैं :—

कहु सु प्रियह पउमिनिय कंत भञ्जु धरउ तउ न भञ्जु ।
सुष सुषमार आरोहु असर संसार मरन मन ।
दिन दिनियर दिन चन्दु रयनि दिन दिन ही आवहि ।
जंतु जंतु इह रमनि स्रवन लग्गवि समझावहि ।
अरधंग धरा अरधंग हम अरधंगी अरधंग भरि ।
जस हंस हंस तह हंसिनी [सर सुकइ] पंकज न परि ॥ (१०.२५)

पृथ्वीराज इस पर जी कड़ाकर ठीक ही कहता है कि उसे आश्चर्य है कि जिसने उसके बाहुओं की पूजा की थी, वह मुग्धा आज रतिनाथ की बातें कर रही है :—

सुनि प्रिय प्रिय हिंस्यौ वदन किय जिय निर्भय पाथ ।
बाहू पुजाउ वरह तुह कहिस मुग्ध रतिनाथ ॥ (१०.२६)

और 'रासो' का कवि उचित ही इस प्रसंग के बाद एक बार भी इस नारी का स्मरण नहीं करता है।

चन्द

चन्द का प्रथम आगमन कथा में कैंवास-वध के अनन्तर होता है। आखेट से लौटकर जब पृथ्वीराज सभा बुलाता है, चन्द उसमें उपस्थित होकर राजा को आशीर्वाद देता है (३.१९)। इसके पूर्व केवल यह कथन आता है कि कैंवास-वध की सारी घटना सरस्वती ने उसको स्वप्न में सुना दी थी (३.१४)। इस प्रथम दर्शन में ही चन्द एक निर्भीक व्यक्ति ज्ञात होता है; कवि कहता कि कैंवास-वध के बारे में चन्द से पृथ्वीराज का प्रश्न करना और उससे उत्तर के लिए हठ करना फणीन्द्र के मुख में उँगली देने के सदृश था :—

हठि लगाइ चहुआन ज्रिप अंगुलि मुषह फणिंदु ।
तिहु पुरि तुअ मति संचरइ सु कहे बनइ कवि चंदु ॥ (३.२५)

और चन्द अपने प्राणों की बाजी लगा कर उसी प्रकार उत्तर भी देता है :—

सेस सिरप्पपरि सूर तर जइ पुच्छइ ज्रिप एस ।
दोहुं बांकि मंडन मरञु कहइ तउ कव्वु कहेस ॥ (३.२६)

इस दृष्टि से देखने पर ज्ञात होगा कि उसे काव्य में जो 'चन्द चन्द' (५.१३) या 'कविचंडिय' (३.१९) कहा गया है, वह सर्वथा तथ्यपूर्ण है। यह उसी का साहस था और पृथ्वीराज ने उसी को जैसे इसका अधिकार भी दे रखा था कि पृथ्वीराज जैसे उग्र स्वभाव के शासक को जिस प्रकार वह चाहे मार्ग पर ला सकता था और कथा भर में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं; यथा :

पृथ्वीराज को दिल्ली की ओर मोड़ने में सामन्तों के अकृतकार्य होने पर इस कार्य में वही कृतकार्य होता है, और पृथ्वीराज ठीक ही कहता है :—

मिटयउ ण जाइ कहणो यथ कवि चन्द सार सामंत। (८.७)

विलास-मग्न पृथ्वीराज को वही कहला भेजता है :—

गोरी रत्तउ तुम धरा तुं गोरी अनुरत्त। (१०.२०)

और उसको लिख भेजता है कि बाण तो अपने अधीन है, यदि और कुछ उससे नहीं हो सकता तो उसके द्वारा ही उद्योग करके वह प्राणों की रक्षा करे और सामन्तों से वह मन्त्र करे कि दिल्ली की धरा उसके कारण न डूब जावे :—

अप्पज बाण चहुआन सुनि प्रान रपिक प्रारंभ करि।
सामंत यही सामंत करि जिनि बोलइ ढिल्लिय जु धरि।। (१०.२३)

गजनी पहुँच कर पृथ्वीराज को प्रतिशोध लेने के लिए प्रेरित करने पर उसको जब आगा-पीछा करते देखता है, वह कह उठता है :—

अरे नरिंद चा बंध पिंड कच्चउ सुर साचउ।
अप्पु तेज संगीर धरा आयास ज पंचउ।
जरा जाल बंधियउ काल आनन मधि पिल्लइ।
हंतुह हंतुह अजप जप्पि सप चक कर मिल्लइ।
जिम चल्लइ हंस हंसी सरिस छंडि मोह तन पंजरहि।
प्रथीराज आज तिहि रासि कवि कवि नरिंद जिनि उच्चरहि ॥ (१२.३८)

और राजा के मन में अन्त तक दुविधा शेष देखकर कह उठता है कि कैंवास के साथ उसने जो कुछ किया था, वही तो उसके साथ भी हो रहा था, जिस विलासिता के कारण कैंवास के प्राण उसने लिए थे, उसी विलासिता का परिणाम अब उसे स्वयं भोगना पड़ रहा था, फिर क्यों यह आगा-पीछा वह कर रहा था :—

प्रथिराज कमान बान लिउ मुट्ठि गहहि कर।
जिन विसमउ मन करहि करहि भुअपत्ति अप्पु बर।
जि कछु दियउ कयमास किअउ अप्पनउ सु पायउ।
सोइ संभरी नरेसु तुहि ज अम्मरपुर आयउ।
विधना विधान मेटइ कवन दीनमान दिन पाइयइ।
सर एक फोरि संभरि धनी सत्तहि सघुर गमाइयइ॥ (१२.४९)

ऐसे निर्भीक किन्तु प्रबुद्ध सहचर दुर्लभ होते हैं; यह पृथ्वीराज का सौभाग्य था कि उसे ऐसा कवि-मित्र प्राप्त हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि पृथ्वीराज इस रचना में जो कुछ है, उसका अधिकांश वह चन्द के कारण है।

सुख में, दुःख में, हर्ष में और विषाद में वह हर जगह पृथ्वीराज के साथ है, यथा :

जयचन्द के किए अपमान का प्रतीकार करने के लिए जब पृथ्वीराज प्राणोत्सर्ग का संकल्प करता है, तो दोनों गले मिलकर खूब रोते हैं और चन्द हर्षपूर्वक उसका समर्थन करता है :—

दोइ कंठ लग्गिय गहन नयनइ जल गल न्हांसु।
अब जीवन बंछिहि अधिक कहि काँच कोन सयानु ॥

आनंदउ कवि चंदु जिय निृप किय संच विचार।
मन गरुअर सिर हरुग हइ जीवन हरुअ सिर भार ॥ (३.४२)

और कह उठता है :—

धरि घरु पंगु प्रगट्ट अरु थट्ट विहंडिहइं।
इत उपहास विलास न प्रान पसूकिहइं ॥ (३.४३)

वस्तुतः चन्द से अलग करके पृथ्वीराज को देखा नहीं जा सकता है।

अन्य पात्र

कथा के शेष पात्र विकसित नहीं किए गए हैं। जयचन्द और शहाबुद्दीन पृथ्वीराज के अच्छे और समर्थ प्रतिद्वन्दी हैं, किन्तु उनमें उस प्रकार की जान-तोड़ वीरता का विकास कवि नहीं करता है जैसी कथा-नायक में करता है, किन्तु वे कापुरुष भी नहीं हैं।

जयचन्द और पृथ्वीराज की तुलना करते हुए कवि ने एक स्थान पर ठीक ही कहा है कि पृथ्वीराज वास्तविक शूर है, जब कि जयचन्द अपनी पारसीक सेना से शूर बना हुआ है :—

सत भट किरण समूरउ सुरंगो अरेन जां न आयेस।
जोगिनिपुर पति सूरो पारस मिलि पंगु रायेस ॥ (८.८)

शहाबुद्दीन में कवि ने वीरता का वैसा विकास नहीं किया है जैसा नृशंसता का। वह पृथ्वीराज को पराजित करने के बाद न केवल उसे बंदी करता है, उसकी आँखें तक निकलवा लेता है—उस पृथ्वीराज की जिसने उसे बन्दी करके भी अनेक बार छोड़ दिया था (११.७) और काव्य में जब पाठक देखता है कि इस कृतघ्न और नृशंस शत्रु का चन्द युक्तियों से कथा-नायक द्वारा बध कराता है, यद्यपि वह स्वयं भी मारा जाता है, उसे वह सन्तोषपूर्ण आनन्द प्राप्त होता है जो भारतीय साहित्य में काव्य का लक्ष्य माना गया है।

पृथ्वीराज के समस्त सामंत उसी के अनुरूप वीर हैं। उनके वीर कृत्यों के वर्णन में अतिशयोक्ति देखी जा सकती है, किन्तु वह अतिशयोक्ति भी औचित्यपूर्ण लगती है : हरसिंह, कनकबड़ गूजर, निडर राठौर, कन्ह, अल्हन, अचलेस, विंझ, सब्ब, लषन और पाहार तोमर के प्राणोत्सर्ग, जो अपने राजा की रक्षा में उन्होंने जयचन्द की विशाल सेना को रोकते हुए किए हैं (८.११-२५), अद्भुत हैं।

इस वीर काव्य में एकमात्र कैंवास ऐसा अभागा पात्र है, जिसका केवल कालिमापूर्ण चरित्र विकसित किया गया है (सर्ग ३)।

—:*:—

२०. 'पृथ्वीराज रासो' की रस-कल्पना

सम्पूर्ण काव्य का अंगी रस वीर है, ऊपर आये हुए 'पृथ्वीराज रासो की प्रबन्ध-कल्पना' तथा 'पृथ्वीराज रासो की चरित्र-कल्पना' शीर्षकों से यह बात स्वतः प्रकट हुई होगी। किन्तु अन्य रस भी इसमें यथास्थान अंग बन कर आते हैं। सारी रचना में पृथ्वीराज, उसके सामन्तों और चन्द के कथन पाठक के मन को उत्साह की उमड़ती हुई नदी में डाल देते हैं, जिसमें वह डूबता-उतराता आगे बढ़ता जाता है, उनके अतिमानवीय कृत्य उसे आश्चर्य-चकित करते रहते हैं, संयोगिता के चरित्र में उसे पूर्वानुराग, मिलन, विरह और संभोगरति के अति मनोरम चित्र मिलते हैं, आदर्श के लिए जीवन की उपेक्षा पूर्वक बलिदान की भावना रचना भर में स्थान-स्थान पर निर्वेद की सृष्टि करती है, रचना के अंतिम अंशों में शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए कथा-नायक से की गई चन्द की सारी प्रेरणा निर्वेद का सहारा लिए चलती है, कैंवास के शव के लिए उसकी विधवा पत्नी की याचना और उसके साथ उसका चितारोहण करुणा जाग्रत करते हैं, युद्ध की विभीषिका का कहीं-कहीं पर जो वर्णन होता है, वह भयानक की अच्छी सृष्टि करता है, युद्ध में संहार के वर्णन कहीं-कहीं वीभत्स की झलक दिखाते हैं, कैंवास-वध में पृथ्वीराज की क्रोध युक्त मुद्रा किंचित् रौद्र का दृश्य उपस्थित करती है। केवल हास्य चंड (उग्र) चन्द द्वारा कदाचित् स्वभावतः उपेक्षित हुआ है, अन्यथा काव्य के नव रस इस रचना में अपने प्रकृत रूप में अनायास आए हुए मिलते हैं।

रचना की धुर अन्तिम पंक्तियों में उसके कवि का किया हुआ यह कथन कि यह अपूर्व रासो नवरसों से सरस है, इसके छन्दों को चन्द ने अमृत के समान किया है, और यह श्रृंगार, वीर, करुणा, वीभत्स, भय, अद्भुत और शांत रसों से संयुक्त है :—

> रासउ असंभु नवरस सरस छंदु चंदु किअ अमिअ सम।
> श्रृंगार वीर करुणा बिभछ भय अद्भुतह संत सम॥

अक्षरशः सत्य है। अनेक उतार-चढ़ाव के साथ, जो कवि का अन्य रसों का समावेश करने का कवि का पर्याप्त अवसर देते हैं, वीर का इतना अद्भुत परिपाक समूचे हिन्दी साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता है।

—।*।—

२१. 'पृथ्वीराज रासो'

के

वर्णन

'रासो' एक वर्णन-सम्पन्न काव्य है, और ये वर्णन प्रायः सुन्दर हैं। कवि के वर्णन-कौशल और तत्सम्बन्धी उसकी मुख्य प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिए इन्हें निम्नलिखित वर्गों में रक्खा जा सकता है:—

(१) युद्ध-सज्जा तथा युद्ध-वर्णन
(२) नख-शिख-वर्णन
(३) सामान्य प्रकृति-वर्णन
(४) षड् ऋतु-वर्णन
(५) अन्य वर्णन

नीचे यथाक्रम इन पर विचार किया जाएगा।

(१) युद्ध-वर्णन

रचना में दो युद्ध आते हैं, प्रथम है पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध, और द्वितीय है शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध।

जयचन्द की युद्ध-सज्जा का वर्णन करते हुए प्रथम के प्रसंग में सब से पहले हमें अश्व-सेना का वर्णन मिलता है (६. ५)। इसमें कई जातियों के अश्वों का वर्णन किया गया है, जिनमें प्रमुख हैं लाहौर के लोहित वर्ण के तुर्की, सिन्धु के पश्चिम के देशों के सिंधी, अरबी, कच्छी, ताज़ी और पंडुवे। कहीं-कहीं पर इस वर्णन में अच्छी उक्तियाँ मिलती हैं: यथा उनकी वल्गा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वह ऐसी लगती है मानो आउझ (ढोल की जाति के एक प्रकार के वाद्य) पर [दोनों] हाथों से ताल बजाए जा रहे हों:—

साहियं वग्ग कहुइ जि लारा।
मनउ आवझइ हथ्थ वज्जंति तारा॥ (६.५. ५-६)

सुसज्जित होकर उनके बढ़ने का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वे ऐसे लगते हैं मानों उच्च (श्रेष्ठ) उपमा हो जो [कवि के मानस में] आगे बढ़ती चली आ रही हो:—

राग वागे नहीं सुधि उरक्की।
मनउ उप्पमा उच्च आवइ थुरक्की॥ (६. ५. १९-२०)

शेष वर्णन सामान्य है।

इसी प्रकार अन्यत्र हाथियों की सेना का वर्णन किया गया है (७. १०)। वर्णित जातियाँ हैं: सिंहली तथा सिंधी। वर्णन सामान्य है।

रचना के सर्ग ७ का पूर्वार्द्ध युद्ध की तैयारी के वर्णन से भरा है। इस वर्णन में कवि-प्रथा के अनुरूप प्रायः अतिशयोक्ति का आश्रय लिया गया है, यथा निम्नलिखित छन्द में :—

थ दिन रोस रहियव चवि चहुआन भाउन कह।
खड उप्परि सउ साहस बीह अमानिय लप्पर वह।
सुद्दि गिर जस थल भरिग भजिग जल गंग प्रवाहइ।
सह अच्छरि अच्छरहि खिसान सुरलोक नाग डह।
कहि चंद दंद हुहु दलि भयउ धन जिमि सिर सारह भरिग।
भर सेस हरी हर ब्रह्म तम तिहि समाधि तिहि दिन टरिग ॥ (७.५)

इसी प्रकार की कल्पना निम्नलिखित पंक्तियों में भी मिलती है:—

सज्जतं धूम धूमे सुनतं।
थंभियं तीजपुर केलि पत्तं।
डमरु डह डह कियं गवरि कतं।
जागियं जोग जोगादि अंतं।
किम किमे सेस सिर भार रहियं।
किमे अधासु रांध रथ्थ नहियं।
कमल सुत कमल नहिं अंघु लहियं।
संकियं ब्रह्म ब्रह्मांड गहियं।
राम रावन्न कवि किन कहिता।
सकति सुर महिप बलिदान लहिता।
कंस सिसुपाल पुरजयन मथुता।
आमिया जेन भय लिप्प सुरता। (७.६.१-१२)

किन्तु इसी वर्णन में सादृश्य-प्रधान उक्तियाँ सुन्दर हैं, यथा :—

सेन सन्नाह नव रूप रंगा।
मनउ झिल्लियइ सि त्रिनेत्र गंगा।
टोप टंकार दीसे उतंगा।
मनउ बद्दले पंति बंधी विहंगा।
जिरह जंजीन गहि अंग लाई।
मनउ कंठ कंठीन गोरष्य पाई।
हथ्थरे हथ्थ लग्गे सुहाई।
छाव लग्गइ न थक्कइ थकाई।
राग जरजीन बाजइत्त अछे।
खेलअइ आनु जोगिंद कछे। (७.६.२७-३६)

इस प्रसंग में युद्ध-वाद्यों का जो वर्णन है, वह भी सुन्दर है: 'रासो'-कालीन वाद्य-समूह पर प्रकाश डालने के कारण वह उपयोगी भी है :—

नीसान साद्दं सि बाजे सुचंगा।
दिसा देव दक्खिन्न लध्धा उपंगा।
तबल्ल तदूर जंगा मृदंगा।
मनउ नृत्य नारद कहि प्रसंगा।
बजहि वंस बिसतार बहु रंग रंगा।

जिने मोहि कर सथ्थि लग्गे कुरंगा।
धीर दुंडीर सा सोभ श्रृंगा।
नचइ ईस सीसं धरो जासु गंगा।
सिंधु सहनाइ अवने उलंगा।
सुने अछ्छरिअ अछ्छ मज्जइ सुअंगा।
नफेरी नवरंग सारंग भेरी।
मनउ नृत्य नइ इंद्र आरंभ केरी।
सिंधु सावझनं गेन भेरी।
झझे आवझ हथ्थ करेरी।
बछ्छरहि धाउं घन घंट घेरी।
चिंतिता अधिक वध्धे कुबेरी।
उपमा पंड नव नैन लग्गी।
मनउ राम रावन्न हथ्थेव लग्गी। (७. ६. ३९–५६)

इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियों में युद्धारंभ से उठी हुई धूल का जो अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है, वह मनोरम है :—

हयग्गयं नरभ्भरं।
उनद्दियं जलध्धरं।
दिसा निसान वज्जये।
समुद्द सद्द लज्जये।
रजोद्द मह उप्पली।
व्योम पंक संकुली।
तडाक चाक रंगिनी।
चकी चक वियोगिनी।
पयाळ पाळ पल्लये।
दिगंत मंस हल्लये।
अनंद ते निसाचरे।
कु कपि तुड साचरे।
भगांत गंग कुल्लये।
समुद्द सून फुल्लये।
प्रवत्ति छत्त छत्तये।
सरोज मोज हल्लये।
अपंड रेन मंडने।
उरप्पि इंदु छंडने ॥ (७. १२. १–१८)

यद्यपि इसी प्रसंग में सरोवर के रूपक का आश्रय लेते हुए युद्ध-स्थल का जो वर्णन किया गया है, वह प्रायः रूढ़ि-मुक्त है:—

सरं श्रोणि रंग पलं पारि पंकं।
वजइ मंस पंचि गधि वासि करंकं।
दुमं ढाल लोलंति हालं ति देसं।
गये हंस नंसीय गेहे सुवेसं।

परे पानि जंघं धरंगं निगारे।
मनउ मछ्छ कछ्छं तरे तीर मारे।
सिर सा सरोजं कचे सा सिवाली।
गहे अंस ग्रथ्थी सु सोहै मराली।
सदं रंभ रत्तं भरंतं चिचीरं।
धसं स्याम स्वेतं कतं नीर पीरं। (७. १७.२७–३४)

द्वितीय युद्ध अपेक्षाकृत बहुत कम विस्तृत है, और इसी प्रकार उसका वर्णन भी संक्षिप्त है।

सेना के प्रमाण से उठी रेणु के आडम्बर का वर्णन इसमें बहुत सुन्दर वर्णन हुआ है : दिन में रात्रि का आगमन समझकर चकवी-चकवे और सारस-युग्म को जो भ्रम होता बताया गया है, वह प्रभावपूर्ण है, और सरोवर के जल में तारागण के प्रतिबिम्ब का जो वर्णन किया गया है, वह संश्लिष्ट चित्रण प्रणाली के कारण अत्यन्त सरस हुआ है :—

चक्कीय चक्क मुक्किवि चलंति।
रव सरस दरस सारस मिलंति।
प्रतिबिंब अंभ अंबरन तार।
चुगतइ न मुगति मंजरि सिवार।
चकित सुचित्त मन मित्त मित्त।
सर उभय भमिय आनंद चित्त।
दप्प आदप्प आलोल नयन।
विसरीय कोक सुरमग्ग चयन।
हसि चक्क चकिय सम कहिग छंदु।
माननिय मान यामिनिय चंद। (११.१०.११-२०)

शेष युद्ध-वर्णन साधारण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'रासो' के युद्ध-वर्णन अतिशयोक्तियों और परंपरा-भुक्त कल्पनाओं से युक्त होते हुए भी सुंदर हैं और कहीं-कहीं पर उनमें कवि ने कल्पना का आश्रय लेते हुए संश्लिष्ट चित्रण का भी यत्न किया है। तथ्य-प्रधानता की नहीं, उक्ति-प्रधानता की प्रवृत्ति प्रमुख है।

(२) *नख-शिख वर्णन*

'रासो' के वर्णनों में नख-शिख-वर्णन अपनी विशेषता रखते हैं : वे परंपरा-भुक्त कम हैं, कल्पना की सरसता के साथ-साथ वर्ण्य पात्र के व्यक्तित्व का ध्यान उनमें कवि को सदैव रहा है।

नायिका संयोगिता का नख-शिख कथा के पूर्वार्द्ध में नहीं आता है, कारण यह है कि 'रासो' के कवि ने कथा-नायक पृथ्वीराज को उसके रूप अथवा गुणों के कारण उस पर अनुरक्त नहीं किया है, वह तो केवल संयोगिता के प्रेमानुष्ठान के कारण उससे परिणय करता है। किंतु बाद में पृथ्वीराज के केलि विलास के प्रसंग में वह उसका वर्णन करता है। इस वर्णन में कुछ कल्पनाएँ सरस हैं, यथाः

नितंब पर पड़ी हुए शृंखला को कवि कामदेव के धनुष की प्रत्यंचा कहता है :—

रसनेव रंज नितंबिनी।
कुसुमेष एष विलंबिनी। (१०.११.११-१२)

उसके हृदय को वह मदन का अयन कहता है, जहाँ वह निरस्त होकर (निकाला जाकर) छिपने के लिए आगया है :—

हिय अयन मयन सि संधयउ।
भज गहन गहन निरंथयउ। (१०.११.१७-१८)

उसके अधरों को वह पक्क बिंब कहता है, जिनके शुक-सारिकादि से खंडित होने का भय बना रहता है :—

अधर पक्क सु बिंबन।
सुक सालि आलिन पंडनं। (१०.११.२५-२६)

उसके नेत्रों के अपांगों को वह सित-असित उररि (बकरे) अथवा उड़ने का अभ्यास करते हुए खंजन-वत्स कहता है:—

सित असित उररि अपंगयो।
अभ्भिसहिं षंजन षछ्छयो।

उसके देदीप्यमान ललाट पर लगे हुए मृदमद के तिलक की उपमा वह सिंधु से निकले हुए नवीन चंद्रमा की गोद में बैठे हुए इन्दुपुत्र (मृग) से करता है:—

तस मध्य मृगमद बिंदु जा।
जस इंदु नंद ति सिंधुजा। (१०.११.४१-४२)

'रासो' के कवि ने कथा के प्रारम्भ में ही संयोगिता की वयस्का सहचरियों का जो वर्णन किया है, वह भी सुन्दर है, और उनकी जो कल्पना वसंत-प्रियाओं के रूप में की है, वह दर्शनीय है :—

अधररत पत्त पल्लव सुबास।
मंजरिय तिलक षंजरिअ पास।
अलि अलक कंठ कलयंठ मंत।
संजोगि भोग वर भयु वसंत। (२.५.१-२०)

आगे चलकर उसने कन्नौज-वर्णन के प्रसंग में जल भरती हुई सुन्दरियों का वर्णन किया है। इस वर्णन में कुछ कल्पनाएँ चमत्कारपूर्ण हैं, यथा:

कवि कहता है कि उनकी कटि में जो शृंखला पड़ी हुई है, उसके कारण ऐसा लगता है मानो वे वनिताएँ सिंहिनियाँ हों:—

कटिस्स सोभ सेउरी।
वनिस्स जानि केसरी। (४.१४.९-१०)

उनकी नासिका की वह बँधे हुए क्रीड़ा-कीर से तुलना करते हुए वह कहता है कि वे उनके [बिंब-तुल्य] रक्त अधरों को खण्डित नहीं कर रहे हैं—इसलिए वे क्रीडा-कीर और वह भी बँधे हुए क्रीडा-कीर उचित ही कहे गए हैं:—

अधर आरत्त रत्तये।
सुकील कीर बंधये। (४.१४.२१-२२)

पृथ्वीराज के इस कथन पर कि ये सुन्दरियाँ तो दासियाँ थीं, चन्द ने उन नागरियों के रूप का वर्णन नहीं किया है जो असूयंपश्या हैं, वह स्वकीयाओं के रूप में कन्नौज की अन्य नागरी नारियों का वर्णन करता है। इस वर्णन में तुलनात्मक तथ्यपूर्णता दर्शनीय है; यथा:

जहाँ उसने जल भरने वाली सुन्दरियों के कटाक्षों का वर्णन किया है, उसने कहा:—

दुराय कोय लोचने।
प्रतष्ष काम मोचने।
अवध्धि ओट भौंहये।
चलंति सोह सौंहये। (४.१४.२९-३२)

किंतु इन स्वकीयाओं के नेत्रों को उसने निर्वात दीप के समान अचंचल कहा है:—

पंगुरे अयन ने नयन दीसं।
चिचि जोत सारंग निर्वात रीसं। (४.२०.९-१०)

कवि ने कहा है कि ये दिव्य-दर्शना हैं और धीमे स्वर में बोलती हैं:—

दिव्य दरसी तिहां ढिल्ल बोलं।

उनके चरण-नखों की निर्मलता का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि उनमें उनके स्वकीय पतियों का जो प्रतिबिंब पड़ रहा है, वह ऐसा लगता है मानो उन्होंने मानकर रक्खा हो और उनके पति उनके चरणों में पड़े हों:—

नषं निर्मलं दर्पनं भाय दीसं।
समीपं सुकीयं कियं मानवीसं। (४.२०.३५-३६)

यहाँ तक मानवीय नख-शिख वर्णन की बात रही; सरस्वती के नख-शिख-वर्णन में 'रासो' के कवि के देव-विषयक नख-शिख वर्णन का भी एक उदाहरण मिल जाता है। यह नख-शिख नहीं, शिख-नख है, अर्थात् वर्णन शिखा से नख की ओर बढ़ता है। यह वर्णन भी सुन्दर है; यथा:

कपोलों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे प्रातःकाल में उदित उस चन्द्रमा के समान हैं जो राहु के कलंक से बचने के लिए [अपने मृगरथ के] जूए को बहुत खींच रहा हो—संश्लिष्ट कल्पना दर्शनीय है:—

कपोल रेख गासयो।
उयंत इंदु प्रातयो।
बभूष जूव पंचये।
कलंक राह बंचये। (३.१७.७-१०)

नेत्रों की उपमा दो छोटे वारि-खंजनों से दी गई है, जो रूप जल में तैर रहे हों:—

उछंमि वारि खंजयो।
तिरंति रूप रंजयो। (३.१७.१३-१४)

ग्रीवा पर पड़ी हुई मुक्ता माल की तुलना सुमेरु पर गिरती हुई गङ्गा की धारा से की गई है:—

सुग्रीव कंठ मुत्तयो।
सुमेर गंग पत्तयो। (७.१४.१९-२०)

उसके नखों को आर्द्र और रक्षित कहा गया है—वीणा-वादन के लिए रक्षित नखों की आवश्यकता को कवि ने ध्यान में रखा है:—

नषाद्रि अग्र रष्षिणं।
धरंति सच्छ लच्छणं। (७.१४.२३-२४)

इन नख-शिख-वर्णनों से ज्ञात होता है कि 'रासो' के कवि ने सर्वत्र सुरुचि और कल्पना से काम लिया है; उसके नख-शिख केवल परंपरा-मुक्त और निर्जीव नहीं हैं, उनमें सजीवता है और वे वर्ण्य पात्र को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत किए गए हैं।

(३) *सामान्य प्रकृति-वर्णन*

सामान्य प्रकृति वर्णन 'रासो' में अधिक नहीं है, किन्तु जितना है, सुन्दर है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

एक स्थान पर प्रातः काल की मद गज से तुलना करते हुए 'रासो' के कवि ने सुन्दर कल्पना की है—वह कहता है कि यह मद बिन्दु चुवाता हुआ मद गज का गण्डस्थल नहीं है वरन् [पुष्प चुवाती हुए] तरु शाखा है, यह नीचा जाने वाला शशि है न कि हाथी का निर्घाटित कुंभ है, उसी

प्रकार यह [पुष्पों पर गुञ्जार करने वाला] मधुकर-वृंद है न कि गज के मद से आकृष्ट अलिकुल है, [ऐसी उन्मत्तता कारिणी प्रातः काल की वेला में] तरुण प्राणों वाला राजा जयचन्द [रात्रि में जागने के कारण] लटपट पैर रखता हुआ आ पहुँचा :—

कांती भार पुरा पुनमंद गजं शाखा न गंडस्थलं।
उच्छे तुच्छ तुरा स शशि कमनं करि कुंभ निद्रादलं।
मधुरे साइ सकाइता अलिकुलं गुंजार गुंजा तहा।
तरुणे प्राण लटापटा पगपगं जयराज संप्रापता ॥ (५.४१)

प्रभात और मद गज की तुलना की इस पृष्ठभूमि में रात्रि में किसी कामिनी के सुख-रति-समर में नींद को विस्मृत कर जगे हुए होने (५.३९-४०) के कारण लटपट पैर रखते हुए जयचन्द का जो चित्र कवि ने उपस्थित किया है, वह अपनी सरस व्यंजना के कारण अवश्य ही रमणीय बन गया है।

संध्या का वर्णन, इसी प्रकार, एक अन्य स्थान पर भावपूर्ण हुआ है; उसमें कवि ने संयोगिता की मनोस्थिति की जो व्यंजना संध्या के उपादानों को लेकर की है, वह कोमल हुई है। वह कहता है, 'मित्र (सूर्य) महोदधि में जा चुके थे, दिशाओं को तम ने ग्रस लिया था, पथिक-वधू की दृष्टि [उसके प्रियतम के] पथ में उसी प्रकार अधिस्थित हो चुकी थी जैसी [खिंची हुई] चंग होती है, युवाओं और युवतियों की सुमति उसी प्रकार नष्ट हो चुकी थी जिस प्रकार रस-लुब्ध सारस अथवा [मधु-] मुग्ध मधुप की होती है :—

मित्त महोदधि मझ्झ दिसंत ग्रसंत तम।
पथिक वधू पथि दिट्ठ अहुट्टिय चंग जिम।
जुव जन जुवती गंजि सुमत्ति अनंगमय।
जिमि सारस रसलुब्ध त मुग्ध मधुप्प लय ॥ (७.२२)

बाद में, रणक्षेत्र में गए पृथ्वीराज के आगमन की संध्या काल में प्रतीक्षा करती हुई संयोगिता के भावों की (७.२३) जो व्यंजना इस पृष्ठभूमि के योग से हुई, है वह अवश्य ही ललित हो उठी है।

जो ऋतु-वर्णन षड्ऋतु-वर्णन के रूप में मिलता है, उसके अतिरिक्त उल्लेखनीय ऋतु-वर्णन केवल एक स्थान पर आता है और वह वसंतागम का है। कल्पना शिशर पर वसंत के आक्रमण के रूप में की गई है, जिसमें शिशर पराजित होता है और वसंत विजयी :—

धनि वग्ग मग्ग हलि अंब मउर।
सिर ढाहि मनहुं मनमथ्थ चउंर।
चलि सीत मंद सुगंध वात।
पावक्क मनहुं विरहिनि निपात।
कुहु कुहु करंति कलयंठि जोटि।
दल मिलइ मनहु अनअंग कोटि।
करि पल्लव पत्त ति रत्त नील।
हलि चलहि मनहु मनमथ्थ पील।
कुसुमेष कुसुम तेन धनुष साजि।
भृंगी सुपंति गुन गरुय गाजि।
संजर सुवान सुमनाह नेह।
विद्दारये वीर जुवजननि देह।

उच्छलिअ कलिअ चंपक सरीप ।
प्रजलिअ प्रगट कंदर्प दीप ।
करवरा केत केतकि सुकरि ।
विहरंति रस विलरंति छत्ति ।
परिरंभ अनिल कदली कपान ।
सिर धुनहि सरस सुनि जासु तान ।
झंकुलिय झाम अभिराम रम्य ।
नहु करहु पीय परदेस गम्य ।
फुल्लिग पलास सजि पत्त रत्त ।
रण रंग सिसिर "जित्तउ वसंत । (२.५.२५-४६)

इस वर्णन में कवि ने प्रस्तुत विषय के साथ अप्रस्तुत का निर्वाह किस प्रकार सफलता पूर्वक किया है, यह स्वतः देखा जा सकता है।

फलतः सामान्य प्रकृति-वर्णन में भी 'रासो' का कवि सफल रहा है; उसने पृष्ठभूमि के रूप में जो प्रकृति-वर्णन किया है, वह अपनी अनुकूल व्यंजना के द्वारा रमणीय बन गया है, और इस वर्णन में उसने अप्रस्तुत की जो योजना की है वह भी सरस हुई है।

(४) षड्ऋतु-वर्णन

'रासो' का षड्ऋतु-वर्णन कथा-नायक ओर उसकी नव विवाहिता पत्नी के सम्भोग श्रृंगार का है। कथा-नायक उस नव विवाहिता को भोगाथित कर रहा है, किंतु उसका जीवन युद्धों में बीता है, इसलिए वह उसके प्रेम-पाश से बार-बार निकल कर जाने का प्रयत्न करता है। नायिका ऋतुओं की रमणीयता का प्रतिपादन करते हुए अपने प्रणयानुरोधों से उसे रोकती है, यही इस षड्ऋतु-वर्णन का वर्ण्य है। ऋतुओं का क्रम वसंत से प्रारम्भ होता है :—

सामग्गं कलधूत नूत सिखरा मधुलेहि मधुवेष्टिता ।
वाता सीत सुगंध मंद सरसा आलोल साचेष्टिता ।
कंठी कंठ कुलाहले मुकलया कामस्य उद्दीपनी ।
रत्ते रत्त वसंत पत्त सरसा संजोगि भोगाइले ॥ (९.९)

[जिस वसंत में तरु-] शिखरों पर [रंग-बिरंगे पुष्पों के कारण मानो] नूतन कलधूत (चाँदी-सोने) की समग्रता हो गई है और मधुकर मधु से आवेष्टित [हो रहे] हैं, वात शीतल, मंद, सुगंधित और सरस होकर चेष्टाओं में विशेष लोल हो रही है, कंठी (कोयलों) के कंठ के कोलाहल से मुकुलों (कलियों) में कामोद्दीपन हो रहा है और जो वसंत सरस [नवीन] पत्तों के कारण लाल हो रही है, ऐसे वसंत में संयोगिता [पृथ्वीराज के द्वारा] भोगाथित हो रही है।

दीहा दिव्व सघंग कोप अनिला आवर्त्त मित्ताकरं ।
रेने सेन दिसान थान मलिना गोमग्ग आडंबरं ।
नीरे नीर अपीन छीन छपया तपया तरुण्या तनं ।
मलया चंदन चंद मंद किरणा सु ग्रीष्म आसेचनं ॥ (९.१०)

"[जिस ग्रीष्म में] दिन दिव्य (तप्त लौहादि) [के समान] हो रहे हैं, अनिल (वायु) कुपित हो रही है, मित्र (सूर्य) के करों से उत्पन्न आवर्त्त (बवंडर) उठने लगे हैं, रेणु की सेनाओं से दिशाएँ और स्थान मलिन हो रहे हैं, [यथा] गोमार्ग [की धूल] के आडंबर से हों, जहाँ जो भी नीर था, वह अपीन (क्षीण) हो गया है, रात्रि क्षीण हो गई है और तप (गर्मी) का तनु तरुण

हो गया है, मलय [समीर], चंदन और चन्द्रमा की मंद किरणें ही [ऐसे] ग्रीष्म में [मुरझाते हुए प्राणों का] सिंचन करने वाले हो रहे हैं।"

आर्द्रे बद्दल मत्त मत्त विषया दामिन्नि दामायते।
दादुल्ले दल सोर सोर सरसा पप्पीहान् चीहायते।
शृंगाराय वसुन्धरा ललितया सलिता समुद्रायते।
यामिन्या सम वासरे विसरता प्रावृट्ट पश्यामिते॥ (९.११)

"[जल से] आर्द्र बादल विषय में मत्त हो रहे हैं, और [उनकी प्रिया] दामिनी दमक रही है; दादुरदल मोरों के साथ शोर कर रहा है, और पपीहा चीत्कार कर रहा है; वसुन्धरा ने लालित्यपूर्वक शृंगार कर लिया है, और सरिता [उमड़ कर] समुद्र बन रही है; वासर (दिन) भी [अपर्याप्त प्रकाश के कारण] यामिनी के समान [अन्धकार पूर्ण] हो रहे हैं, वर्षा में ऐसा दिखाई पड़ रहा है।"

पित्ते पुत्त सनेह गेह भुगता युक्तानि दिव्या दिने।
राजा छत्रनि साजि राजि छितया मंदाननभ्भासने।
कुसुमे कातिग चंद निर्मल कला दीपानि बर दायते।
मा मुक्के पिय बाल नाल समया सरदाय दर दायते॥ (९.१२)

"जो पिता-पुत्रादि के स्नेह और गृह का भोग कर रही हैं, अथवा जो संयोगिनी हैं, उनके लिए [शरद के] दिन दिव्य हैं; राजा-गण छत्रों को साज कर और क्षिति पर शोभित होकर आनन्द-युक्त आननों से भासित हो रहे हैं। कार्तिक में कुसुमों की और चन्द्रमा की कलाएँ निर्मल हो रही हैं, और दीपक वरदायी हो रहे हैं (दीपदान करके लोग मनोरथ की प्राप्ति कर रहे हैं), हे प्रिय, बालाको इस नाल (कमल-नाल के निकलने) के समय न छोड़ो, [क्योंकि] शरद का दल दिखाई पड़ रहा है।"

क्षीनं वासर स्वास दीघ निसया शीतं जनेतं वने।
सज्जं संजरयान यौवन सया आनंग आनंगने।
यउ बाला तरुनी निवृत्त पत्त नलिनी दीना न जीवा खिणे।
मा कांत हिमवंत मत्त गमने प्रमदा ने आलंबने॥ (९.१३)

"वासर (दिन) क्षीण होकर श्वास [मात्र] हो गए हैं, और निशाएँ दीर्घ हो गई हैं; जनेत (बस्तियों) और वन में [सर्वत्र] शीत व्याप्त हो रहा है; यौवन के कारण शय्या संज्वर-कारिणी हो गई है और अनंग ही अनंग का अधिकार हो गया है; जो बाला तरुणी है वह निवृत्त-पत्र नलिनी के समान हो रही है, वह दीना क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकेगी; [इसलिए] हे कान्त इस मत्त हेमंत में गमन न करो, अन्यथा प्रमदा निरवलंब हो जायगी।"

रोमाली घन नीर निध्ध वरये गिरि डंग नारायते।
पव्वय पीन कुचानि जानि सयला फुंक्कार झुंकारये।
शिशिरे सर्वरि वारुणे च बिरहा मम हृदय विद्दारये।
मा कांत मृग बद्द सिंघ गमने किं देव उब्बारये॥ (९.१४)

"[स्त्री की] रोमावली ही घन (वन) है, श्रेष्ठ स्नेह-नीर ही गिरि और डंग [के पास बहती हुई] जल की धारा है; उसके पीन कुच ही मानो समस्त पर्वत हैं; वह जो फुंकार (सीत्कार) छोड़ती है, वही मानो [पवन का] झकोर है; शिशिर की रात्रि में बिरह ही वह बारण (हाथी) है जो उसकी हृदय रूपी वाटिका का विदारता (तहस-नहस करता) है; उस विरह रूपी ग (वन-

चारी वारण) का वध करने वाले सिंह, हे कान्त, तुम मत गमन करो; हे देव ! क्या तुम नारी के हृदय को विरह-वारण से उबारोगे ?"

इस षड्ऋतु-वर्णन की सरसता स्वतः प्रकट है। शिशिर-सम्बन्धी छन्द में जो रूपक का चमत्कार है, वह भी दर्शनीय है।

(५) अन्य वर्णन

'रासो' में कुछ अन्य वर्णन भी हैं, किन्तु वे काव्य की दृष्टि से प्रायः इतने सरस नहीं हैं जितने उपर्युक्त हैं, यद्यपि वे अन्य दृष्टियों से कभी-कभी बहुत उपयोगी हैं। उदाहरणार्थ, कन्नौज का जो नगर-वर्णन कवि ने चौथे सर्ग के प्रारम्भ में किया है, और पीछे जयचन्द के नृत्य-गीत समारोह का जो वर्णन पाँचवें सर्ग में किया है, 'रासो' कालीन नागरिक जीवन तथा नृत्य संगीत की परम्पराओं पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। फिर भी कल्पना से चमत्कृत सरस वर्णनों का सर्वथा अभाव नहीं है। नीचे दिया हुआ गङ्गा का वर्णन देखिए; किस प्रकार कवि ने गङ्गा को एक कामिनी का रूप दे दिया है:—

उभय कनक सिंभं भ्रिंगं कंठीव लीला।
पुनरपि पुहुप पूजा वदति रति विप्पराज।
उरसि सुत्तिहारं मध्धि घंटीव सबदं।
मुगति सुफल वल्ली नंग रंग त्रिवल्ली ॥ (४.१२)

"[इसके दोनों तटों पर जो दो कनक शंभु हैं [वे ही इसके दोनों कुच हैं], भृंगों की कंठध्वनि [ही इसकी कंठ-ध्वनि] है, पुनः इसे पुष्प-पूजा [अर्पित] करके विप्रराज (श्रेष्ठ विप्र) इससे अपनी रति (भक्ति) निवेदित करते हैं, इसके उर में [जल-कणों का] मुक्ताहार है, और मध्य में [पूजकों द्वारा किया जाने वाला] घंटी [कटिकी घंटी] का शब्द है, इस प्रकार यह सुन्दर मुक्ति की वल्ली अनंग-रंग (काम-क्रीड़ा) की त्रिवल्ली है।"

दूसरी ओर काम-कला को कवि ने संगीत कला और कामिनी-पूजा को देव-पूजा में किस प्रकार ढाल दिया है, यह दर्शनीय है:—

सुक्खं सुक्ख मृदंग तार जघनो रागं कला कोकयं।
कंठी कंठ सुभाखनं सम इतं कामं कला पोषनं।
उर भी रंभकिता गुणं हरि हरो सुरभीय पवनापिता।
एवं सुष्प स काम कुंभ गहिता जयराज रात्रिगता ॥ (५.४०)

अर्थात् [रति-]सुख में [संगीत-]सुख का, [कामिनी के] जघनों में मृदंग के ताल का, कोक-कला में राग-कला का, [कामिनी के] कंठ में [गायिकाओं के] कंठ का, यहाँ (कामिनी के) सुभाषण में उनके सुभाषण का, इस प्रकार [काम-कला] में [संगीत-कला] का [जयचन्द ने] पोषण किया; उसने [कामिनी के] उर से [परि-] रंभण करते हुए [रात्रि के अंतिम प्रहर में मानो] हरि और हर के गुणों से [रंभण] किया; इस प्रकार सुख-पूर्वक काम-कुंभों (कुचों) को ग्रहण किए हुए राजा जयचन्द की रात्रि व्यतीत हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'रासो' में वर्णन विविध हैं, और विविध प्रकार से वे कवि के द्वारा सरस बनाए गए हैं। रचना की वर्णन संपत्ति अतः असाधारण है, यह भली भाँति प्रकट है।

—:*:—

२२. 'पृथ्वीराज रासो' के छंद

जैसा ऊपर कहा जा चुका है [१] 'पृथ्वीराज रासो' रासो-परंपरा की छंद-वैविध्य-परक शाखा की रचना है। इसलिए इसके छंदों के संबंध में कुछ जान लेना आवश्यक होगा। इसमें कुल दो दर्जन से अधिक प्रकार के छंदों का प्रयोग किया गया है, जिनमें से आधे से कम प्रकार के छंद मात्रिक और शेष आधे से अधिक प्रकार के वर्णिक हैं। किंतु इससे यह समझना उचित न होगा कि रचना भी इसी अनुपात से इन छंदों में हुई है। स्थिति यह है कि वर्णिक छंद केवल रचना का लगभग $\frac{1}{6}$ निर्मित करते हैं और उसका शेष $\frac{5}{6}$ मात्रिक छंद निर्मित करते हैं।

इन छंदों का अध्ययन एक और दृष्टि से भी करने की आवश्यकता है : वह यह कि इनका कोई विशेष संबंध वर्ण्य विषय से भी है या नहीं।

वर्णिक छंदों में सबसे अधिक प्रयुक्त साटिका तथा भुजंग प्रयात (भुजंगी) हैं। भुजंग प्रयात (भुजंगी) तो प्रायः सभी प्रकार के प्रकरणों में आए हैं, किंतु साटिका केवल कोमल प्रसंगों में प्रयुक्त हुआ है, परुष प्रसंगों में नहीं हुआ है। शेष वर्णिक छंद इतने कम बार प्रयुक्त हुए हैं कि उस के आधार पर उनके प्रयोगों की प्रवृत्तियों का कोई अनुमान लगाना उचित न होगा।

मात्रिक छंदों में से सब से अधिक प्रयुक्त छंद दोहरा (दूहा) है, जो रचना का भी सर्वाधिक प्रयुक्त छंद है। यह रचना के सभी प्रकरणों में समान रूप से आया है। किंतु परुष प्रसंगों में यह उतना अधिक नहीं प्रयुक्त हुआ है जितना शेष प्रकार के प्रसंगों में हुआ है। इसके बाद सर्वाधिक प्रयुक्त छंद कवित्त (छप्पय) है : वह कोमल प्रसंगों में रचना में कहीं भी नहीं प्रयुक्त हुआ है, परुष प्रकार के प्रसंगों में ही प्रयुक्त हुआ। इनके बाद सर्वाधिक प्रयुक्त मात्रिक छंद रासा, पद्धडी, गाथा, मुडिल्ल तथा अडिल्ल हैं। रासा तथा पद्धडी क्रमशः कोमल और परुष प्रसंगों में प्रयुक्त हुए हैं; मुडिल्ल तथा अडिल्ल परुष प्रसंगों को छोड़ कर प्रायः सभी प्रकार के प्रसंगों में प्रयुक्त हुए हैं। गाथा विविध प्रसंगों में प्रयुक्त हुआ है, फिर भी परुष प्रसंगों में कम आया है। शेष मात्रिक छंद इतनी कम बार आए हैं कि उसके आधार या उनकी प्रयोग संबंधी प्रवृत्तियों के विषय में कोई अनुमान करना उचित न होगा। विभिन्न मात्रिक और वर्णिक छंद रचना में जहाँ-जहाँ पर आते हैं, नीचे उसकी तालिका दी जा रही है।

[१] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'रासो काव्य-परंपरा और पृथ्वीराजरासो' शीर्षक।

मात्रिक छंद

(१) दोहरा (दूहा): १.५; २.८, २.९, २.२१, २.२२, २.२३, २.२६, २.२७, २.२८; ३.१, ३.३, ३.९, ३.१०, ३.१३, ३.१४, ३.१५, ३.२१, ३.२२, ३.२३, ३.२४, ३.२५, ३.२६, ३.३५, ३.३७, ३.३८, ३.४०, ३.४२; ४.२, ४.३, ४.४, ४.५, ४.६, ४.८, ४.१५, ४.१६, ४.१७, ४.१८, ४.१९, ४.२१; ५.२, ५.११, ५.१२, ५.१४, ५.१५, ५.१६, ५.१७, ५.१८, ५.२०, ५.२१, ५.२२, ५.२३, ५.२६, ५.२७, ५.२८, ५.२९, ५.३०, ५.३१, ५.३२, ५.३३, ५.३४, ५.३५, ५.३७, ५.३९, ५.४२, ५.४३, ५.४४, ५.४६, ५.४७; ६.१, ६.२, ६.३, ६.४, ६.६, ६.८, ६.९, ६.१०, ६.११, ६.१६, ६.१८, ६.१९, ६.२०, ६.२१, ६.२२, ६.२४, ६.३०, ६.३१; ७.१ ७.३, ७.७, ७.८, ७.९, ७.११, ७.१३, ७.१९, ७.२१. [illegible], ८.१४, ८.१५, [illegible], ८.१८, ८.२०, ८.२१, ८.२२, ८.२३, ८.२५. [illegible], ८.२९, ८.३१, ८.३३, ८.३६; ९.२, ९.३, [illegible] ९.५; १०.२, १०.४, [illegible], १०.९, १०.१२, १०.१३, १०.१४, १०.१६, १०.१८, १०.१९, १०.२०, १०.२१, १०.२२, १०.२४, १०.२६, १०.२७; ११.१, ११.२, ११.३, ११.४, ११.५, ११.६, ११.९, १२.२, १२.३, १२.४, १२.५, १२.६, १२.९, १२.१०, १२.१३, १२.१४, १२.१६, १२.१७, १२.१८, १२.२०, १२.२१, १२.२२, १२.२४, १२.२५, १२.२६, १२.२९, १२.२८, १२.३०, १२.३१, १२.३४, १२.३६, १२.३७, १२.४३, १२.४४, १२.४७ = १६५

(२) कवित्त (छप्पय): ३.४, ३.११, ३.२७, ३.२९, ३.३१, ३.३२, ३.३३, ३.३६; ४.१; ५.१९, ५.४५, ५.४८; ६.३३; ७.५, ७.२०, ७.२१, ७.२५, ७.२७, ७.२८. ७.३०; ८.१ ८.२, ८.३, ८.४, ८.५, ८.६, ८.११, ८.१४, ८.१६, ८.१९, ८.२४, ८.२६, ८.२८, ८.३०, ८.३२, ८.३४, ८.३५; १०.२३, १०.२५, १०.२८, १०.२९; ११.७, ११.८, ११.११, ११.१३, ११.१४, ११.१५, ११.१६, ११.१८; १२.१, १२.३५, १२.३८, १२.४०, १२.४१, १२.४२, १२.४५, १२.४६, १२.४८, १२.४९ = ५९

(३) रासा: २.४, २.१४; ३.७, ३.८, ३.४३; ४.१३; ६.७, ६.१३, ६.१४, ६.३४; ७.२२, ७.२३; ९.६, ९.७, ९.८; १०.१५, १०.१७ = १७

(४) मुडिल्ल: ३.२०, ३.३९; ५.१, ५.४, ५.५, ५.६, ५.८, ५.९; ६.१२, ६.२३, ६.२७, ६.२८; १०.१, १०.३, १०.६, १०.७ = १६

(५) पद्धडी: २.१, २.३, २.५, २.६, २.१०, २.११, २.१२; ४.७; ११.१०; १२.११, १२.१५, १२.२३, १२.३२, १२.३३ = १४

(६) गाथा: २.२, २.१६; ३.५, ३.१२, ३.३४; ६.१७, ६.३२; ७.२, ७.१८, ७.२६; ८ ८.८; १०.१० = १३

(७) अडिल्ल: ३.१६, ३.१८, ३.१९, ३.२८, ३.४१; ५.२५; ६.२६; १०.५ = ९

(८) वस्तु: ५.३; १२.७, १२.८ = ३

(९) चउपई: १२.१९, १२.३९ = २

(१०) गाथा मुडिल्ल: ६.२५ = १

(११) त्रिभंगी ४.११ = १

वर्णिक छंद

(१) साटिका : १.१, १.२, १.६; २.१७, २.१८, २.२०, २.२४; ३.२, ३.६; ५.७, ५.१०, ५.४०, ५.४१; ९.९, ९.१०, ९.११, ९.१२, ९.१३, ९.१४ = २०

(२) भुजंग (भुजंगी) १.४; २.७; ४.१०, ४.२०, ४.२२, ४.२३; ५.१३; ६.५; ७.६, ७.१०, ७.१६, ७.१७, ७.३१; ८.१०; ११.१२; १२.११ = १६

(३) श्लोक : २.१९, २.२५; ६.२९; ७.२४; ११.१७ = ५

(४) अर्धनाराच : ३.१७; ४.१४; ५.२४; ७.१२ = ४

(५) नाराच : २.१३; ५.३८; ६.१५ = ३

(६) त्रोटक : ८.९; १२.२९ = २

(७) साटक : ५.३६ = १

(८) डंडमाल : १०.११ = १

(९) आर्या : ३.३० = १

(१०) मोतीदाम : ४.२५ = १

(११) रूपया : ७.१४ = १

(१२) वसंत तिलक : ४.१८ = १

(१३) भमरावलि : ७.४ = १

(१४) रसावला : ७.१५ = १

(१५) विराज : १.३ = १

—:*:—

२३. 'पृथ्वीराज रासो' की शैली

किसी भी प्राचीन रचना की शैली पर विचार करते समय यह आवश्यक होता है कि उसकी भाषा के प्रकृत तत्वों को अलग कर लिया जावे, और इनको सुलझा लेने के अनन्तर[1] उसकी शैली के तत्वों को समझना सुगम हो जाता है। शैली के भी दो रूप होते हैं, एक तो उसका सामान्य रूप होता है, जो रचना में व्यापक रूप से मिलता है, और दूसरा उसका विशिष्ट रूप होता है, जो वर्ण्य विषय अथवा छन्द सापेक्ष्य होता है। प्रस्तुत रचना की शैली पर विचार करते समय दोनों रूपों पर अलग-अलग विचार करना सुविधाजनक होगा।

सामान्य शैली

रचना की सामान्य शैली पर विचार करने के लिए उदाहरण के लिए संपादित पाठ का कैंवास-वध का वह उद्धरण (३.२१—२७) लिया जा सकता है जो ऊपर रचना की भाषा के सम्बन्ध में विचार करते हुए दिया गया है। डॉ० नामवर सिंह ने रचना की ध्वनि-विषयक प्रवृत्तियों का निर्देश करते हुए कहा है, "छन्द के अनुरोध से प्रायः लघु अक्षर को गुरु और गुरु अक्षर को लघु बना दिया गया है। लघु को गुरु बनाने के लिए शब्दान्तर्गत—

(क) ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण,

(ख) व्यंजन-द्वित्व,

(ग) स्वर का अनुस्वार-रंजन, तथा

(घ) समास में द्वितीय शब्द के प्रथम व्यंजन का द्वित्व करने की प्रवृत्ति है। इसके विपरीत गुरु को लघु बनाने के लिए—

(क) दीर्घ का ह्रस्वीकरण,

(ख) व्यंजन-द्वित्व का क्षतिपूर्ति रहित सरलीकरण, तथा

(ग) अनुस्वार के अनुनासिकीकरण

की विधि प्रयोग में लाई गई है।"[2] उन्होंने इस प्रवृत्ति के उदाहरण भी दिए हैं,[3] जो कि प्रायः ठीक हैं और इस संस्करण में भी मिलेंगे। केवल यह कहना आवश्यक होगा कि यह प्रवृत्ति उतनी

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराजरासो की भाषा' शीर्षक।

[2] डॉ० नामवर सिंह: 'पृथ्वीराजरासो की भाषा', सरस्वती प्रेस, बनारस, पृ० ११।

[3] वही, पृ० ५९-६१।

व्यापक नहीं है जितनी सामान्यतः समझी जाती या समझी जा सकती है। इसके प्रमाण में संपादित पाठ के ऊपर उल्लिखित उद्धरण को लिया जा सकता है। उसमें छन्दोनुरोध के कारण हुए (क) ह्रस्व स्वर के दीर्घीकरण का कदाचित् एक ही प्रयोग मिलता है, वह है सिद्धि > सिद्धी (३.२३.२); (ख) व्यंजन द्वित्व के कदाचित् केवल चार प्रयोग मिलते हैं : नागपुर > नाग्गपुर (३.२२.१), दाहिमउ > दाहिम्मउ (३.२२.२), विरदिया > विरद्दिया (३.२७.६) तथा निमटिहि > निमट्टिहि (३.२७.६)। स्वर के अनुस्वार-रंजन का कोई प्रयोग नहीं मिलता है, और न समास के द्वितीय शब्द के प्रथम व्यंजन के द्वित्व करने का कोई प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार संपादित पाठ के उपर्युक्त उद्धरण में (क) दीर्घ के ह्रस्वीकरण का कोई प्रयोग नहीं मिलता है, (ख) व्यंजन-द्वित्व के क्षतिपूर्त्ति रहित सरलीकरण का कदाचित् एक ही प्रयोग मिलता है : दिट्ठि > दिठि (३.२१); और (ग) अनुस्वार के अनुनासिकीकरण का भी कदाचित् एक ही प्रयोग मिलता है : भुजंग > भुजंग (=भुजँग)।[1]

विशिष्ट रूप

इस प्रसंग में यह बताना आवश्यक होगा कि शैली में अन्तर छन्द-भेद के आधार पर बहुत अधिक हो जाता है। कुछ छन्द ऐसे हैं जिनमें संस्कृताभास लाना 'रासो' के कवि को आवश्यक प्रतीत हुआ है, यथा श्लोक, साटिका या वसंत तिलक में; कुछ छन्द ऐसे हैं जिनमें प्राकृताभास लाना उसे आवश्यक प्रतीत हुआ है, यथा गाथा में; शेष में सामान्यतः भाषा का प्रकृत रूप रखना उसके लिए स्वाभाविक था, केवल जैसा हम नीचे देखेंगे, वर्ण्य विषय-भेद से शैली में भी यत्किंचित अन्तर उसने अवश्य ही प्रस्तुत किया है। छन्द भेद के आधार पर रचना की शैली का अध्ययन कवि की भाषा के प्रकृत रूप को समझने के लिए आवश्यक है, यह बात कुछ प्रस्तुत रचना के ही सम्बन्ध में नहीं, छन्द-ववविध्य-प्रधान हिन्दी की समस्त प्राचीन रचनाओं के सम्बन्ध में लागू होती है : अन्तर केवल परिणाम का हो सकता है। और यदि रचना के मात्रिक और वर्णिक छन्दों पर हम ध्यान दें[2], तो डॉ० नामवर सिंह द्वारा उल्लिखित प्रवृत्ति पर ही नहीं, शब्द-योजना और शैली पर भी एक निश्चयात्मक प्रकाश पड़ेगा। हम देखेंगे कि—

(१) जहाँ तक मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है, प्रायः सर्वत्र भाषा का प्रकृत रूप मिलेगा, अनुस्वार-रंजन न मिलेगा, समास और तत्सम के प्रयोग कम ही मिलेंगे, सामान्य व्यंजन-द्वित्व अधिक मिलेंगे; इस प्रकार के छंद हैं : दोहरा (दूहा), कवित्त (छप्पय), रासा, पद्धड़ी, मुडिल्ल, अडिल्ल, वत्थु, चउपई तथा गाथा मुडिल्ल। त्रिभंगी ही इस परम्परा का एक मात्र अपवाद है, जिसमें निम्नलिखित (२) के वर्णवृत्तों की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं; गाथा में भी एकाध उदाहरण (यथा ६.१७) इस प्रकार के मिलते हैं, किन्तु वे अपवाद-स्वरूप ही हैं।

(२) जहाँ तक वर्णिक छंदों का प्रश्न है, कुछ प्रकार के वृत्तों में संस्कृताभास लाने का प्रयत्न मिलेगा, और इसलिए अनुस्वार-रंजन बहुत होगा, समास और तत्सम शब्दों का प्रयोग भी अपेक्षाकृत अधिक होगा, सामान्य व्यंजन-द्वित्व कम मिलेंगे। इस प्रकार के छन्द हैं : श्लोक (अनुष्टुप), साटिका, वसंततिलक तथा डंडमाल।

(३) वर्णिक छंदों में ही कुछ ऐसे मिलेंगे जिनमें संस्कृताभास लाने का प्रयत्न अधिक नहीं मिलेगा, केवल अनुस्वार-रंजन लाने का प्रयत्न विशेष मिलेगा, शेष बातें यथा उपर्युक्त (१) में

[1] ये विशेषताएँ प्रायः इसी प्रकार अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' शीर्षक में उद्धृत 'प्राकृत पैंगल' के हम्मीर-विषयक छन्दों तथा श्रीधर के 'रणमल्ल छन्द' के छन्दों में भी मिलेंगी।

[2] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराजरासो के छन्द' शीर्षक।

होंगी। ऐसे छन्द हैं : विराज, आर्या, रूपया, भमरावली और रसावला। यह अवश्य है कि इन छन्दों का प्रयोग रचना में बहुत ही कम हुआ है।

(४) वर्णवृत्तों में ही कुछ ऐसे भी मिलेंगे जो कभी तो उपर्युक्त (३) की भाँति प्रयुक्त होंगे[1] और कभी (१) की भाँति प्रयुक्त होंगे--अर्थात् उनकी शैली सर्वथा मात्रिक छन्दों के समान होगी।[2] ऐसा भी देखा जाता है कि कभी-कभी इन छन्दों में कुछ अंश (३) के समान और कुछ अंश (१) के समान होंगे।[3] ऐसे छन्द हैं : भुजंगी (भुजंग प्रयात), नाराच (वृद्ध नाराच), अर्द्धनाराच, और त्रोटक।

और हम अन्यत्र देख चुके हैं[4] कि संपूर्ण रचना का लगभग ५/६ मात्रिक छन्दों द्वारा निर्मित है, केवल १/६ वर्णिक वृत्तों द्वारा बना है, अतः प्रकट है कि संस्कृताभास, अनुस्वार-रंजन, तत्सम-बाहुल्य और समास की ओर झुकाव रचना में बहुत सीमित अंश में मिलेंगे। फिर, ऊपर बताया जा चुका है कि ये तत्व वर्णिक वृत्तों में ही प्रायः मिलते हैं, जिनका प्रयोग संस्कृत साहित्य से अपभ्रंश तथा भाषा-साहित्य में आया है। इनके सम्बन्ध में 'रासो' की रचना के पूर्व भी कवियों की सामान्य धारणा रही है कि इनमें रचना तभी सरस हो सकती है जब कि संस्कृताभास अथवा उसका कोई न कोई उपकरण, यथा अनुस्वार-रंजन, इनमें लाया जा सके।[5] अतः यह प्रकट है कि 'रासो' के कवि की सामान्य शैली पर विचार करते समय ऐसे वृत्तों को छोड़ देना चाहिए जिनकी ऐसी विशिष्ट शैली रही है जो आयासपूर्वक एक परम्परा का पालन करने के लिए प्रयोग में लाई जाती रही है। 'रासो' के कवि की प्रकृत शैली वह है जो रचना के शेष वृत्तों में मिलती है, अतः संपादित पाठ से ऊपर कैंवास-वध की जो पंक्तियाँ (३.२१-२७) उद्धृत की गई हैं, वे उसकी प्रकृत शैली का वास्तविक उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

वर्ण्य विषय के अनुसार रचना में शैली-भेद बहुत कम मिलता है। ऊपर रचना के विविध प्रकार के वर्णनों की समीक्षा करते हुए[6] प्रायः समस्त प्रकार के उदाहरण दिए गए हैं। उनका विश्लेषण करने पर ज्ञात होगा कि परुष, विशेष रूप से युद्ध-वर्णन सम्बन्धी, प्रसंगों में ही शैली-भेद कुछ दिखाई पड़ता है, शेष प्रसंगों के छन्दों में वह प्रायः नहीं है। युद्ध-वर्णन के प्रसंगों में भी कृत्रिम रूप से ध्वनि-प्रभाव उत्पन्न करने का यत्न, जैसा कि परवर्ती रचनाओं में प्रायः मिलता है, 'रासो' में बहुत ही कम मिलता है। यहाँ भी शैली-भेद छन्द-भेद से बहुत कुछ संबद्ध मिलेगा। शहाबुद्दीन सम्बन्धी प्रसंगों में स्वभावतः विदेशी शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है, यह बताया ही जा चुका है।[7]

कवि की सामान्य शैली की विशेषताएँ स्वतः प्रकट हैं। वह एक सुकवि की अत्यन्त समर्थ शैली है, भावों की अभिव्यक्ति करने में वह सर्वत्र भली भाँति सफल हुई है, उसकी शब्द-योजना

[1] यथा : १.४, ४.२०, ४.२१, ७.१७, ८.१०, ११.१२, ५.१८, ९.१५, ३.१७, ५.२४, ७.१२, ८.९।

[2] यथा : ४.२३, ७.११, १२.२५, ४.१४।

[3] यथा : २.७, ४.१०, ५.१३, ९.५, ७.१०, ७.११, २.१२।

[4] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो के छन्द' शीर्षक।

[5] दे० 'प्राकृत पैंगल' (संपादक चन्द्रमोहन घोष) में सार्दूलसट्ट, वसंततिलका, इंद्रवज्जा, रूपमाला तथा अन्य अनेक वर्णवृत्तों के उदाहरण।

[6] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो के वर्णन' शीर्षक।

[7] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त विदेशी शब्द' शीर्षक।

रमणीय है, कहीं भरती के शब्द रखने की आवश्यकता कवि को नहीं पड़ी है, न व्यर्थ के अलंकारों से वह दबी हुई है, और न रीति और गुणों से संबन्धित रूढ़ियों का वह अनावश्यक अनुसरण करती है। यह शैली कभी-कभी संक्षेप-प्रवण अवश्य प्रतीत होती है, ऐसे स्थलों पर संगति लगाने में पाठक को अपनी ओर से प्रायः कुछ न कुछ शब्दावली लानी पड़ती है। वस्तुतः जैसा उसे होना चाहिए था, अपने विषय-प्रधान महाकाव्य के लिए वह संपूर्ण रूप से उपयुक्त एक गरिमा पूर्ण, संतुलित और सुव्यवस्थित साधन बन सकी है।

—:*:—

२४. 'पृथ्वीराज रासो' का महाकाव्यत्व

महाकाव्य के लक्षणों के सम्बन्ध में भामह (५वीं शती ईस्वी) से विश्वनाथ कविराज (१६वीं शती ईस्वी) तक प्रायः समस्त काव्य-शास्त्रियों ने विचार किया है, जिसे देखने पर महाकाव्य के रूप के विकास के साथ साथ उनके द्वारा निरूपित लक्षणों में भी विकास दिखाई पड़ता है। 'रासो' की रचना तक संस्कृत और प्राकृत में ही नहीं अपभ्रंश में भी अनेकानेक महाकाव्य रचे जा चुके थे। असंभव नहीं है कि नव्य भारतीय भाषाओं में भी कोई महाकाव्य रचे गए हों, किन्तु वे प्राप्त नहीं हैं। महाकाव्य विषयक मान्यताओं में भी परिणामतः परिवर्तन होता रहा होगा। इसलिए 'रासो' के पूर्ववर्ती काव्य-शास्त्रियों द्वारा निरूपित लक्षणों की अपेक्षा उसके परवर्ती काव्याचार्यों के मतों पर विचार करना अधिक उचित और उपयोगी होगा।

'रासो' की रचना के बाद के आचार्यों में सर्वप्रमुख विश्वनाथ कविराज हैं, जिन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का समाहार करते हुए और उनके परवर्ती महाकाव्यों पर भी दृष्टि रखते हुए महाकाव्य की सबसे व्यापक परिभाषा दी है, इसलिए केवल उन्हीं के मत को दृष्टि में रखते हुए 'रासो' के महाकाव्य पर विचार करना पर्याप्त होगा। उनके मत[१] का विश्लेषण करने पर महाकाव्य की आवश्यकताएँ निम्नलिखिति ज्ञात होती हैं :—

(१) प्रबन्ध की दृष्टि से उसको सर्गबद्ध होना चाहिए। सर्गों की संख्या [सामान्यतः] आठ से अधिक होनी चाहिए। उनका आकार न अति स्वल्प और न अति दीर्घ होना चाहिए। महाकाव्य का आरम्भ नमस्कार, आशीर्वाद तथा वस्तु-निर्देश के साथ होना चाहिए और प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर आने वाले सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिए।

(२) छन्द की दृष्टि से उसका प्रत्येक सर्ग एक एक वृत्त का होना चाहिए, किन्तु सर्ग के अन्त में उससे भिन्न वृत्त आना चाहिए। उसका कोई सर्ग ऐसा भी होना चाहिए जो नाना वृत्त युक्त हो।

(३) वस्तु की दृष्टि से उसका निर्माण किसी इतिहास-प्रसिद्ध अन्यथा सुजन-समाज में प्रचलित कथानक को लेकर होना चाहिए और उसका विकास विभिन्न संधियों की सहायता से प्रायः उसी प्रकार किया जाना चाहिए जिस प्रकार नाटक में किया जाता है।

(४) उसका नायक या तो कोई देवता, या धीरोदात्त गुणान्वित कोई क्षत्रिय होना चाहिए।

[१] 'साहित्य-दर्पण', श्लोक ६१३-६१९।

(५) उसमें श्रृङ्गार, वीर और शान्त रसों में किसी एक को अंगी तथा अन्य रसों को अंग के रूप में आना चाहिए।

(६) उसका लक्ष्य अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष में से किसी एक की प्राप्ति होना चाहिए।

(७) उसमें, जहाँ पर अवसर हो, विविध वर्णनीय विषयों का सांगोपांग वर्णन होना चाहिए: यथा संध्या, सूर्य, इन्दु आदि का। कहीं-कहीं पर खलों की निन्दा और सज्जनों का गुण-वर्णन भी होना चाहिए।

(८) उसका नामकरण कथानक, नायक के नाम अथवा अन्य किसी आधार पर किया जाना चाहिए।

इन आवश्यकताओं की दृष्टि से विचार करने पर पृथ्वीराज 'रासो' पूर्णरूप से एक महाकाव्य ठहरता है। उसमें उपर्युक्त समस्त तत्व पाए जाते हैं :—

वह सर्ग बद्ध है : न केवल प्रबन्ध की आवश्यकताओं का उसमें सम्यक् निर्वाह हुआ है, सर्गों में रचना सम्यक् विभाजन भी हुआ है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, यद्यपि उसके लघुतम पाठ की प्रतियों में सर्ग-विभाजन नहीं मिलता है, शेष समस्त पाठों में वह मिलता है, और एक मिलता है, इसके अतिरिक्त संपूर्ण रचना में कथाएँ इस प्रकार बँटी हैं कि सर्ग-विभाजन 'रासो' के कवि की दृष्टि में था, यह प्रस्तुत संस्करण के सर्गों को देखकर सुगमता से समझा जा सकता है; अतः 'रासो' का सर्गबद्ध होना भली भांति प्रमाणित है।[1] ये सर्ग संख्या और आकार में भी 'साहित्य-दर्पण' में प्रतिपादित मत का अनुसरण करते हैं : ये आठ से अधिक हैं और प्रायः न अति स्वल्प हैं और न अति दीर्घ हैं। रचना का आरम्भ नमस्कार और संक्षिप्त वस्तु-निर्देश के साथ हुआ ही है।[2] विभिन्न सर्गों के अन्त में आने वाले सर्ग के कथानक की सूचना अवश्य नहीं है, किन्तु यह प्रबन्ध-विषयक कोई अनिवार्य आवश्यकता भी नहीं है।

छन्द की दृष्टि से 'रासो' 'साहित्य-दर्पण' के लक्षणों के अनुरूप अवश्य नहीं पड़ता है और उसका कारण यह है कि महाकाव्य होने के साथ-साथ यह छन्द-वैविध्य-परक रासो-परंपरा की रचना है। यह रासो-परंपरा संस्कृत और प्राकृत में नहीं थी, अपभ्रंश में प्रारम्भ हुई और वह भी कदाचित् बहुत पीछे।[3] इसमें महाकाव्यों की रचना 'पृथ्वीराज रासो' के पूर्व भी हुई थी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। इसलिए 'साहित्य-दर्पण' कार की महाकाव्य की छन्द-योजना विषयक मान्यता यदि बदली न हो तो आश्चर्य न होगा। और छन्द की एक रूपता एक सर्ग के अन्तर्गत सामान्यतः उपयोगी भी होती है, क्योंकि उसके द्वारा कथा-प्रवाह और वर्णन-प्रवाह अधिक सुरक्षित रह सकते हैं। किन्तु विश्वनाथ कविराज ने ही महाकाव्य के अन्तर्गत कोई सर्ग ऐसा भी रखने की अर्थात् आवश्यकता मानी है जिसमें विविध वृत्त हों। इसलिए विविध छन्दों में यदि समूचे महाकाव्य की अर्थात् उसके समस्त सर्गों की रचना की जावे, तो उसमें कोई मौलिक आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

वस्तु की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' का कथानक इतिहास-प्रसिद्ध तो रहा ही है, सुजन-समाज में प्रचलित भी रहा है : देश के विदेशी जातियों के हाथों में जाने की यह दुःखपूर्ण कथा सदियों तक कही-सुनी जाती रही होगी और 'हम्मीर महाकाव्य' और जैन प्रबन्धों में इस कथा के दो अन्य रूप

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की प्रबन्ध-कल्पना' शीर्षक।

[2] वही।

[3] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'रासो काव्य-परंपरा और पृथ्वीराजरासो' शीर्षक।

भी मिलते हैं,[1] यह इस अनुमान का समर्थन करते हैं।

इसका नायक धीरोदात्त क्षत्रिय है, यह भी सुगमता से देखा जा सकता है। किसी महान आदर्श के लिए जीवन के सुखों का त्याग ही चरित्र में उदात्तता लाता है। पृथ्वीराज के चरित्र में यह बात प्रचुर परिमाण में पाई जाती है : जयचन्द के आमन्त्रण पर उसकी वश्यता स्वीकार कर वह उसके राजसूय में सम्मिलित हो सकता था, और असम्भव नहीं कि ऐसी दशा में उसकी प्रेमिका संयोगिता भी उसको अनायास मिल जाती, किन्तु राजसूय में उसके सम्मिलित न होने पर दरबान के रूप में उसकी स्वर्ण-प्रतिमा के प्रतिष्ठापित किए जाने को वह कैसे सहन कर सकता था? इसीलिए तो उसने चन्द के गले लग कर रोते हुए कहा, 'इस जीवन की और अधिक वाञ्छा करे—ऐसा कौन सयाना होगा (३.४९)?' और उसके अभिन्न-हृदय चन्द ने भी इसका समर्थन करते हुए कहा, 'उपहास-विलासों में यहीं पड़े रह कर हम प्राण न छोड़ेंगे, हम तो जयचन्द की धरा पर उसकी सेना से टक्कर लेंगे (३.४३)।' अपने शत्रु शहाबुद्दीन को परास्त कर उसने एक से अधिक बार अपनी उदारतावश मुक्त कर दिया था (२.३)। शहाबुद्दीन के अन्तिम आक्रमण के पूर्व ही उसके प्रायः सभी वीर सामन्त जयचन्द के साथ हुए उसके युद्ध में कट चुके थे, और शहाबुद्दीन एक विशाल सेना लेकर इस बार आया था, पृथ्वीराज चाहता तो संधि असंभव नहीं थी, किन्तु जैसा चन्द ने कहा, 'और कुछ नहीं है तो सिंगिनी और बाण तो अपने हैं; सामन्त नहीं हैं तो भी कम से कम वह मंत्र कर कि दिल्ली की धरा को डुबो न दे (१०.२३)।' इस भावना से प्रेरित होकर वह अपने पवित्र उत्तरदायित्व को कैसे छोड़ सकता था? स्वभावतः उसने फिर भी शहाबुद्दीन का सामना किया, यद्यपि वह पराजित और बन्दी हुआ। अतः महाकाव्य के उपयुक्त ही उसका यह धीरोदात्त नायक है, यह भी प्रकट है।[2]

'पृथ्वीराज रासो' का अंगी रस वीर है, जो कि अन्य रसों से परिपुष्ट हुआ है—विशेष रूप से शृंगार से, और उत्साह का जैसा पूर्ण और परिष्कृत चित्र इस रचना में उपस्थित किया गया है वह स्वतः एक महान् कल्पना है।[3] इसलिए महाकाव्य का रस-संबंधी लक्षण भी पूर्ण रूप से इस काव्य में मिलता है।

इसका लक्ष्य धर्म की प्राप्ति है : धर्म के लिए ही जीवनोत्सर्ग के लिए नायक युद्धों में कूद पड़ता है। इस काव्य में वर्णित पहला युद्ध, जैसा अन्यत्र बताया जा चुका, सौन्दर्य-लिप्सा के कारण नहीं वरन् संयोगिता के प्रेमानुष्ठान की पूर्ति तथा अपने मान की रक्षा के लिए नायक ने किया है; दूसरा युद्ध उसने देश की रक्षा के लिए किया ही है।[4] बीच में संयोगिता के साथ उसका केलि-विलास काव्य में अवश्य वर्णित हुआ है, किन्तु स्वतः वह रचना का वर्ण्य नहीं है, वह तो काव्य में यह दिखाता है कि काम-लिप्सा नायक के लिए कितनी घातक सिद्ध हुई; वह पाठक के मन पर यह प्रभाव डालता है कि असंभव नहीं कि यदि नायक काम-लिप्सा में इस प्रकार न पड़कर अपने गुरु-बांधव-भृत्य-लोक को अपने से उदासीन न कर देता, और अपनी सैनिक शक्ति का ह्रास न होने देता, तो शहाबुद्दीन को कदाचित् वह फिर पराजय देता। अन्त में चन्द की युक्तियों से अधर्मी शत्रु का संहार कर वह 'धरती को नव-वधू के समान उत्फुल्ल' करने में भी सफल होता है (१२.४९)। इसलिए स्पष्ट है कि रचना उद्देश्य धर्म की प्राप्ति है, और 'रासो' का कवि उसको भली भाँति प्रतिपन्न करता है।

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'हम्मीर महाकाव्य और पृथ्वीराज रासो' तथा 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

[2] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की चरित्र-कल्पना' शीर्षक।

[3] वही।

[4] वही।

विविध वर्णनीय विषयों का सांगोपांग वर्णन भी यथावसर रचना में मिलता है और यह वर्णन संपूर्ण रचना में केवल आवश्यक मात्रा में आता है, यह रचना की एक बड़ी विशेषता है; केवल वर्णन के लिए वर्णन एक स्थान पर भी नहीं हुआ है।[1] इसलिए महाकाव्य का यह लक्षण भी रचना में पूर्ण रूप से मिलता है।

रचना का नामकरण नायक के नाम पर हुआ ही है।

अतः विश्वनाथ कविराज की बताई हुई महाकाव्य की सारी आवश्यकतायें इस रचना में यथेष्ट रूप में मिलती हैं और यह निस्संदेह एक महाकाव्य है।

आधुनिक पाश्चात्य आलोचकों ने महाकाव्य के लक्षण किंचित् भिन्न बताए हैं। एक प्रसिद्ध आलोचक का कहना है, "महाकाव्य एक ऐसे नायक का चित्रण करता है जो किसी देश अथवा किसी आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है, और जो उसकी विजय के साथ विजयी होता है। वह कोई महान् अथवा महत्वपूर्ण व्यापार हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है और उसी प्रकार उसके पात्र भी महान् अथवा महत्वपूर्ण होते हैं। सारी रचना में एक गरिमा होती है। नाटक की तुलना में महाकाव्य के व्यापार की गति मंद होती है: उसमें घटना-बाहुल्य होता है और उसका वस्तु-संकलन शिथिल होता है। मानव जीवन की जितनी ही विस्तृत भूमिका उसमें ग्रहण की जाती है, उतनी ही अधिक सफलता महाकाव्य को मिलती है। वह कल्पना को अतीत के उस देश में ले जाता है जो स्वप्नों और आदर्शों का होता है, जिसमें दुःखान्त नाटकों का प्रवेश निषिद्ध है।"[2]

महाकाव्य ये लक्षण भी 'पृथ्वीराज रासो' में पूर्ण रूप से मिलते हैं, बल्कि यदि देखा जावे तो इन लक्षणों के अनुसार वह और भी अधिक महाकाव्य है : सारी रचना एक महान् आदर्श को लेकर नायक के जीवन के एक विस्तृत क्षेत्र में प्रस्तुत की गई है, और अन्त में पराजय के बाद भी रचना में नायक के उस आदर्श की—अधर्मी से मातृभूमि को मुक्त कर उसको पुनः हँसने का एक अवसर देने की—प्राप्ति दिखाई गई है, अतः इस दृष्टि से यह रचना अवश्य ही एक अमर महाकाव्य कृति के रूप में बनी रहेगी।

—:*:—

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो के वर्णन' शीर्षक।

[2] डब्लू० एम० डिक्सन : 'इंगलिश इपिक ऐंड हीरोइक पोइट्री', १९१२, पृ० २१।

पृथ्वीराज रासउ

१. मङ्गलाचरण और भूमिका

[१]

साटिका — *[१]छत्तं या[२] मद गंध घ्राण÷ लुब्धा[३] अलि भूरि[४] आच्छादिता[५] । (१)*
गुंजाहार अधार[१] सार गुन या[२] रुंजा पया[३] भासिता । (२)
अग्रे या[१] स्रुति कुंडला[२] करि नवं[३] तुंडीर[४]× उद्दारया[५]× । (३)
सोयं पातु गणेस सेस सफलं[१] प्रिथिराज काव्ये हितं[२] । (४)

अर्थ—(१) जिनका छत्र मद-गंध के घ्राण-लुब्ध भूरि अलियों से आच्छादित है, (२) जो गुंजा का हार धारण करने वाले, सार गुणों के आधार हैं, और जिनके पदों (चरणों) में रुंझा (रुनझुन करने वाला पैरों का आभूषण—घुंघुरू) भासित होता है, (३) जिनके कानों के अग्र [भाग] में कुंडल हैं, जो नव हाथी की तुंड वाले हैं और उदार हैं, (४) ऐसे वे गणेश रक्षा करें और 'पृथ्वीराज काव्य' के हित में जो शेष हो उसको सफल करें ।

पाठान्तर— × चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।
÷ चिह्नित शब्द ना. में नहीं है ।

(१) १. मो. में यहाँ 'पुन' है, जो अन्य किसी प्रति में नहीं है । २. धा. या, मो. जां, शेष में 'जा' । ३. मो. रागुरु वार्श, धा० गंधरसिका, स. राग रुचथं, म. अ. घ्राण (घ्रान—म.) लुब्धा, ना.—लुब्धा । ४. मो. भार, ना. अ. भोर, स. भूर; म. भौंर । ५. म. आच्छादितं ।

(२) १. मो. आधार, स. अधारे, ना. म. अ. विहार । (तुल० अगले छन्द का चरण १) । २. मो. गुनोजा, धा. गुनिजा, म. गुनया, ना. अ. गुणजा । ३. मो. झं[illegible]ा पया, धा. रुंजा पिया, अ. रुंजा पया, ना. रंजा पया, स. झंझा पया ।

(३) १. धा. म. या; शेष में 'जा' । २. मो. सुत कुंडलं । ३. मो. नवुं; धा. नवं, ना. णवः, अ. फ.करा, म. करि; स. कर । ४. मो. थुंडीर, अ. तुंडीर, म. जुडीर, ना. थुंदीर । ५. मो. उदारवं ।

(४) १. मो. स. सेस सफलं (शेश सफलं—मो.) धा. सतत फलं, अ. ना. सेवित फलं । २. मो. काव्यहितं, म. स. काव्यं कृतं ।

टिप्पणी— (१) छत्त < छत्र । (२) पय < पद्म ।

[२]

साटिका— *मुक्ता[१] हार विहार सार[२] सबुधा[३] अबुधा[४] बुधा गोपिनी[५] । (१)*
सेतं[१] चीर[२] सरीर नीर गहिरा[३] गौरी[४] गिरं[५] योगिनी । (२)
वीना[१] पानि सुवानि[२] जानि× दधिजा[३] हंसा रसा आसनी[४] । (३)
लंबी[१] या[२] चिहुरार[३] भार जघना[४] विघना घना[५] नासिनी ॥ (४)

अर्थ—(१) जो मुक्ता का हार धारण करने वाली है, जो बुद्धिमानों के [कल्पना] विहार का सार है, और जो बुद्धिमानों की अज्ञता का गोपन करने वाली है, (२) जो श्वेत चीर धारण करने वाली है, जो गहरी कांति वाले शरीर की है, जो गौरा-गौर वर्ण वाली है, जो गिरा (वाणी) का योग करने वाली है, (३) जो वीणा पाणि (हाथों में वीणा धारण करने वाली) है, जो सुवर्णी (अच्छे वर्ण वाली) है, मानो उदधि-पुत्री (लक्ष्मी) हो, जो हंसिनी रूपी रसा (पृथ्वी) पर बैठने वाली है, (४) जिसकी चिकुरावली लंबी है, और जो भारी जघनों की है, वह [सरस्वती] घने विघ्नों का नाश करने वाली है—या होवे।

पाठान्तर—× धा. में चिह्नित शब्द नहीं है।

(१) १. धा. ना. म. मुत्ता। २. ना. हार हार। ३. मो. सवधा; म. स. सुबुधा; ना. विबुधा, अ. वसुधा। ४. मो. अछूधा (< अबूधा), स. अब्धा। ५. धा. गोपनी।

(२) १ अ. श्वेतं। २. मो. ना. चीर, स. चौर। ३. मो. गिहिरा; म. गहिरी, ना. अ. गहरी। ४. म. गवरी। ५. धा. गुनं, ना. अ. फ. गुणं, स. गिरः।

(३) १. मो. बाना (< वीना), धा. अ. वीणा। २. धा. अ. सुवाणि। ३. म. दधिती। ४. ना. आसिनी।

(४) १. मो. लंबा, धा. लंबी; ना. लंब, अ. लंबं, स. लंबो, म. लंबि। २. धा. मो. 'या', शेष में 'जा'। ३. ना. चिहुरार। ४. मो. जघनी। ५. मो. विघना घना, धा. विना घनं। ६. धा. नासनी, मो. सनी।

टिप्पणी— (२) सेत < श्वेत। (४) चिहुरार < चिकुरावली।

[३]

विराज— जटा जूट[*] बंधं[१]। (१)
ललाटीय[१] चंदं। (२)
विराजादि छंदं[१]। (३)
भुजंगी गलिंदं[१]। (४)
सिरोमाल[१] लदं[२]।[३] (५)
गिरिजा अनंदं[१]। (६)
सुरे[१] सिंग[२] नदं। (७)
उगे[१] गंग हदं। (८)
रगे[१] वीर[२] मदं।× (९)
करी चम्म[१] छदं[२]।× (१०)
करे[१] काल षदं[२]।× (११)
चषे अग्गि दहं[१]। (१२)
पुलै[१]* यद्दि[२] जदं। (१३)
जयो जोग[१] सदं। (१४)
घटा[१] जाग्गि भदं। (१५)
जुरे[१] काम तदं।× (१६)
हरे आहि वदं[१]। (१७)

रचे मोह[१] कद्दं ।+(१८)
बचे[१] दूरि[२] दंदं[३] । (१९)
नटे भेष रिंद[१] । (२०)
नमो ईस इंदं[१] ।[२](२१)

अर्थ—(१) जो जटा-जूट बाँधे हुए हैं, (२) और जिनके ललाट पर चन्द्रमा है, (३) आदि के विराज [छन्द] में उनको वन्दन करता हूँ। (४) भुजंगो (सर्पिणी) जिनके गले में हैं, (५) और सिरों की माला [जिनके गले में] लटी हुई है, (६) जो गिरिजा को आनन्द देने वाले हैं, (७) जो शृंग (सींग) को निनादित करते हैं, (८) जो गंगा के ह्रद को पवित्र करने वाले हैं, (९) जो रण में वीरता के मद वाले हैं, (१०) जो गज-चर्म के आच्छादन वाले हैं, (११) जो काल को खाद्य करते (खाते) हैं, (१२) जिनके नेत्रों में अग्नि की उष्णता (ज्वाला) होती है (१३) जब जब प्रलय होता है, (१४) योग के शब्द (अनाहत नाद) के जो विजेता हैं, (१५) जो [शब्द] मानो भाद्रपद की घटा का होता है, (१६) जिन्होंने काम को तत्काल जलाया था, (१७) ऐसे तुम्हें हे हर, मैं 'त्राहि' कहता हूँ। (१८) जो मोह का कदन (नाश) करने वालों पर अनुराग करते हैं, (१९) द्वन्द्व जिनसे दूर बचता है (२०) और जो नट के वेष में रिंद (मस्तमौला) हैं, (२१) उन ईशेन्द्र (महेश) को नमस्कार करता हूँ।

पाठान्तर—÷ फ. में पूरे छन्द के स्थान पर केवल 'जटा जूटयौ' लिखा हुआ है।
*चिह्नित शब्द संशोधित पाठके हैं।
× म. में चिह्नित चरण नहीं है।
+ अ. मे चिह्नित चरण नहीं है।

(१) मो. धा. बंध, इनके अतिरिक्त सभी में 'बंदं' (वंदं—म.) है।
(२) १. मो. ललाटीय, धा. अ. ललाटेय, ना. लिलाटीय, स. लिलाटंस।
(३) १. धा. ना. अ. सिरोजाइ (सिरोजाय—धा.) छंदं, म. उ. स. विराजंत।
(४) १. धा. गलंद, मो. गलिंदं, ना. गलद्दं, म. उ. स. गलिंदं, अ. गलेंदं।
(५) १. मो. सिरोमल, म. सिरोसाल। २. धा. कंद्रं, उ. स. दंदं। ३. ना. स. में यहाँ और भी है :

हर्‌यौ डौरु नद्दं। हस्यौ (हन्या—ना.) पुत्र वद्दं।
खिजी मात भारी। सारापं विचारी।
करी जाकु ईसं। धर्‌यौ पुत्र सीसं।
सबै विघ्न अग्गे। तुही नाथ लग्गे।
कलानंत छपं। गनेसं सरपं।
इकं दंत दंती। विराजंत कंती।
सु दीपन्ति अंसे। कोबिद्दां प्रसंसे।
मनुं भूमिधारी। वराहां उपारी।
इसौ दंति तेजं। कला सोम केजं।
नमो देव कंदं। प्रजा ईस मंदं।
भयं भूत प्रेतं। तिजारी न हेतं।
इकं दीह एकं। दुती देह मेकं।
भगत्तं सुचक्री। दीउ लछि बक्री।
इकं घोष अछं। करे नाग नछं।
सुरं जक्षि सुत्ती। जलं माहि पत्ती (मात्ती—ना.)।
धरै आक सीसं। त्रिलोकी स ईसं।

रत रस भारी। करुन्ना विचारी।
लीउ माल वथ्थं। बीउ साथ्थि नथ्थं।
मिले पद्य दीहं। रमं काम सीहं।
इके जोरिष आयौ। दीयौ काम घायौ।
[पिजी रिषि भारी—केवल स. में]। वीयौ काम डारी।
भयौ पुत्र सब्बं। धुजा मोर सव्वं।
सिरो माल धारी । गनेसं विचारी।
[खिजे सव्व ईसं। भयौ रोम बीसं।
अवल्ला इकल्ली। वियौ पुपं मिल्ली—केवल स. में]

(६) १. अ. गिरीजाय नंदं।

(७) १. अ. उरो, म. सुरे, उ. अरे, स. सिरे। २. मो. सिंध, धा. सिंध, म. सिंगि, उ. स. सिंधि।

(८) १. धा. उरे, अ. शिरो, मो. उणे, म. स. उनें।

(९) १. उ. रिनौ। २. धा. धीर।

(१०) १. धा. चम्म, मो. अ. चर्म। २. मो. सद्द।

(११) १. मो. कले, अ. जरे। २. अ. कद्द।

(१२) १. मो. चप्पि (=चप्पे) अंग दंदं, धा. चखे अग्गि सद्द, म. चपे अंगि सदं, अ. चले अग्गि छद्द, स. चषो अग्गि दद्द।

(१३) १. मो. पुलि (=पुलै), अ. प्रले, धा. म. स. प्रलै। २. म. जादि।

(१४) १. धा. जये योगि, अ. जयं योगि।

(१५) १. धा. धरा।

(१६) १. मो. जुरे, शेष में 'जरे'।

(१७) १. अ. तद्द भद्द, धा. ताहि भद्द।

(१८) १. मो. धा. मोहि।

(१९) १. मो. वचि (=वचे), म. चवे, शेष में 'वचे'। २. म. रारि। ३. मो. दद

(२०) १. मो. रदं।

(२१) १. धा. सिद्ध। २. म. में यह चरण इसी स्थान पर दुहराया हुआ है।

टिप्पणी—(३) छन्द < वन्द्=वंदन करना, प्रणाम करना। (७) सिंग < शृंङ्ग=सींग। (८) उण < पुण < पू= पवित्र करना। (१०) छद्द < छद=आच्छादन, आवरण। (११) पद्द < खाद्य=भोजन। (१२) दंदं < द्वन्द्व=शीत उष्ण, किंतु यहाँ पर ताप। (१३) पुलै < प्रलय=सृष्टि का अन्त। (१५) भद्द < भाद्र=भादौं। (१७) वद < वद्=कहना (१८) रच < रच्=रचना, अनुराग करना। (२१) रिंद (फा०)=मस्तमौला।

[४]

भुजंगी:—

प्रथम्मं भुजंगी सुधारी[१] ग्रहन्नं[२]। (१)
जिनै[१] नाम× एकं× अनेकं कहन्नं॥ (२)
दुती लम्भयं[१] देवता[२] जीवतेसं। (३)
जिनैं विस्व राष्यौ[१] बलं[२] मंत[३] सेसं[४]*॥[५] (४)
त्रिती[१] भारथी व्यास भारथ्य भाष्यौ[२]। (५)
जिनै उत्त[१] पारथ्य सारथ्य साष्यौ[२]॥ (६)
चवं सुक देवं[१] परिष्यत्त*[२] पायं[३]। (७)
जिनैं[१] उद्धरे[२] सव्व[३] कुरु वंस[४] रायं॥ (८)

नलै रूव[१] पंचम्म[२] श्रीहर्ष सारं[३] ।[४] (९)
नलै राय कंठं दिय नैषध्ध हारं[२] ॥ (१०)
छठं कालिदासं[१] छ भासा समुद्दं[२] । (११)
नियं[१] सेतु बंधं[२] सु भोज[३] प्रबंधं ॥× (१२)
सतं[१] दंड माली सु लालिय[२] कवित्तं । (१३)
जिनै बुद्धि तारंग[१] सु गंगा सरित्तं[२]॥[३] (१४)
गिरा सेष[१] बानी कवी कव्व[२] बंधं[३] ।[४] (१५)
जिनै सेस[१] उच्छिष्ट[२] कबि चंद[३] छंदं[४] ॥[५] (१६)

अर्थ— (१) [अपने वंदनीय कवियों के रूप में] मैं पहले उन भुजंगिनी को धारण करने वाले (शिव) को ग्रहण करता हूँ (२) जिनका नाम एक है [किन्तु] अनेक कहा जाता है। (३) दूसरे मैं उन जीवितेश (जीवन के स्वामी—यम) को पाता हूँ, (४) जिन्होंने विश्व को मन्त्र-बल से शेष (बचा) रक्खा है—अथवा जिन्होंने विश्व में मंत्र-बल को शेष (बचा) रक्खा है। (५) तीसरे मैं महाभारत के [कवि] व्यास को पाता हूँ जिन्होंने महाभारत कहा, (६) जिन्होंने [उसमें] पार्थ सारथी द्वारा उक्त गीता की साक्षी दी। (७) चौथे मैं शुकदेव और परीक्षित को पाता हूँ, (८) जिन्होंने कुरुवंश के समस्त राजाओं का उद्धार किया। (९) पाँचवे नल के रूप (अवतार) श्रीहर्ष को मैं प्रसिद्ध करता हूँ, (१०) जिन्होंने नैषध (नल) के कंठ में 'नैषधीय' का हार दिया (डाला)। (११) छठें मैं कालिदास को पाता हूँ, जिन्होंने षट्भाषा समुद्र पर (१२) भोज के प्रबन्ध (आयोजन) से ['सेतु बंध' काव्य के रूप में] निज (अपना) सेतु बाँध दिया। (१३) सातवें मैं कविता का लालन करने वाले दंडमाली (दंडी) को पाता हूँ, (१४) जिनकी बुद्धि की तरंगें सरिता गंगा [की तरंगों के समान] थीं। (१५) गिरा (सरस्वती) की शेष वाणी को लेकर अन्य कवियों ने काव्य-प्रबन्ध किए, (१६) जिनके भी [अनन्तर] शेष उच्छिष्ट को कवि चंद छंद-निबद्ध कर रहा है।

पाठान्तर— ÷ फ. में यह पूरा छन्द दो बार आता है : एक तो प्रथम खंड की समाप्ति पर और दूसरे दूसरे खंड केप्रारम्भ में; अ. में चरण १३ का उत्तरार्द्ध, १४ तथा १५ पहले एक बार आ लेते हैं तब पूरा छन्द भी इसीके बाद आता है। नीचे अ. फ. का पाठान्तर परवर्ती स्थान पर आए हुए पाठ के अनुसार दिया गया है जो अ. फ. दोनों में पूरा मिलता है।

* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

× चिह्नित चरण अ. में नहीं है।

(१) १. ना. सधारी। २. धा. ग्रहण्णं, अ. गृहनं, फ. म. गहनं (=गहणं)।

(२) १. अ. भिनै, ना. जि—।

(३) १. अ. फ. लभ्यतं, म. लभ्यते। २. अ. फ. देता, ना. उ. स. देवतं।

(४) १. म. जनै जस्य संच्यौ। २. अ. म. उ. स. ना. बली, फ. बले। ३. धा. मित्र, अ. ना. मत्त (<मंत्र), फ. मंति। ४. म. जेसं। ५. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—
चवं वेद बंभं हरि किति भामी। जिनै ध्रम्म सा ध्रम्म संसार साधी।

(५) १. ना. विनी। २. म. भण्या।

(६) १. अ. उत्ति, फ. उक्ते (<उक्ति)। २. म. पारथ सारथ सिष्यौ।

(७) १. अ. चवै सुकदेव, फ. परी सुक्र देव, म. चवे सुषदेवं। २. धा. परिष्यत्य, ना. अ. म. परीछत्त,फ.

परीक्षत, स. परीषत्त । ३. अ. फ. रायं ।

(८) १. म. जिन । २. उ. स. उद्धरयौ । ३. धा. सव्य । ४. धा. कुरुपंस, ना. श्रव्व कुरू (कुरु) वंस, म. सव कुर वस, उ. श्रव्व कुर वंस, स. श्रव्व कुवंस ।

(९) १. फ. नले रूप, उ. स. नरं रूव (रूप-स.), म. नले रूव । २. धा. पंचमा । ३. फ. पंचंम नैषधि हारं । ४. ना. में अगला चरण ह इस चरण के स्थान पर भी है ।

(१०) १. म. उ. नले राइ कंठे दि नेषद्ध हार, स. नले राइ कंठं दिने षद्ध हारं, अ. नले राय कंठं नैषद्ध हारं, फ. श्री हर्ष सिंगार अनिसार सारं ।

(११) १. ना.म. अ. फ. छठे कालिदासं (कालदासं—म. ना.)। २. म. सभा सुष पंवं, ना. सुभाषा सवुधं, उ. स. सुभोया सुवद्धं । २. उ. स. में यहाँ और है :—

जिनें वाग वानी सुवानी सवद्ध । कियो कालिका मुक्ख वासं सुसुद्धं ।

(१२) १. फ. निरे, म. उ. स. ना. जिन । २. म. वंध्या । ३. ना. ज भोज प्रबंधं, फ. स भोजस्य वंदं, म. सुभो यं प्रवंदं, उ. स. ति भोज प्रबंधं ।

(१३) १. म. सुत्तं । २. धा. दंडमा माल लालिय, फ. दंडायं लाल माली, म. अ. डंड (दंड—अ.) माली सुलाली, ना. उ. स. दंड (डंड—ना.) माली उलालीन।

(१४) १. धा. म. अ. जिणं बुद्ध (बुध—म.) तारंग, फ. जिनं उद्धरी पुब्व (तुल० चरण८)। २. अ. फ. ना. गंगा पवित्तं, ना. गुण सरित्तं, म. गंगा सुरीतं । ३. ना. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—जयद्देव अट्ठं कवी कविराय । जिनें केवलं कित्ति गोविंद गायं । उ. स. में यहाँ पुनः और है:—

गुरं सब्ब कव्वी लइ चंद कव्वी । जिनं दसियं देवि सा अंग अव्वी ।

(१५) १. ना. गिरी सेव, म. गिरो शेष । २. ना. काम, म. कवि । ३. अ. फ. ना. म वंदे । ४. उ. स. में पूरे चरण का पाठ है : कवी कित्ति कित्ति उकत्ती सुदिक्खी । फ. में परवर्ती स्थान पर के पाठ में चरण छूटा हुआ है, किंतु पूर्ववर्ती स्थान पर के पाठ में यह चरण भी है ।

(१६) १. धा. जिणं सेस, अ. फ. तिनहि पुच्छि, ना. तिनें शेष, म. नबूतास । २. अ. में शब्द छूटा हुआ है फ. उच्छिष्ट । ३. धा. कवि छन्द, फ. कवि कवि । ४. ना. म. अ. फ. छंदे । ५ उ. स. में चरण का पाठ है : तिन की उच्छिष्टी कवि चंद भष्षी ।

टिप्पणी—(२) यम ऋगवेद की कुछ रिचाओं, एक विष्णु-स्तोत्र तथा एक स्मृति के रचयिता माने जाते हैं । (४) मंत्त < मंत्र । सेस < शेष । (९) रूव < रूप । सार < सारय् = प्रख्यात करना, प्रसिद्ध करना । (११) षटभाषा : प्राकृत, संस्कृत, मागधी, शौरसेनी, पैशाचिका और अपभ्रंश (१२) नयं = निज । (१५) कव्व < काव्य ।

[५]

दोहा— छंद[१] प्रबंध कवित्त जति[२] साटक[३] गाह दुहत्थ[४] । (१)
लहु गुरु मंडि त छंडिहउं[१]* पिंगल[२] भरह[३] भरत्थ[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) कविता के जितने [प्रकार के] छंद-प्रबंध होते हैं, साटक [-बंध], गाहा [-बंध,], दूहा [-बंध] [आदि], (२) उनमें लघु-गुरु का मंडन करके पिंगल [के छंद-सूत्र], भरत [के नाट्य शास्त्र] और महाभारत को [पीछे ?] छोड़ दूँगा—उनसे बढ़ कर रचना करूँगा ।

पाठान्तर— * चिह्नित संशोधित पाठ का है । (१) १. ध. बंध । २. धा. अ. फ. रस, ना. स. जुत्ति, म. चित । ३. म. साटकि । ४. मो. अ. दूहथ, अ. फ. दुअथ्थ, ना. दुअर्थ, म. दुरथ्थ ।

(२) १. मो. पंडित छंडिहु (=छंडिहउ), धा. मंडित मंडियहु, अ. मंडित पंडिया, ना. मंडित पंडइहि फ. मंडित पंया, म. भंजिमंडी इहै, उ. स. मंडित छंडयहि । २. म. प्यंगल । ३. ना. म. उ. स. अमर । ४. मो. भरथ ।

टिप्पणी—(१) जति < जत्तिय < यावत्=जितने । (२) भरह < भरत ।

[६]

साटिका— राजं जा ग्रजमेरि[१] केलि कविरं[२] वृत्ता* रता[३] संभरि[४] । (१)
दुद्धारा भर×[१] भार[२] नीर×[३] वहनो दहनो दुरग्गो[४] अरि । (२)
सोमेसुर नर×[१] नंद दंग[२] गहिला[३] वहिला वनं वासिनं[४] । (३)
निर्मानं[१] विधिना त* जान[२] कविना ढिल्ली[३] पुरं भासिनं[४] ॥ (४)

अर्थ—(१) जिस राजा की कपिल (धूलि-धूसरित) केलि अजमेर में हुई, जिसके अनुराग-पूर्ण वृत्त साँभर में हुए, (२) जिसका दुधारा (दो धारों का खड्ग) उस भारी भट के नीर (उसकी कांति) को वहन करता था, और शत्रुओं के दुर्गों को दग्ध करने वाला था, (३) वह नर (पौरुष युक्त) सोमेश्वर का पुत्र, जो दंग गहिल (युद्ध के लिए पागल) रहा करता था, जो वहिलावन का निवासी था, (४) वह विधाता के द्वारा, मानो कवि के द्वारा, दिल्लीपुर में भासित (द्योतित) होने के लिए बनाया गया था।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द म. में नहीं हैं।

(१) १. धा. मो. स. ना. अजमेर, फ. अजमेरु । २ धा. कविलं, म. कवीला, ना. अ. फ. कलयं। ३. धा. व्रितां (=व्रित्ता) रता, मो. वृता नता, अ. फ. ना. वृंदं नृतं, म. वृंतानिता, स. व्रदं व्रतं । ४. अ. फ. ना. सुंदरी।

(२) १. ना. दुर्धारा धर, अ. दुद्धारा धर, फ. दुद्धारध धरि, म. दुदार भार । २. ना. धीर, अ. म. स. भीर, फ. भीरु । ३. मो. ना. स. मीर । ४. धा. दहनो दुरग्गं, ना. दहनोपि दुर्ग्गं, मो. म. स. दहनो दुरंगो (दहनौ दुरंगो—म. स.), अ. फ. दहनोपि दुर्ग्गं।

(३) १. धा. सोमेसो सुर, अ. सोमेसुर वर, फ. सोमेस्वर वरु, ना. स. सो सोमेसर, म. सोमेसुर। २. धा. नंद वंद, अ. दं—, फ. में दूसरा शब्द नहीं है, ना. म. नंद नंद, स. नंद दंद। ३. म. गवहला। ४. मो. म. स. वासनं, फ. वासनी।

(४) १. म. निवर्ण । २. धा. विधनान जानि, मो. विधिना न जान, अ. फ. विधिना सुजानि, म. वि· ना निजानि, ना. चहुवान जान। ३. धा. अ. फ. दिल्ली। ४. मो. म. वासनं, धा. भासिनं, अ. वासिनं, [illegible] वासनी।

टिप्पणी—(१) कविर < कपिल=भूरा, मटमैला । रत्त < रक्त=अनुरागपूर्ण । (२) दुरग्ग < दुर्ग। (३) गहिल < ग्रहिल [दे०]=भूतग्रस्त, पागल, उद्भ्रान्त । (४) भासिन्=द्युतिमान्।

—:०:—

२. जयचंद राजसूय यज्ञ
और
संयोगिता का प्रेमानुष्ठान

[१]

पद्धडी — [1]कल[2] अत्थ[3] पत्थ[4] कनवज्ज राउ[5] । (१)
सत षित्त सेव*[1] धरि* धम्म चाउ[2] ॥[3] (२)
वारण*×[1] भूमि× हय गय[2]× अनग्गु[3] । (३)
परठिआ पूनि[1] राजसू जग्गु[2] ॥ (४)
सुद्धिग*[1] पुराण बलि[2] वंस वीर । (५)
भुवगोल[1] लिषित[2] दिष्षित[3] सहीर ॥ (६)
छिति[1] छत्रबंध राजनि[2] समान । (७)
जित्तिआ[1] सयल[2] हय बल[3] प्रमान ॥ (८)
पुच्छइ[1] सुमंत[2] परधान तव्व[3] । (९)
अब[1] करहि[2] जग्गु जे[3] लेहि*[4] कव्व*[5] ॥ (१०)
उतरु त दीअ[1] मंत्रिय[2] सुजान[3] । (११)
कलिजुग्ग नही[1] अर* जुग[2] प्रमान[3] ॥ (१२)
करि धम्म[1] देव देवर[2] अनेय[3] । (१३)
षोडसा[1] दान दिनु[2] देहु देव[3] ॥ (१४)
सुंहु सिष्ष मानि[1] नृप पंग[2] जीय[3] । (१५)
कलि अथ्थि[1] नही अर्जुन सु भीव[2] ॥ (१६)
मुकि पंगु राय[1] मंत्रिय[2] समान । (१७)
लहु लोह[1] अब्ब जो लहुं* अयान[2] ॥ (१८)

अर्थ—(१) कल (मनोहर) अर्थ के पथ में कन्नौजराज था, (२) जो सप्त क्षेत्र (जैन धर्म के अनुसार जिन मन्दिर, जिन प्रतिमा, ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक, और श्राविका) का सेवन करता था और धरा पर धर्म में रुचि रखता था । (३) [उसके] भूमि के वारण (शत्रुओं से बचाव या सुरक्षा के साधन) अनम्र (झूलों से परिवेष्ठित) हय और गज थे । (४) [ऐसे कन्नौजराज ने] पवित्र राजसूय यज्ञ की परिस्थापना की । (५) उसने पुराणों के बलशाली और वीर वंशों का शोध किया (६) और जो कुछ लिखित भूगोल (भू-वृत्त) था, उसको हेला-पूर्वक देखा । (७) क्षिति के छत्रबन्ध [छत्र धारण करने वाले] राजाओं से (८) [उसने] सब कुछ अपने हय-बल (अश्व-सेना) के द्वारा जीता । (९) [तदनंतर] अपने प्रधान (अमात्य) से वह यह मन्त्र (विचार) पूछने लगा—इस मन्त्र (विचार) के सम्बन्ध में परामर्श करने लगा —कि

१०) वह अब यज्ञ करे [जिससे] कि काव्य (यश) का लाभ करे। (११) ज्ञानी मन्त्री ने तो उत्तर दिया, (१२) "कलियुग इतर युगों का सा नहीं है—अथवा कलियुग में इतर युग प्रमाण (प्रामाण्य) नहीं हैं। (१३) हे देव, अनेक देवालय [निर्मित करा] कर (१४) षोडस [प्रकार के] दान [प्रति] दिन दें। (१५) हे नृप पंग जीव, मेरी सीख माने, (१६) यह कलियुग है, [इस युग में] अर्जुन और भीम नहीं हैं [जिनके पराक्रम के बल पर युधिष्ठिर ने राजसूय किया था]।" (१७) [इस उत्तर को सुनकर] पंगराज मंत्री से झुका (क्रुद्ध हुआ) (१८) और उसने कहा, "यदि मैं अब लघु लोभ-लाभ करता हूँ [और उसके लिए यज्ञ नहीं करता हूँ] तो यह [मेरा] अज्ञान होगा।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द धा में नहीं है।

(१) १. धा. में इसके पूर्व है : वारता—हिव कनवज का राजा की वात कहइ छइ। ना. में इसके पूर्व है : वचनिका। कनवज्ज को राजा जैचंद दल पांगुरो ताको स्थान कौन है तहां की वात प्रबंध अब राजसूजग्य की बात मंडी है। २. उ. स. में इसके पूर्व और है :—

थप्पै सुभट्ट राजसू पंग। परहरै पाप कर वत्त गंग।
धुनि धुनि सु विप्र बोलै त्रिवेद। तन करै त्रिमल अघ करै छेद।
ग्रह ग्रहन हेम कसि कसि सुनारि। मानों कि सूर ससि किन्न तार।
जगमगै हेम विधि विधि बनाइ। जिम निगम अंत वसि वरुन आइ।
ग्रह ग्रहन कलस तोरन समान। कैलास सिषर प्रतपै सु भान।
ग्रह ग्रहन गौण रज्जत बनाइ। कैलास ढरह ससि अद्ध पाइ।
ग्रह ग्रह किंपाट जगमग जराइ। कैलास लग्गि नवग्रह रिझाइ।

(तुल० स. ४८, ७२-७४ जो सभी प्रतियों में हैं।)

३. धा. कल अन्य, मो. कल थथ, फ. कलि अंथ, ना. कल हंत, द. उ. स. कलि अंत। ४. धा. पव। ५. मो. राअ, अ. फ. राव, उ. स. राइ।

(२) १. मो. उं सत्त पित सिव (=औ सत्तपित सेव), धा० सत्त पेत सीव, अ. सत्त सील रत, फ. सब सील रत्त, ना. द. सत्त पत्ति (सत्तिपत्त—ना.) सील, उ. स. सतपत्ती सील। २. धा. धुरि धम्म धाउ, मो. ना. धर धर्म धाउ (धाउ—ना.), अ. धर धर्म धाव, फ. धर धर्म पाउ, उ. स. धर ध्रम्म धाव। ३. उ. स. में यहाँ और है :—

सुनि रोस कियो पहु पंग राव। मागधहु सूत बंदनि बुलाव।
पुच्छयौ सुवंस कमधज्ज अब्ब। इम बंस जग्य किहि कियौ पुब्ब।
जिहि बंस जग्य तन होइ राज। भुगतौ न भूप सुप सरस माज।
तुम बंस भए कमधुज्ज सूर। दीनौ सुराज राज रस भूर।
तव बंस भयौ वाहन नरिंद। अंतरिष रथ्थ चलि स्वग्ग कंद।
तुम बंस भयौ पूरूर रूर। रथ च्यारि चक्र जिहि जीति सूर।
सत्त सिंधु सूर जिह रथ्थ चीरह। तुम बंस भयौ नृप राज नील।
तुम बस भयौ नलराइ अंद्र। नैषद्ध हार ही धरयौ बंध।
पद चक्र भए कमवज्ज आदि। किन्नौ नरिंद जिह बरुन बाद।
जीमूत धरयौ जिहि चक्र सीस। संसार किंत्ति कीनी जगीस।
को करै पंग सों दुष्ट आय। मंडै सुजग्य निहचै त राय।

(३) १. मो. वर निसांण, धा. त्रुटित है, अ. फ. वर अश्व, ना. वारुणीय, द. बारुनि, उ. स. बारुन्न। २. मो. भूमिह उधम। ३. मो. अंनंगु, धा. अनग्गू।

(४) १. धा. परठिया पुन्य, मो. परठिंउ (=परठ्ठिअउ) पून्नि, ना. परठीय पुन्य, अ. पठया पंग, फ. परठ्या पंग, उ. स. परठ्यं पुन्न। २. मो. राजसूअ जग्गु, धा. राजसु जग्गु, अ. राजभूजंग, फ. राज सुयंग अग्ग।

(५) १. धा. सुद्धिय, मो. सोधी, अ. फ. उ. स. सोधिग (< सुधिग)। २. फ. बल।

(६) १. मो. ना. द. उ. स. भूगोल, अ. फ. भुवबोल। २. फ. लिष्पति। ३. मो. दिपित, ना. दिष्पत, उ. स. दिष्भित।

(७) १. मो. छति। २. मो. राजा, अ. फ. ना. उ. स. राजन।

(८) १. मो. जित्तीआ, धा. ना. जित्तिया, उ. स. जितेति। २. मो. उ. स. ना. सकल, फ. सवल। ३. ना. द. उ. स. गय।

(९) १. मो. पुच्छि (=पुच्छइ), धा. पुच्छई, अ. पुच्छयो, उ. स. पुच्छ, ना. पुच्छे। २. अ. समंति, फ. समंत। ३. धा. परित तत्थ, अ. फ. परवान तच्छ (< तत्थ)।

(१०) १. धा. हम। २. मो. करु (=करउ) यग, ना. उ. स. करहु जग्य। ३. धा. इह, मो. जे, अ. फ. जिहि, ना. द. उ. स. जिम। ४. धा. लही (< लहि=लहइ), मो. लिहि (< लेहि), ना. चलै, द. उ. स. चलहि। ५. धा. कत्थ।

(११) १. धा. उत्तर सु देइ, मो. ऊतर त दीअ, फ. उत्तर तौ दीय, उ. स. उत्तर सु दीन। २. मो. मंत्री। ३. उ. स. सुजानि।

(१२) १. उ. स. नाहि। २. धा. अरजनु, मो. अर्जुन, अ. अरज्जुन, फ. अरजन, ना. द. उ. स. विय जुग। ३. अ. फ. समान।

(१३) १. मो. ना. अ. फ. धर्म, धा. धम्म, द. उ. स. भम्म। २. मो. द. ना. उ. स. देवल, फ. देवर। ३. अ. फ. ना. उ. स. अनेव।

(१४) १. धा. षोडस (=षोडस्स) २. मो. दितु (< दितु), धा. नित। ३. धा. देव देय, मो. देहु देय।

(१५) १. धा. मो सिक्ख सुणवि, मो. सुंदु सीप मांन, अ. फ. ना. द. उ. स. मो सीख मानि। २. धा. त्रप पंग, मो. नृपंग, अ. फ. प्रभु पंग। ३ ना. जेय।

(१६) १. मो. अजू, फ. अच्छि, ना. द. उ. स. जुग्ग। २. धा. राजा सुग्रीव, मो. अर्जुन सुसीव, ना. अर्जुन सयेव।

(१७) १. ना. द. उ. स. राव। २. मो. मंत्रीअ, ना. मंत्रिनि।

(१८) १. धा. मो. ना. लोभ। २. धा. बुल्यौ नियान [पाठा० लहिन आन], अ. बुल्यौ नियान, फ. बुड्यो लही आन, मो. जो लुहुं (=लुहउं) अयान, ना. द. उ. स. बोलहु अयान।

टिप्पणी—(१) अथ्थ < अर्थ। (२) षित्त < क्षेत्र। धम्म < धर्म। (३) वारण्ण > वारण = बचाव या सुरक्षा के साधन। अनग्ग < अनग्न=शूलादि से परिवेष्ठित। (४) परिठ्ठवण < परिस्थापना। (६) हीर > हेला=अनादर, तिरस्कार। (७) समान=साथ (दे० बाद का चरण १७)। (८) सयल < सकल। (९) मंत < मंत्र। (१०) जेम=यथा, जैसे, जिस तरह से। कव्व < काव्य=यश। (११) त < तु=तो। (१२) अउर < अपर=अन्य। (१३) धम्म < धर्म। देवर < देवालय। अनेय < अनेक। (१४) षोडसा < षोडस। [षोडस दानों की सूची के लिए दे० मोनियर विलियम्स की 'संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी']। (१६) अथ्थि < अस्ति=है। भीव < भीम। (१७) समान=से [दे० ऊपर का चरण ७]। (१८) लोह < लोभ। अयान < अज्ञान।

[२]

गाथा— के के[१]न गया महि मंडलंमि[२] धर ढिल्लाय[३] दीह दीहाइ[४]। (१)
विप्फुरइ[१] जासु[२] कित्ती ते गया[३] नहु[४] गया[५] हुंति[६]॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचन्द ने कहा,] "इस महि मण्डल से धरा को दीर्घ (बहुत) दिवसों तक ढीला करके (भोग करके ?) [भी] कौन कौन नहीं गए ? (२) जिसकी कीर्त्ति विस्फुरित होती है, वही गत गत नहीं होता है।

पाठान्तर—(१) १. ना. को कौ। २. धा. न गया मह मडलानि, मो. ना. न गया महि मंडलंगि, अ. न गए महि मह्र द. ना. उ. स. न गया महि मंडलाइ (मंडलाय–ना. उ. स.)। ३. धा. धर ढिल्लिय, मो. धत्रलिऊण, अ. फ. ढिली ढिलाय, ना. वज्जए, द. उ. स. वज्जाए । ४ धा. दीह दोहाइ, मो. दह दीहा, दीह होहाय, फ. दीह होरहौ, ना. द. दीह दिवहाइ, उ. स. दीह दसहाइ ।

(२) १. धा. द. उ. स. विप्फुरे, अ. विहुरंति, फ. विहुरंत । २. धा. तासु, ना. जास । ३. अ. तं गय, तं गया । ४. धा. नहि, अ. फ. नहीं, ना. नह, द. स. नवि । ५. अ फ. गये । ६. उ. स. हूंती ।

टिप्पणी—(१) गय < गता : । दीह < दीर्घ । दीहा < दिवस । (२) विप्फुर- < विस्फुर्- । गया < गताः।

[३]

पद्धडी— पहु[१] पंगु राउ[२] राजसू[३] जग्गु[४] । (१)
आरंभ रंभ[१] कीनउ*[२] सुरग्ग[३] ॥ (२)
जित्तिआ[१] राउ[२] सब सिंधु आर[३] । (३)
मेलिया[१] कंठ[२] जिम[३] मुत्ति हार[४] ॥ (४)
जोगिनी पुरेस[१] सुनि भयउ*[२] षेद । (५)
आवइ[१] न माल मझ इह[२] अभेद ॥ (६)
मोकले[१] दूत तब ही[२] रिसाइ । (७)
असमथ्थ सेव[१]× किम[२]× भूमि× खाइ ×॥ (८)
बंधू[१]× समेत[२]× सामंत सथ्य[३]× । (९)
उत्तरे[१] आनि[२] दरबार तथ्थ[३]॥[४] (१०)
बोलउ*[१] न वयण[२] प्रथिराज तांहि[३] । (११)
संकुरिउ*[१] सिंघ[२] गुरजनन चाहि[३] ॥ (१२)
उच्चरउ*[१] गुरुअ[२] गोयंद[३] राज । (१३)
कलि मभिझ[१] जग्गु[२] को करइ[३] आज ॥ (१४)
सत जुग्ग[१] कहइ[२] बलिराइ[३] किंन[४] । (१५)
तिनि[१] कित्ति काज त्रैलोक[२] दिंन[३] ॥ (१६)
त्रेता[१] ज*[२] कीन्ह[३] रघुनंद साइ[४] । (१७)
कुव्वेर कोट[१] वरिषउ*[२] सुभाइ[३] ॥ (१८)
धनि[१] धम्म पुत्त[२] द्वापर[३] सुणाइ[४] । (१९)
तिहि पथ्थ[१] वीर अरु[२] हरि सहाइ[४] ॥ (२०)
कलि मभिझ[१] जग्गु[२] को करण[३] जोग ।÷ (२१)
विग्गरइ* तु बहु विधि[१] हसइ*[२] लोग ॥ (२२)
दल दव्व[१] गव्व[२] तुम[३] अप्रमांन[४] । (२३)
बोलहु[१] त बोल देवन[२] समांन ॥ (२४)
तुम जानउ*[१] पित्री हइ न[२] कोइ । (२५)

निव्वीर[1] पुहवि[2] कबहू न होइ ॥ (२६)
हम जंगलि[1] वास कालिंदि[2] कूल[3] । (२७)
जानहिं[1] न राइ[2] जयचंद मूल ॥ (२८)
जानहिं[1] त देसु[2] जोगिनि[3] पुरेसु । (२९)
जरासिंध वंसि[1] पुहुमी[2] नरेसु ॥ (३०)
तिहु वारि[1] साहि बंधिआ[2] जेनि[3] । (३१)
भंजिआ[1] भूप झडि[2] भीमसेन[3] ॥ (३२)
सइंभरि*[1] सकोप[2] सोमेस पुत्त[3] । (३३)
दानव ति[1] रूव[2] अवतार धुत्त[3] ॥ (३४)
तिह कंधि[1] सीस किम[2] जग्ग[3] होइ । (३५)
जु प्रिथिमी[1] नहीं[2] चहुआन कोइ ॥ (३६)
देषइ सभ्भ तेहि[1] सिंघ[2] रूप । (३७)
मानहिं न जग्गु[1] मनि आन[2] भूप ॥ (३८)
आदरह मंद उठि गयु*[1] वसिट्ठ[2] । (३९)
जिम गागिनी सभा[1] बुध जन[2] उविट्ठ[3] ॥ (४०)
फिरि चलिग तव्व[1] कनवज्ज मंझ[2] । (४१)
गयु मलिन[1] मुख्ख[2] जांनु कमल[3] संझ[4] ॥ (४२)
तिनि दूर दूत[1] जइ* कहिग[2] वयन । (४३)
अति रोस किए[1] रत्ते[2] नयन ॥ (४४)
बोल्यउ[1] सुमंत परधान तव्व । (४५)
कनवज्ज नाथ[1] करि जग्गु[2] अव्व ॥[3] (४६)
जव[1] लग्गि[2] गहिहि[3] चहुआन चाहि । (४७)
तव लग्गि तांह[1] टलि[2] काल जाहि[3] ॥ (४८)
ये*×[1] आसमुद्द[2] नृप करहिं[3] सेव । (४९)
उच्चरहु[1] कामु सो करहुं[2] देव ॥ (५०)
सोवन्न[1] प्रतिमा[2] प्रथीराज वांन[3] । (५१)
थापउ* जु[1] पोलि जिम दरव्वान[2] ॥ (५२)
सइंवरह* संग[1] अरु जग्गु[2] काज । (५३)
विद्द जन[1] बोलि*[2] दिन धरहु[3] आज ॥ (५४)
मंत्रीनु राउ[1] परबोधिआ[2] जांम । (५५)
घुम्मिआ[1] वार[2] नीसान तांम ॥ (५६)
सुनि सद्दनि[1] बंधिअ[2] बंदनवार[3] । (५७)

कट्टहिं त[१] हेम ग्रहि ग्रहि[२] सोनार[३] ॥ (५८)
भूषन सुदान[१] सुर समि आचार । (५९)
आनंद इंद[१] सम किय*[२] विचार ॥ (६०)
धवलेह[१] धाम[२] देवर[३] सुचीय[४] । (६१)
तसु[१] हरहिं×[२] कलस कल बिंब[३] लीय[४] ॥ (६२)
धज बंधन*[१] सोम[२] जनु[३] मधु वद्धीय[४] । (६३)
मनु सज्जिआ[१] बंभ केलास बीय ॥[३] (६४)

अर्थ—(१) प्रभु पंगराज (कन्नौजराज) ने राजसूय यज्ञ का (२) समारंभ राग (अनुराग) पूर्वक किया। (३) सिंधु (समुद्र) के आस-पास [तक] सब राजाओं को उसने जीता (४) [और उन्हें इस प्रकार अपने अधीन कर लिया] जैसे उसने कंठ में मोतियों का हार डाल लिया हो। (५) [किन्तु] यागिनीपुर (दिल्ली) के राजा (पृथ्वीराज) के सम्बन्ध में वह सुन कर उसको खेद हुआ (६) कि वह इस माला में अभिन्न रूप से नहीं आ रहा था। (७) तब [उसने] हृदय में रुष्ट हो कर दूत भेजे, (८) [यह सोचते हुए कि] यदि वह (पृथ्वीराज) उसकी सेवा करने में असमर्थ था तो वह किस प्रकार भूमि को खा (भोग ?) रहा था। (९) तब [वे दूत कन्नौजराज के] बन्धुओं के समेत और सामन्तों के साथ (१०) [पृथ्वीराज के] दरबार में आ उतरे। (११) उनसे पृथ्वीराज वचन नहीं बोला, (१२) वह सिंह गुरुजनों को देख कर सिकुड़ गया (संकोच में पड़ गया)। (१३) [यह देखकर] उसके एक गुरु (पूज्य) गोविन्द राज ने कहा, (१४) "कलियुग में आज कौन यज्ञ कर रहा है ? (१५) कहते हैं कि सतयुग में राजा बलि ने [यज्ञ] किया था (१६) और उन्होंने कीर्त्ति के लिए [वामन को] तीनों लोक दे दिए थे; (१७) त्रेता [युग] में रघुनन्दन (राम) ने जो विशेषता पूर्वक किया था (१८) [उसका कारण यह था कि उनके] कोट (नगर) पर कुवेर ने भावपूर्वक [कोष को] वर्षा की थी; (१९) सुना जाता है कि द्वापर युग में धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) [यज्ञ करके] धन्य हुए, (२०) [किन्तु] उनके सहायक वीर पार्थ (अर्जुन) तथा हरि (कृष्ण) थे। (२१) कलि में [राजसूय] यज्ञ करने के योग्य कौन है ? (२२) [यदि वह] बिगड़ गया (विधिपूर्वक समाप्त न हो सका) तो लोग बहुत प्रकार से हँसेंगे। (२३) तुम्हें दल (सेना) और द्रव्य का झूठा गर्व है, (२४) तभी तुम देवताओं के समान बोल बोल रहे हो! (२५) तुम जानते (समझते) हो कि क्षत्रिय कोई नहीं [रह गया] है, (२६) [किन्तु] पृथ्वी निर्वीर कभी नहीं होती है। (२७) कालिन्दी-कूल पर [कुरु] जांगल में हमारा निवास है, (२८) जयचन्द राज को हम मूल (प्रमुख) नहीं मानते हैं, (२९) हम तो आदेश योगिनीपुरेश्वर (दिल्ली नरेश) का जानते (मानते) हैं—(३०) उस पृथ्वी, नरेश (पृथ्वीराज) का जो जरासंध के [पुराण-प्रसिद्ध] वंश का है, (३१) जिसने तीन बार शाह [शहाबुद्दीन] को बन्दी किया और (३२) जिसने राजा (गूर्जराधिपति) भीमसेन [चौलुक्य] को गिरा कर [उसकी शक्ति को] नष्ट किया, (३३) जो शाकंभरी (साँभर) के कोप युक्त सोमेश्वर का पुत्र है (३४) और जो रूप में दानव है और धूर्तावतार है। (३५) [जब तक] उसके कन्धे पर सिर है, [राजसूय] यज्ञ किस प्रकार हो सकता है ? (३६) क्या पृथ्वी पर कोई चहुआन [शेष] नहीं रहा ?' (३७) सब उसको सिंह के रूप में देखते हैं, (३८) और मन में अन्य [किसी को] जगत् का भूप नहीं मानते हैं। (३९) मन्द आदर (निरादर) के कारण बसीठ उठ कर चले गए, (४०) जैसे ग्रामीण (ग्राम-प्रमुख की) सभा से बुधजन उद्वेष्टित (बंधन-मुक्त) हुए हों। (४१) [दूत] तब लौटकर कन्नौज में गए। (४२) उनका मुख इस प्रकार मलिन हो गया था मानो सन्ध्या-काल में कमल हो।

(४३) उससे (जयचन्द से) दूर (अलग) जब उन दूतों ने [वे] वचन (वाक्य) कहे, (४४) तो [जयचन्द ने] अत्यन्त रोषयुक्त होकर नेत्र लाल कर लिए। (४५) तब उसके प्रधान (अमात्य) ने यह मन्त्र कहा, (४६) "हे कन्नौजनाथ, अब आप यज्ञ करें, (४७) [क्यों कि] जब तक आप चहुआन को पकड़ने की प्रतीक्षा करते रहेंगे, (४८) तब तक उसका (यज्ञ का) समय टल जायगा। (४९) समुद्रपर्यन्त के ये राजा आपकी सेवा कर रहे हैं, जो काम आप वह कहें, हे देव, ये करें। (५१) पृथ्वीराज के वर्ण (आकार-प्रकार) की सुवर्ण की प्रतिमा (५२) प्रतोली द्वार पर स्थापित कर दें— जैसे वह दरवान (द्वारपाल) हो। (५३) साथ-साथ स्वयंवर भी हो और यज्ञ-कार्य भी, (५४) [इसके लिए] विद्वानों को बुला कर आज दिन निर्धारित करें।" (५५) जब मंत्रियों ने राजा (कन्नौजराज) को [इस प्रकार] समझाया, (५६) तब राजद्वार पर निशान (धौंसा) घूमा (बजा)। (५७) [इस निशान के शब्द को] सुनकर वंदनवार बाँधे गए, (५८) और घर घर सुनार हेम (सुवर्ण) काटने [और आभूषणादि बनाने] लगे। (५९) राजा आभूषणों का दान और देव-तुल्य आचरण करने लगा, (६०) और आनन्दित होकर उसने इन्द्र के समान विचार किया (अपने को इन्द्र के समान समझा)।

(६१) धाम (गृह) धवले (सफेदी से पोते) गए, और देवालयों की सफ़ाई की गई, (६२) उनके सुंदर कलश [सूर्य तथा चन्द्र का] बिम्ब धारण करके अन्धकार का हरण करने लगे। (६३) नगरी ध्वजाओं [और बन्दनवारादि] के बन्धनों से ऐसी लगने लगी मानो मधु वसित (मधु दैत्य का निवास—मधुपुरी) हो, (६४) अथवा मानो ब्रह्मा ने दूसरे कैलास का साज किया हो।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाकठ है।
× चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
× चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।
÷ चिह्नित चरण उ. स. में नहीं है।

(१) १. फ. पौहु। २. धा. द. राय, ना. स. राव, ना. अ. फ. राइ। ३. धा. मो. राजसुअ। ४. मो. जंगु (=जग्गु), अ. जग्गि, फ. जग्ग, ना. जग्य।

(२) १. अ. अग्ग, धा. मो. द. फ. रंग। २. मो. मूकउ, अ. फ. कीनौ (<कीनउ)। ३. मो. तुरंगु, धा. सुरंग (=सुरंग), फ. सुरंगु, ना. सुजग्ग, द. सुचंग, उ. स. अचग्ग।

(३) १. धा. अ. फ. ना. जित्तिया, मो. जीतीआ, उ. स. जित्तिए। २. धा. राय, अ. फ. राइ, स. राज।

(३) मो. आर, अ. फ. शरु।

(४) १. धा. मल्लिया, उ. स. मिल्लए, द. मेल्लिया। २. धा. कंध। ३. उ. स. जनु। ४. धा. मो. मोत्तिहार, फ. मुत्तियहार।

(५) १. फ. युगिन पुरुस, अ. जुग्गिनि पुरेस, ना. द. उ. स. जुग्गिनिय (जुग्गिनी,-ना.) पुरह। २. मो. भयु—धा. उ. स. भयौ।

(६) १. मो. आवि (=आवइ), अ. ना. आवै, द. उ. स. आवहि। २. मो. मानल मोल सुझि, फ. माल माझहि, द. माल मझहि, ना. माल मुझह, उ. स. मारू मझ झह।

(७) १. मो. मोकले, शेप में 'मुक्कले'। २. मो. ही, ना. तह, उ. स. तिन।

(८) १. उ. स. सेस। २. मो. किमि।

(९) १. ना. वंधौ, उ. स. वंधो। २. ना. सुमंत। ३. मो. तथ्थ।

(१०) १. मो. किउंतगरि, ना. उत्तइ, धा. उ. स. द. उत्तरहि। २. मो. आइ, फ. अथ्थ। ३. मो. सिथ्थ, उ. स. अथ्थ। ४. ना. द. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):—

सुनि दूत चलीय दिल्लीय थान। आजानु बाहु जहं चाहुवान।
पहुच्यौ स जाइ दिल्लीय ताम। गुदरीय वत्त जैचंद नाम।
हुजूर बोलि पट्ठाइ राज। किहि आप इत्त सो जंपि काज।
तब दूत कही दिल्ली नरेस। आइस्स जंपि जैचंद एसु।

राजसू जग्य आरंभ कीन । दश दिशिन भूप फुरमान दीन ।
छिति छत्र बंध आए सु सब्ब । तुम चलहु बेगि नहीं विरमु अब्ब ।
फुरमान दीन चहुवान तोहि । कर छडीय दब्बि दरवान होहि ।

(११) १. धा. बोल्यो, मो. बोलु (=बोलउ), अ. फ. बुल्यौ, ना. द. बुल्यौ, उ. स. बुलै। २. ना. बेन। ३. धा. अ. फ. ना. प्रिथिराज ताहि, उ. स. प्रथिराज ताह।

(१२) १. मो. संकुरि, धा. संकरिउ, अ. फ. संकल्यो, ना. द. संकरयौ, उ. स. संकरै। २. धा. सिध। ३. धा. गुरजन विचाहि, मो. अ. फ. ना. गुरजननि वांहि (<चांहि)। अ. पुरजननि व्याहि, फ. पुरजनन वाहि

(१३) १. मो. उचरौ (<उचरउ), धा. उच्चरइ, अ. फ. उच्चरिय, द. उच्चरैं, ना. उच्चरयौ, उ. स. उच्चरै। २. मो. गुरुअ, धा. गुरु। ना. गरुव धा. ३. । अ. फ. ना. गोविंद, मो. गौयंद।

(१४) १. धा. माहि, अ. फ. मध्य, ना. मद्धि। २. फ. जाय, ना. जाय। ३. अ. फ. ना. उ. स. करै, द. करहि।

(१५) १. धा. अ. फ. सति जुग्ग, मो. शत (=सत) जगु। २. धा. कहइ, मो. काहां, ना. अ. कहिहिं, फ. उ. स, कहहि। ३. अ. फ. राज, ना. उ. स. राय। ४. धा. अ. ना. द. उ. स. कीन, फ. कीनु।

(१६) १. मो. तिनि, धा. अ. फ. ना. द. उ. स.' तिहि। २. धा. त्रैलोक्य, ना अ. फ. त्रयलोक, उ. स. त्रिहुंलोक। ३. धा. अ. फ. ना. द. दीन।

(१७) १. मो. त्रता। २. मो. य (=ज), धा. द. उ. स. सु, अ. फ. तु, ना. जु। ३. मो. कीहन, अ. फ. किन्ह। ४. मो. रघुमंद साइ, धा. अ. फ. रघुनंद राइ, उ. स. रघु वंस राइ।

(१८) १. धा. कोप, अ. फ. कोपि, ना. द. उ. स. कनक। २. मो. वरिषु [=वरिषउ], धा. अ. वरष्यो, ना. उ. स. बरष्यौ, फ. बरुष्यौ। ३. अ. सभाइ, ना. उ. स. सुआइ।

(१९) १. मो. धन, ना. उ. स. धर, फ. धन्य। २. मो. धर्म पुत्र, ना. धर्म पुत्त, अ. फ. धम्म पूत, द. उ. स. ध्रंम पुत्र। ३. फ. द्वापरि, ना. द्वापुर। ४ मो. सुणाय, धा. सुभाइ, ना. द. अ. फ. उ. स. सुनाइ।

(२०) १. फ. पुब्ब। २. धा. अरि। ३. ना. हति, अ. अरि, फ. हर। ४. मो. सहाय, फ. सराइ।

(२१) १. धा. माहि, मो. मझि, ना. मध्य। २ फ. जग्यौ, ना. जग्य। ३. फ. करनु।

(२२) १. धा. विग्गरे जग्गु बहु, मो. बिगरि (=बिगरइ) तु बहू बिधि, अ. बिग्गरइ बहुत बिधि, फ. बिग्गरइ बौह विधि, ना. विग्गरहि बहुत विधि। ३. धा. ना. हंसहि, मो. हसि (=हसइ)।

(२३) १. मो. मंद, उ. स. दर्ब, द. ना. द्रब्ब। २. ना ग्रब्ब, उ. स. गर्ब। ३. मो. तुम्ह, धा. अ. फ. उ. स. द. तुम। ४. मो. वय प्रमान।

(२४) १. मो. बोलह, फ. बोलहि, ना. बुल्लहु। २. मो. त बोल देव, धा. त बोल देवन, फ. ति बोल देउन, ना. त बुल्ल देउन।

(२५) १. धा. तुम जाणहु, मो. तुम्ह जानुं (= जानउ), अ. तुम जानुं (= जानउ), फ. तुम जानुह, उ. स. जानौव तुम्ह, द. ना. तुम्ह (तुम-ना.) जानहु। २. धा. छत्रिय है न, अ. तहीं क्षत्रिय है व, फ. क्षत्रिय है तु, ना. छित छत्री न, उ. स. षत्री न।

(२६) १. अ. फ. निब्बीर, ना. नृब्बीर, शेष में 'निरबीर'। २. धा. पुहवि, मो. पुहुमि, फ. पुहुवि, अ. ना. उ. स. पुहमि। ३. फ. कब हों।

(२७) १. मो. हम जंगली, धा. हम जंगलिह, ना. उ. स. अ. फ. जंगलह, द. जंगलहि। २. द. कालिंद्रि, ना. उ. स. कालिंद। ३. मो. कुल।

(२८) १. ना. उ. स. जानै। २. धा. अ. फ. ना. उ. स. राज, द. राय।

(२९) १. मो. जांनह, धा. ना. उ. स. जानहि। २. मो. ना. उ. स. त देस, अ. त एक, फ. तु एक। ३. धा. योगिन, अ. फ. जुग्गिनि, ना. जुग्गनि, उ. स. जोगिन।

(३०) १. मो. जुरि इंदु वंशि, धा. सुर इंदु बंसु, अ. फ. जरासिंध वंस, द. जुरा इंद वंस, ना. सब मुकट रा, उ. स. आनल वंस। २. धा. प्रिथिवी, अ. प्रिथी, फ. प्रथी, ना. पित्था, उ. स. प्रथिथय।

(३१) १. मो. तिहु वारि, धा. तिहु वारि, अ. फ. तिहुं वार (वारु-फ.), ना. त्रय वार, द. उ. स. कै वार। २. धा. ना. बंधियो, उ. स. बंधयौ। ३. मो. जेन, अ. फ. जेनि।

(३२) १. धा. भंजियो, उ. स. भंजिय सु ना २. मो. झडि, धा. भडि, द. ना. उ. स. भिरि., अ. ति, फ. तिहां । ३. धा. मो. भीमसेन, अ. फ. भीमसेनि ।

(३३) १. धा अ. फ. द. ना. उ. स. संभरि, मो. सिंभरि (= सइंभरि) । २. अ. फ. सुदेस, ना. नरेस । ३. मो. द. उ. स. पूत ।

(३४) १. म . दामीति, धा. दानवत, अ. फ. दानवति, ना. उ. स. दामित्त, द. दामंत । २. धा. मो. अ. फ. द. उ. स. रूप । ३. मो. धूत, उ. स. भूत ।

(३५) १. मो. तिह कंध, धा. तिहि कंधु, अ. तिहि कंधि, फ. ना. स. द. तिहि कंध । २. अ. फ. किमि, ना. ज्युं । ३. मो. जग्य, धा. जग्ग, ना. जपे ।

(३६) १. मो. जु प्रथमी, धा. पिरथी, अ. प्रिथिमी, फ. प्रथी, उ. स. जो प्रथिय, द. जौ प्रथी, ना. ज्युं पृथिमीव । २. ना. नहि ।

(३७) १. मो. देखइ सभा तेह, धा. दिष्षियत्ति सब्ब नर, अ. दिष्षयहि सब्ब तहं, ना. दिष्षीय सभा तिहि, द. दिष्षय सु सब्भ तिहिं, उ. स. देखी सु सभा तिन, फ. दिष्षीयहि सभ्भि भर । २. मो. संधि ।

(३८) १. धा. मो जग्गु, अ. फ. जग्गि, ना. उ. स. जग्य । २. धा. ते आन, द. मन अन्य, अ. मनि आन, ना. फ. मन आन, उ. स. मन अन्य ।

(३९) १. मो. उठि गुयु [= गुउय], धा. ना. उट्ठिग, अ. फ. उठि गयौ, उ. स. उठि चलि । २ मो. वशिठि (=वसिठि) ।

(४०) १. धा. गामिनीय भरि, मो जिमि गंमिनि सभा, ना. जिमि ग्रामीन सभा, अ. फ. गांमिनी सभा, उ. स. ग्रामिनी सभा, द. ग्रामिन सभा । २. मो. बूधीजन, अ. फ. बुधिजन । ३. मो. उठि, धा. कविठ्ठ, मा. वसीठ, द. उ. स. बईठ ।

(४१) १. धा. दूत, अ. फ. सब्ब, उ. स. तबै । २. धा. मांझ ।

(४२) १. धा. भयो मिलिन, ना. भौ मलिन, अ. प मलिन, फ. भए मलिन, द. उ. स. भय मलिन । २. धा अ. फ. कमल । ३. धा. जिमि सुकल, अ. फ. जिमि सकिलि, ना. उ. स. जनु कमल । ४. धा. सांझ ।

(४३) १. धा. द. तिन दूत जाहि, मो. तिनि दूर दूत जि (=जइ), अ. फ. तिहि दुरित दूत, उ. स. तिन दूत पंग, ना. दिखि दूत दूरि । २. धा. पे कहिय, अ. फ. एकहि, द. तहं कहिय, ना. कहि गय, उ. स. अग कहिय ।

(४४) १. धा. कियो, अ. फ. कियै, उ. स. कीन, ना. रंत । २. धा. रकतोत, अ. फ. रकते, ना. रंगति, उ. स. रंग तेत ।

(४५) १. धा. बोलइ, अ. फ. बुल्यो, ना. द. उ. स. बुल्यौ ।

(४६) १. धा. माथ । २. ना. द. उ. स. जग्य । ३. ना. द. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

> बोलै सुमंत्र मंत्री प्रधान । उद्धरन जग्य कलिजुग्ग पान ।
> बालुका राइ बोल्यो हकारि । साधन सुजग्य बहु जुद्ध सार ।
> षुरसान षान बंदेति मीर । सो भाग दसम अप्पै सरीर ।
> ऐसं जु सज्जि चौसठि हजार । अप्पै ति मेछ पहु पंग बार ।
> नीशान बार बज्जेति अंग । बद्धी अवाज दिसि दिसि अनंग ।
> घोषंद बाद बालुका राज । रष्षिय जग्य ,को रहै साज ॥

(४७) १. मो. नवि । २. फ. लग्ग, अ. जग्गि । ३. मो. गिहहि, धा. अ. फ. गहहि, ना. गहै, द. उ. स. गहौ ।

(४८) १. धा. अ. फ. तहां, ना. उ. स. द. ताहि । २. धा. अ. फ. ना. उ. स. द. टरि । ३. मो. जाय ।

(४९) १. मो. जे, धा. ना. उ. स. द. ए । २. धा. आससुद, मो. द. उ. स. आसमंद (आसमद—मो.) फ. आसुमद, ना, आससुद्र । ३, धा. करति ।

(५०) १. धा. उच्चरहि, मो. अ. फ. उचरहु, । उ. उचरेंहि । २. मो. करहुं, ना. द. उ. स. होइ ।

(५१) १. धा. ना. सोवन्न, मो. सोवृन, अ. फ. सोवनी, द. सोवर्ण । २. मो. अ. फ. प्रमिमा, धा. ना. उ. स. प्रतिम । ३. धा. फ. ना. बानि, उ. स. जान ।

(५२) १. धा. थापहि त, अ. थप्पहुत्ति, फ. थप्पेहति, ना. रष्पहित । २. धा. पौर जिम दारवानि, अ. फ. पौरि करि दारवान, ना. पौरि जनु दारवान, द. दरवान वान, उ. स. दरबार वाह्नि ।

(५३) १. मो. संवरह (< सिंवरह=सइंवरह) संग, धा. सैयंवर संग, अ. फ. स्वयंवर संग (समु-फ.), ना. संवरह संग, उ. स. सैवर संजोग, द. सैवर संजोगि । २. मो. आ. जग्य, धा. अरु जग्गु ।

(५४) १. धा. अ. फ. विद्वज्जन, द. उ. स. बुध जनन, ना. बुध जननि । २. मो. बोलै (< बोलि), धा. बुलि । ३. फ.धरौह ।

(५५) मों. ना. उ. स. मंत्रीन राउ, धा. मंत्रीनु राय, अ. फ. मंत्रीनि राज, उ. स. मंत्रीन राव । २. ना. पर मोधि ।

(५६) १. धा. धूनिआ, मो. धूमिआ, अ. घुम्मिया, उ. स. घुम्मेस । २. ना. अ. वीर, फ. वारु ।

(५७) १. मो. सुनिसद्द, अ. फ. सुनि सद्दन । २. मो. बंदीअ, धा. बंधी । ३. धा. बंदवार, ना. द. बंदन तिवार, उ. स. बंदरनिवार ।

(५८) १. मो. कटिहित, अ. फ. कट्टहिसु, द. कट्टियहि, ना. कट्टइ ते, उ. स. काटंत । २. ना. गृहि गृहि, अ. फ. गृह गृह, उ. स. ग्रह ग्रह । ३. धा. अ. फ. उ. सुनार, स. सुतार ।

(५९) १. धा. भूषम सुदाम, अ. भूषनह दान, फ. भूषनहि दान ।

(६०) १. धा. अ. ना. इंद्र, मो. इद , फ. यंद । २. धा. सम किउ, मो. ना. सम कीय, अ. फ. सम किय, उ. स. सुर सम ।

(६१) १. धा. धवलेहि । २. धा. अ. धम्म । ३. ना. उ. स. देवल । ४. मो. सवायं [सवीय], छा. सुचाय, अ. फ. सुवीय [सुचीय], ना. द. सुचीव ।

(६२) १. धा. तुम्ह, मो. तासु, ना. तुम । २. उ. स. हरन । ३. मो. कलव्यंब लीयं, धा. अ. फ. कलबिंब लीय, ना. रबिंब वीव, द. रबि बिंब वीय, उ. स. रबि ब्यंब वीय ।

(६३) १. धा. गमतु, अ. मगनि फ. मगनु, मो. बधन [< बंधन] । २. धा. रापि, ना. द. रोर, फ. सोभित, मो. जनु, । ३. धा. अ. क. मनु, फ. तम । ४. धा. अ. मध वछीय, फ. मब्बछीय, मो. मधु, वछाय [वछीय], ना. द. उ.स . मधु अछीय, फ. ब्बवछीय ।

(६४) धा. अ. फ. सज्जिया, ना. जनु रच्यौ, उ. स. जनु रचिय । २. ना. मद्धा । ३. ना. द. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :

एक बार संजोगीय सजिन पत्ति । मुसकाइ मंद पर कहीय बत्ति ।
आचिज्ज एक सषि उरह अत्ति । बदलीय विवधि सुहि मन कि गत्ति ।

टिप्पणी—(१) पहु < प्रभु । (२) रग्ग < राग । (३) आर < आरओ < आरतस्=समीप में, पास में । (६) मद्ध < मध्य । (७) मोकल [दे०]=भेजना, प्रेषित करना । (१०) तथ्थ < तत्र=वहाँ, तब । (११) वयण < वचन । (१२) संकुर < संकुड < संकुट=सिकुड़ना । (१६) कित्ति < कीर्ति । (१७) साइ < स+अति=विशेषता के साथ । (२०) पथ्थ < पार्थ । (२३) दब्ब < द्रव्य । गब्ब < गर्व । (२५) पित्री < क्षत्रिय । (२६) निब्बीर < निर्वीर । पुहवि < पृथ्वी । (३०) पुहुमी < पृथ्वी । (३२) झड < शद्=गिराना । (३३)सइंभरि < शाकंभरी । (३४) धुत्त < धूर्त । (३८) अन्न < अन्य । (३९) वसिट्ठ < वशिष्ठ=दूत । (४०) गामिनी < ग्रामणी=गाँव का मुखिया । उविट्ठ < उद्वेष्ठित=बंधन से मुक्त । (४३) जइ < यदा=जब । (४४) रत्ते < रक्त=लाल । (४५)चाह < वाञ्छ् ?=अपेक्षा करना । (५१) सोन्न < स्वर्ण । वान < वर्ण । (५२) पोलि < प्रतोली=मुख्य द्वार । (५३) सैंवर < स्वयंवर । (५४) विद्दुजन < विद्वज्जन । (५६) बार < द्वार । (५७) सद्द < शब्द । (६१) देवर < देवालय । (६२) ब्यंब < बिंब । (६३) धज < ध्वजा । मगन < मग्न । मधुवछीय < मधुवसित=मधु दैत्य की बस्ती (मधुपुरी) । (६४) बंभ < ब्रह्मन् । बीय < द्वितीय ।

[४]

रासा— जब[1] अंकुर[2] करि[3] पानि[4] चरावति[5] वच्छ मृगु ।× (१)
मनु मानिनि[1] मिस[2] इंदु×[3] आनंदइ*[4] देषि दृगु[5] । (२)

*सहि * सहचरिति[१]* चरत्त*×[२] परसपर* वत्तु, किम । (३)*
सुभं[१] संजोगि[२] संजोग+[३] जानुह[४] मनमथ्थ किअ[५] ॥[६] (४)

अर्थ—(१) [संयोगिता] यवाङ्कुरों को हाथ में [ले] कर मृग-वत्सों (शावकों) को चरा रही थी। (२) [वह ऐसी लग रही थी] मानों उस मानिनी के मिस इंदु ही [मृगों को] नेत्रों से देखकर आनंदित हो रहा हो । (३) उसकी सखियाँ और सहचरियाँ [उसके साथ] चलते हुए परस्पर बातें कर रहीं थीं कि (४) शुभा संयोगिता के संयोग [विवाह] के लिए [विधाता ने] मानो मन्मथ (कामदेव) को ही [निर्मित] किया है।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द द. में नहीं है।
+ चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) फ. खोट जव। २ मो. अंगुलीय, ना. अंकुरि। ३. मो. कर। ४. मो. ना. द. फ. पान। ५. मो. चरावत, धा. चरावति, अ. चराव, फ. चरावैइ।
(२) १. मो. फ. ना. स. माननि। २. फ. ना. मिसि। ३. ना. इंद। ४. मो. आनंदी (<आनंदि=आनंदइ), धा. आनंदहि, ना. अनंदिय, द. अनुंद, अ. अनंदे, फ. अनंदै। ५. धा. खगु, मो. द्रग।
(३) १. मो. सिहसिह वरती (<चरती), धा. अ. फ. द. उ. सहचरी चरित, ना. सहचरि चरिय। २. मो. वरतु (<चरतु), धा. ना. अ. फ. द. उ. चरित्त।
(४) १. धा. मो. मनु, द. मनुह। २. धा. मो. संजोग, द. संजोइ। ३. ना. फ. संजोगि। ४. मो. जानुह। धा. द. मनहु, अ. मनौ, फ. मुनौ, ना. मनुं। ५. मो. मनुमथ कीअ, ना. मनमत्थ कीय, द. मनमथ लिय,

६. स. में इस छंद का पाठ है :
अरिल—अंकुर पान चरावत वच्छं। मनों माननि मिस दिषि अनुच्छं।
सहचरि चरित परसपर बत्तय। मनों सजोइ सँजोग मनमथ्थय ॥
टिप्पणी—(१) वच्छ < वत्स। (३) सही < सखी। चरत=चलते (गमन करते) हुए।

[५]

पद्धड़ी— राजनि अनेअ[१] पुत्तिय ति[२] संगि[३] । (१)
षट बीअ[१] बरिस[२] नव सत्त अंगि[३] ॥ (२)
केवि[१] जुवती जुवजन संगह[२] सुरंग । (३)*
मिलि षिलहिं[२] भूप भामिनि[३] अनंग ॥ (४)
संजोगि[१] संग जुवती प्रवीन । (५)
आनंद गान तिन[१] कंठ कीन ॥ (६)
भुव बंक[१] संकु अति सम[२] सपीन[३] ।× (७)*
अध चषन[१] लिषन छिति नषन[२] कीन ॥× (८)
कोमल कुरंगि[१] किंचित[२] किसोर[३] । (९)
अधरनु[२] अदिठ्ठ अच्छइ[३] तमोर[४] ॥ (१०)

सुभ सरल बाल[१] बलिअ[२] स[३] थोर[४] । (११)
अंकुरहि[१] मनहु[२] मनमथ्थ जोर[३] ॥ (१२)
जुवजन[१] जुवत्ति[२] रचि कहइ*[३] बात[४] । (१३)
स्रवननु[१] सिराति*[२] नयननु अघात[३] ॥ (१४)
मुकइ[१]* न लीह[२] लज्जा सु रत्त । (१५)
निध्धनिय[१] धनु हु जांनु गहइ*[२] हथ्थ[३] ॥ (१६)
अधरत्त पत्त[१] पल्लव सुवास । (१७)
मंजरिय तिलक पंजरिअ[१] पास ॥ (१८)
अलि अलक[१] कंठ कलयंठ मत्त[२] । (१९)
संजोगि[१] भोग[२] वरु मधु[३] वसंत ॥[४] (२०)
मधुलेहिहि*[१] मत्त[२] रितुराजवंत[३] ।+ (२१)
परसप्पर पीवत पियनि[१] कंत[२] ॥ (२२)
लुट्टहि त भमर[१] सुग्गंध[२] वास । (२३)
मिलि चंद कुंद फुल्लिय[१] अयास[२] ॥ (२४)
वनि बग्ग[१] मग्ग हलि[२]÷ अंब मउर[३] । (२५)
सिर ढरहिं मनहुं[१] मनमथ्थ चउंर[२] ॥ (२६)
चलि सीत[१] मंद सुग्गंध[२] वात ।+ (२७)
पावक मनहुं[१] विरहिनि निपात[२] ॥+ (२८)
कुहु कुहु करंति[१] कलयंठि[२] जोटि[३] । (२९)
दल मिलइ* मनहु[२] अन अंग[३] कोटि[४] ॥ (३०)
करि पल्लव[१] पत्त ति रत्त नील[२] । (३१)
हलि चलहि मनहु[१] मनमथ्थ पील ॥ (३२)
कुसुमेष[१] कुसुम[२] तेन[३] धनुष साजि[४] । (३३)
भृंगी[१] सुपंति[२] गुन गरुय[३] गाजि[४] ॥ (३४)
संजर*[१] सुबान सुमनाह[२] नेह[३] । (३५)
बिदारये[१] वीर[२] जुवजननि देह[३] ॥ (३६)
उप्पलिअ[१] कलिअ[२] चंपक सरीप[३] । (३७)
प्रज्जलिय[१] प्रगट[२] कंदर्प दीप[३] ॥ (३८)
करवत्त केत÷[१] केतकि सुकत्ति[२] । (३९)
विहरंति[१] रत्त[२] वितरंति[३] छत्ति ॥ (४०)
परिरंभ[१] अनिल कदली[२] क पान[३] । (४१)
सिर धुनहि सरस[१] सुनि[२] जानु[३] तान ॥ (४२)

झंकुलिय झाम[१] अभिराम रम्म[३] । (४३)
नहु[१] करइ[२]* पीय[३] परदेस गम्म[४] ॥ (४४)
फुल्लिग[१] पलास तजि पत्त रत्त[२] । (४५)
रत्त रंग सिसिर[१] जित्तउ[२] वसंत ॥ (४६)
देषहिं त[१] पंथ जिन कंत[२] दूरि । (४७)
तिन[१] थकित[२] बोल लोल[३] जल रहिय[४] पूरि ॥ (४८)
संजोगि[१] भोग[२] जुवती प्रवीन ।+ (४९)
प्रिय[१] कंठ नट्ठि[२] दुहु[३] भइ ति[४] लीन ॥+ (५०)

अर्थ—(१) अनेक राजाओं की पुत्रियाँ उसके संग में थीं। (२) वे बारह वर्ष की थीं, और अङ्ग (शरीर) में षोडश श्रृंगार किए हुए थीं। (३) सुरंग (सुन्दर) युवतियाँ तो कितनी ही थीं। (४) वे भूप-भामिनियाँ अनंग (काम) [के खेल] [परस्पर] मिल कर खेल रही थीं। (५) संयोगिता के साथ प्रवीण युवतियाँ [भी] थीं। (६) वे कंठ से आनन्द पूर्वक गान कर रही थीं। (७) [उनकी] भौंहें वक्र शंकु (कील) [के समान] अत्यंत सम (वैषम्य रहित) और क्षीण (पतली) थीं। (८) अर्ध [निमीलित] नेत्रों से [देखती हुई] वे नखों से क्षिति (भूमि) पर लिख रही थीं। (९) कोमल कुरंगियों के समान [वे युवतियाँ] किंचित् किशोर थीं। (१०) उनके अधरों पर अदृष्ट (न दिखाई पड़ने वाला) तांबूल विराजमान (रंजित) था। (११) वे शुभा (कल्याण मयी), सरल बालाएँ [यौवनागमन कारण] थोड़ी पीन [लगने लगी] थीं, (१२) मानो [उनके शरीर में] मन्मथ जोर से अंकुरित हो रहा था। (१३) वे युवतियाँ [परस्पर ऐसी] बातें रच-रच कर कहती थीं (१४) कि [उनको श्रवण कर] कान शीतल होते और [उन्हें देखकर] नेत्र अघाते थे। (१५) वे लज्जा की रक्त (लाल) लेखा इस प्रकार नहीं छोड़ती थीं (१६) मानो निर्धना ने हाथ से धन पकड़ रक्खा हो। (१७) उनके अधर-पत्र सुवासित पल्लव थे, (१८) उनके तिलक [आम की] मंजरी थे, और [उनके नेत्र] उनके पास ही खंजरीट थे, (१९) उनकी अलकें अलि (भ्रमर) थे, और उनका [कल] कंठ मत्त कलकंठ (कोकिल) था, (२०) [इस प्रकार] संयोगिता के गुरु स्थान की उन युवतियों का वर वसन्त हो रहा था।

(२१) मधुलेही (भ्रमर) रितुराजवंत होकर—वसन्तागम से प्रमुदित होकर—मत्त हो रहे हैं, (२२) प्रियाएँ और कान्त परस्पर [मधु-] पान कर रहे हैं। (२३) भ्रमर सुगन्ध की सुवास लूट रहे हैं। (२४) आकाश में फूले (उदित) चन्द्रमा के साथ कुन्द भी फूल रहा है। (२५) वनों, बागों, और मार्गों में आम के बौर हिल रहे हैं, (२६) मानो मन्मथ के ऊपर चामर ढल रहे हों। (२७) शीतल, मंद और सुगंध वात चल रही है, (२८) वह विरहियों को इस प्रकार दुःख दे रही है मानो अग्नि उनको नष्टकर रही हो। (२९) कलकंठ (कोयल) का जोड़ा कुहू कुहू कर रहा है, (३०) [जो ऐसा लगता है] मानो अनंग (कामदेव) के कोट में सेना मिल रही हो। (३१) [उसमें वृक्षों के रक्त और नील पत्रों के मिस] रक्त और नील (गहरे हरित) वर्ण के पत्र (पत्रावली) की रचना करके (३२) मानो मन्मथ का हाथी हिलता (झूमता) हुआ चल रहा है। (३३) मन्मथ ने कुसुमों का जो धनुष [-सा] सजा रक्खा है वही मानो उसका का कुसुमेषु (धनुष) है। (३४) भृंगियों की पंक्ति ही उस धनुष का गुण (प्रत्यंचा) है जो गुरु (गम्भीर) गर्जना कर रही है। (३५) सुमनों के (से बने हुए) स्नेह संज्वर के बाणों के द्वारा (३६) वह वीर (मन्मथ) युवाजनों के देह को विदीर्ण कर रहा है। (३७) चंपक और शरीफे (?) की कलिकाएँ खिल गई हैं (३८) [जो ऐसी

लगती हैं मानो] कंदर्प का दीपक प्रकट होकर प्रज्वलित हुआ हो। (३९) सुकेत करपत्र (आरा) और केतकी काती हैं (४०) जो [विरहिणियों की] छाती को विदीर्ण कर रहे हैं, इस लिए रक्त विहर (निकलकर फैल) रहा है। (४१) कदली का पर्ण (पत्ता) अनिल (वायु) से परिरंभन करता [हुआ ऐसा लग रहा] है (४२) मानो वह सरस तान सुन कर सिर धुन (पीट) रहा हो। (४३) दग्ध झंखाड़ भी अभिराम और रम्य हो गए हैं और (४४) प्रिय (पति) परदेश गमन नहीं कर रहे हैं। (४५) पलाश पत्तों का त्याग करके रक्त वर्ण का फूल उठा है, (४६) [जो ऐसा लगता है] मानो उस रण [में प्रवाहित रुधिर] का रंग हो जिसमें शिशिर पर वसन्त को विजय प्राप्त हुई है। (४७) जिनके कांत दूर देशों में हैं, वे उनके आने का मार्ग देख रही हैं, (४८) उनके बोल थकित (शिथिल) हैं और उनके चंचल नेत्र जल (अश्रु) से पूरित हो रहे हैं। (४९) संयोगिता की गुरु स्थानीय प्रवीण युवतियाँ (५०) अपने दुःखों को नष्ट करके [अपने] पतियों के कंठ लग रही हैं।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(÷) चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

× चिह्नित चरण उ. स. में नहीं है।

+ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

(१) १. मो. राजनियनेअ, धा. ना. राजन अनेय, अ. फ. स. राजन अनेक। २. मो. पूतीय ति, अ. फ. पुत्तिय सु, ना. द. उ. स. पुत्रीति। ३. मो. संगि, धा. अ. द. ना. उ. स. संग, फ. संगु।

(२) १. धा. खर बीय, ना. षटबीय। २. धा. बरिस, मो. ना. द. उ. स. अ. फ. बरस। ३. मो. नसतस ज्यगि, धा. नवमास अंग, ना. नव ससित्ति, उ. स. नव लसति अंग, अ. नवसत्त अंग, फ. वसत्त अंगु।

(३) १. धा. किवि (=कैवि), मो. अ. फ. कवि, ना. किक (=कैक) द. उ. स. कै। २. धा. जुवति जुवनि संगह, मो. युवति युवजन संगह, ना. जुवति द्वादश संगह, द. उ. स. जुवति द्वादस (द्वासक्ष–स.) संग, अ. फ. जन जुवति संगह (संगहि–फ.)

(४) १. मो. षिलिह, फ. पिलह, स. लिषहि। २. धा. हसहि भामिनि, फ. भूप भामिन, मो. लूय (<भूप) भामिनि, ना. भूप भामिन, उ. स. भामन वनव।

(५) १. धा. संजाग, मो. संयोग, फ. संजोगु।

(६) १. अ. फ. तिनि।

(७) १. अ. फ. नंक, ना. द. लंक। २. ना. सुम। ३. अ. सुवीन।

(८) १. फ. चषनि। २. मो. तिपनख मछति, ना. नयन लिषि छित्त, अ. फ. लिषन (लिषिन–फ.) छित्तिनषह (नषहि–फ.)।

(९) १. धा. कुरंगि, मो. अ. फ. ना. उ. कुरंग। २. फ. किंचिति। ३. पूरे चरण का स. में पाठ है : कोमल किसोर किंचित सुरंग।

(१०) १. मो. अवरनु, धा. अधरन, ना. अधरणि, अ. अधरनि, फ. अधरानु। २. धा. अद्रिष्ट, ना. अच्छिद्ध। ३. मो. अच्छि (=अच्छइ), ना. अच्छित। ४. फ. तुमोर।

(११) १. ना. सुरभ सारल बाल, फ. सुत सरल वार। २. धा. बलिया, मो. उ. स. बली, ना. वलोअ, द. बुलीय, अ. फ. वलया। ३. द. अ. सु। ४. ना. घोर।

(१२) १. मो. अंकुरिहि, अ. अंकुरे, फ. अंकुरेह। २. ना. जानु, फ. मनौ। ३. धा. कोर।

(१३) १. ना. जुवनि, स. जुब्बन, उ. जुवनन। २. मो. जुवत्ती। ३. मा. किहि (=किहइ), ना. कहै, धा. अ. फ. कहहि। ४. धा. वस।

(१४) १. धा. सुवननतु, अ. सवनन्नि, फ. स्रवनन्न, मो. श्रवननु, ना. श्रवनह। २. धा. अ. फरी, स. मो. सिरति, ना. सार। ३. धा. निकु नयन रत्त, मो. नयननु आघात, अ. फ. ना. नकु नैन (नयन–ना.) रत्त।

(१५) १. मो. मुंकि (=मुक्कइ), धा. मुक्कै, अ. फ. मुक्के, ना. मुक्कहि। २. धा. लवसु, अ. फ. लौव, स. लोद्द।

(१६) १. धा. निरधनी, मो. निरधनीय, द. अ. फ. निश्धनीय । २. धा. मनो धनु गहहि, मो. धनुह जानु गिहि (=गिहइ), अ. फ. मनहुं धनु गहयौ, ना. मनहु धनु गहै, द. उ. स. मनहु धन गहिय । ३. धा. हत्त ।

(१७) १. फ. धरत्त रत्त, अ. उरधर रत्त ।

(१८) १. अ. फ. पंजरिय ।

(१९) १. ना. अलि अलिक । २. धा. कलमत्ति मंत्र, मो. कलयठ मंत, ना. कलयंठि मंत ।

(२०) १. मो. द. ना. संजोग, फ. संजोगु । २ धा. जोग, अ. फ. संग । ३. धा. अ. मो, ना. भुव, उ. स. भुअ, फ. भौ । ४. मो. ना. में इसके बाद 'बसंत वर्णन' लिखा हुआ है ।

(२१) १. मो. ना. मधुलिहिहि (=मधुलेहिहि), धा. मधुलिहहि, उ. स. मधुरेहि । २. मो. मवंत, धा. मत्त । ३. धा. अंत, उ. स. मंत ।

(२२) १. धा. पिम्म ति पियंति, मो. पिवत पिवहि, अ. पीवति पियनि, धा. पीथाति पिय, उ. स. प्रेम से पियन, ना. पम्मु सोइ प्रीयणि । २. मो. कंन् ।

(२३) १. धा. लुट्टांति भमर, अ. लुट्ठिहि तिभंवर, फ. लुट्टहि तौ भंमरु, ना. लुट्टहि ति भमर, उ. स. लुट्टहि त भोर । २. धा. सुभ गंध, मो० श्रंगत, ना. सोगंध ।

(२४) १. मो. फूलीय, धा. फुलन्यउ, उ. स. फूले, अ. ना. फुल्यो, फ. फुल्यौ । २. धा. अगास, ना. अ. फ. अकास ।

(२५) १. धा. वणि वग्ग, उ. स. बन बाग, ना. बन मग्ग । २. धा. बहु, अ. फ. अलि । ३. मो. मुर (=मउर), उ. स. मोर ।

(२६) १. धा. दरइ मनुह, ना. डुरहि जानु, उ. स. ढरत जानि, ढरहि मानौ । २. मो. च्युंर (रचउं=), अ. फ. उ. स. चोर, ना. चौर ।

(२७) १. ना. सीतल, मो. ना. सो (<सु) । २. मो. ना. सोगंध (<सुगंध) ।

(२८) १. ना. मनुं (=मनउ), उ. स. मनो । २. मो. बिरहुंनि निपास, ना. विरहनि निपात ।

(२९) १. अ. फ. करंत । २. धा. कलयंति, अ. कलअंठ, फ कलअट्ठ, ना. कुलयंति । ३. द. उ. स. जो ।

(३०) १. मो. मिलय, धा. अ. फ. ना. स. मिलहि । २. ना. स. जानु, उ. द. जानि, फ. मानौहु । ३. धा. अ. ना. आनंग, फ. अनंगु । ४ फ. स. कोट ।

(३१) १. धा. तरुपल्लिय, ना. तरु पत्त, उ. स. तरु पलव, अ. फ. तर पलहि । २. धा. फुल्लहि रत्त नील, ना. पल्लवहि रत्तनील, स. पीत अरु रत्त नील, अ. रत्तहि रत्त नील, फ. रत तह रत्त तह रत्त नील ।

(३२) १. फ. हल चलहि मनो, ना. हलि चलहि जानु, उ. हलि चलिहि जानि, स. हरि चलहि जानि ।

(३३) १. धा. कुसुयेनि, मो. कुसुमेष, फ. कुसुमेषु मो. कुसमन, फ. कुसमु । ३. मो. तेन, धा. धरि, ना. उ. स. अ. फ. नव । ४. धा. धनकि सज्जि, ना. धनक साजि, उ. स. धनुक साज, फ. धनिस सज्ज ।

(३४) १. मो. धा. भ्रंगी, ना. भृंगीन, स. भंगी । २. धा. सुपत्ति, फ. सपंति । ३. धा. अ. ना. गरुव, स. गरुअ, फ. गनव । ४. धा. अ. फ. गज्जि, उ. स. गाज ।

(३५) १. मो. सर, धा. अ. फ. सज्जर (< संजर), ना. साजर । २. मो. सुअनंग, ना. द. उ. स. सोमनहु, अ. फ. सुननाह । ३. मो. तेह ।

(३६) १. धा. विद्रवइ, ना. बिद्दरै, अ. फ. विद्दरे, उ. बिदारि, स. बिद्धारि । २ ना. उ. स. जानि, द. जानुं । ३. मो. जुवतीनु नेह ।

(३७) १. मो उपलीअ, अ. फ. उपलीय, ना. उलपीय, धा. उपिलीय । २. उ. स. चलिय । ३. धा. स. द. उ. सरूप, अ. फ. ना. समीप ।

(३८) १. मो. प्रजलीय, ना. प्रगटहि । २. अ. मनहु, फ. मनौह । ३. अ. फ. तूप, उ. रूप, स. कूप ।

(३९) १. मो. कंत, ना. कत्त (< कंत), उ. स. द. पत्त, फ. बत्त । २. धा. केतकिय सत्त, मो. केतकी सुकंत्ति (< सुकत्ति), फ. किंससु सुगात, स. केतुकि सुकंत्ति (< सुकत्ति), ३. केतुकि सुकंति, ना. केतकि सुकत्ति, अ. फ. केतुकि सुकति ।

(४०) १. मो. विहिरंति, धा. उ. स. द. विहरंत, फ. बहुरंत, ना. विरहंत । २. मो. रंत्ति (< रत्ति), द. रति । ३. धा. बिच्छुरत, अ. फ. बिछुरंत, ना. विछुरंति । ४. धा. पत्त, मो. छंत्ति (< छत्ति), अ. फ. छाति ।

(४१) १. धा. पररंभ, अ. परिअंत, फ. धरिअंत। २. मो. कलि, उ. स. कदलि। ३. अ. फ. सपान, द. उ. स. क्रिपान।

(४२) १. ना. सर, अ. सरिस। २. स. धुनि। ३. मो. ना. उ. स. जान, धा. अ. जानि।

(४३) १. धा. झक्किय झाम, ना. द. झंकलि झमूरि, स. झंकुरि झमूर, अ. फ. झुंकुलिय झलि। २. मो. अ. फ. रम्य, ना. रक्षि (< रक्ष)।

(४४) १. मो. नह, ना. मन, द. स. नन। २. मो. करि (=करइ), धा. करिहि, अ. ना. करहि, फ. करै, स. करहि। ३. ना. पाय। मो. अ. फ. गम्य, ना. गम्मि।

(४५) १. धा. फूलिग, मो. झूलिग, अ. फ. ना. फुल्लिग। २. फ. पंत्त पंत्त (< पत्त पत्त)।

(४६) ना. ससिर। २ मो. जीवतु, धा. जित्तउ, उ. स. जीतौ, अ. फ. जीत्यो।

(४७) १. मो. दिषेत, धा. देषहिति, अ. फ. दिष्षियहि, ना. दिखियहित। २. अ. जिनि, ना. उ. स. जिहि। ३. मो. कंथ।

(४८) १. मो० के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। २. मो. थकित, धा. ना. द. उ. स. अ. फ. थकि। ३. ना. उ. स. बोलि बोलि। ४. अ. फ. रहे।

(४९) १. धा. मो. ना. संजोग। २. धा. संगि।

(५०) १. धा. पिय ना. पय। २. मो. लाग; धा. जेट्ठि ना. नट्ठ। ३. धा. दुहना, दुइ। ४. मो. मयी, .ना उ. स. मगिअ।

टिप्पणी—(१) अनेअ < अनेक। (२) बीय < द्वितीय। सत्त<सप्त। (३) केवि < कतिपय। (४) षिल्ल < षेल्। (१०) अदिट्ठ < अदृष्ट। अच्छ < आस्=बैठना। तमोर < ताम्बूल। (११) वलिय [दे०]=पीन, मांसल, स्थूल, मोटा (पाइअ सद्द महण्णवो) (१३) व्रत्त < वार्त्ता=बात। (१४) सीर < शीतल (पाइअ सद्द महण्णवो)। (१५) मुक्क < मुच्=छोड़ना। लीह<लेखा। (१८) षंजरिअ < खंजरीट। (१९) कलयंठ < कलकंठ =कोकिल। (२१) मधुलिहि < मधुलेहिन्=भ्रमर। (२२) पिव < प्रिय। (२३) लुट्ट < लुण्ट्=लूटना। (२४) अयास < आकाश। (२५) मउर < मुकुल=बौर। मग्ग < मार्ग। (२९) कलयंठि < कलकंठ=कोकिल। (३२) पील < पीलु=हाथी (तुल०फारसी 'फील')। (३४) गरुय < गुरु। (३५) संजर < संज्वर। (३७) उष्षिलिय < उत्खण्डित=खिली। (३९) करवत्त < करपत्र=आरा। (४१) पान < पर्ण। (४३) झंकुलिय=झंखाड़। झाम [दे०] =दग्ध। (५०) नट्ठ < नष्ट। दुहु=दुःख।

[६]

पद्धडी—रवि जोग पुष्य[१] ससि[२] तीय थान[३]। (१)
दिन[१] धरिगु[२] देउ[३] पंचमि[४] प्रमान+ ॥ (२)
पर उच्छह[१] देषन[२] भयु[३] मिलान[४]। (३)
विग्रहन देस चढि चहूआन[१] ॥× (४)

अर्थ—(१) रवि (सूर्य) जब पुष्य [नक्षत्र] के योग में हो, और शशि (चन्द्रमा) तीसरे स्थान पर हो, (२) ऐसी देव पंचमी का दिन [राजसूय के लिए] प्रमाण (प्रामाणिक रूप) केसे निर्धारित हुआ। (३) [इधर] पर (शत्रु) का उत्साह (उत्सव) देखने के लिए [पृथ्वीराज सामन्तों का] मिलान (सम्मिलन) हुआ [जिसमें निश्चय हुआ कि] (४) विग्रह करने के लिए चहुआन (पृथ्वीराज) [शत्रु के] देश पर चढ़ाई करे।

पाठान्तर—+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

× उ. स. में यह छंद दो स्थानों पर आया है: स. ४८.९९–२००, तथा स. ४८.१२७। नीचे का पाठान्तर द्वितीय स्थान का है; प्रथम स्थान पर पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

रवि जोग भोग ससि नीय थान। दिन धर्यौ देव पंचमि प्रमान।
सोय जग्य ऊदीपन बाल काज। बिलसन बिलास मंड्यौ ज साज।
पर उछव दषिन दीनौ मिलान। विग्रहन देस चढ़ि चाहुआन।

सामान्य रूप से एक पाठ धा. तथा दूसरा मो. के निकट प्रतीत होता है।

(१) १. मो. भोग, फ. पुष्फ। २. मो. सस्य ससि (इनमें से एक मो. का अपना पाठ तथा दूसरा पाठान्तर लगता है), फ. सिस। २. धा. थाम।

(२) १. ना. दिनु। २. मो. धरयु, ना. उ. स. धर्यौ। ३. ना. देवि। ४. ना. पंचम। ५. मो. प्रथांन।

(३) १. फ. उच्छिह। २. धा. देषित, अ. दिपन, फदक्षन, ना. दिष, उ. स. दिपन। ३. धा. भ, मो. भयु (=भयउ), अ. फ. कौ भय, ना. मृतयो, स. कीनौ। ४. धा. मलान।

(४) १. मो. अतिरिक्त सभी में 'चाहुवान' है।

टिप्पणी—(१) तीय < तृतीय। थान < स्थान। (३)उच्छह < उत्साह। मिलान < मिलन।

[७]

भुजंग—चंपि रिपु सीस बिहउ*[१] नरिंदं[२] ।[३] (१)
प्रथम षरिराज[१] षंडे षुभंदं[२] ॥[३] (२)
बालिकाराय[१] राजन[२] समानं[३] । (३)
गंजिया[१] एक घटि[२] चहूवानं[३] ॥[४] (४)
गज्जने देसि[१] बिच्छोहि जोरी[२] । (५)
तबहि पिय[१] कंठ जिम पत्त[२] गोरी ॥ (६)
नीर नीच्चालि[१] उच्चालि झंपइ*[२] । (७)
झरहिं मनि सुत्ति[१] गच्छंति लप्पइ*[२] ॥ (८)
चीर[१] सम्मीर उड्डंति[२] तुट्टइ*[३] । (९)
मनहु[१] रितुराज द्रुमपत्त[२] छुट्टइ*[३] ॥ (१०)
ग्रीव[१] नग जोति रहि फूट पग्गइ*[२] । (११)
त चाहि[१] गिरि× सिषिर[२] द्रुम दाह लग्गइ*[३] ॥[४] (१२)
धूम परजालि[१] मिटि मग्ग गजनी*[२] । (१३)
वलहिं मुष[१] तेज जनु[२] चंद रयनी[३] ॥ (१४)
बिंब[१] फल जानि घन कीर धावइ[२] । (१५)
दसन भय[१] बाल वसननि छपावइ[२] ॥ (१६)
सबद सहरोस[१] साहीय* संकी[२] । (१७)
थरहरित थकि रही[१] झीन[२] लंकी ॥ (१८)
केवि[१] रटि रटि ति[२]× प्रिय प्रिय ति[३] जंपइ[४] । (१९)
ऐम[१] रिपु रवनि प्रथीराज[२] कंपइ[३] ॥ (२०)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के चरों (?) ने उससे कहा,] 'हे नरेन्द्र, [अब] तुम शत्रुओं के सिर दबा उनका गर्व मिटा बैठे हो; (२) पहले [तुमने] खोखंद के शत्रु राजा को खंडित किया।

(३) बलख का राजा (शासक) तो [तुम्हारे] समान ही [बल शाली] था, (४) [किन्तु] उसे, हे चहुवान (पृथ्वीराज), [तुमने] एक आघात में नष्ट कर दिया। (५) तुमने गज़नी के *देश में इस प्रकार विक्षोभ जुटा (कर) दिया कि (६) गौराङ्गनाएँ अपने प्रियों (पतियों) के कंठ छोड़ रही हैं, जैसे [वृक्ष के] पत्तों को छोड़ देते हैं। (७) नीर (आँसू) टपका (गिरा) कर वे तीव्र चाल (गति) में घूम (चल-फिर) रही हैं। (८) उनके जाते समय मणि-मुक्ता झड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। (९) उनके चीर समीर (हवा) से टूट (फट) कर इस प्रकार उड़ रहे हैं, (१०) मानो ऋतुराज (वसन्त) में द्रुमों के पत्ते गिर रहे हों। (११) उनकी ग्रीवा के नगों की ज्योति प्रकृत रूप से इस प्रकार फूट रही है, (१२) जैसे गिरि-शिखरों पर द्रुमदाह (दावानल) लगी दिखाई पड़ रही हो (१३) और उसकी प्रज्वाला के धूम से गज़नी के मार्ग मिट गए हों। (१४) और वे अपने मुख के तेज [की सहायता] से चल रही हैं, जैसे चन्द्र रजनी में चलता है। (१५) [उनके ओष्ठों को] बिंबफल जान कर घने (बहुत से) शुक दौड़ पड़ते हैं (१६) जिनके दंशन के भय से बालाएँ उन्हें वस्त्रों से छिपा लेती हैं। (१७) वे रोषपूर्ण शब्द करती हुई साधिक—सविशेष—शंकित हैं, (१८) वे क्षीण कटि वाली स्त्रियाँ [भय से] थर्राती हुई थक गई हैं। (१९) कोई-कोई तो रटती-रटती 'प्रिय' 'प्रिय' कह रही हैं।(२०) इस प्रकार रिपु-रमणियाँ, हे पृथ्वीराज, [तुम्हारे भय से] काँप रही हैं।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) १. मो. विठु (=बिठ्ठउ), धा. बैठो, अ. फ. बैठ्यो। ना. बैठौ। २. धा. ना. द. अ. फ. नरिंद मो. नरेंदं। (< नरिंदं) ३. उ. स. में चरण का पाठ है : जिनें साजतें धूम धूमें नरिंदं।

(२) १. धा. ना. उ. स. द. अ. फ. जूह। २. धा. अ. फ. घिषंदं, ना. द. पुषंद। ३. उ. स. में चरण का पाठ है : लगी धूम आयास सोभं जिचंदं। और अतिरिक्त है :

तुरी वारजं राय षोषंद वद्दं। तहाँ बालुका राय संग्राम सद्दं।

(३) १ धा. बालुका राज, ना. चालुका राइ, उ. स. तहाँ बालुकाय, फ. चालुकराइ, द. अ. बालुकाराइ। २. धा. दाने, द. उ. स. दानै, ना. दानव, अ. फ. दानौ। ३. धा. प्रमानं, फ. समानु, उ. स. सुमानै।

(४) १. धा. गज्जिया (<गंजिया), फ. गंजया; उ. स. तिने भंजिया, ना. भंजिया। २. धा. एक घर, ना. केक घट, उ. स. भूप घटि, फ. इक घटि, अ. इक घट। ३. धा द. ना. अ. चाहुवानु, फ. चाहुवान, उ. स. चहुवाने। ४. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

घगं घग्ग षट्टे सुधक्का हलाई। तहाँ पारसाराव सूरंगु राई।
छतेरी छनेरी भंडेरी वरारी। तिनं चंद चदेरि नैरी निहारी।
जिने तारिया काळपी कन्हराय। जिने मंडिया जुद्ध प्रथिराज सायं।
जिने आल पिंडाइ रा चक्क चक्के। वरं रोरिया दाइ संग्राम सक्के।
जिने जग्य जारे धरे गंग पारे। जिने संभरी थाट तंडे निवारे।
जिने भंजियं भीमपुर भीम भंजे। जिने भंजिया जाय गोधंग हंजे।
जिने भंजियं जाय प्रथमं सुक्कासी। भए सूर सामंत उत्तं उदासी।
जिने भंजियं जाय मेवात ग्रमं। जिने वर सों सेन सज्जे समानं।
जिने भंजियं भीम सोमेसभारी। जिने राजधानी सबे पाय पारी।
जिने आलगी जोग पंडे पघेली। जिने माथुरी मोह मोहंत लेली।
जिसोरी पुरं रोरियारा जगायं। ....।
कियं दीन बंबारि प्रथिराज तारी। पगं पीथ्र पंगार बलोच मोरी।
तहां ग्रीव बंबारि अग्रीव फूटी। तहां गोधनं धेन चौनान लूटी।

(५) १. मो. गाजने देसि, धा. गज्जते देस, ना. जिनै गज्जनै देस, उ. स. जिने देस पक्कर, द. संजमी देस,

अ. फ. गज्जनै देसरि। २. धा अ. फ. द. बिच्छोह जोरी, ना. बिच्छोहि जोरी, उ. स. जोरी बिछोरी।

(६) १. धा. तिसह पिय, ना. जिनै पाय, द. वज्जि पिय, स. ते तजे पो। २. धा. कंठ पत्तहित, ना. कंठ पत्तेनि, द. कंठु पत्तेति, उ. स. पीय कंठ सु, अ. फ. कंठ एकंत।

(७) १. धा. नीर उच्चाछु, उ. स. तिनं तीर नइ चाल, फ. नारच्ची चाल, अ. नीरवी बाल। २ मो. उच्चालि जंपि (=जंपइ), धा. उच्चालु जंखे, ना. उच्चाल झंपे, अ. फ. उच्चाल झुप्पे, उ. स. उंचाल झंखे, द. उच्चाल झंपे।

(८) १. धा. झरहि जन मुत्ति, मो. झरहि मनि भूत्ति, उ. स. तहां झंपरहि जेम, ना. झरहि मनु मुत्ति, अ. झरहि मनि मुत्ति. फ. रहसि मनु मुत्ति। २. मो. गछंति लषि (=लषइ), धा. ना. द. अ. फ. गच्छंति लख्खे (लष्षें—अ. फ. ना.), उ. स. गज झंप लख्खे।

(९) मो. वीर (< चीर), उ. स. तिनं चीर। २. उ. स. झारंत। ३. मो. तुटे (< तुटि = तुटइ), धा. तुट्ट, अ. फ. ना. इट्टै।

(१०) १. धा. मतुह, उ. स. मनो। २. धा. रितुराज द्रुम पाट, फ. रतिराज द्रुम पत्र, ना. रतिराज द्रुम पत्त, उ. स. रत्ति रजं (राजं-उ.) तरं पत्त। ३. मो. छुटे (< छुटि = छुटइ ?) धा. अ. फ. ना. छुट्ट।

(११) १. उ. स. तिनं ग्रीव, द. ग्रीव नव। २. मो. फूट पगे (< पगि=पगइ) धा. फूट फुब्बइ, ना. छुट्टि जग्गो, द. फुटि नगे, फ. फुट्ट पछै।

(१२) १. धा. तिचहि, फ. मनह, ना. तव, द. तचि, उ. स. तमंचे। २. धा. सिर सिषर, ना. सिर सिषरा, फ. गिरि सिषरि। ३. मो. द्रुम दाह लगे (< लगि=लगइ), धा. दव दाव गव्वइ, उ. स. जम दाह लग्गे, अ. फ. दव दाह लग्गै, द. द्रुम दाह। ४. ना. में यहाँ और है :

डरी कैशानि सेसानि बेनी। सिषरं धावंत ग्रासे सुछिन्नी।

(१३) १. धा. धूम पर जार, उ. स. तिनं ध्रम्म प्रज्जारि, अ. फ. पज्जार, ना. धूम परिजारि, द. धुंम पर जाल। २. धा. मृग्ग नयनी, मो. मग्ग गयने, स. उ. अग्ग पनी, अ. फ. मग्ग गवनी (—गउनी फ.), ना. मग्ग मयनी (< गजनी)।

(१४) १. धा. चलहि तज, अ. फ. चलहि सिह, ना. चलहि तिहि, उ. स. तहां चलहि तिन। २. अ. फ. मुष। मो. वंद (< चंद) रमनी, अ. फ. चंद रवनी (रउनी—फ.), ना. चंद वयनी, उ. स. चंद रैनी।

(१५) १. धा. ना. द. अ. फ. बिंब, मो. ब्यंब, उ. तहां बीब, स. तहाँ बीज। २. मो. धावि (=धावइ), धा. धावइ, ना. धावहि, अ. फ. धावै, उ. स. धाए।

(१६) १. मो. दसन भूप भय, (' भूप' कदाचित् 'भय' का पाठान्तर है, जो यहाँ आ गया है) उ. स. तहाँ दसन बाल मैं (बाल मैं-उ.) २. मो. वासन छपावि (=छपावइ), धा. द. वसननि छिपावइ, ना. दसननि छिपावहि, स. दसनं छिपाए, उ. बसनं छिपाए, अ. वसनमि छिपावै, फ. वसनुमि तपाव।

(१७) १. धा. सवे सहिरोस, ना. सबद सहरो, उ. स. तिनं सह (<सबद उ.) सह रोस, द. सबद सह रोस, अ. फ. सबद सीरोस। २. धा. सहिये ससंकी, मो. साहाय (< साहीय) सकी, द. साइस ससंकी, ना. सारस्स संकी, अ. उ. स. सहि रोस संकी, फ. सहै रोस संकी।

(१८) १. धा. थरहरति थकि हरि, फ. थरहरे छकि ररि, ना. थरहरहि थकि रहि, उ. स. तहाँ थरहरे (—थरहरत उ.) थकि रही। २. धा. छीन, मो. हीन (< झीन)।

(१९) १. मो. केच (< केव), धा. ना.. अ. फ. के वि, उ. स. कवि। २. धा. अ. फ. ना. रटि रटित, मो. रति, ना. द. रट रटंति। ३. धा. प्रिय प्रीय, अ. फ. ना. द. उ. स. पिय पियहि। ४. धा. जंपइ, मो. जंपि (=जंपइ), अ. फ. जंपै।

(२०) १. मो. प्रेम, अ. फ. पमि, ना. द. नाम। २. धा. रिपुरमनि प्रिथिराज, ना. द. प्रिथिराज रिपुखनि। ३. मो. कंपि (< कंपइ), धा. दंपद, अ. फ. ना. द. कंपै।

टिप्पणी—(४) घट < घट्ट=आघात। (५) बिच्छोहि < विक्षोभ। (६) पत्त < पत्र=पत्ता। (७) झंप < भ्रम =घूमना-फिरना, चलना। (८) नीचाउ < निचाल=गिराना, टपकाना। (९) तुट्ट < त्रुट=टूटना। (१०) उचाउ=ऊँची, या तीव्र चाल। (११) पगइ < प्रकृत=स्वाभाविक। (१३) पजाल < प्रज्वाल। (१४) वल < वल्=जाना, गमन करना। (रयनी=रजनी।) (१५) ब्यंब < बिंब। (१६) दसन < दशन। (१७) साहिय

< साधिक=सविशेष। (१९) केवि > कतिपय। जंप < जल्प्=बोलना, कहना। (२०) एम < एवं=इस प्रकार। रवनि < रमणी।

[८]

दोहरा— *गयमंदा चषि[१] चंचला गुर[२] जंघा[३] कटि रंचि[४] । (१)*
पिय[१] प्रथीराज रिपू किअ[२] तउ[३] विपरित कीन[४] बिरंचि[५] ॥ (२)*

अर्थ—(१) "गज की भाँति मन्द [गति], चंचल आँखों, गुरु जंघाओं, तथा क्षीण कटि वाली [शत्रु रमणियाँ अपने पतियों से कहती हैं,] (२) 'हे प्रिय, पृथ्वीराज को जो तुमने शत्रु किया तो विधाता ने [सब कुछ] उलटा कर दिया' ।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. अ. ना. उ. स. चष., द. भषि। २. धा. ना. गुरु, द. गय ३. द. जं। ४. उ. स. अ. फ. रंच।

(२) १. धा. प्रिय, मा. जु, ना. उ. स. अ. फ. पिय। २. धा. उ. रिपु कियउ, उ. स. जुरिपु कियौ, न. अ. फ. जु रिपु कियौ, द. जु रितु कियौ। ३. मो. तु (=तउ), अन्य प्रतियों में यह शब्द नहीं है। ४ मो. कीउन धा. ना. अ. फ. कीन, ना. द. उ. स. करण (ना. उ. स. करन)। ५ ना. उ. स. फ. बिरंच।

टिप्पणी—(१) गय < गज। चष < चक्षु।

[९]

दोहरा— *जिनिअ* जगत[१] जय पत्त लिय[२] दिसि[३] मुरधर उपदेस । (१)*
षिति रष्षन[१] निति वर सबल[२] रिपु पंगुरह[३] नरेस[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) "[पंगराज जयचन्द की स्त्रियाँ उससे कहती हैं,] '[पृथ्वीराज ने] जग को जीता और जय-पत्र प्राप्त किया है और मुर (मरु) धरा की दिशा को उपदेश किया—दंडित किया है। (२) तुम्हारा शत्रु, हे पंगराज, धरती की रक्षा करने वाला और नित्य ही विशेष बल शाली होता जा रहा हूँ।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. जीत जगत, मो. जीताअ (< जीतीअ) जगंत, म. राजिति ?, उ. स. जित्ति जगत, ना. अ. फ. जीति जगत। २. मो जय पथलीय, फ. जय पत्ति लिय, अ. जय पत्त लिय, फ. ययपत्ति लिय, म. जयपत्त लै। ३. धा. दिस. फ. दिशा।

(२) १. मो. षिती रषन, धा. छिति रच्छन, उ. स. छिति रष्षन, फ. छिति रक्षा, अ. छिति रष्षन, ना. छिति रक्षन। २. मे. नितिवर अवन, धा. छितिपर सबल, ना. म. उ. स. छितिपर सबर, अ. फ. छिति परसपर। ३. धा. रिपु पंगुलो, ना. अ. फ. म. उ. स. सुनि पंगुरे (पंगुरै-म.)। ४. मो. नुरेस।

टिप्पणी—(२) षिति < क्षिति। निति < नित्य।

[१०]

पद्धडी— कर[१] पग्ग मग्ग अग्गइ*[२] सुवार[३] । (१)
सुर सुक्कि मुक्कि[१] सुह मनहु[२] प्रहार[३] ॥ (२)
सुनियइ*[१] न सद्द नीसान भार[२] । (३)
दरबार भयौ[१] इत्ती जउ*[२] पुकार ॥[३] (४)
थकि वेद विप्प[१] माननी सु[२] गान । (५)
आनंद सकल सुविसइ[१] न कानि[२] ॥ (६)
कर चंपि राय मुक्यउ*[१] उसासि[२] । (७)
विग्गडयउ*[१] जग्ग[२] मंत्री विसासि[३] ॥[४] (८)
सुनियइ*[१] न पुन्य[२] सभ्र[३] मभ्भ राज[४] । (९)
युवजन युवत्ति अनु[१] करिग साज[२] ॥[३] (१०)
संजोगि[१] जोग वर तुम्ह[२] आज । (११)
व्रत[१] लिअउ*[२] वरण*[३] प्रथिराज राज[४] ॥[५] (१२)

अर्थ—"(१) [तुम्हारे आक्रमण के भय से पंगराज के] मार्ग में [उसके] हाथ पैर आगे रुक गए हैं, (२) स्वर शुष्क हो गया है, सुख समाप्त हो गया है, मानो [तुम्हारा] आक्रमण हुआ हो। (३) धौंसों के भारी शब्द नहीं सुनाई पड़ रहे हैं, (४) [जयचन्द के] दरबार में जो इतनी पुकार हुई है। (५) वेद [पाठ] में विप्र और गान में मानिनियाँ थक (शिथिल हो) गई हैं, (६) समस्त आनन्द अब कानों में प्रवेश नहीं कर रहे हैं। (७) राजा (जयचन्द) हाथ मल कर उच्छ्वास छोड़ रहा है कि (८) मंत्री के विश्वास में मेरा यज्ञ बिगड़ गया। (९) सभी राज्य में पुण्य नहीं सुनाई पड़ रहे हैं, (१०) और युवतिओं ने आसक्ति की है। (११) संयोगिता के योग्य वर आज तुम्हीं हो। (१२) हे राजा पृथ्वीराज, उसने तुम्हें वरण करने का व्रत लिया है।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. द उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

तिन समय ताम कनवज नरेस । क्रत काम पुन्य सज्जे असेस ।
संबर संजोग सम जग्यकाज । बिश्थुरिय रिद्धि गति बिबिध राज ।
श्रृंगारि सहर बिबिधं बिनान । आनंद रूप रज्जे उतान ।
तोरन अनूप राजै सुभाइ । जगमगत पंभ हिम जरित ताइ ।
वासन विचित्र उत्तान ताम । मंडप्प उच्च सज्जे सुधाम ।
वास नद्द श्रेन विधि बंधिबान । सोमंत धज्ज बंधे सुथान ।
क्षोनी पवित्र सझी सवारि । द्रावै सुमंडि सुर सम अपार ।
गावंत थान थानह सु गेव । मंगल अनेक साजै सु भेव ।
जल जात माल तोरन कुसुम्म । वहु रंग विद्धि सोभा सुरम्म ।
आए सु न्रपति अनेक थान । उद्दार मत्ति थिति आसमान ।
संभर संजोग लष्षे सुभूप । संपत्त लाज हय गय अनूप ।
देवंत अत्ति उत्तान थान । प्रगटंत अप्प गुन आसमान ।
चिंते सुचित्त कमधज्जराइ । केहरि कंठेर वर मुत्ति काय ।

संजोग सज्जि नयरी पकार। सम करह साज हय गय सुभार।
बाजे अनंत बज्जे विवान। बहु न्रत्य करत रंजंत तान।
कौतिग सुराज राजै अनूप। क्रतयंत कंठ सादिष्ट रूप।
झुलंत नेन देषत विनान। मझंम चित्त साकुल्य जान।
आतस चरित्त साजे अनेव। नाटिक्क कोटि नाच्चंत भेव।
देषहि वियान साजहि सु देव। वानिय प्रसाद कछु कहिय गेव।
इहि विद्धि सत्त अह विन्ति जाम। अहा आइ कुक्कि पर दार ताम,

२. धा. अग्गह, मो. आगि (=आगइ), ना. अग्गँ, उ. स. आगें, अ. फ. अंगह। ३. मो. सुपार, ना. सुवार, स. सुबीर।

(२) १. ना. सर सुकिसुं, मो. सत्र मनहु, धा. सुइ मन, ना. सुमन, द. उ. स. सुमन, अ. फ. सहमन। २. अ. फ. पहार, द. पसार, स. प्रसीर।

(३) १. मो. सुभिइ (सुभियइ), धा. सुनियह, ना. सुणीयै, द. उ. स. अ. फ. सुनियं (सुनियें-अ.)। २. धा. चार।

(४) १. मो. भयु (=भयउ), द. भई। २. मो. इतयु, द. इतंती, धा. उ. स. अ. फ. पत्तो, ना. इत्ती। ३. द. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

तम पुच्छि ताम जैचंद राज। अवगुन अध्रम्म किन करिय काज।
उच्चंत ताम धाहू सउत्त। चहुआन राव सोमेस पुत्त।
सब देस भंजि षोषंद थान। बालुकाराय हनि देषि प्रान।

(५) १. धा. द. वेद वेद, ना. वेद वेदोत्ति, म. वेद विप्र, उ. स. वेन, अ. फ. वेद भेद। २ धा. विप्पनि सु, म. बयनं सु, उ. स. विप्रान, ना. बिप्रन सु, अ. फ. षिप्रनि सु।

(६) १. मो. सुवीसि (< सुविसइ)। २. धा. ना. म. उ. स. द. अ. फ. कान, केवल मो. में 'कानि'।

(७) १. धा. सुक्किय, ना. म. उ. स. द. सुक्यौ, अ. फ. सुक्कै। २. मो. उसारि, धा. ना. अ. फ. उसांस (उसास-म.), म. उ. स. निसास।

(८) १. धा. ना. उ. स. म. द. अ. फ. बिग्गर्‍यौ (बिगस्यौ-म० विगास्यौ—ना०), मो. विगड्यु (=विग्गड्यउ)। २. अ. जग्गि, फ. म. ना. जग्य। ३. धा. विमास, म. उ. स. द. ना. अ. फ. विसास। ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):

बंधौ सु चंपि अब चाहुआन। बिग्गर्‍यौ जग्य निहचै प्रमान।
जोगिनी राज चित्रंग जोइ। बंधौ समेत प्रथिराज दोइ।
सन्नाह राज बंधौ सबीर। निर्वार करौं चहु आन धीर।
आहुट्ठ राज प्रथिराज साहि। पीलौं जु तेल जिय तिल प्रवाहि
संभरि जुन्हाइ बुलाइ राइ। इक वत्त कहा पिय सुनहु आइ।

(९) १. मो. सुनीइ (=सुनियइ), धा. सुनई, ना. उ. स. द. म. सुनियै। २. मो. ना. पुन्य, धा. पुकार, फ. अ. फ. न पुन्नि। ३. धा. सब, अ. सुम। ४. धा. महाराज, द. मझि राइ, स. मध्य राज, अ. फ. मंहराइ।

(१०) १. मो. युवजन युवती अन, धा. युवतीय जनन युव, ना. जुअ जनु जुवत्ति अनु, म. जुव जनु सुवत्ति अनु, उ. जुवजनि जुवत्ति, स. जुवजसि जुवत्ति अति, अ. फ. युवतीजन युवजन। २. अ. फ. साइ। ३. ना. द. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):

पुच्छी स ताम संजोगि वत्त। कहि धाह कोन मो पित विरत्त।
उच्चरी ताम सहचरी षक। बंधी सुराज प्रथिराज तेक।
दिल्ली नरेस सोमेस पुत्त। चहुआन पान देषे स उत्त।
बालुका राव सध्यौ सुतेन। षोषंद भजि पुर लुटि रैन।
सुनि स्रवन वत्त संजोगि तथ्थ। चिंता सुचित्त गंधर्व कथ्थ।

(११) १. म. संजोग। २. धा. ना. अ. व्रत सु, फ. वृतम।

(१२) १. उ. स. व्रित्त, फ. व्रत। २. धा. लियो, मो. लीउ (=लिअउ) म. लय, अ. फ. ना. लियौ। ३. मो

च्वरण (< वरण), म. वरज, फ. वचन। ४. धा. उ. स. म. प्रिथिराज साज, अ. फ. प्रथिराज (प्रिथिराज-अ.) काज। ५. द. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):

द्रिढ़ करिय मंत्र सम चित्त अत्ति। पितु विरत सुद्धि छंडौ विमत्ति।
सजोगि ताम जंप्यौ सु प्रम। मानों सु सुश्श इह द्रढ नेम।
चहुवान सुवर मो सत्ति मत्ति। छंडौ सु अवर लालिच्च अत्ति।
इस जंपि मंत्र सा निज्ज धाम। छंडे व अन्व विधि व्याह काम।

टिप्पणी—(१) मग्ग < मार्ग। (२) सुक < शुष्। सुक्क < मुच्। सुह < सुख। (३) सद्द < शब्द। इत्ती < इत्तिय < इयत्=इतनी। (४) जत्त < यत। (६) विस < विश्=प्रवेश करना। (७) मुक < मुच्=छोड़ना। उसासि < उच्छवास। (८) विसास < विश्वास। (१०) अनु=और। साज < सज्ज < सज्=आसक्ति करना।

[११]

दोहरा— *तिहि[१] पुत्तिय[२] सुनि गन इतउ* [३]तात वचन तजि काज। (१)*
कइ[१] वहि[२] गंगहिं संचरउं[३] कइ[४] पानि गहउं*[५] प्रथीराज[६] ॥ (२)*

अर्थ—(१) "उस (जयचंद) की पुत्री (संयोगिता) के सम्बन्ध में [मैंने] सुना है कि वह यहाँ तक गुनने लगी है कि 'पिता के वचन और [स्वयंवर के] कार्य का त्याग कर (२) या तो मैं गंगा में बह चलूँगी, और या तो पृथ्वीराज का पाणिग्रहण करूँगी'।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. अ. फ. तिह। २. अ. फ. म. ना. पुत्ती। ३. मो. गन इतु (=इतउ), धा. गणइ इत, अ. फ. गुनय इत, द. ना. स. उ. म. गुन इतौ, फ. गुनि इता।

(२) १. मो. काइ, म. अ. फ. कै। २. मो. बिहि, धा. वय। ३. मो. ना. गंगहि संचरु (=संचरउं), धा. वहि गंगहि परौं, अ. गंगहि संचरौं, म. गंगह सिंचरौं। ४. मो. काइ, म. कै। ५. मो. गुहुं (=गुहउं), धा. ग्रहै, ना. ग्रहुं (=ग्रहउं), द. ग्रहं, फ. हूं गहं, अ. गहुं (=गहउं), म. उ. स. ग्रहन। ६. धा. म. ना. प्रिथिराज।

टिप्पणी—(१) गण < गणय्। इतउ < इयत्=इतना।

[१२]

दोहरा— *सुनत राइ[१] अचरिज* भयउ[२]* हियइ* मन्यउ*[३] अनुराउ[४]। (१)*
नृप वर अनि उर[१] अंगमइ[२] दैवहि अवर[३] स भाउ[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) राजा (पृथ्वीराज) को [संयोगिता के इस संकल्प की बात] सुनते ही आश्चर्य हुआ, और उसने हृदय में संयोगिता के अनुराग को मान लिया। [और उसने कहा] (२) "नृप (जयचन्द) अपने हृदय में उसके लिए अन्य वर (भले ही) निश्चित कर चुका है, किन्तु दैव को तो दूसरा ही [वर] भाता है।"

पाठान्तर—(१) १. धा. द. फ. सुनित राइ, ना. सुनत तावत, अ. सुनति राइ, म. सुनत राय। २. धा. म. अचरिज्ज किय, अ. फ. अचरज्ज किय, ना. अचिरिज कीयौ। ३. मो. हीई मन्नु (=मन्यउ), उ. स.

म. हियै मझि, धा. हिय मज्झर, द. हिय मानु (=मानौ), अ. फ. ना. हिय मान्यौ । ४. धा. अनुराइ, म. अनिराव, उ. स. अनराव ।

(२) १. धा. नृपवर अवरइ, अ. फ. ना. नृपवरु औरें (अउरहि–फ., औरं–ना.), म. उ. स. हौं वरि अवरहि (औरहि–म.) । २. धा. निम्मवइ, अ. फ. निर्मव, फ. नृमये, ना. संभव, म. देउं अव, उ. स. देउं वर । ३. अ. फ. दवहि और, धा. अवर अप्पियो, उ. स. देवै और, म. देवै अवर, ना. दइयं ४. धा. थाइ, अ. म. उ. स. सुभाव, ना. द. फ. सुभाउ ।

टिप्पणी—(१) मन्य < मनु । (२) अनि < अन्य । अवर < अपर ।

[१३]

नाराच—परट्ठि[१] पंगराइ दुत्ति[२] पुत्तिय[३] आलि[४] मुक्कने[५] । (१)

साम दान दंड भेद[१] सारसं[२] वियष्षने[३] ॥[४] (२)

जे ग्रीव ग्रीव तार तार नैन सेन[१] मंडिहो[२] । (३)

जे[१] वचन्न विद्धि निद्धि धीर[२] ही सग्यांन षंडिही[३] ॥[४] (४)

अनेक बुध्धि सुध्धि[१] सब्ब मुच्छि[२] काम जग्गवइ[३] ।[४] (५)

ते[१] प्रचारि काम च्यारि जाम[२] अंगनं[३] समुभ्भवइ[४] ॥[५] (६)

अर्थ—(१) [उधर] स्त्री (संयोगिता) की अड़ (हठ) को छुड़ाने के लिए पंगराज (जयचन्द) ने दूतियाँ प्रस्थापित कीं (नियुक्त कीं), (२) जो साम, दान, दंड तथा भेद में समान रूप से विचक्षणा थीं, (३) जो ग्रीवा, ताली (हथोड़ी) तथा नेत्रों से संकेत मंडित किया करती थीं, और (४) अपनी वचन-रचना की निधि से सज्ञानों (ज्ञानियों) के भी धैर्य को खंडित करती थीं। (५) वे सब अनेक युक्तियाँ शोध-शोध कर मूर्च्छित काम को जगाती थीं और चार प्रहर काम की उत्तेजना करके वे उस अंगना (संयोगिता) को समझाती थीं।

पाठान्तर—(१) १. मो. परठी म. परत्ति, ना. पत्ति । २. धा. अ. म. ना. उ. स. दुत्ति, मो. दूति, फ. दुत्त । ३. धा. अ. म. पुत्ति, फ. पुत्त, ना. गुत्ति । ४. ना. सुत्ति आलसं । ५. धा. म. ना. मुक्कनै (मुक्कनं–ना.) मो. मूकने ।

(२) १. धा. द. ति साम डंड वीर भेद, ना. जि साम दान भेद वीर, अ. फ. ति (ते-फ.) साम दान भेद दंड, म. ति सांम दांन भेद दंड । २. मो. सरस वीर (पाठान्तर का समावेश), धा. म. उ. स. सारसी (सासो–उ.), अ. फ. सारसै । ३. धा. बिचंछने, अ. फ. विचछछनै, म. उ. स. विचष्पने (विचषने–म.) । ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. का पाठ) :

वचन्न चित्त चातुरी न ताहि कोइ पुज्जई ।
हरंत मान मेनका मनोहरं न सुझ्झई ॥

(३) १. धा. सुग्रीव ग्रीव कंठ तार नयन सयन, मो. जा ग्रीव ग्रीव तार तार नैन सेन, अ. फ. सु ग्रीव ग्रीव कंठ ताल नैन सैन, ना. जि (=जे) ग्रीवता ग्रीव तार तार नन सैन, उ. स. श्रवन्न नेन नेन सेन तार तार, म. श्रवंन नैन सैन सेन तार तार । २. धा. मंडही, मो. मंझिहीं, म. उ. स. मंडई ।

(४) १. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है । २. धा. वचन्न विद्धि निद्धि रंग, अ. फ. वचन्न सिद्धि सब्ब, ना. वचन्न विद्धि निद्धि रंग, उ. स. अनेक विद्धि निद्धि सब्ब, म. अनेक विध सिध साध । ३. धा. उ. स. म. ना. ईसग्यान षण्डही, (षंडई–म.) अ. फ. ईस ग्यान षंडही, द. ग्यान ग्यान षंडहीं । ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :

अनेक भाँति चातुरीनि चित्त चित्त चोरई।
छिनेक में प्रसन्नवं सु जेम मैन छोरई।
कळक कलं मलाप जाप ताप धूत संसई।
श्रिषंड ज्यों मिठास बास सासु ता प्रसन्नई।

(५) १. म. लुध। २. धा. अ. फ. मूच्छि, म. मुठि (< मुछि), ना. मुछ्यौ। ३. मो. जगवि (=जगवइ) अ. ना. जग्गवैं, फ. जगाउही। ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):—

सुपाठई चतुर बत्त प्रथम मन्न लग्गवै।
रहंत मोन मोनही हसंत ते हंसावही।
विषंम जोग भोष तेज जोर सों नसावहीं।
अगोन कंठ पोत रूप उत्तरं दिसावही।
कपट्ट ज्ञान बत्त मंडि द्वड्ढ सो छँडावही।

(६) १. धा. ति (=ते), मो. त, फ. न, ना. द. म. उ. स. में यह शब्द नहीं है। २. धा. अ. प्रचारि च्यारि जाइ, फ. प्रचार च्यार जाइ, म. उ. स. प्रचारि कासु (कांसु—म.) चारि (च्यारि—म.) जाइ (जाय—म.)। ना. द. प्रचारि चारि (च्यारि—द.) जाइ अंग। ३ मो. अंगनं, धा. अंननैं, उ. स. आप मन्न, अ. फ. ना. अंगन। ४. मा. समूझविर=समूझवइ), धा. समुज्झवइ, अ. समझ्झवैं, फ. समुझाउही, म. ना. उ. स. समुझ्झवैं।
अनेक भाँति चित्त चातुरीनि सु आप मन्न सुझ्झवैं।
५. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):
टिप्पणी—(१) परिठ्ठव < प्रति+स्थापय्। आलि < अड्ड [देशज]। मुक्क < मुच्। (२) सारस < सरिस < सदृश। वियष्षन < विचक्षण। (३) तार < ताल=ताली। सेन < संकेत। (४) सआन < सज्ञान। (५) मुच्छ < मूर्च्छ्।

[१४]

रासा—अलस[१] नयन अलसाय ति[२] अद्दरु[३]× अप्प[४] किय। (१)
[पुत्री वाक्यः] किम बुध्धी[१] मय[२] तात सकिल्लिअ[३] इक जिय[४]। (२)
[दूती वाक्य] तव बाले वर तात[१] सकिल्लिअ एक जिय[२]। (३)
किहि[१] वर वर उतकंठ[२] त पुच्छइ अच्छरिय[३]॥ (४)

अर्थ—(१) उस (संयोगिता) ने अलस नेत्रों से अलसाते हुए आप ही [उस दूती का] आदर किया [और पूछा,] (२) "मेरे पिता ने जी में कैसी (कौन सी) एक बुद्धि संकीलित कर रक्खी है?" (३) [दूती ने उत्तर दिया,] "हे बाले तेरे श्रेष्ठ पिता ने एक [बुद्धि] यह संकीलित की है कि (४) तुम्हें किस श्रेष्ठ वर की उत्कंठा है वह, हे अप्सरा, तुमसे पूछे।"

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।
(१) १. म. स. ना. द. तव अलस। २. म. अलसायत, ना. अलसाइ चित्त। ३. धा. उ. स. आदरु (आदुरु—स.), म. ना. आदर। ४. स. अप्प।
(२) १. म. बुधीय, फ. बुद्धिय। २. धा. अम, मो. ना. द. मय, अ. फ. अय, म. उ. स. मो। ३. धा. ना. उ. स. किल्लि ति, म. सकिलिय, अ. फ. सकिल्लिव, फ. सकलव। ४. म. एक हिय, ना. इक्क हिय।
(३) १. धा. अ. फ. हे बाले तव तात, ना. तव बोले वर तात, द. तव बाले बर तात, २. धा. ना. सकिलित राय (राइ—ना.) लिय, द. संकिलित रायलि, अ. फ. सकिलिय राइ लिय, म. उ. स. सयंबर मंडइय (—मंडईय म.)।
(४) १. धा. म. उ. स. कहि। २. धा. उतकंत, फ. उतिकंठ म. उ. स. उतकंठाइ। ३. मो. त पुच्छिहि

अच्छरीय, धा. अ. फ. द. ना. सु पुच्छइ (पुछै—अ. फ.—पुच्छहि-ना. द.) अच्छतिय, म. उ. स. माल वर छंडइय (छंडईय—म.)।

टिप्पणी—(२) मय < मत्=मेरा। सकिलित < संकीलिअ < संकीलित=कील लगा कर जोड़ा हुआ, दृढ़ता-पूर्वक गाड़ा हुआ। (४) अच्छरिय < अप्सरसि=अप्सरा।

[१५]

[पुत्री वाक्यः] रासा—मय मन मज्झ ज* गुज्झ[१] गुरुजन छंडि*स तुम कहउं*[२]। (१)

जंपत लज्जइ*[१] जीह न अक्खर[२] लहु लहउं*[३] ॥ (२)

षट दह[१] जिहि सामंत[२] सोइ प्रथीराज कोइ[३]। (३)

दान षग्ग भय मानि न[१] मुकउ तात सोइ[२] ॥[३](४)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] "(१) मेरे मन में जो गुह्य है, वह गुरुजनों से भी न कहकर तुमसे कह रही हूँ। (२) उसे कहते हुए मेरी जिह्वा लज्जा का अनुभव करती है, और [उसे कहने के लिए] मैं एक लघु अक्षर भी नहीं पाती हूँ। (३) जिसके सोलह [या साठ ?] सामंत हैं, वही कोई पृथ्वीराज [मेरा वर] है, (४) जिसने [मेरे पिता के] षड्ग-दान (खड्ग-युद्ध) से भय मान कर मेरे पिता को छोड़ा नहीं है [और उससे युद्ध करना चाहता है]।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. मय मन मझस गूझ, २ धा. मुहि मनमहं मुझ जानि, द. उ. स. म. मो मन मझ गुरुजन, ना. मव मनन मझ, अ. फ. मो मन मझ गुज्जन। २. मो. गुरुजन छंडसु तम कहुं (=कहउं), धा. गुज्झ स तुम्ह कहुं (=कहउं), ना. उ. स. म. गुज्झ सु (सुं—म.) तुम कहौं, (कहौ—म., कहुं=कहउं—ना.), अ. फ. गुझ्झ जु तुम कहै।

(२) १. मो. जंपत लजि (=लजइ), धा. अंपत लज्जै, ना. जंपत लज्जुं (=लज्जउं), उ. स. जंपति लाजौं, अ. फ. जंपत (जंपति—फ.) लज्ज, म. जंपति लाजौं। २. मो. न अक्षर (=अक्खर), धा. न अष्षर, अ. फ. न अछ्छर, म. सुअंतर, ना. रु अच्छिर, उ. स. सु उत्तर। ३. मो. धा. ना. लहुं (=लहउं,) अ. फ. लहै, उ. स. लहौं, म. लहौ।

(३) मो. धा. षटदह, अ. पट (षट) दह, फ. पटु (षटु) दह, ना. द. म. उ. स. सत्त (सित्त-द.) सेन (सयन—ना.)। (२) धा. अ. फ. सावंत। ३. धा. प्रिथी प्रिथीराज कइ, अ. फ पृथी (पृथ्वी—अ.) पृथिराज होइ, ना. द. म. उ. स. सैर छद (छद—ना.) मंडलिय।

(४) १. धा. मो. फ. दान सग्ग भय मान, अ. दान षग्ग भय मानि, ना. द. म. उ. स. वरन (वरण—मो.) इच्छ वर मो हिअ (हिय—म., हिअं—ना.)। २. धा. न मुकउ तात सइ, मो. नभयुक्यु (=नमवयउ) तात सोइं, अ. फ. न (नि—फ.) मुकइ तात सुइ (सोइ—फ.), ना. द. म. उ. स. हंति अखंडलिय।

टिप्पणी—(१) मय < मत्=मेरा। गुझ्झ < गुह्य। (२) जंप < जल्प्। जीह < जिह्वा। (४) मुक < मुच्।

[१६]

[दूती वाक्यः] गाथा—अबुधा*[१] अलीह[२] बाला वयउं*[३] उचरिय मिच[४] रस एनम्[५]। (१)

लहु भा[१] लुहार पुत्ता[२] तुं पुत्तीय राइसं धीय[३] ॥ (२)

अर्थ—[दूती ने कहा,] "(१) हे बुद्धिहीना और अलीक (लीक त्याग कर चलने वाली) बाला, तू क्यों भिन्न रस के इन [वचनों] को बोल रही है ? (२) वह लघु लघु [पिता] का पुत्र है, जब कि तू, हे पुत्री राजेश्वर की दुहिता है।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के है।

(१) १. मो. अबुधे, ना. द. मुगधा, म. उ. स. मुगधे, अ. फ मुद्धे। २. मो. अलि वाला, ना. मुगधप रसया, द. म. उ. स. मुगधा रसया, अ. फ. अमुद्ध रसाइ। ३. मो. वयुं (=वयणं), धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है। ४. ना. उवरजे भ्यंन, उ. स. अवरज भिन, म. अचरज भिन, अ. फ. उच्चरिय वयण भिन्न। ५. मो. पन् (<पनन्), धा. पण, ना. द. पव (पवं—ना.), म. उ. स. पवि, अ. फ. नाय।

(२) १. धा ना. द. अ. फ. लहुवा। २. धा. लुआर पुत्ती, अ. फ. लहुवाय पुत्तं, द. उ. स. लुहान पुत्तं, म. लहुआन पुत्त, ना. नहान पुत्ती। ३. धा. तं पुत्ती राजघर आयी, ना. द. तु (तुं—द.) पुत्ती राज (राजा—द.) ग्रेहेवि (ग्रेहेवि—द.), उ. स. तूं पुत्ती राजग्रेहायं, म. तूं पुत्ती राजग्रेहाई, अ. फ. तं पुत्ती राज घर आयं।

टिप्पणी—(२) लहु < लघु। आ—यह। लुहअ < लघुक। राइसं < रायस < राजेश। धीय < दुहितृ।

[१७]

[पुत्री वाक्यः] साटिका—आ रत्ती अजमेरि[१] धुम्मि धमनी[२] कति मंडि मंडोवर[४]। (१)
मोरी रा सुरमंड*[१] दंड दमनो[२] अगिनी उतिट्ठा[३] कर[४]। (२)
रण थंभ[१] थिर[२] थंभं सीस अहिरणि[३] जलजिट्ठि[४] कालिंजरं[५]। (३)
कप्पानं[१] चहुआन जानु घनयो[२] घरनोपि[३] गोरी घरं[४] ॥ (४)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] "(१) उसीने अजमेर में धूम धाम मचाई और मंडोवर को काटकर मंडित किया, (२) [उसीने] मरु मंड के मोरी राज को दंडित करके उसका दमन किया, और उत्थित करों (लपटों) वाली अग्नि बन कर (३) उसीने स्थिर स्तंभ वाले रणस्तंभपुर (रंथंभौर) के के सिर पर अभिरमण किया और कालिंजर को जलमग्न किया, और (५) चहुआन की वही कृपाण तो गोरी धरा पर घन की भाँति घहराई !"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+ चिह्नित चरण फ. में नहीं है।

(१) १. अ. फ. आरत्ता (नारत्ती—अ.) अजमेरि, मो. आरत्ती अजमेर। २. मो. धूमि धमनी, धा. धुपिप धवनी, द. म. उ. स. धुम्मि धमनी, अ. फ. ना. धुम्मि (धुम—फ.) धमनी (धम्मनी—फ.)। ३. मो. कति मंड्डि (< मंडि), धा. म. ना. करमंडि, अ. कर्मडि, फ. कुमंडि। ४. मो. मंडोवरं (< मंडोवरं।)

(२) १. मो. मोरीरा मरमंड, धा. अ. फ. मोरीरा सुरसुंड, ना. मोरारा सुरसुंड, द. उ. स. मोरीरा मरसुंड, म. मोरीरा मसुंड। २. धा. दंड दवनी, अ. फ. ना. दंड दवनो, म. डंड दमनो। ३. धा. अग्गी उच्चिस्टं, अ. फ. अग्गी उचिट्टं, म. ग्नि उचिट्टा, ना. अग्नी उतिट्टा। ४. म. ना. करी।

(३) १. धा. रनथंभिर, अ. फ. रंथंभं। २. फ. गिर। ३. धा. सीस घजिरो, अ. फ. सीस अहरनि, ना. सीस हरणी, म. सीस अहितं, उ. स. सीस अहिनं। ४. धा. अ. जल जुसट, फ. जलजुट्टि, ना. जरजिट्ट, म. उ. स. ज्वलदिट्ठ। ५. मो. कालिझरं, म. कालज्जरं, ना. काल्यंजरं (=कालिंजरं)।

(४) १. धा. किप्पान, अ. क्रिप्पानं, फ. क्रयपानं, म. क्रिपानं, ना. कर पानि। २. धा. जोनि धनयो, मो. जान धनयो, अ. जानि धनयो, द. जानु रहियं, म. जान रहियं, ना. जान हियथ। ३. धा. धरणोपि, द. घहणोपि, म. घहनोपि, ना. घटनोपि। ४. म. धडा, ना. अ. फ. धरा।

टिप्पणी—(१) रन < रणय्=शब्दायमान करना, गुँजाना। कत्त < कृत्। (२) रा < राज। उत्तिट्ठ < उत्तिष्ठ=उठी हुई। (३) अहिरम < अभि+रम्।

[१८]

[दूती वाक्यः] साटिका—तो जा[१] पुत्तीय[२] मरहट्ठ थट्ठ[३] सबले निम्मंचि[४] वइरागर[५]। (१)*
करणाटी[१] करवीर[२] नीर गहनो[३] गुंडी गुरं[४] गूर्जरं[५]। (२)
निर्माली हथमेव[१] मालव धरं[२] मेवाड मंडोवरं[३]। (३)
जत्तउ तात इति सेव देव[१] नृपयो[२] तत्तानि किं तू वरं[३]। (४)*

अर्थ—[दूती ने कहा,] "(१) तू जिसकी पुत्री है, [हे संयोगिता,] उसने महाराष्ट्र, थट्टा, नीमच और वैरागर को शबल (भ्रष्ट) किया; (२) कर्णाट, करवीर, गुंड और गुरु गुर्जर की कांति के लिए ग्रहण हुआ; (३) निर्माल्य जिस प्रकार हाथ में हो, उसी प्रकार उसने मालव भूमि, मेवाड़ और मंडोवर को हस्तगत किया। (४) जब कि ऐसा तुम्हारा पिता है, और ऐसे देव जैसे नृप उसकी सेवा करते हैं, तब तू उन्हें क्यों नहीं वरण करती?"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. ना. द. म. उ. स. तो [मात्र], धा. अ. फ. जा [मात्र], मो. तो जा। २. म. ना. पुत्री। ३. द. मरहट्ठ वट्ट, ना. मरहठट्ठ। ४. मो. निमंनि, म. उ. स. नांमंत्र, ना. द. नीमीच, धा. अ. निब्बीय, फ. नद्वीय। ५. म. अ. फ. ना. वैरा गरे।

(२) १. द. कर्णाट, म. कर्नाटी। २. धा. करनीर, म. उ. स. करवीर, अ. फ. करिनीर। ३. मो. नीर गिहिनो, ना. म. नीर गइनो, धा. अ. फ. चीर गहनो, द. नोर गहिनो। ४. मो. गुडो गुरं, धा. गुंडी गुरे, ना. द. म. उ. स. गोरी गिरा। ५. म. उ. स. गुज्जरी, धा. अ. फ. ना. गुज्जर, द. गुजं।

(३) १. धा. निम्माले हथमाल, अ. फ. निर्मोलो हथमेलि, म. निर्मोली हथलेव, उ. निर्मा हथलेव, ना. निर्मोली हथमेव मेलि, स. निर्मावे हथलेव। २. म. ना. धरा। ३ उ. स. मेवार मंडो धरा, म. मेवार मंडोवरा, फ. मेवार मंडोउरं।

(४) १. मो. जतु (=जतउ) तात हूं पत्त सेव देव, धा. जातस्तात देव, ना. जिन तातं इति सेवदेव, उ. स. म. जित्ता तातय सेव देव अ. फ. जाता तस्य सदैव सेव (सेउ—फ.)। २. अ. फ. नृपयं, म. न्रिपति। ३. मो. तत्वनकी तू वरं, धा. तात सुत किंवा वरं, अ. फ. आनं न तं किं वरं, ना. तत्वान तु वयं वरे, द. तत्तानतुं किं वरं, म. तत्तात्पनं किंवरे, उ. स. तत्वान्यनं किं वरे।

टिप्पणी—(१) जा < या। सबल < शबल। (३) निर्मोली < निर्माल्य। हथमेव < हस्तम्+एव। (४) जत्तउ < यत्+तव। तत्तानि < तत्+तानि।

[१९]

[पुत्री वाक्यः] श्लोक—न मो[१] राजान[२] संवादे[३] न मो[४] गुरुजनागरे[५]। (१)*
वर मेकं सयं[१] देह अन्यथा[२] पृथिराज ए[३]॥ (२)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] "(१) न मैं राजाओं के संवादों (संदेशों) का और न गुरुजनों [के आदेशों] का आकलन करती हूँ। (२) एक सौ देह (जन्म) ग्रहण करना पड़े तो भी अच्छा होगा, अन्यथा [नहीं तो] पृथ्वीराज [मुझको प्राप्त हों]।"

* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

पाठान्तर—(१) १. अ. फ. म. नमे (नंमे–फ.)। २. मो. रामान (<रायान), धा. रयन, ना. द. म. उ. स. अ. फ. राजन। ३. अ. फ. संवादो। ४. मो. नमोत्व, अ. फ. म. नमे (नं मे–म.)। ५. मो. गुरु जनयोग गुरे, धा. गुरु रयन जागरे, म. उ. स. गुरु (गुर–म.) जन आग्रहे, अ. गुरज नागरे, फ. गुर्ज्जनी गरे।

(२) १. मो. शयं, ना. सुयं, अ. फ. उ. स. स्वयं, म. प्रिय। २. मो. अन्यसा, धा. आनिस्वामि, म. उ. स. नान्यथा, अ. फ. सर्वथा। ३. मो. प्रथीराज, धा. प्रथिराज थो, म. अथोराज थं, ना. पृथिराजयो।

टिप्पणी—(१) आगर < आगल < आ+कलय्=आकलन करना। (२) सयं < शतं।

[२०]

[दूती वाक्यः] साटिका—इंदो किं[१] अंदोलिया[२] अमीए[३] चक्रीवं गंगा सिरे[४]। (१)

वच्छी छीर[१] विचार चारु[२] भमरे[३] चिंचीन बंका करे[४]। (२)

तत्स्थाने[१] कर पाद पल्लव वसा[२] वल्ली[३] वसंता[४] हरे। (३)

चतुरे तुं[१] चतुराय[२] आनन रसे[३] सा जीव मदनावरे[४]॥ (४)

अर्थ—[दूती ने कहा,] (१) "इंदु क्यों [इंदु] है? इन्दुलेखा (ज्योत्स्ना) के अमृत के कारण। चक्री (शिव) भी [चक्री क्यों है?] गंगा के सिर पर होने के कारण। (२) वत्सिन् (बछड़े वाली गौ) [वत्सिन् क्यों है?] क्षीर [के कारण]। भ्रमर भ्रमर क्यों है? चारु विचरण के कारण। चिंची [चिंची क्यों है?] अपने बाँके (टेढ़े) करों (फलों) के कारण। (३) वशा (हस्तिनी) क्यों अपने स्थान पर है—क्यों वशा (हस्तिनी) है? अपनी [सुन्दर] कर (सूँड), तथा पल्लव सदृश [कोमल] पाद (पैरों) के कारण। वल्ली [क्यों वल्ली है?] क्यों कि वह वसंत को ग्रहण करती है। (४) [उसी प्रकार] हे चतुरे, तुम्हारे मुख और जिह्वा की जो चतुरता है, वह [तुम्हारे] जीव के मदन द्वारा आवृत्त होने से है।

पाठान्तर—(१) मो. इंदो कयं, म. उ. स. इंद्रो कि, धा. ना. द. अ. फ. इंदो (यंदो–द.)। २. धा. अ. फ. इंदोलियन, मो. अंदोलिया, म. अलि अन्य ईस, ना. इंदोलिआनि, उ. स. अन्य ईस (ई–उ.)। ३. म. उ. स. अनयो। ४. मो. चक्रीवं गंगा सरे, धा. अ. चक्री भुजंगा सिरे, फ. वक्री भुजंगा सिरे, म. उ. स. चक्री भुजंगा सुरं (सुरे-म.), ना. चिक्री भुजंगा सिरे।

(२) १. मो. वछच्छर, धा. चिच्छी छीर, उ. स. चच्छी चारु, म. दछी चारु, द. वछी चारु, ना. चच्छी वीर, अ. पच्छी छीर। २. मो. तिचार चार, धा. अ. विचार चामि, फ. विचारु वामि, ना. विकार चारु, म. उ. स. विचार चारु। ३. धा. म. स. अ. भंवरे, फ. भउरे। ४. धा. चिंचीन चंका करे, मो. चंचीन वंका करे, अ. फ. बिंबा न (नु–फ.) बंका करे, ना. न विका करे, म. विचिति वंका करे, उ. स. चिंचीनि बंका करे।

(३) १. मो. द. अ. फ. तस्थाने, म. उ. स. तस्थानं, ना. स्तथाने। २. मो. कर पाद पल्लव वास धा. ना. कर पाद चूव पल्लव रसा, अ. फ. करपाद लूव (भूव–फ.) पल्लव रसा, म. उ. स. कर पाद पल्लव, वसा। ३. मो. वल्ला (< वल्ली)। ४. धा. वसंतो।

(४) १. धा. अ. फ. किं, उ. म. तं, म. तव। २. धा. चतुराइ। ३. मो. आनन रसे, धा. अ. फ. जान तुरसा, ना. द. उ. स. म. आनन (आंनन–म.) रसा। ४. स. मदनावरे।

टिप्पणी—(१) अंदोलिया < इंदुलेखा। अमीए < अमृत। चक्री < चक्री=शिव। (२) वच्छी < वत्सिन्=बछड़े वाली गौ। छीर < क्षीर। चिंचिणी [देशज]=इमली। बंका < वक्र। (३) वसा < वशा=हस्तिनी। हर < ग्रह्=ग्रहण करना। (४) रसा=जिह्वा। आवर < आ+वृ=आच्छादन करना।

[२१]

[पुत्री वाक्यः] दोहरा—सा जीवन[१] जत्तह[२] वयनु वयन[३×] गए[४] मृत[५] होइ । (१)
जो थिर[१] रहइ सु कहहुं किन[२] हउं* पुच्छउं*[३] तुम[४] सोइ ॥ (२)

अर्थ—(१) "[मनुष्य का] जीवन वहीं तक है जहाँ तक वचन [की पूर्ति] हो; वचन के जाने पर मनुष्य मृत हो जाता है। (२) जो स्थिर रहता है, वह तुम क्यों नहीं बतातीं ? मैं तुमसे वही पूछ रही हूँ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
(१) १. धा. सज्जीवा, म. उ. स. जा जीवन। २. धा. राषै, अ. फ. रष्पै, ना. जंतह, म. उ. स. वतह (बतह–फ.)। ३. धा. में यह शब्द नहीं है, ना. वयतु। ४. मो. गरए, म. गयै अ. फ. ना. गयैं। ५. धा. म्रित, फ. मृति, द. मृतु।
(२) १. मो. जिउं थिर, धा. ना. म. स. जो थिरु (थिर–धा.स.), द. उ. जा थिरु, फ. जोवन, अ. जो थितु॥ २. मो. सु कहुहुं किमि, धा. द. अ. फ. सु कहउ (कहहु–अ. फ.) किन, म. उ. स. सोई कहौ, ना. सो कहु (=कहउ) किनि। ३. मो. हुं (=हउं) पूच्छुं (=पुच्छउं), धा. द. हूं पूछूं, अ. फ. हौं पुच्छौं, ना. हूं पुच्छुं (=पुच्छउ), उ. स. हो पूछूं, म. हुं पुछ्छौं। ४. मो. तम, धा. द. तुम्ह।
टिप्पणी—(१) जत्तह < यत्र। वयनु < वचन।

[२२]

[दूती वाक्य :] दोहरा—थिरु[१] बाले[२] वल्लभ[३] मिलन जउ*[४] जोवन दिन[५] होइ । (१)
अये[१] जोबन[२] कुब्बन तन सु[३] को मंडइ रति सोइ[४] ॥ (२)

अर्थ—[दूती ने कहा,] "(१) हे बाला, [इस संसार में] स्थिर केवल वल्लभ (प्रिय) से मिलन है, [किन्तु] यदि यौवन के दिन हों। (२) यौवन के चले जाने पर जब तन कुवन (विकृत) हो जाता है, वही (यौवन के दिनों क) रति कौन माँडता (करता) है ?"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का हैं।
(१) अ. फ. थितु। २. अ. फ. बालं। ३. धा. अ. वल्लभ, फ. वलन (< वलभ)। ४. मो. जु (=जउ), धा. जा, ना. जो, अ. फ. म. उ. स. जौ। ५. धा. जुव्वन तन, मो. जो अनिनद, ०. ना. द. अ. फजु वन दिन, स. जुब्बनु दिन।
(२) १. धा. गउ, अ. फ. गै, ना. द. गयं, स. गयौ। २. धा. अ. फ. ना. जुव्वन, उ. स. द. जुवन। ३. धा. कुव्वन तनहु, ना. कोवन तुहिसु, उ. कवन तनहि, स. कछु वनत नहि, द. कुलन तनहि, अ. फ. कुब्बन (कुब्वन–फ.) तनह। ४. मो. को मंडि (=मंडइ) रति सोइ, धा० रत्ति न मंडइ कोइ, उ. स. रति मंड (मंडौ–स.) घट लोइ, ना. को मंड रति सोइ, अ. फ. को मंडइ (मंड–फ.) रिति सोइ।
टिप्पणी—(१) थिरु < स्थिर। वल्लभ < वल्लभ। (२) अय < अय्=जाना।

[२३]

[पुत्री वाक्य :] दोहरा—तुव सम[१] मात न तात[२] तनु गात सुरत्तरियाह[३] । (१)
जुव्वनु धन[१] अथिर[२] रहै अंभु कि अंजुरियाहं ॥ (२)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] (१) "तुम्हारे समान न [तुम्हारी] माता और न [तुम्हारे] पिता के गात्र सुन्दर हैं। (२) यौवन-धन तो अस्थिर रहता है; [तुम्हीं बताओ,] क्या अंजलि में पांनी स्थिर रहता है ?"

पाठान्तर—(१) १. ना. द. तो सुव, म. उ. स. तोसौं। २. अ. तात तन, फ. मात तनु। ३. अ. सुरंतरियाइ (=सुरत्तरियाइं), फ. सुरंभरि याइं, ना. द. म. उ. स. सुरंगरियाइं।

(२) १. द. जुं जुव्वन, ना. जीवन जुव्वन। २. अ. फ. अच्छिन। ३. ना. अंबु, म. उ. स. अंब।

टिप्पणी—(१) रत्त < रक्त। (२) अथ्थिर < अस्थिर।

[२४]

[दूती वाक्यः] साटिका—जाने मंदिर दार चीर[*1] *चिहुरा+×वाढंति+×[2] चित्तानला+×[3] । (१)*

जाता+× फुल्लित+×[1] चंपकस्य+×[2] कलशा[3] मनु कंदर्प दीपा प्रहा[5] । (२)

झंकारे[1] भमरे[2] उड्डंति[3] बहुला फुल्लानि फुल्लंटिया[4] । (३)

सोयं तोय[1] संजोगि[2] भोग समया[3] प्राप्ते[4] वसंतोत्सवे[5] ॥ (४)

अर्थ—[दूती ने कहा,] "(१) जिससे मंदिर (घर) फाड़ खाने लगता है, चीर तथा चिकुर (केश) चित्त के अनल (अग्नि) को बढ़ाते हैं, (२) जिससे फुल्लित (फूली हुई) चंपक की कली कंदर्प-दीप की प्रभा-सी हो जाती है, (३) जिससे झंकार करते हुए भ्रमर बड़ी संख्या में उड़ पड़ते हैं और फूल खिल उठते हैं, (४) वही तो, हे संयोगिता, भोग का समय वसंतोत्सव प्राप्त हुआ है!"

पाठतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

+ चिह्नित शब्द या शब्दांश अ. में नहीं है।

× चिह्नित शब्द या शब्दांश फ. में नहीं हैं।

(१) १. मो. जाने मंदिर दार वीर (<चीर), धा. जेने मंजर दार चाए, ना. द. म. उ. स. जाने (जांने-म.) मदिर द्वार चारु (चार-म. उ. स.), अ. फ. जेने मंजरि दातु चातु (वातु-फ.)। २. धा. वाजंति, म. बाढंत। ३. मो. चांत्यानिला (<चींत्यानिला), धा. चित्तानला, म. चित्तानला, ना. द. चित्तानिला, उ. स. चित्तानलं।

(२) १. मो. जादा फूलित, धा. जावा फुल्लिय, द. जाती फुलिय, ना. जदि तीय फुलीय, म. जाती फूलय। २. ना. उ. स. पंकजस्य। ३. उ. कुलया। ४. यह शब्द मो. के अतिरिक्त किसी प्रति में नहीं है। ५. धा. दीपं प्रहा, ना. द. अ. फ. दीप प्रभा, उ. स. दीपं प्रभा, म. दीप प्रभा।

(३) १. ना. झंकारो। २. धा. भवरे, मो. झमरे, अ. फ. भवरा (भव्वरा-फ.), म. उ. स. भ्रमरे, ना. भगरं। ३. उडंत। ४. धा. अ. फ. फुल्लानि फुल्लंटया, मो. फूलानि फूलंटिया, द. म. उ. स. फुल्लानि फुल्लंतया, ना. फूलाणि फूलंटया।

(४) १. म. सोयं जोय, अ. फ. सायं तोइ, ना. सायं तोय। २. मो. संयोग, म. उ. स. संजोय, फ. संजोगु। ३. धा. अ. फ. ताहि सुभरे, मो. भोग शमया (समया), म. सोग समया, द. भाग समया। ४. धा. अ. फ. पत्तो, ना. प्राप्तो। ५. मो. वसंतोत्सवो, धा. वसंतोच्छवइ, ना. वसंतोच्छव, म. उ. स. वसंते छवि (छवी-स.)।

टिप्पणी—(१) दार =फाड़ना। चिहुर < चिकुर=केश। (२) प्रहा < प्रभा। (३) फुल्ल=खिला हुआ।

[२५]

[पुत्री वाक्यः] श्लोक—संवादेव विनोदेव[1] देव देवेन रज्यते[2] । (१)

अन्य प्राणेऽथवा प्राणे[1] प्राणेश[2] दिल्लीश्वरः[3] ॥ (२)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] "(१) संवाद में और विनोद में भी उसी प्रकार, देव देव (महादेव) द्वारा मैं रक्षित होऊँ। (२) वे अन्य प्राण से या इसी प्राण से [प्राप्त] हों, मेरे प्राणेश्वर दिल्लीश्वर हैं।

पाठांतर—(१) १. मो. संवादेव विनोदेन, धा. संवादे च, विनोदे च, ना. सवादेव विनादेव, द. संवादेवि वनोदेव, म. संवादे विनोदेव, अ. फ. सवादे य (ज–फ.) विनादेय। २. धा. देवे देवन रच्छितं, ना. देव देवान रस्थितः, म. उ. स. देव देवान रच्छितः (रच्छित–म.), अ. देवदेवत्ति रछ्छति, फ. देवदेव न रछछती।

(२) १. मो. अन्न प्राणेऽथवा प्राणे, धा. अ. अन्य प्रानव प्रानेव, ना. अनुप्रानेन पानेवा, द. उ. स. अनुप्राने प्रयाने (प्रवाने–द.) व, म. अनुप्राप्ते प्रयानेव, फ. अन्त प्रानेव प्रानेव। २. मो. ना. द. अ. फ. प्राणेवा, धा. प्रानेव, अ. उ. स. म. प्रानेस, म. प्रानेसं। ३. अ. फ. मो. ढिल्लीस्वर, ना. ढिल्लीसुर, म. ढिलो बारि।

[२६]

दोहरा— तब दूतिन उत्तर करिय[१] पंग पुत्ति परवांन[२]। (१)
नृप अग्गइ[१] वद्दइ*[२] न कछु ऑान न मुक्कइ मान[३]॥ (२)

अर्थ—(१) तब दूतियों को पंगपुत्री (संयोगिता) ने प्रामाणिक उत्तर दिया। (२) वह न राजा के आगे कुछ कहती थी, न [अपनी] आन छोड़ती थी, और न [अपना] मान।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. दूती उत्तर आनिदिय, ना. द. दुत्तिनि (दुत्तनि–ना.) उत्तर करिय तिहि, उ. स. दुत्तिअ उत्तर उत्तरिय, म. दूतिन उत्तर उतरी, अ. फ. दुत्तिनि (दुत्तिन–फ.) उत्तरु आनि दिय। २. मो. पंगपूती परवांन, म. उ. स. बुद्धि बंध परमान (परमानि–म.), द. अप्प बुद्धि समान।

(२) १. धा. आगइ, मो. आगैं, ना. अग्गैं, म. उ. स. आगैं, अ. अग्गर, फ. अग्गा। २. मो. बंदि (=वद्दइ), द. बंदी, धा. अ. फ. बद्दिय, म. वदीय, स. वदिदय, ना. वदिआ। ३. धा. मुक्कइ मान न आन, मो. आनन मूकि (=मूकइ) मान, म. उ. स. उत्तर दियौ न आनि, ना. द. आनन मुक्किय (मुकै–द.) मान, अ. फ. मान न मुकै आन।

टिप्पणी—(१) परवांन < प्रमाण। (२) वद्द < वद्। मुक्क < मुच्=छोड़ना।

[२७]

दोहरा— तब झुकित राइ गंगह तट त[१] रचिपचि उच्च आवास[२]। (१)
चाहि गहउं*[१] चहुआन तकु[२] जु मिट्टइ*[३] बाला आस[४]॥ (२)

अर्थ—(१) राजा (जयचंद) ने तब क्रुद्ध होकर गंगा-तट पर एक ऊँचा आवास रच-पच कर [उसमें में संयोगिता को रक्खा और] (२) यह देखने लगा, "चहुआन (पृथ्वीराज) को पकड़ूँ जिससे बाला (संयोगिता) की [उसके संबंध की] आशा मिट जावे।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) धा. अ. फ. तब झुक्किय (=झुक किय) गंगा तटहि (तटह–अ.), ना. द. म. उ. स. झुकिन किय (कीय–ना. द.) गंगा तटह। २. धा. ऊच अवास, ना. म. उ. स. उंच अवास, ना. द. उच्च अवास।

(२) १. मो. चाहि गहुं (=गहउं), धा. अ. चाहि गहहुं, फ. चाहि गहहि, म. चाय गहौ, स. चहति गहौ, ना. चाहि गहौ। २. धा. इह, ना. फ. कौ, म. कौं, स. कौ, उ. कौं, अ. कहुं, द. कुं। ३. धा. अ. फ. मिटै, मो. जु मिट्टि (=मिटइ), ना. ज्युं (=जउं) मिटै, द. म. उ. ज्यौं मिटै (मिटय–म.)। ४. धा. अ. फ. ना. द. उ. स. म. बाल उर (ऊर–धा.) आस।

[२८]

अडिल्ल— सुनि सुनि[1] वचन राय[2] जवि[3] जंपिउ[4] । (१)
थरहर[1] धर[2] ढिल्लीपुर कंपिउ[3] ॥ (२)
जिउं*[1] सूर[2] तेज तुच्छत[3] जल[4] मीनह[5] । (३)
तिउं*[1] पंगह भय[2] दुज्जन भय+ षीनह[3] ॥ (४)

अर्थ—(१) [संयोगिता की] बातें सुन-सुन कर राजा (जयचंद) जब जल्पना करने लगा, (२) तब धरा थर्रा गई और ढिल्लीपुर काँप उठा। (३) [जिस प्रकार] सूर्य के तेज से घटते हुए जल में मीन [क्षीण] होते हैं, (४) उसी प्रकार पंगराज (जयचंद) के भय से दुर्जन (उसके शत्रु) क्षीण हो गए।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
+चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।
(१) १. म. उ. स. सुनि फुनि, ना. सुनि जो, द. सुन। २. म. राज, ना. अ. फ. राइ। ३. धा. अ. फ. द. जब, ना. जो, म. उ. स. इम। ४. मो. जंप्यो, धा. जंपिउ, म. उ. स. अ. फ. जंपे, ना. जंप्यौ।
(२) १. धा. मनहर, ना. थरहर, अ. थरहरि। २. धा. धरि। ३. धा. कपिउ, मो. कंपे, म. उ. स. अ. फ. कंपे, ना. कंप्यौ।
(३) १. मो. द. उ. स. ज्यौं, द. ज्यों, ना. म. ज्युं (=ज्यउं), धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है। २. म. उ. स. रवि। ३. ना. तुच्छि, म. उ. स. तुच्छ। ४. म. स। ५. मो. मिनह।
(४) १. मो. तिउ (< तिउं) द. त्युं, म. उ. त्यौं, ना. इम, धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है। २. मो. पंगह, धा. द. अ. फ. पंग भयह, ना. पंग भय, म. उ. स. पंग भयं। ३. मो. दूजन भय षिनह (=षीनह), धा. अ. फ. द. दुर्जन भय (भये—अ.) षी नह (षीनहि—फ.), म. उ. स. दुज्जन भय छीनह (छीह—म.)।
टिप्पणी—(१) जंप < जल्प्। (४) षीन < क्षीण।

३. कयमास-वध

[१]

दोहरा—तिहि तप[१] आषेटक भमइ[*२] थिर न रहइ[*३] चहुवान[४] । (१)*
वर प्रधान जुग्गिनि पुरह[१] धर रष्षइ परवान[२] ॥ (२)

अर्थ—(१) उस [विरह] ताप में चहुआन (पृथ्वीराज) आखेट में फिर रहा था, और [राजधानी में] स्थिर नहीं रहता था, (२) योगिनीपुर (दिल्ली) की धरा की रक्षा उसका श्रेष्ठ प्रधान (अमात्य) प्रमाण रूप से कर रहा था।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) फ. तिह तब। २. मो. भमि (=भमइ), धा. भमहि, ना. भमै, म. उ. स. फ. भ्रमै, द. फिरैं अ. भय। ३. धा. रहिइ (< रहइ), मो. ना. द. म. उ. स. अ. फ. रहै। ४. फ. चौहुवान।

(२) १. मो. यूगिनि पूरण, धा. युग्गिनि पुरह, फ. युग्गिनु पुरहि, ना. जुग्गनि पुरह, उ. योगिनिपुर, स. योगीनिपुर। २. मो. धर रष्यौ परवांन, धा. धर रषष्इ परधान, ना. सुधर रषन परवान, द. धर रक्षन फुरवान, म. धर रषै बरवान, उ. गय सामंत प्रधान, स. दस सामंत प्रधान, अ. फ. धर रष्षै परवान (परमानु–फ.)।

टिप्पणी—(१) भम < भ्रम्। (२) धर < धरा। परवान < प्रमाण।

[२]

साटिका—राजं जा प्रतिमा स चीन[१] धर्मा[२] रामा[३] रमे[४] सा मतीन्[५] । (१)
नित्तीरे कर[१] काम वांम[२] वसना संगेन सेज्या[३] गतिः[४] । (२)
अंधारेन जलेन[१] छिन्न[२] छितया[३] तारानि[४] धारा रत[५] । (३)
सा मंत्री[१] कयमास[२] काम अंधा[३] देवी विचित्रा गति[४] ॥ (४)

अर्थ—(१) जो राजा की प्रतिमा (प्रतिनिधि) था, वह लघु कर्मा हो गया, और उसकी मति रामा (कामिनी) में रमण करने लगी। (२) वह जिसके हाथ में तीर नहीं है, ऐसे [धनुर्धर] कामदेव की वामा (कामिनी) के वश में होकर वह उसके साथ शय्या-गत हुआ। (३) अँधेरे में [बरसने वाले] जल से जब क्षिति छिन्न हो रही थी, और तारागण भी [वर्षा के जल की] धारा में रत (लीन) हो रहे थे, (४) वह मंत्री कयमास कामांध हो गया, दैव की भी गति विचित्र है।

पाठान्तर—(१) म. जंजा प्रतिम कन्ह, ना. राजंजा प्रतिमा सुचीन। २. म. धर्म धर्म, म. धरमं, द. उ. स. प्रतिमा। ३. धा. रोमा, मो. रामा, म. रामं। ४. धा. अ. फ. रमा, म. रामे। ५. मो. सा मतीन, म. संमता, शेष में सामती।

(२) धा. नित्तीरे तर, ना. द. नीती रंकर, उ. स. नित्ती रंकरि स. ना तीरे कर, अ. नित्तीरे (नीतीरे–फ.) कर (करि–फ.)। २. धा. तास, अ. फ. ताम। ३. मो. संगेन, शेद्या (=सेझया),

धा. संजेन सेउया, ना. उ. स. द. सज्जीन संग्या, म. संगन सिउया। ४. ना. गत्ती, म. गत्ता।

(३) १. म. अरधरेन जलेन, उ. अंधारेन जलिन, स. आधारेन जलिन। २. म. ना. स. छीन, फ. क्षत्र। ३. मो. के अतिरिक्त सभी में तड़िता (जड़िता–म., तडिता–फ.)। ४. धा. धाराणि, ना. म. उ. स. साराान। ४. मो. दामन्य। ५. मो. दामायते, धा. ना. धारा रत्ती, अ. धारा रत्ती, फ. साधारत्ती।

(४) १. द. म. उ. स. सो मंत्री। २. अ. फ. कैवास। ३. धा. कामलुबधा, ना. द. उ. नास विषया, म. नास विषया, स. मास विषया, अ. फ. बुधि हरनो। ४. धा. अ. फ. दैवो विचित्रा गत्तो (गी·अ.) मा. देवी विश्दा गति, ना. देवैं विच्त्रिा गती, उ. स. दंवी विचित्रा गर्ता, म. देवो विहंगा गता।

टिप्पणी—(१) चीन=छोटा, लघु। (२) नित्तीरे कर=जिसके करों में तीर न हो। (४) विश्दा < विचित्रा।

[३]

*दोहरा—करनाटी[१] दासी[२] सुबन[*३] रजनी अथ्थि अवास[३]। (१)*
काम मुच्छ[१] कयमास तनु[२] दिट्ठि विलग्गी तास[३] ॥+ (२)

अर्थ—(१) करनाट की एक सुवर्ण (सुरूपा) दासी थी जो रात्रि में [राजकीय] आस्थान-आवास में थी। (२) काम-मूर्छित कयमास की ओर उसकी दृष्टि लग गई।

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।
+ चिह्नित चरण मो. में नहीं है।

(१) १. धा. करणाटिय, म. करनाटीय। २. धा. म. दासिय (दासीय–म.)। ३. मो. क्रुवन < कुवन), धा. अ. फ. म. सुवन, ना. सगुन, उ. स. सुबर। ३. धा. रयन हि अथ्थि अवास, अ. फ. राजन अधि आवास, फ. राजन अथ्थि अवास, ना. द. उ. म. चित्त चंचल नैय वास, म. रजनी अरध अवास।

(२) १. मो. मुच्छ, शेष में 'रत्त'। २. म. तहां। ३. अ. फ. दिठिय तुठि अवास, द. उ. स. दिष्टि (दिष्ट–स.), उरझिझय तास, म. दिठीय पिठ षवास, ना. दृष्टि उलभ्भीय तास।

टिप्पणी—(१) अथ्थि अवास < आस्थान (?) आवास=सभा गृह या गोष्ठी गृह। (२) मुच्छ < मूर्च्छ। दिट्ठि < दृष्टि।

[४]

कवित्त— चलउ[*] मुहिलि[१] कयमास[*] रयणि[२] नट्ठी[३] जाम इक्कत[४]। (१)
तंबोलय[१] सषि साषि[२] पट्ट रगिनीअ[३] निधि संकित[४]। (२)
दीपक जरइ[*] संकूरि[१] भमिअ[२] रत्तिअ पति अंतह[३] (३)
अति स रोस[१] भरि भूज[२] लिहि[*] दीय दासी करि[३] कंतह[४]। (४)
पल्लाणि अस्व तंषिन परीय[१] अवधि दीइअ[२] दुहु घरिय[३] कहं[×]। (५)
पल गयण[१] प्रयाण वनि[२] मं चरिअ[३] नयन[४] नयनप्रथिराज जहं[५] ॥(६)

अर्थ—(१) एक पहर रात्रि के नष्ट (व्यतीत) होते-होते कयमास उस महल को चला। (२) तांबूल-वाहिका सखी ने [दोनों के] उस निधि (स्नेह) से शंकित होकर पट्टराज्ञी से साक्षी [दी], (३) कि दीपक संकुटित (पतला किया जाकर) जल रहा है, और वह रात्रि पति (चन्द्र) तुल्य कयमास अन्तःपुर में फिर रहा है। (४) [यह सुनते ही] अत्यन्त रोष में भर कर

(रुष्ट होकर) भूर्ज पत्र लिख कर उसने दासी के हाथों में अपने कांत (पृथ्वीराज) के लिए दिया। (५) तत्क्षण अश्व पलान (कस) कर उसे [रानी ने] खरी दो घड़ियों की अवधि [पृथ्वीराज को लाने के लिए] दी। (६) पल भर में वह गजों से प्रकीर्ण वन में संचरण करने लगी और नेत्रों के संकेत मात्र [के समय] में [वह वहाँ जा पहुँची] जहाँ पृथ्वीराज थे।

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित चरण धा. में नहीं है।

(१) १. मो. चुल मुहिलि, धा. अ. फ. चल्यो महल, ना. चढ्यौ महल, म. गयौ महल, द. उ. स. गयौ मध्य (मधि–द.)। २. मो. किमास (=कयमास) रयणि, धा. कइवासु रयन, अ. फ. कैवासु रैनि, म. कैमास रैन, उ. स. कयमास रयनि। ३. धा. नट्ठियत्ति, ना. संपत्ति, द. उ. स. संपर, अ. फ. नठियत्ति, म. नठीयत्त। ४. धा. म. ना. अ. फ. जाम (याम–धा.) इक।

(२) १. धा. तंबोली, अ. फ. तंबोल, म. संबोले, ना. तब बुल्ली, द. उ. स. तंबुल्लिय। २. धा. अ. फ. साथ, ना. सीथ, म. सथि, अ. फ. उ. स. साथ। ३. मो. पट्टरगिनी, अ, धा. पाटरागिनि, अ. फ. पट्टरागिनि, म. पट्टरागनी, ना. द. उ. स. पट्टरागिनिय। ४. धा. अनग सिख, अ. फ. उलंघि सिक, ना. उ. स. निकट सिक, म. कसिक सिक।

(३) १. धा. अ. फ. दिय दीपक संपूरि (संपूनि–धा.), मो. दीपक जरि (=जरइ) संकूलि, ना. द. उ. स. बाय (वास–ना. द.) घास दिय पूर, म. बास थ्यातु कीय पूर। २. धा. नयर, म. भंमीय, अ. फ. . स. ना. भ्रमिय। ३. मो. रत्तिअ पति अंतह, धा. ति पंति अंत कह, अ. फ. भय रत्ति पत्ति तह, म. पाइक जग अंतह, ना. पिय किय पति अंतह, द. उ. स. पिय किय अति अंतह।

(४) १. मो. असि सरेस, म. अत सरोष। २. धा. अ. फ. लिषि भोज, ना. द. उ. स. पिक पानि (पान–ना.), म. रोसइ। ३. मो. लह दीय दासी करि, धा. दाउ (<दी) दासी कर, अ. फ. दियो दासी कर, ना. द. उ. स. सुनष (सुन–ना., नष्य–उ.) लिषि (लषिषि–ना.) सषि (सकि–ना.) कर, म. पत्रि पिकनष लिषि। ४. मो. कलह।

(५) १. अ. फ. पल अस्व ढंकि तषिन खवरि, म. दासी असि पलनि गमन किय, ना. द. उ. स. असि (पत्ति–द.) असनवारि (असि निवारि–ना.) मग्गह षरिय। २. अ. फ. ना. द. उ. स. अवधि दीन (दिन्न–ना.) म. विधि दिन्हों। ३. मो. दुइ घरीअ, अ. फ. दुइ घरिय, म. घरी दोइ, उ. स. दो घरिय, ना. दुय घरीय।

(६) १. धा. वयनि, अ. फ. गयनि। २. धा. अ. फ. वयन वन, स. सुराइह, द. सराइहं, ना. राइह, म. वयन तहां। ३. मो. संचरीय, धा. में 'सं' मात्र है। ४. ना. सुष्ष, द. उ. स. अयन। ५. धा. जहि, मो. जाहां, म. जहां।

टिप्पणी—(१) रयणि < रजनी। नट्ठ < नष्ट। जाम < याम। (२) पट्टरगिनीअ < पट्टराज्ञी। निधि < स्नेग्ध्य। (३) संकूरि < संकुटित=सिकुड़ा या सिकोड़ा हुआ, कम किया हुआ। भम < भ्रम्। रत्तिअ < रात्रि। (४) भूज < भूर्ज। लिष्ष < लिख्। कंत < कान्त। (५) तषिन < तत्क्षण। (६) गय < गज। प्रयण < प्रकीर्ण। सयन < संकेत।

[४]

*गाथा—भू भत[१] सचित सुनिद्रा[*२] संग[+×] सा[३+×] रयणि[×] जग्गइ[×*] अविध्धा[४×]। (१)*

दीपकु[×] जरइ[×] सुमुद्धा[१×] नूपुर[२] सद्दानि[३] भानि अच्छानि[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) भूभर्तृ (भूमि का भरण करने वाले—भूपति) सुचित्त होकर सुनिद्रा में थे, और [उन के] साथ वह रजनी भी अवैध रूप से जाग रही थी। (२) दीपक जल रहा था, [उसी समय] उस मुग्धा [दासी] ने नूपुर के अच्छ (स्वच्छ) शब्दों से [उस निद्रा को] भंग किया।

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं।

(१) १. धा. भ्रमित, अ. फ. ना. भूभ्रत। २. मो. सचित, सूनिदां, धा. चंकित नृनंदा, अंसुचित सुनंदा, ना. चित्त सुनिद्दा, म. सुचित नंदा, द. सुचित सुनिद्रा, उ. स. सुचित निद्रा। ३. अ. संगे सा, ना. संगी सा, द. संगी स, उ. स. सिंगीसार, म. संगेगा। ४. मो. जगि (=जगइ) अविध्धा, धा. जानि निय वद्धा, उ. मग्गियं विद्धा, स. जग्गियं बिद्ध, म. जगीयं विध्धा, ना. जग्गियं वद्धा, अ. फ. जग्गि जियं बद्धा।

(२) १. धा. जरइ ससुद्दा, ना. द. अ. जरइ सुमंदा, ना. म. जोर सुमंदा, उ. जरंत सुदं, स. अरंत मंदं। २. मो. नपर। ३. अ. सद्द, फ. सद्दाय। ४. धा. अच्छागि म. आच्छमि, द. आथानि, अ. फा. यंजले।

टिप्पणी—(१) भूभ्रत < भूभर्तृ=भूपति। निद्दा < निद्रा। रयणि < रजनी। (२) सुद्धा < मुग्धा। सद्द < शब्द। भान < भञ्ज।

[६]

साटिका— भूकंपं[1] जयचंद राय× कटके[2] शंकापि न ग्यायते[3] । (१)
सं+ साहिस्स सहावसाहि[1] +सकलं[2] इच्छामि[3] जुज्झाइने[4] । (२)
सिद्ध[1] चालुक चाइ मंत्र[2] गहने[3] दूरे स विस्वासरे[4] । (३)
अग्यानं[1] चहुआन जांन रहियं[2] दैवोऽपि रक्षा करे[3] ॥ (४)

अर्थ—(१) जयचंद राज के कटक से भूकंप होता था, किन्तु [पृथ्वीराज को] उससे शंका भी नहीं ज्ञात होती थी; (२) शाह शहाबुद्दीन से उसने समस्त युद्ध साहस के साथ और इच्छा पूर्वक किए थे; (३) सिद्ध (जैन) चालुक्य [भीम] को जब मंत्री (कयमास) ने चाव (उत्साह) से पकड़ा था, यह विश्वासर में दूर था [उस युद्ध में इसने भाग भी नहीं लिया था]। (४) ऐसे भी चहुआन (पृथ्वीराज) को अज्ञ [कयमास] जान न पाया, [अतः] दैव ही उसकी रक्षा करे।

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द द. में नहीं हैं।

+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं।

(१) धा. भू कपइ, मो. म. द. भूपं (भूप–म.) उ. स. भूपानं, ना. भू कंपं, अ. फ. भूकंपे (भूकंपे–फ.)। २. मो. धा. ना. म. उ. स. द. निकटं (निकटो–म.)। ३. मो. निद्दा (=नेहा) पि वयुं उयांगनो, धा. नेही पित ग्यायते, ना. द. उ. स. नेहाय (नेहाइ–ना. द.) जग्गाइने (जग्गायने–ना.), म. नाहा पांव्यंजागने, फ. शंकापि न गायते।

(२) १. मो. संसाहिव साहि सुकलं, धा. साहित्र साहि प्रपयो, अ. फ. साहुक साहि सहाव दीन सकलं, म. सं साहि साहि सकल, द. संसाहिरस वसाह सकलं, ना. संसाहसम बसाहि बद्ध सकले, उ. स. संसाहिस्स बसाह साह सकलं। २. मो. अद्यापि, धा. युध्धापि, म. अछिमि। ३. मो. यूधायनं, धा. न ग्यायते, म. जुझाइने, ना. जुझाइमे।

(३) १. मो. सिधि, धा. सिधं, ना. सिद्धी, द. सिंधो, उ. स. मिद्धं। २. धा. चित्त, म. मंति। ३. मो. गाहनो, धा. दहनो, ना. म. उ. स. द. गहनो। ४. मो. ना. दूरे स बिस्वासरे, धा. दूरेऽपि जानाम्यहं, अ. फ. दूरे सुजाना इते, म. एरेस विस्वस रो, द. उ. स. दूरे स विस्वारने।

(४) १. मो. अग्यानां, अ. फ. आग्यानं। २. धा. जान रहितं, मो. जांमि रहायं अ. जानिरहियं, ना. म. जानि रहोयं। ३. धा. दैवोऽपि रक्षा कर, मो. अ. फ. दैयोपि रक्षा करो (रछूछाक रं–अ., रक्षा, कर–फ.), ना. द. उ. स. देवं (दैवं–उ.) तु (च–ना.) रष्या (रिक्ष्या–द., रच्छा–ना.) करे, म. देवो तूव रिष्या करो।

टिप्पणी—(४) जांन रहिय < ज्ञान रहित।

[७]

रासा— छत्तिय[१] हत्थु धरंत[२] नयन्नु चाहियउ[३] । (१)
तब हि दासि करि* हथ्थ[१] सु बंचि[२] सुनावियउ[३] । (२)
बानावरि दुहु बाह[१] रोस रिस[२] दाहियउ[३] । (३)
मनहु[१] नागपति पतिनि*[२] अप्प[३] जगावियउ[४] ॥ (४)

अर्थ—(१) [जगाने के लिए दासी के] छाती पर हाथ रखते ही [पृथ्वीराज ने] आँखों से [उसे] देखा । (२) दासी ने तभी (तत्काल) [पत्र को] हाथ में [ले] कर उसे बाँच सुनाया । (३) [पत्र को सुनते ही] उसके दोनों बाहुओं में बाणावली [शोभित होने लगी] और वह रोष-रिस से दग्ध हो गया । (३) [दासी का पृथ्वीराज को उस समय जगाना ऐसा लगा] मानो नागपति को [उसकी] पत्नी ने आप ही जगाया हो ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. छत्तिका, म. छत्रां । २. द. धरंनत, ना. धरंति । ३. मो. नयन्नु वाहिय, धा. नयननि चाहियउ, अ. फ. नयननि वाइयउ (वाइयौ—फ.), ना. नयन्न वियाइयो, द. उ. स. नयनन चाइयौ (चाइयो —द.), म. नयंननु चाइयो ।

(२) १. मो० तबही दास कर हथ, धा. उ. स. दासिय दष्षिन हत्थ, ना. द. अ. फ. दासिय दछिछन हथ्थ (हत्थि—ना., हथ्थन—अ. फ.), म. दासी दिष्षन हसंति । २. मो. सुबंच, धा. जु बंचि, फ. वंच, अ. वंचि, ना. ति बंचि । ३. मो. सुनाययूउ, अ. सुनाइयउ, फ. सुनावयौ, म. सुनाइयो, धा. दिषावियउ., स. दिखाययौ, द. ना. उ. दिखावयौ (दिषावयो—ना.) ।

(३) १. मो. वानावलि विदहु (पाठान्तर भी सम्मिलित है) बांन, धा. बानावरि बिहुंवान, ना. वानावरि विय वान, म. बानावरी चहुवांन, द. बानावल बीय वान, उ. स. जिनबाला बलवान, अ. फ. बानावरि दुहु (बानावर दिहु—फ.) बाह । २. धा. रसि, उ. स. रस, फ. विस । ४. मो. दाहयु (=दाहयउ), धा. ना. म. दाहयो, उ. स. फ. दाहयौ, अ. दाहयउ ।

(४) १. ना. अ. फ. मनौ, उ. स. मानहु, म. परिहां मांनुहुं । २. मो. नागपति पतिन, धा. नागपति सुत्त, अ. फ. नागपति नारि, स. नागपतित्त, ना. उ. नागपति पति त (तं—ना.), म. नागपति पत्ति । ३. धा. अप्पु, अ. फ. सुअप्प, ना. अप्पु, म. सुआप । ४. ना. द. फ. उ. स. जगावयौ, मो. जगाइयु (=जगाइयउ), म. जगावयो ।

टिप्पणी—(१) चाहना=देखना । (२) वंच < वाच < वाच् ।

[८]

रासा— संग सयन्न न सथ्थि[१] नृपत्ति न जानयउ[२] । (१)
दुहूं[१] विचि इक दासिय[२] संग संमानयउ[३] ।× (२)
इंदु फणींदु[१] नरयंद न[२] अथ्थि[३] स भानयउ[४]× । (३)
घरह घरिय[१] दुहुं[२] मझिझ[३] ततष्षिन[४] आनयउ ॥(४)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के जाने की बात] न संग की सेना ने जानी और नृप के सथियों ने । (२) दोनों के (पट्टराज्ञी और अपने) बीच में एक दासी को संग में रखकर [पृथ्वीराज ने] उसको सम्मानित किया । (३) उसने इंद्र, फणीन्द्र और नरेन्द्रों की अथियों (गोष्ठियों) [के गर्व] को भी भंग (समाप्त) कर दिया । (४) [पृथ्वीराज को] वह घर दो घड़ियों में तत्क्षण ले आई ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पा० के है।

×चिह्नित चरण म. नहीं हैं।

(१) १. म. अरे संग न न सथ्थि, अ. फ. संग सयन्नन सत्थ, धा. संग सयसयन्न निसत्थ, द. संग सयननि सथ्थ, ना. सपन्नन सत्थ। २. धा. आनयो (तुल० चरण ४), म. फ. जानयौ, अ. आनयउ, ना. आनयी।

(२) १. अ. दहु, फ. दहौ। २. धा. विच्चइ इक दासिअ, अ. फ. विच हुँ इक दासिसु, द. विच हय इक दासिय, ना. वीचह इक दासिय। ३. ना. समानया, अ. समानयउ, फ. समानयौ।

(३) १. धा. दुंदफनिंद, ना. इंदफुनिंद, द. इंद मुनिंद, उ. स. इंद नरिंद। २. मो. धा. अ. फ. नचंद (< नरयंद) न, ना. मुनिंदह, उ. स. फुनिंदर। ३. ना. अच्छि। ४. धा. सुभानयो, अ. सुमानयउ, फ. सुमानयौ, ना. उ. स. समानयौ (समानयो–ना.)।

(४) अ. फ. घरी इक, धा. घरहि घरी, ना. घरह घरी, म. घरा घरी। २. धा. द. दुइ, फ. दुहौं, ना. दुवय, उ. स. दुअ, म. दोइ। ३. म. मझ, ना. मझि। ४. धा. अ. फ. ना. ततच्छिन। ५. म. आंनयौ, धा. ना. आनयो।

टिप्पणी—(१) सयन्न < सेना। (३) अथ्थि < आस्थान (?) < अथाई। भान < भञ्ज्। (४) ततष्षिन < तत्क्षण।

[९]

दोहरा—नवति नवप्पल* निसि गलित[1] धनु[2] घुम्मइ*[3] चिहुं पासि[4]। (१)
पानि न[1] अंषि न[2] संचरइ*[3] महल[4] कहल[5] कयमास*[6] ॥ (२)

अर्थ—(१) [कयमास के महल में आने के अनंतर] नवनवति (निन्यानवे) पल निशा [और ?] गल (बीत) पाई थी, जब [पृथ्वीराज का] धनुष [कयमास को लक्ष्य बनाने के लिए] उसके पास चारों ओर घूमने लगा। (२) उस समय [अंधकार के कारण] आँखें और हाथ नहीं संचरण कर पा रहे थे, जब कयमास महल में केलि में था।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) मो. नववति नव पल नसि गलीत, धा. नवति नवँ पल निसि गलित, अ. फ. नव तम नव पल निसि गलित, ना. द. नववति नवपल (नवपल–ना.) निसि गलित, म. नव नववति निस प्रति मिलति, उ. स. रति पति मुच्छि आलुच्छि तन (तुल० अगला दोहरा)। २. धा. म. घन ३ मो. घुमि (< घुम्मइ), न. घूमे, द. घुम्म, धा. अ. फ. म. उ. स. घूम्यो (घुम्यौं–म. अ. फ.)। ४. मो. चहूपास, धा. ना. चिहुं पासि, अ. चहुं पास, फ. चौह पास, द. उ. स चिहुं पास, म. चुहु पास।

(२) १. म. जांनन. फ. पान नि। २. उ. स. अंष न। ३. मो. संचरि (=संचरइ), अ. फ. म. उ. स. संचरै, ना. संचरहि। ४. मो. के अतिरिक्त सभी में 'महल'। ५. मो. फ. कलह, म. केल। ६. मो. कमास (=कयमास), धा. कइमासि, अ. फ. ना. कैमास, म. कैवास।

टिप्पणी—(२) कहल < केलि।

[१०]

दोहरा—रतिपति मुच्छि अलुष्षि तन[1] धन डुलइ* बिय*[2] काज[3]। (१)
तडित[1] किअउ*[2] अगुलि अधम[3] सु भरिग[4] बान प्रथीराज[5] ॥ (२)

अर्थ—(१) जिनके तनु रतिपति (काम) से मूर्च्छित और अलक्ष्य हो रहे थे, ऐसे दोनों के लिए [पृथ्वीराज का] धनुष डोल रहा था। (२) अधम अगुंली ने तडित् [के समान कार्य] किया और पृथ्वीराज का बाण भर गया (धनुष पर जा लगा)।

पाठान्तर—(१) १. मो. रतिपति सुछी अलूष्पां तन, धा. ना. द. अ. फ. रतिपति मुच्छिय लच्छि (अलछिछ–अ. ना.) तनु, म. रतिपति तुछय शकुछ तन, उ. स. निसि अर्द्धा सुझैं नहीं। न. मो. धन डुनि (=डुनइ) वय, धा. तरनी रवन वय, अ. फ. तरणि पान वय, ना. द. विरस (विरसि–ना.) काम विय, म. धन तर पानव, उ. स. श्र कैमासय। ३. अ. फ. काजि।

(२) १. इस चरण के पूर्व मो. में अतिरिक्त है; 'पुनह नयन कीय' जो कदाचित् इस छंद के किसी अंश का पाठान्तर मात्र है। २. धा. अ. फ. ना. द. उ. स. करिग, म. कीयौ। ३. धा. धरह, ना. द. म. उ. स. धरम, अ. करह, फ. करहि। ४. धा. करिग, ना. धरिग, अ. फ. म. उ. स. भरिग। ५. धा. म. अ. ना. प्रिथिराज।

टिप्पणी—(१) मुच्छि < मूर्च्छ। अलुष्षि < अलक्ष्य। बिय < द्वय।

[११]

कवित्त—भरिग[१] बान चहुआन जानि[२] दुरि[३] देव नाग[+] नर। (१)
मुट्ठि दिट्ठि[१] रिसि[२] डुलिग[३] चुकि[४] निकरिग[५] एक[६] सर। (२)
उभय बान दिअ[१] हत्थि[२] पुट्ठि परमारि[४] पचारिय[५]। (३)
वानावरि[*] तटकंति[१] छुटित धर धरनि[२] आधारिय[३]। (४)
किय कब्बु सब्बु सरसइ[१] गनित फुणिव[३] कहउ[४] कवि चंद तत[५]। (५)*
*इम[१] परउ[*२] अयास अवास तइ[*३] जिम निसि नसित[०] नषत्रपति[४]॥ (६)*

अर्थ—(१) चहुआन (पृथ्वीराज) का वाण भर (चढ़) गया, यह जानकर देव, नाग तथा नर छिप गए। (२) [किन्तु] क्रोध के कारण [पृथ्वीराज की] मुट्ठी तथा दृष्टि डोल गई, और एक वाण चूक कर निकल गया। (३) [तदनन्तर] परमारी (पट्टराज्ञी?) ने उसके हाथों में दो वाण और दिए और पीठ पर (पीछे से) उसे प्रचारा (ललकार कर उत्तेजित किया)। (४) वाणावली के तड़कते ही [कयमास का] आहत धड़ आकर धरणी पर आधारित हुआ। (५) [यह] सारा काव्य सरस्वती ने विचार कर के किया, और तदनन्तर उसने कवि चन्द से इसे कहा। (६) कयमास आकाश [–चुम्बी] आवास (प्रासाद) से इस प्रकार गिरा जैसे निशा में नक्षत्रपति (चन्द्रमा) विनष्ट होकर गिरा हो।

पाठान्तर—० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. ना. भरिक। २. म. जांन। ३. धा. उ. स. दुर, मो. दूर, म. दु, अ. फ. दुरि।

(२) १. ना. छुट्टि (< छुट्टि?) मुट्ठि (< मुट्ठि), फ. मुट्ठ दिट्ठ। २. धा. उ. स. रस, अ. फ. रिस, ना. सर, फ. सिरु, म. सिरि। ३. म. हलिग। ४. मो. चकि। ५. ना. नन करिग। ६. धा. ना. म. इक्क।

(३) १. धा. उभय आनि दिय, मो. भय बान दिअ, उ. दुतिय बान, स. दुत्ति बान, ना. बीयौ बान, म. उभय आंन दीयौ, अ. फ. उभय आनि दिय। २. मो. म. उ. स. अ. हथ्थ। ३. मो. पूठि, म. मुठि। ४. धा. पावारि, मो. परमार, उ. स. पामार, द. म. पंमारि, धा. अ. फ. पावारि, ना. पामारि। ५. उ. स. अ. पचार्यो, धा. ना. म. फ. पचार्यौ।

(४) १. मो. वानीवर तटकंति, धा. वानीवर तरकंत, ना. स. बानि वृत्त (वृत्ति–ना.) तुटिकंति, द. उ. वान वृत्ति तुटिकंत, अ. फ. बानि वरत्तरकंत, म. वानावर तरकंति। २. मो. छुटित घर, धा. छुट्ट धार धर, अ. फ. छुट्टि धर धर, म. छुटि धर धरनि, ना. द. उ. स. सुनत (सुनति–ना.) धर (सिर–ना., सुर–द.) धरनि। ३. धा. उपारच्य, ना. द. म. उ. स. अधारयौ, अ. फ. आधारयो।

(५) मो. कीय कव सव शरसि (=सरसइ), धा. अ. फ. इय कब्बु सब्बु (सच्चु–फ.) सरसइ (सरसै–फ., सरसै अ.), म. हुइ इक चित वससर, ना. कैय कव सरसै। २. मो. गनीत (=गनित), धा. सुनित, अ. फ.

गुनिस, ना. गुनगि, म. गुणित्त, स. गुनत्ति । ३. धा. फुणित, म. उ. स. अ. पुनित, फ. पुन्यत, ना. पुनिन, म. फुनि तांहि । ४. मो. कहु (= कहउ), शेष में 'कह्यौ' । ५. धा. तव, द. ततु, अ. ना. तत्ति, म. दतु ।

(६) १. स. थौं । २. मो. पुर (< परु=परउ), धा. द. अ. फ. पर यों, उ. स. म. ना. पर यौ । ३. मो. आयाश त्रुवास ति (=तइ), धा. अवास अयास तैं, अ. आयास अवास (आवास-फ.) ते, फ. आइ आवास ते, म. कैवास आवास त, ना. कैमास आवास तैं, द. उ. स. कैमास अवास तें । ४. मो. जीम निसि मिसित नषत्रपति, धा. जिमनिसि...नछत्रपति, म. जिम सुनिस नछित्रपतु, अ. जिम निसि नसित नक्षत्रपत्ति, फ. जिम निसि निसित नछत्रपति, ना. जानु निसानह छत्रपत्ति, उ. जानि निसा नछितपति, द. स. जानि निसा न नछित्रपत्ति ।

टिप्पणी—(२) चुक्क=चूका हुआ, भ्रष्ट । (३) पूठि < पृष्ठ । (४) घुट्ट < घट्ट=आहत होना, भ्रष्ट होना । (५) कब्ब < काव्य । सरसइ < सरस्वती । गन < गणय । फुणि < पुनर । (६) अयास < आकाश । अवास < आवास । नसित < नष्ट ।

[१२]

गाथा—सुंदरि गहि[१] सारंगो दुज्जन[२] दमनोइ[३] पिष्षि[३] साइक्कं[५] । (१)
किं किं[१] विलास गहियं[२] किं किं[३] दुष्षाय दुष्षाय[४] ॥ (२)

अर्थ—[पृथ्वीराज ने परमारो (पट्टराज्ञी ?) से कहा,] "हे सुन्दरी, तू इस धनुष को थाम, और दुष्ट [कयमास] का दमन करने वाले बाणों को देख । (२) उसने क्या-क्या विलास किए, [किन्तु] किन-किन दुःखों के लिए !"

पाठान्तर—(१) १. मो. गिह । २. मो. दूजन, धा. अ. फ. म. ना. उ. स. दुज्जन (दुज्जण-धा. म.) । ३. मो. दमनेहि, धा. दमनोइ, अ. फ. दवनोपि, म. दमणोपि, स. समनोपि, ना. उ. दमनोपि । ४. धा. पषि । ५. मो. शायिकं (=साइक्कं), म. सायकं ।

(२) १. मो. काकि, शेष में 'किंकि' । २. अ. फ. ना. करियं । ३. मो. क्थुं क्थं, ना. द. किंकि न, उ. स. किंकिनो । ४. म. दुपाइ दुषीयं दुषं ।

टिप्पणी—(१) सारंग < शार्ङ्ग=सींगों का बना धनुष । पिक्ख < प्र+ईक्ष् ।

[१३]

दोहरा—खनि[१] गड्डउ[२] नृप[३] अर्ध निसि[४] सम दासी सुरया ति+×[५] । (१)*
देव धरह जल घन अनिल+×[१] कहिग चंद कवि प्राति+×[२] ॥ (२)*

अर्थ—(१) नृप (पृथ्वीराज) ने उस सुरूपा दासी के साथ [कयमास को] अर्ध रात्रि के समय खन कर गाड़ (गड़वा) दिया । (२) देवताओं, धरा, जल, घन और वायु से भी चंद कवि ने ही प्रातःकाल कहा ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।
+ द. में चिह्नित चरणार्द्ध नहीं है ।
× ना. में चिह्नित चरणार्द्ध नहीं है ।

(१) १. मो. षिनि । २. मो. गड्ड (=गड्डउ), शेष में 'गड्यो' (गड्यौ-म. ना.) । ३. मो. नृपि । ४. मो. अर्ध निशा (< निसी) धा. अरु धनह, अ. फ. अनु धरह, म. अर धुनिस, उ. स. सम धनह । ५. मो. समदासी सुरिआते, धा. फ. समदासी सुरजात (जाति-फ.), उ. स. सो दासी सुरपात (सुरयात-उ.), म. श्रमदासी सुरपति ।